हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: एक तुलनात्मक अध्ययन

(2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित नाटकों के संदर्भ में)

HINDI AUR PUNJABI KE NATAKON MAIN BADALATA PARIVESH: EK TULNATMAK ADHYAYAN

(2000 SE 2018 KE MADHYA PRAKASHIT NATAKON KE SANDARBH MAIN)

A Thesis

Submitted in partIal fulfillment of the requirements for the

award of the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in

(HINDI)

By

GURMEET SINGH

(41700075)

Supervised By

DR. VINOD KUMAR

Transforming Education Transforming India

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

PUNJAB

2021

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी गुरमीत सिंह ने **"हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: एक तुलनात्मक अध्ययन (2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित नाटकों के संदर्भ में)"** विषयक शोध-प्रबंध मेरे निर्देशन में स्वयं लिखा है। इसकी सम्पूर्ण सामग्री शोधपरक एवं मौलिक है। मैं इस शोध-प्रबंध को लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब की पीएच.डी. हिन्दी की उपाधि हेतु मूल्याँकनार्थ प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

दिनांक: 02-04-2021

(डॉ. विनोद कुमार)
एसोसिएट प्रोफेसर,
समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय,
लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब।

घोषणा-पत्र

मैं गुरमीत सिंह शोधार्थी पीएच.डी हिन्दी सत्य व निष्ठापूर्वक प्रमाणित करता हूँ कि **"हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: एक तुलनात्मक अध्ययन (2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित नाटकों के संदर्भ में)"** विषय पर किया गया शोध मेरा मौलिक शोध कार्य है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब की पीएच.डी हिन्दी की उपाधि हेतु कार्य किया गया है। यह शोध **डॉ. विनोद कुमार** एसोसिएट प्रोफेसर, समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय, लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब के निर्देशन में पूरा किया गया है।

मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि मेरे द्वारा किया गया प्रस्तुत शोध-प्रबंध आंशिक अथवा पूर्ण रूप से किसी अन्य उपाधि के लिए अन्य किसी विश्वविद्यालय को प्रस्तुत नहीं किया गया है।

दिनांक: 02-04-2021

Gurmeet Singh

गुरमीत सिंह (शोध छात्र)
पंजीयन संख्या: 41700075
समाज विज्ञान एवं भाषा संकाय,
लवली प्रोफैशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब।

प्राक्कथन

दुनिया भर की सभ्य संस्कृतियों में सबसे प्राचीन साहित्यिक विधा नाटक के रूप में मौजूद है। पुरातन काल से लेकर अब तक जितने भी नाटकों की रचनाएँ हुई हैं, उन सबमें समाज को कोई-न-कोई संदेश देने का प्रयास हुआ है। अन्य साहित्यिक विधाओं के मुकाबले नाटक श्रव्य एवं दृश्य होने के कारण, इसमें किसी भी समस्या का बहुत गंभीरता के साथ प्रदर्शन किया जाता है। इस प्रकार हमारा भी यही प्रयास है कि हिन्दी और पंजाबी के उन नाटकों का ही विश्लेषण किया जाए, जो आधुनिक यथार्थवादी समस्याओं से भरपूर हैं। 2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित नाटकों की विषय वस्तु और उनके बदलते परिवेश को प्रस्तुत करने के लिए नाटककारों की अपेक्षा नाटकों का चयन किया गया, चूँकि चयनित नाटकों के पात्रों की मानसिकता का गंभीरता से अध्ययन कर, सम्बंधित समस्याओं को प्रस्तुत किया जाए।

इक्कीसवीं शताब्दी को हम चुनौतियों की शताब्दी भी कह सकते हैं, जिसमें बिखरता हुआ संयुक्त परिवार, युवाओं की बदलती मानसिकता, बुजुर्गों की त्रास भरी स्थिति, दाम्पत्य सम्बन्धों के टकराव, भ्रष्टाचार, युवा पीढ़ी की विदेश जाने की लालसा, सत्ताधारियों के द्वारा जनता पर अत्याचार, दिन प्रतिदिन बढ़ती साम्प्रदायिकता, सत्ता पक्ष का न्याय में दखल, लोकतंत्र में से आती तानाशाही की बदबू, बढ़ती महँगाई, बेरोजगारी, कृषकों की समस्या, रिश्वतखोरी एवं गरीबी आदि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याएं हैं, जो दिन प्रतिदिन बढ़ रही हैं। जिससे प्रत्येक व्यक्ति का मानसिक शोषण हो रहा है और जीवन की गुणवत्ता समाप्त हो रही है। इसको लेकर आधुनिक नाटककार चिंतन कर रहे हैं एवं समाज को सही दिशा देने का प्रयास भी कर रहे हैं। इसलिए हमने हिन्दी और पंजाबी के उन नाटकों का चयन करने के बाद तुलनात्मक अध्ययन करने का निर्णय लिया, जिसमें इन सभी समस्याओं का वर्णन हो। इन समस्याओं की दोनों भाषाओं के नाटकों के साथ तुलना करते हुए, बदलते परिवेश के माध्यम से इसके स्वरूप को रेखांकित करना और इन समस्याओं के निवारण की ओर जाना ही मुख्य उद्देश्य है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध जनहित के लिए छोटा-सा प्रयास है।

भारत में हिन्दी कुछ राज्यों की राज भाषा है और बहुत सारे लोग इसको पढ़ने और समझने की क्षमता रखते हैं, इसलिए प्रस्तुत शोध को ज्यादा लोगों तक

पहुँचाने के लिए पंजाबी नाटकों, आलोचकों और अन्य स्रोतों के संदर्भों का अनुवाद भी हिन्दी में ही किया गया है, अनुवादों के बल पर रचनाओं का भौगोलिक विस्तार हो जाता है और उक्त भाषा की महत्ता का बोध अन्य क्षेत्र के लोग भी अनुभव करने लगते हैं।

जिज्ञासा और शोध मनुष्य जाति की स्वाभाविक विशेषताएँ हैं। जिसके फलस्वरूप मानव की अपने समय के समाज को जानने की लालसा सदैव बनी रहती है और अनुभव के द्वारा वह इन्हें जाँचने का प्रयास भी करता है। सरल शब्दों में कहें, तो साहित्य इन्हीं अनुभवों की देन है। इसलिए साहित्य को जीवन का अभिन्न अंग माना जाता है। मनुष्य का समाज और साहित्य के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध होता है। साहित्य का जन्म अनुभव से होता है और अनुभवों का विकास बदलते परिवेश के साथ होता है, साहित्यकार और परिवेश का सम्बन्ध अटूट है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध का विषय भी नाटकों में बदलते परिवेश से सम्बंधित है।

प्रथम अध्याय- 'सैद्धांतिक पृष्ठभूमि' में परिवेश का अर्थ, परिभाषा और परिवेश के विभिन्न प्रकारों को प्रस्तुत करते हुए, एक साहित्यकार का परिवेश के साथ क्या सम्बन्ध है? उसको प्रस्तुत किया गया है। साथ ही उन कारणों को जानने का प्रयास भी किया, जिसके कारण परिवेश बदल रहे हैं। इसके बाद तुलनात्मक साहित्य के विषय-प्रवेश को स्पष्ट करते हुए, तुलनात्मक अध्ययन का अर्थ, परिभाषाएँ और इतिहास को प्रस्तुत किया। साथ ही तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के स्वरूप को पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया गया। तुलनात्मक अध्ययन और अनुवाद का काफी गहरा सम्बन्ध है, इसकी महत्ता को देखते हुए, इसको भी प्रस्तुत किया गया। वर्तमान युग में तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। प्रस्तुत अध्याय में तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता को भी प्रस्तुत किया गया है, साथ ही इक्कीसवीं शताब्दी तक हिन्दी और पंजाबी नाटकों के विकास में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक परिवेश और भाषा एवं शिल्प पक्ष को प्रस्तुत किया गया है। चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों का सामान्य परिचय और नाटककारों का जीवन परिचय भी दिया गया है।

द्वितीय अध्याय- 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: सामाजिक पक्ष' में सामाजिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और सामाजिक परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट किया गया है और साथ ही दोनों भाषाओं के चयनित नाटकों के तत्त्वों के आधार पर इनका विभाजन किया, इसके अंतर्गत 'संयुक्त परिवार प्रणाली की परम्परा और बदलता परिवेश', 'नयी और पुरानी पीढ़ी की सोच में संघर्ष और बदलता परिवेश', 'बदलते परिवेश में बुजुर्गों के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण', 'बदलते सामाजिक परिवेश में दाम्पत्य सम्बन्धों में परिवर्तन', 'बदलते सामाजिक परिवेश में नारी के प्रति दृष्टिकोण', 'भ्रष्टाचार से प्रभावित सामाजिक परिवेश', 'बदलते सामाजिक परिवेश में प्रवास की प्रवृत्ति', 'वर्तमान सामाजिक परिवेश में युवाओं की मानसिकता' और 'आधुनिक साहित्यकारों के द्वारा समाज के यथार्थ रूप का प्रस्तुतीकरण' आदि को दोनों भाषाओं के नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में तुलनात्मक, समाजशास्त्रीय और आलोचनात्मक शोध प्रविधि की प्रधानता रही है। अध्याय के अंत में हिन्दी और पंजाबी नाटकों में सामाजिक पक्ष के तुलनात्मक बिन्दुओं को निष्कर्ष में प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय- 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: राजनीतिक पक्ष' में हमने राजनीतिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और राजनीतिक परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट किया गया है, साथ ही दोनों भाषाओं के चयनित नाटकों के तत्त्वों के आधार पर इनका विभाजन किया। इसके अंतर्गत 'बदलते राजनीतिक परिवेश में राजनेताओं और जनता के साथ पारस्परिक सम्बन्ध', 'बदलते राजनीतिक परिवेश में साम्प्रदायिकता', 'राजनीति सत्ता के दबदबे में भ्रष्टाचार का प्रफुल्लित रूप', 'बदलते परिवेश में राजनेताओं का न्याय एवं पुलिस प्रशासन में दखल', 'वर्तमान की राजनीति में जातिवाद एवं परिवारवाद को बढ़ावा' और 'आधुनिक राजनीति में बढ़ते स्वार्थ के कारण परिवर्तित परिवेश' आदि को दोनों भाषाओं के नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में तुलनात्मक, समाजशास्त्रीय और आलोचनात्मक शोध प्रविधि की प्रधानता रही है। अध्याय के अंत में हिन्दी और पंजाबी नाटकों में राजनीतिक पक्ष के तुलनात्मक बिन्दुओं को निष्कर्ष में प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय- 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: आर्थिक पक्ष' में आर्थिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और आर्थिक परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट किया गया है, साथ ही दोनों भाषाओं के चयनित नाटकों के तत्त्वों के आधार पर इनका विभाजन किया, इसके अंतर्गत 'बदलते परिवेश में पूंजीवादी व्यवस्था एवं आर्थिक वर्ग का स्वरूप', 'बदलते परिवेश में बढ़ती हुई महँगाई के कारण जन-सामान्य की त्रासदी', 'बदलते आर्थिक परिवेश में दिन प्रतिदिन बढ़ रही बेरोजगारी', 'बदलते परिवेश में कृषक का आर्थिक संघर्ष', 'बदलते आर्थिक परिवेश में भ्रष्ट व्यवस्था का स्वरूप', 'बदलते परिवेश में व्यावसायिक व्यापार की त्रासदी' और 'बदलते आर्थिक परिवेश में बढ़ती गरीबी दर' आदि को दोनों भाषाओं के नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में भी तुलनात्मक, समाजशास्त्रीय और आलोचनात्मक शोध प्रविधि की प्रधानता रही है। अध्याय के अंत में हिन्दी और पंजाबी नाटकों में आर्थिक पक्ष के तुलनात्मक बिन्दुओं को निष्कर्ष में प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय- 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: मनोवैज्ञानिक पक्ष' में मनोवैज्ञानिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट किया है। दोनों भाषाओं के चयनित नाटकों के तत्त्वों के आधार पर इनका विभाजन किया, इसके अंतर्गत 'बदलते परिवेश में नैतिक अवमूल्यन का मनोवैज्ञानिक पक्ष', 'वर्तमान युग में सामान्य जन में कुंठा और एकान्तप्रियता की भावना', 'बदलते परिवेश में अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित वर्ग की त्रासदी', 'आत्मविश्वास की कमी और अकेलापन की भावना', 'प्रेम वासना और प्राकृतिक काम से पीड़ित युवा', 'बदलते मनोवैज्ञानिक परिवेश में कल्पना और स्वप्न', 'बदलते परिवेश नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' और 'बदलते परिवेश में पुरुष पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' आदि को दोनों भाषाओं के नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय और आलोचनात्मक शोध प्रविधि की प्रधानता रही है। अध्याय के अंत में हिन्दी और पंजाबी नाटकों में मनोवैज्ञानिक पक्ष के तुलनात्मक बिन्दुओं को निष्कर्ष में प्रस्तुत किया गया है।

छठा अध्याय- 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: भाषा एवं शिल्प पक्ष' इस अध्याय में भाषा एवं शिल्प के अर्थ को स्पष्ट करते हुए, दोनों भाषाओं

के चयनित नाटकों के तत्त्वों के आधार पर इनका विभाजन किया। इसके अंतर्गत 'नाट्यभाषा का अर्थ एवं इसके विविध आयाम', 'पात्रानुकुल एवं प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग', 'चयनित नाटकों में सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग', 'चयनित नाटकों में व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग', 'नाटकों के बदलते परिवेश में भाषा-शैली', 'विभिन्न भाषाओं के शब्दों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग', 'शिल्प का अर्थ, परिभाषा और स्वरूप', 'बदलते परिवेश में नाट्य शिल्प', चयनित नाटकों में मिथकों का प्रयोग', 'चयनित नाटकों में प्रतीकों का प्रयोग', चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में रंग-विधान; जिसमें 'मंच सज्जा एवं दृश्यबंध', 'प्रकाश योजना', 'ध्वनि एवं संगीत', 'वेशभूषा एवं रूप सज्जा' आदि हैं, उसके साथ ही 'चयनित नाटकों की विभिन्न शैलियों को प्रस्तुत किया गया' और अध्याय के अंत में हिन्दी और पंजाबी के नाटकों के भाषा एवं शिल्प पक्ष के तुलनात्मक बिन्दुओं को भी प्रस्तुत किया गया है।

सप्तम अध्याय- 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: व्यावहारिक पक्ष' इस अध्याय में चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के तथ्यों के आधार पर, जिन समस्याओं को निकाला था, उनके निवारण के लिए जन-सामान्य और विशेषज्ञों से व्यावहारिक अध्ययन कर, उनके सुझावों को रेखांकित किया। जिससे भविष्य में इन समस्याओं को कम किया जा सके। इस अध्याय में ही प्रस्तुत शोध पर कोरोना वायरस का जो सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव रहा; उसे भी प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध श्रद्धेय डॉ. विनोद कुमार जी, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालन्धर, के सुयोग्य एवं आत्मीयपूर्ण निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। इस कार्य के प्रारम्भ से लेकर अंत तक, उन्होंने इस शोध साहित्य के विषय से जुड़ी मेरी समस्याओं का सटीक निराकरण किया है। मैं उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं आदरणीय डॉ. एन.आर शर्मा जी, प्रिंसिपल, एस.यू.एस कॉलेज, गुरुहर सहाय एवं सीनेटर पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़, का हार्दिक आभारी हूँ। जिन्होंने अपने कॉलेज में से शोध कार्य के लिए, मुझे समय दिया और शोध के विषय से सम्बंधित मुझे अमूल्य सुझाव भी दिए, साथ ही डॉ. धर्मपाल जी (रिटायर प्रोफेसर) का भी आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे साहित्य से जोड़ा और इस शोध कार्य के लिए प्रेरित

भी किया और साथ ही, उन्होंने शोध कार्य में अपने अमूल्य सुझाव देकर, मेरा कुशल मार्गदर्शन भी किया।

मैं यह शोध-प्रबंध अपने माता-पिता जी को समर्पित करता हूँ। मेरे पिता जी ने मेरे साथ सदैव मोह-प्यार का व्यवहार कर, मुझे शिक्षा ग्रहण करने का समय दिया, और खुद खेतों में काम कर, मेरी आर्थिक जरूरतों की पूर्ति करते रहें। मेरी माता जी घर परिवार की जिम्मेदारियों को उठाते हुए, निरंतर इस पथ की ओर बढ़ने का साहस प्रदान करती रही।

मैं अपनी पत्नी किरनदीप कौर का भी धन्यवाद करता हूँ, जो खुद साहित्य पढ़ने की इच्छा रखते हैं और उन्होंने शोध कार्य के दौरान, हर पल मेरा साथ एक अच्छे क्लासमेट की तरह दिया। मैं अगर आज यह शोध-प्रबंध प्रस्तुत करने जा रहा हूँ, तो इसका श्रेय उनका सहयोग भी है।

मैं अपने मित्रों, सहयोगियों, पथ-प्रदर्शकों और सीनियर प्रोफेसरों एवं सीनियर शोधार्थियों, जिन्होंने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मेरी सहायता की है। उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। मैं उन सभी नाटककारों तथा समीक्षकों के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। जिनकी स्थापनाओं का सदुपयोग, मैंने इस शोध प्रबन्ध में किया।

अंत में मैं अपने सीमित ज्ञान और सीमित क्षमताओं को अच्छी तरह समझता हूँ, अत्यंत विनम्रतापूर्वक यह शोध-प्रबंध विद्वानों एवं परीक्षकों के सम्मुख मूल्याँकन हेतु प्रस्तुत करता हूँ।

(गुरमीत सिंह)

विषयानुक्रमणिका

पृ.सं

1. प्रस्तावना i-xxxii

2. समस्या कथन

3. समस्या औचित्य

4. शोध कार्य के उद्देश्य

5. शोध प्रविधि

6. शोध कार्य में चुनौतियां

7. परिकल्पना

8. परिसीमांकन

9. पूर्व सम्बद्ध साहित्यावलोकन

प्रथम अध्याय

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि (1-82)

1.1.1 परिवेश का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप और इसके विभिन्न प्रकार

1.1.1.1 परिवेश का अर्थ

1.1.1.2 परिवेश की परिभाषा

1.1.1.3 परिवेश के विभिन्न प्रकार

1.1.2 साहित्यकार का परिवेश के साथ सम्बन्ध

1.1.3 जन-सामान्य का समकालीन परिवेश के साथ सम्बन्ध

1.1.4 परिवेश बदलने के कारण

1.1.4.1 क्रांति के कारण परिवेश का बदलाव

1.1.4.2 विज्ञान और तकनीक के कारण परिवेश का बदलाव

1.1.4.3 सामाजिक संघर्ष के कारण परिवेश का बदलाव

1.1.4.4 औद्योगीकरण के कारण परिवेश का बदलाव

1.1.4.5 शिक्षा के कारण परिवेश का बदलाव

1.1.4.6 कानूनी स्तम्भों के कारण परिवेश का बदलाव

1.1.4.7 राजनीतिक प्रक्रिया के कारण परिवेश का बदलाव

1.1.4.8 भारतीय परम्परा की पौराणिकता के त्याग के कारण परिवेश का बदलाव

1.1.4.9 ग्रामीण और शहरी विकास के कारण परिवेश में बदलाव

1.1.5 तुलनात्मक साहित्य का प्रारम्भ, परिभाषा, स्वरूप एवं इसके विविध पक्ष

1.1.5.1 तुलनात्मक साहित्य: विषय प्रवेश

1.1.5.2 तुलनात्मक साहित्य का अर्थ और परिभाषा

1.1.5.3 तुलनात्मक साहित्य का इतिहास

1.1.5.4 तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन का स्वरूप (पाश्चात्य दृष्टिकोण)

1.1.5.5 तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन का स्वरूप (भारतीय दृष्टिकोण)

1.1.5.6 तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद का सम्बन्ध

1.1.5.7 आधुनिक युग में तुलनात्मक साहित्य की आवश्यकता

1.1.5.8 तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में हिन्दी और पंजाबी

1.1.6 इक्कीसवीं शताब्दी तक हिन्दी और पंजाबी नाटकों के विकास में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक परिवेश और भाषा एवं शिल्प पक्ष

1.1.7 चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटक एवं नाटककारों का सामान्य परिचय

द्वितीय अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: सामाजिक पक्ष (83-138)

2.1.1 सामाजिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और सामाजिक परिवर्तन के कारण

2.2.1 2000 से 2018 के चयनित नाटकों में बदलते परिवेश के सामाजिक तत्त्व

2.2.1.1 संयुक्त परिवार प्रणाली की परम्परा और बदलता परिवेश

2.2.1.2 नयी और पुरानी पीढ़ी की सोच में संघर्ष और बदलता परिवेश

2.2.1.3 बदलते परिवेश में बुजुर्गों के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण

2.2.1.4 बदलते सामाजिक परिवेश में दाम्पत्य सम्बन्धों में परिवर्तन

2.2.1.5 बदलते सामाजिक परिवेश में नारी के प्रति दृष्टिकोण

2.2.1.6 भ्रष्टाचार से प्रभावित सामाजिक परिवेश

2.2.1.7 बदलते सामाजिक परिवेश में प्रवास की प्रवृत्ति

2.2.1.8 वर्तमान सामाजिक परिवेश में युवाओं की मानसिकता

2.2.1.9 आधुनिक साहित्यकारों के द्वारा समाज के यथार्थ रूप का प्रस्तुतीकरण

तृतीय अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: राजनीतिक पक्ष (139-174)

3.1.1 राजनीतिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और राजनीतिक परिवर्तन के कारण

3.2.1 2000 से 2018 के चयनित नाटकों में बदलते परिवेश के राजनीतिक तत्त्व

3.2.1.1 बदलते राजनीतिक परिवेश में राजनेताओं और जनता के साथ पारस्परिक सम्बन्ध

3.2.1.2 बदलते राजनीतिक परिवेश में साम्प्रदायिकता

3.2.1.3 राजनीति सत्ता के दबदबे में भ्रष्टाचार का प्रफुल्लित रूप

3.2.1.4 बदलते परिवेश में राजनेताओं का न्याय एवं पुलिस प्रशासन में दखल

3.2.1.5 वर्तमान की राजनीति में जातिवाद एवं परिवारवाद को बढ़ावा

3.2.1.6 आधुनिक राजनीति में बढ़ते स्वार्थ के कारण परिवर्तित परिवेश

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: आर्थिक पक्ष (175-218)

4.1.1 आर्थिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और आर्थिक परिवर्तन के कारण

4.2.1 2000 से 2018 के चयनित नाटकों में बदलते परिवेश के आर्थिक तत्त्व

4.2.1.1 बदलते परिवेश में पूंजीवादी व्यवस्था एवं आर्थिक वर्ग का स्वरूप

4.2.1.2 बदलते परिवेश में बढ़ती हुई महँगाई के कारण जन-सामान्य की त्रासदी

4.2.1.3 बदलते आर्थिक परिवेश में दिन प्रतिदिन बढ़ रही बेरोजगारी

4.2.1.4 बदलते परिवेश में कृषक का आर्थिक संघर्ष

4.2.1.5 बदलते आर्थिक परिवेश में भ्रष्ट व्यवस्था का स्वरूप

4.2.1.6 बदलते परिवेश में व्यावसायिक व्यापार की त्रासदी

4.2.1.7 बदलते आर्थिक परिवेश में बढ़ती गरीबी दर

पंचम अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: मनोवैज्ञानिक पक्ष (219-268)

5.1.1 मनोवैज्ञानिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और मनोवैज्ञानिक परिवेश के परिवर्तन के कारण

5.2.1 2000 से 2018 के चयनित नाटकों में बदलते परिवेश के मनोवैज्ञानिक तत्त्व

5.2.1.1 बदलते परिवेश में नैतिक अवमूल्यन का मनोवैज्ञानिक पक्ष

5.2.1.2 वर्तमान युग में सामान्य जन में कुंठा और एकान्तप्रियता की भावना

5.2.1.3 बदलते परिवेश में अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित वर्ग की त्रासदी

5.2.1.4 आत्मविश्वास की कमी और अकेलापन की भावना

5.2.1.5 प्रेम वासना और प्राकृतिक काम से पीड़ित युवा

5.2.1.6 बदलते मनोवैज्ञानिक परिवेश में कल्पना और स्वप्न

5.2.1.7 बदलते परिवेश में नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

5.2.1.8 बदलते परिवेश में पुरुष पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

षष्ठम अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: भाषा एवं शिल्प पक्ष (269-337)

6.1.1.1 नाट्य-भाषा का अर्थ एवं इसके विविध आयाम

6.1.2 2000 से 2018 के चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में भाषा तत्त्व

6.1.2.1 पात्रानुकुल एवं प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग

6.1.2.2 चयनित नाटकों में सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग

6.1.2.3 चयनित नाटकों में व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग

6.1.2.4 नाटकों के बदलते परिवेश में भाषा शैली

6.1.2.5 विभिन्न भाषाओं के शब्दों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग

6.2.1.1 शिल्प का अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

6.2.2 2000 से 2018 के चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में शिल्प तत्त्व

6.2.2.1 बदलते परिवेश में नाट्य शिल्प

6.2.2.2 बदलते परिवेश में चरित्र सृष्टि शिल्प

6.2.2.3 चयनित नाटकों में मिथकों का प्रयोग

6.2.2.4 चयनित नाटकों में प्रतीकों का प्रयोग

6.3.1 2000 से 2018 के चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में रंग-विधान

6.3.1.1 मंच सज्जा एवं दृश्यबंध

6.3.1.2 प्रकाश योजना

6.3.1.3 ध्वनि एवं संगीत

6.3.1.4 वेशभूषा एवं रूप सज्जा

6.4.1 चयनित हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में शैलियाँ

6.5.1 हिन्दी और पंजाबी के नाटकों की भाषा एवं शिल्प पक्ष के तुलनात्मक बिंदु

सप्तम अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: व्यावहारिक पक्ष (338-419)

7.1.1.1 बदलते परिवेश और तुलनात्मक अध्ययन के संदर्भ में सांकेतिक कारकों के निवारक बिन्दुओं का व्यावहारिक अध्ययन

7.1.1.2 बदलते परिवेश के संदर्भ में सांकेतिक सामाजिक कारकों के निवारक बिन्दुओं का व्यावहारिक अध्ययन

7.1.1.3 बदलते परिवेश के संदर्भ में सांकेतिक राजनीतिक कारकों के निवारक बिन्दुओं के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

7.1.1.4 बदलते परिवेश के संदर्भ में सांकेतिक आर्थिक कारकों के निवारक बिन्दुओं के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

7.1.1.5 बदलते परिवेश के संदर्भ में सांकेतिक मनोवैज्ञानिक कारकों के निवारक बिन्दुओं के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

7.1.1.6 प्रस्तुत शोध पर कोरोनावायरस का सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव

उपसंहार (420-427)

संदर्भ ग्रन्थ सूची (428-441)

परिशिष्ट (442-456)

1. प्रस्तावना

नाटक मानवीय भावनाओं को प्रस्तुत करने का सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम है। नाटक मंचीय होने के कारण श्रव्य एवं दृश्य, दोनों दृष्टियों से प्रभाव रखता है। नाटकों की उपयोगिता का कारण जन-भावनाओं की प्रधानता है। भारतीय नाटककारों ने अपनी प्रारम्भिक नाट्य रचनाओं की कथावस्तु वैदिक ऋचाओं, पुराणों तथा धर्मग्रंथों आदि से ग्रहण करते हुए, उसे जनता की रुचि में ढालकर देश-काल और परिस्थितियों के अनुसार समाज के हित के लिए साहित्य की रचना की है। एक नाटककार अपने समय और समाज में घटित हो रही घटनाओं को पात्रों के माध्यम से साकार रूप देता है। नाट्य अभिनय के दौरान ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई पात्र अपनी भूमिका नहीं अपितु सजीव व्यक्तित्व को प्रस्तुत कर रहा है।

यदि हम इक्कीसवीं शताब्दी की बात करें, तो इसमें भारत की स्थितियां और परिस्थितियाँ बदल रही हैं। वैज्ञानिक तथा आर्थिक दृष्टि से हो रहे, इस परिवर्तन का प्रभाव सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों पर स्पष्ट दिखायी दे रहा है। मानव पीड़ा, संघर्ष, शोषण आदि के वास्तविक चित्रण ने साहित्य को सबसे अधिक प्रभावित किया है। वर्तमान शताब्दी की चुनौतियों को यदि हम गद्य और पद्य साहित्य की दृष्टि से देखें, तो पद्य की तुलना से गद्य में प्रत्येक समस्या को ज्यादा प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया गया है। यदि गद्य की अन्य विधाओं की तुलना करें, तो सभी विधाओं में नाटक ही एक ऐसी विधा है, जिसमें किसी भी संदेश को आसानी से संचारित किया जा सकता है क्योंकि यह श्रव्य एवं दृश्य विधा है। अपने शोध में शोधार्थी ने हिन्दी तथा पंजाबी भाषा के नाटकों की तुलना करते हुए, उद्देश्य की प्राप्ति की है। दोनों भाषाओं के समूचे ज्ञान के द्वारा एक समाज के हित के लिए शोध करने का प्रयास था, जो सम्पूर्ण हुआ।

गद्य साहित्य की अन्य विधाओं की तरह नाट्य विधा भी आधुनिक युग में पश्चिमी साहित्य की ही देन है। जिस प्रकार हम आधुनिक हिन्दी नाटकों का जन्मदाता भारतेंदु को मानते हैं, उसी प्रकार पंजाबी नाटकों का जन्मदाता आई.सी नंदा को माना जाता है।

हिन्दी और पंजाबी का नाट्य-साहित्य आरम्भिक काल से लेकर वर्तमान तक लगभग समान रूप से निरंतर विकास की ओर अग्रसर हैं। वर्तमान में इन दोनों भाषाओं के नाटकों में हमें जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक समस्या देखने को मिल रही हैं, इन समस्याओं को बदलते परिवेश के विकास के अनुसार रेखांकित करने के लिए, ऐसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं से सम्बंधित नाटकों को दोनों भाषाओं के प्रथम युग से लेकर वर्तमान युग तक, तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।

आधुनिक हिन्दी नाटक का आरंभ भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। इस युग में समस्यामूलक नाट्य लेखन के साथ-साथ अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ नाटक भी हिन्दी में अनुवादित भी किए जा रहे थे। इसी प्रकार पंजाबी में भी 1913 ई. से पूर्व कई नाटक अनुवादित किए जा चुके थे और साथ-ही-साथ मौलिक और समस्यामूलक पंजाबी नाटकों की रचना भी हो रही थी। इसी युग में भारतेंदु का प्रसिद्ध सामाजिक नाटक *अंधेर नगरी* प्रकाशित हुआ और पंजाबी में भाई वीर सिंह का *राजा लखदाता सिंह* सामाजिक नाटक प्रकाशित हुआ। 1937 ई. में हरचरन सिंह ने अपने नाटक *कमला कुमारी* से पंजाबी नाट्य जगत में प्रवेश किया। हिन्दी के आधुनिक नाट्य-साहित्य में जयशंकर प्रसाद का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, उन्होंने *विशाख* (1921) से लेकर *ध्रुवस्वामिनी* (1933) तक सामाजिक और ऐतिहासिक समस्यामूलक नाटकों की रचना की, इनका मुख्य उद्देश्य समकालीन समस्याओं को उजागर करना था। पंजाबी में संत सिंह सेखों ने कई ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। पंजाबी में 1947 तक हरचरन सिंह, संत सिंह सेखों, बलवंत गार्गी, करतार सिंह दुगल, गुरदयाल सिंह खोसला, गुरदयाल सिंह फुल आदि प्रथम पीढ़ी के नाटककार थे, जिन्होंने 1913 से 1947 तक पंजाबी नाटकों में सामाजिक यथार्थ को प्रदर्शित किया था।

स्वतंत्रता के पश्चात हिन्दी नाटककारों की बात करें, तो इसमें प्रसाद के अतिरिक्त हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोबिन्द दास, गोविन्दवल्लभ पन्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृन्दावन लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, पण्डे बेचन शर्मा उग्र आदि के नाम प्रमुख हैं। इन नाटककारों ने अपने नाटकों में मध्यकालीन इतिहास की समस्या और तत्कालीन युग की आदर्शवादी एवं यथार्थवादी समस्या को अपने नाटकों का विषय-वस्तु बनाया। डॉ. नगेन्द्र *हिन्दी साहित्य का इतिहास* में लिखते हैं-

"जिन्होंने स्वाधीनता के बाद लिखा, उन्हें द्वितीय सक्रिय पीढ़ी के नाटककारों में लिया जाता है।" (673)

1947 के बाद के नाटकों के विषय की बात करें, तो लगभग दोनों भाषाओं हिन्दी और पंजाबी नाटकों के विषयों में परिवर्तन देखने को मिला। स्वतंत्रता के बाद एक नयी चेतना का विकास हुआ। जनमानस ने जो अपेक्षाएँ की थी, वह भी पूरी नहीं हो पायी। भ्रष्टाचार और अवसरवादिता का बोलवाला था। बढ़ती हुई बेरोजगारी ने तनाव, संघर्ष एवं आपराधिक प्रवृत्तियों को जन्म दिया, नवीन परिवेश और नवीन भावबोध ने नाटकों की विषय वस्तु को बदल दिया और नाटकों ने पुरानी लीक छोड़कर नवीन मार्ग को ग्रहण किया। पंजाबी के यदि इस दौर के नाटककारों की बात करें, तो सुरजीत सिंह सेठी, कपूर सिंह घुम्मण, हरसरन सिंह, गुरचरन सिंह जसूजा, अमरीक सिंह आदि के नाम प्रमुख हैं और हिन्दी में विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मी नारायण लाल, राम कुमार वर्मा, मोहन राकेश आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। जिन्होंने इन विषयों को गंभीरतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

यदि हम 1980 के बाद हिन्दी और पंजाबी नाटकों के संदर्भ की बात करें, तो इस समय तक नाटक मंच से होते हुए गाँवों, शहरों, गलियों, मुहल्लों आदि तक पहुँच कर, एक संदेश देने का प्रयास कर रहा था। इन नाटकों में उन्होंने राजनेताओं, पुलिस, न्यायाधीश आदि की पोल खोली है, यदि हम इस काल के प्रमुख नाटककारों की बात करें, तो उनमें सुरेन्द्र वर्मा, हमीदुल्ला, शंकर शेष, गिरिराज किशोर, कृष्ण बलदेव वैद, नरेंद्र मोहन, स्वदेश दीपक आदि का नाम उल्लेखनीय हैं और पंजाबी नाटककारों में आत्मजीत, अजमेर सिंह औलख, गुरशरन सिंह, रविंदर रवि, अमरजीत ग्रेवाल आदि का नाम प्रमुख हैं।

2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित हिन्दी और पंजाबी के नाटकों की विषय वस्तु और बदलते परिवेश को तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करने के लिए, नाटककारों की अपेक्षा नाटकों का चयन किया, आधुनिक हिन्दी और पंजाबी के चयनित नाटकों के विषय की आपस में तुलना करने के साथ-साथ अतीत के नाटकों के साथ भी तुलना करने का प्रयास किया है, इनमें सभी समस्याओं को बड़ी गंभीरता से बदलते परिवेश के साथ प्रस्तुत किया गया है।

इक्कीसवीं शताब्दी को हम चुनौतियों की शताब्दी भी कह सकते हैं। जिसमें बढ़ती जनसंख्या, साधनों की निरंतर बढ़ोतरी के कारण प्रदूषण, कृषकों की समस्या, पश्चिमी प्रभाव के कारण रहन-सहन में परिवर्तन, रिश्तों में मोह प्यार की कमी, युवा पीढ़ी की विदेश जाने की लालसा आदि कुछ ऐसे विषय हैं, जिनको लेकर आधुनिक नाटककार चिन्तित हैं और वे समाज को सही रास्ता दिखाने का प्रयास कर रहें हैं। इसके अतिरिक्त महँगाई, गरीबी, बेरोजगारी, लड़कियों का बलात्कार, जातिवाद, रूढ़िवाद, ढोंगी संत और लोकतांत्रिक व्यवस्था में आती तानाशाही की बदबू आदि का सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक बुराइयों से है और जिसके कारण दिन प्रतिदिन अपराध बढ़ रहे हैं। इससे जीवन मूल्य समाप्त हो रहे हैं और लोग मानसिक बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। आज हम जिस दफ्तरी परिवेश में जीवन बिता रहें हैं। वह रिश्वतखोरी, अफसरशाही, न्यायालय में न्याय करने में देरी, सरकारी कर्मचारियों द्वारा काम ना करना और नैतिकता का पतन होना आदि को प्रोत्साहित करता है। इसलिए हमने हिन्दी और पंजाबी के उन नाटकों का चयन कर, तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयत्न किया, जिसमें इन सभी समस्याओं का वर्णन हो, और इस प्रकार प्रस्तुत शोध का समाज के प्रति यह छोटा सा प्रयास है।

2. समस्या कथन

जैसे दुनिया की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है, वह समय-समय पर अपना स्वरूप बदला करती है। उसी प्रकार नाटकों की विषय वस्तु और उनमें वर्णित समस्याओं में भी परिवर्तन हो रहा है। यदि हम हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलते परिवेश की बात करें, तो थोड़ा नाटकों के अतीत की ओर भी देखेंगे।

इक्कीसवीं शताब्दी तक, जितने भी हिन्दी और पंजाबी नाटक लिखे गए, उनको आलोचकों ने भिन्न-भिन्न विषय और प्रवृत्तियों की दृष्टि के अनुसार नाम दिया है। इस युग में जैसा समाज था और समयानुकूल, जिस प्रकार दर्शकों की रुचि थी, वैसे नाटकों की सृजना हुई। अब जैसे-जैसे वैज्ञानिक क्रांति आई, वैसे-वैसे ही समाज में परिवर्तन आना शुरू हो गया। साहित्य और समाज एक सिक्के के दो पहलू होते हैं। जिस ओर समाज बढ़ेगा, उसी रूप में ही साहित्यकार साहित्य को प्रस्तुत करेगा।

समाज की तरह साहित्य का निरतंर विकास होना भी अनिवार्य है। किसी भी भाषा के साहित्यिक क्षेत्र में स्थिरता का आ जाना, उसके लिए खतरे का प्रतीक होती है। इसलिए प्रत्येक भाषायी क्षेत्र में समय के अनुकूल विकास का होना अनिवार्य है। नाटकों में भी समय के अनुसार भिन्न-भिन्न समस्याओं को लेकर नाटककारों ने अपने विचार नाटकों में प्रस्तुत किए हैं।

प्रस्तुत शोध में 2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित उन हिन्दी और पंजाबी के नाटकों का चयन किया गया, जो समस्या से भरपूर हैं। जिनके माध्यम से वर्तमान भारतीय समाज में व्याप्त समस्याओं का यथार्थ तथा बदलते परिवेश को प्रस्तुत किया गया है। नाटककार समाज के प्रत्येक क्षेत्र की समस्याओं का चित्रण अपने पात्रों के माध्यम से चित्रित करते हैं। नाटक वह विधा है, जो हमें जीवन के यथार्थ से अवगत कराती है। जहाँ हमारी बुद्धि नहीं पहुँच पाती नाटककार पात्रों के माध्यम से वहाँ की भी कल्पना करवा देता है। नाटकों के माध्मय से लगता है कि यह हमारे जीवन की वास्तविकता को उभार रहा है। इसमें जो भी घटनाएँ घट रही हैं, उनको वह अपने यथार्थवादी जीवन में अनुभव करता है। प्रस्तुत शोध का भी यही उद्देश्य है कि नाटकों के बदलते परिवेश के नैतिक रूप को ही प्रस्तुत किया जाए।

जिस प्रकार मानव जीवन सत्य है, उसी प्रकार इस विषय की निरंतरता भी अनिवार्य है। इस प्रकार किया जाने वाला कार्य सदैव समाज के लिए कल्याणकारी और अच्छा जीवन जीने के लिए उपयोगी होगा। समाज के लिए कुछ सर्वग्राही भौतिक मूल्यों का होना अनिवार्य है। यह विषय चुनौतिपूर्ण था, जिसे शोध निर्देशक की मदद से सफलतापूर्वक सम्पूर्ण किया गया।

3. समस्या का औचित्य

साहित्य किसी भी भाषा का हो, उसको समाज के दिशा निर्देशन के लिए ही रचा जाता है, इसी प्रकार यदि हम नाटकों में बदलते परिवेश की बात करें, तो इसका रूप भी समय के अनुकूल बदलता रहा है। जिस प्रकार हमारा समाज प्रगति कर रहा है और समाज के लोगों का दृष्टिकोण बदल रहा है, ठीक उसी प्रकार साहित्य के

रचनाकारों के पात्र भी बदल रहें हैं। ऐसे ही प्रत्येक क्षेत्र में इनका भिन्न-भिन्न रूप हमें देखने को मिलता है।

समय, स्थान और समाज के परिवर्तन के कारण समस्याओं के रूप भी बदलते रहते हैं। नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी की मानसिकता में अंतर आने के कारण नयी समस्याओं का उद्भव हुआ है। कोई भी साहित्यिक विधा तभी श्रेष्ठ हो सकती है, जब उसमें कोई रोचकता पूर्वक समस्या हो। ऐसे ही नाटकों के विषय में भी कह सकते हैं कि नाटक श्रेष्ठ तभी हो सकता है, जब वह अन्य कलात्मक-सृजनात्मक भाव, विचारों, जीवन दृष्टि अथवा परिस्थिति को प्रस्तुत करता है। यदि वह कोई सार्थक विशेष मूलभूत की बात नहीं करता, तो चाहे जितना भी साहित्यिक हो, उसका कोई महत्त्व नहीं है।

यदि चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में समस्या के औचित्य की बात करें, तो बदलते परिवेश की दृष्टि से सभी नाटककारों ने विभिन्न ढंग से समस्याओं को प्रस्तुत किया और उसका निवारण भी दिया, उदाहरण के रूप में कुछ नाटकों की कथावस्तु देखें, तो सबसे पहले डॉ. मधु धवन के द्वारा रचित नाटक *आज की पुकार* में समकालीन समाज की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें आधुनिक राजनीति के गिरते हुए मीनार को संभालने का संदेश दिया है। सुशील कुमार सिंह का प्रसिद्ध नाटक *चार यारों की यार* जो सामाजिक जीवन की विडम्बना को सहज और सरल संवादों के माध्यम से प्रकट करता है। नाटक की मुख्य पात्र बिंदिया है, जो चारों ओर घूम रही है। बिंदिया दूसरा विवाह कर लेती है, लेकिन दूसरे विवाह से भी उसको सुख-चैन नहीं मिलता, जिसकी वह उम्मीद लगाये बैठी थी। अत: वह सभी कठिनाइयों का डट कर सामना करती है, इसी प्रकार इक्कीसवीं शताब्दी के बदलते परिवेश में शासन तंत्र की भ्रष्टता को प्रस्तुत करता अजय शुक्ला का नाटक *ताजमहल का टेंडर* है, जो एक परिकल्पना पर आधारित है। इस नाटक की कथा के आधार पर बादशाह शाहजहाँ इतिहास से निकलकर अचानक आधुनिक शताब्दी में दिल्ली के शासन पर आकर अपनी बेगम की याद में ताजमहल बनवाने की इच्छा प्रकट करता है। बादशाह के अतिरिक्त अन्य सब कुछ आज का ही है। सरकारी मशीनरी, नौकरशाही, नेतागिरी, भिन्न प्रकार की घूसखोरी और एक-एक फ़ाइल को वर्षों तक क्लर्कों के द्वारा दबाना और देखते ही देखते पच्चीस वर्ष बीत जाते हैं। जिस दिन टेंडर

पूरा होना था, उस दिन बादशाह दुनिया को अलविदा कह जाता है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने हमारी आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए सटीक व्यंग्य किया है।

इस प्रकार यदि हम आधुनिक पंजाबी नाटकों में समस्याओं और उसके निवारण को देखें, तो प्रथम रूप से स्वराजबीर के द्वारा रचित नाटक *कल्लर* को प्रस्तुत किया गया। इस नाटक की कथा में नाटककार ने पुरानी पीढ़ी के निम्न कृषकों के संघर्ष की कथा को प्रस्तुत किया, और आधुनिक युग के युवाओं द्वारा जहाँ मेहनत न करने की अपेक्षा गलत तरीके से प्रवास धारण करने की समस्या को भी प्रस्तुत किया गया है। नाटक के अंत में नाटककार ने समस्या के निवारण के रूप में युवाओं के पश्चाताप को प्रस्तुत किया है। द्वितीय समस्यामूलक नाटक की बात करें, तो आत्मजीत के द्वारा रचित नाटक *मैं तां एक सारंगी हां* है। यह नाटक भी आधुनिक युग की समस्या से सम्बंधित है। इस नाटक की तीन मुख्य पात्र हैं- गीता, मीना और पाल। इन तीनों ने ही किसी-न-किसी पुरुष के द्वारा बचपन में ही जिस्मानी संताप भोगा है। अब इन तीनों पात्रों ने उन विपत्तियों का डट कर विरोध किया, जिनकी वजह से इनका शोषण हुआ।

अत: हम कह सकते हैं कि परिवर्तन यदि सत्य है, तो परिवर्तन के अनुसार स्थायित्व ढूंढना मानव-मन का स्वभाव है। कोई भी समस्या इतनी भी सघन न हो कि उसकी वजह से जीवन-मूल्य मृतप्राय: होते दिखायी दें, इसलिए इन समस्याओं के निदान के लिए, हम विचार-विमर्श के माध्यम से निवारण का मार्ग तलाश रहें हैं। इक्कीसवीं शताब्दी के हिन्दी और पंजाबी नाटकों में समय और समाज के बदलते परिवेश पर गहनता से विचार किया गया है। जिसे सबके सामने लाना इसलिए भी जरूरी हो जाता है कि भविष्य को संवारने के लिए, इस विषय के प्रति गंभीरता लाई जा सके। आज हम गाँव से शहर, शहर से महानगर और महानगर से ग्लोबल विलेज अथवा भूमंडलीकरण की तरफ परिवर्तित हुए हैं और यह परिवर्तन हमारी वैज्ञानिक सोच और तकनीक विचारों के माध्यम से स्पष्ट दिखायी दे रहा है। डॉ. अमरनाथ ने *हिन्दी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली* में लिखा है-

विज्ञान के जादू से देश की बाहरी दूरी कम हो गयी, पर आदमी और आदमी के भीतर की दूरी बढ़ गयी है। आधुनिकतावाद प्रत्येक विश्वास और विचार को संशय की दृष्टि से देखता है। (60)

यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति तो सजग दिखायी देता है, पर कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन। अधिकार और कर्त्तव्य के बीच समानता स्थापित हो, व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य सामाजिकता का कुशल निर्वहन हो, इसलिए बदलते परिवेश पर शोध कार्य करना आवश्यक हो जाता है।

4. शोध के उद्देश्य

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: एक तुलनात्मक अध्ययन
(2000 से 2018 ई. के मध्य प्रकाशित नाटकों के संदर्भ में)

किसी भी कार्य को उद्देश्य के बिना नहीं किया जा सकता। इसलिए प्रस्तुत शोध में भी में निम्न उद्देश्य लिए गये हैं-

1. **बदलते परिवेश के स्वरूप को स्पष्ट करना।**
2. **हिन्दी तथा पंजाबी के नाटकों में प्रस्तुत बदलते परिवेश के विकास को रेखांकित करना।**
3. **हिन्दी तथा पंजाबी नाटकों में प्रस्तुत परिवेश के संदर्भ में पात्रों की मानसिक दशा का चित्रण करना।**
4. **हिन्दी तथा पंजाबी के नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, रिश्वतखोरी, बेरोजगारी, कृषकों की दशा आदि सामाजिक, राजनीति और आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।**
5. **बदलते परिवेश के संदर्भ में सांकेतिक कारकों के निवारक बिन्दुओं का निर्देश करना।**

5. शोध प्रविधि

मानव की जिज्ञासु प्रवृत्ति ने ही शोध कार्य को जन्म दिया है। किसी भी सत्य को निकटता से जानने के लिए शोध एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। समय-समय पर विभिन्न विषयों की शोध और निष्कर्ष की प्रामाणिकता गहन शोध की मदद से ही संभव हो सकी है। समय के बदलते क्रम में मानव जीवन की समस्या विकट होती आयी है। किसी भी कार्य की गुणवत्ता को जानने के लिए विभिन्न विधियों का होना अनिवार्य है। किसी भी कार्य को न तो एक विधि से किया जा सकता है और न ही एक कार्य में सभी विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध में भी विषय प्रसंग के अध्ययन के लिए, शोध प्रविधियों का होना अनिवार्य हो जाता है। अतः शोध-कार्य के लिए निम्नलिखित शोध प्रविधियों को अपनाया गया है-

1. तुलनात्मक शोध प्रविधि

साहित्य मानव के भाव और विचार का विशिष्ट रूप है। इसलिए किसी भी दो साहित्यिक भाषाओं अथवा साहित्यकारों का साहित्य एक जैसा नहीं हो सकता। इससे भी आगे अलग-अलग समय, संस्कृति और परिवेश आदि का एक होना तो संभव ही नहीं, परन्तु किसी सूक्ष्म स्तर पर अध्ययन कर समानता पायी जा सकती है। तुलना एक दृष्टि से भी की जा सकती और अनेक दृष्टियों से भी, तुलना में दृष्टि की तटस्था और स्वच्छता का होना आवश्यक है। बैजनाथ सिंहल *शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि* में लिखते हैं-

> तुलनात्मक शोध जैसा कि इस शब्द से ही पता चलता है कि किन्ही दो रचनाओं, लेखकों, काव्य आंदोलनों या किन्ही अन्य साहित्यिक पक्षों को लेकर, एक भाषा अथवा दो भाषाओं के स्तर पर किया जाने वाला शोध ही तुलनात्मक शोध कहलाता है। (29)

तुलनात्मक शोध में तुलनीय ग्रन्थों को अलग-अलग करके प्रस्तुत किया गया है। कथावस्तु, पात्र, दर्शन, धर्म और मनोवैज्ञानिक आदि तथ्यों को लेकर उसे साम्य रूप से प्रस्तुत किया गया है।

2. समाजशास्त्रीय प्रविधि

इस पद्धति के द्वारा विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक कारकों के जनसमुदायों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन के अतिरिक्त विभिन्न वर्गों का रहन सहन, शिक्षा, बेटियों की दशा एवं व्यवस्था के स्तरों पर प्रभाव आदि का आकलन किया जाता है। इसमें साहित्य का सामाजिक अध्ययन किया। व्यापक रूप से इस पद्धति को भी अपनाया है।

3. मनोवैज्ञानिक प्रविधि

इस पद्धति से नाटकों के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है, साथ-ही-साथ नाटककारों की मानसिक स्थिति को भी परखा जाता है कि उसने किस पात्र को, किस दशा में और किस दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही उस पात्र की भावनाओं के अतिरिक्त अंत: चेतना को भी समझने का प्रयास किया जाता है। साहित्य में प्रतीकों का बहुत महत्त्व रहता है और मनोवैज्ञानिक प्रविधि के द्वारा प्रतीकों के मूल तक जाकर, उनका विश्लेषण करना होता है। बैजनाथ सिंहल *शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि* में लिखते हैं-

> इस पद्धति में रचनाकार और रचनागत पात्रों की अंतर्चेतना का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इस पद्धति में रचना को चैतन्य मानकर चला जाता है। यह रचनागत चैतन्य व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंधों और प्रभावों की दृष्टि से ही माना जाता है। (25-26)

4. आलोचनात्मक शोध प्रविधि

किसी भी रचना, विषय-वस्तु आदि के लक्षणों को ध्यान में रखते हुए, उसके गुणों दोषों एवं उपयोग का विवेचन करने वाली विधा आलोचना है। शोध के दौरान नाटकों का विश्लेषण एवं आलोचना करते हुए, नवीन निष्कर्षों तक पहुँचने का प्रयास किया।

5. सर्वेक्षण शोध प्रविधि

सर्वेक्षण शोध प्रविधि से तात्पर्य उस व्यावहारिक अध्ययन से है, जो शोध समस्या के चयन के पहले, या बाद में, उस समस्या पर किए गए शोध

कार्यों, विचारों, या शोध के दौरान होने वाली समस्याओं पर विचार-चर्चा करते हुए, उन लोगों के विचारों को नोट करने की जो प्रविधि होती है, उसे सर्वेक्षण शोध प्रविधि कहा गया है।

प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण, शोध कार्य के बाद में किया गया है। इस सर्वेक्षण के समय शोधार्थी का उद्देश्य, उन सभी समस्याओं को, उन लोगों के सम्मुख ही प्रस्तुत करना था, जो इस विषय से जुड़े हों। चाहे उसमें कृषक हों, बेरोजगार हों या उस विषय के विशेषज्ञ हों। उनसे मिलकर, उसके साथ बातचीत के दौरान निवारण के सुझाव बिन्दुओं को प्रस्तुत शोध-प्रबंध में से प्रस्तुत किया गया है। इस पद्धति ने शोध के लिए सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन की पृष्ठभूमि तैयार की।

6. शोध कार्य में चुनौतियां

नाटक साहित्य की प्राचीनतम विधा है। दुनिया भर की सभ्य-संस्कृतियों में सबसे प्राचीन साहित्यिक विधा नाटक के रूप में मौजूद है। पुरातन काल से लेकर अब तक, जितने भी नाटकों की रचनाएँ हुई हैं। उन सबमें समाज को कोई-न-कोई संदेश देने का प्रयास किया गया। प्रमुख नाटककारों ने जिस मानसिकता को लेकर अपने नाटकों की रचना की, उस मानसिकता को पहचानना एवं उसकी गहराई तक जाना, एक शोधकार्य के लिए बड़ी चुनौती थी। इस विषय पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से भिन्न नाटककारों एवं नाटकों पर शोध कार्य हुआ है। उन सबके शोधकार्य का विवेचन करना भी एक चुनौती भरा काम था।

बदलते परिवेश मूल रूप में ऐसा सिद्धान्त है, जो धीरे-धीरे साहित्यिक क्षेत्र से गुजरता है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि साहित्य को हम युगों और कालों में सम्पूर्ण रूप से नहीं बांध सकते, यह निरंतर विकासशील है, शोधार्थी के लिए यह चुनौती थी कि चुने हुए नाटकों की सही दिशा को ही प्रस्तुत किया जाए। इस प्रकार नाटकों का सूक्ष्म अध्ययन और अपने क्षेत्र में ही रह कर कार्य को सम्पूर्ण करना भी बड़ा चुनौतिपूर्ण काम था, जो सम्पूर्ण हुआ।

पंजाब, पंजाबी का भाषा क्षेत्र होने के कारण, यहाँ कुछ हिन्दी पुस्तकालयों की कमी भी रही, जिसके लिए अन्य राज्यों का भ्रमण भी चुनौती भरा कार्य था।

इसके अतिरिक्त निश्चित समय सीमा एवं विषय सीमा को भी ध्यान में रखते हुए, शोध को सम्पूर्ण करना था। जिससे पूर्ण उद्देश्य की प्राप्ति हो सके, एक चुनौती भरा कार्य था।

7. परिकल्पना

किसी भी शोध कार्य को करने से पूर्व उस विषय से सम्बंधित कुछ परिकल्पना की जाती है, जिससे संभावित निष्कर्षों का अनुमान लगाया जा सके। इससे शोधार्थी अपने विषय से सम्बंधित सम्पूर्ण ज्ञान का एक लेखा निर्माण कर लेता है, जिससे शोध में सरलता आ सके-

1. बदलता परिवेश हमारे समाज की नयी और पुरानी भावना है और इससे भी आगे इसमें समय, कार्य, क्षेत्र और समाज में बदलते रूप दिखायी दे रहें हैं। इन सभी के अंतर्गत शोध कार्य सम्पूर्ण किया गया।

2. हिन्दी और पंजाबी के कुछ नाटकों से समाज को सीधी दिशा मिल रही है। इन सभी को सम्पूर्ण रूप से प्रस्तुत किया गया।

3. इक्कीसवीं शताब्दी के कुछ नाटकों में नंगेज की झलक नज़र आ रही है। वे नाटक नारी की मज़बूरी और कमजोरी को बयान कर रहें हैं। इन नाटकों के सार्थक मूल्यों को ही प्रस्तुत किया गया है।

4. मानव जीवन से सम्बंधित सभी समस्यामूलक नाटकों को एक विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया है।

8. परिसीमांकन

किसी भी शोध को गुणवता रूप से सम्पूर्ण करने के लिए, उस विषय का सीमा और समयबद्ध होना अनिवार्य है। इस लक्ष्य को आधार बनाकर कार्य किया कि अपने कार्य को विषय और सीमा के अंतर्गत सम्पूर्ण कर लिया गया है। प्रस्तुत शोध में 2000

से 2018 के मध्य प्रकाशित उन नाटकों का चुनाव किया था, जो हैं तो समस्यामूलक, परन्तु अपने साहित्य के अतीत से उनके परिवेश बदलते हुए नज़र आ रहे हैं। हिन्दी और पंजाबी के नाटककारों की अपेक्षा, प्रस्तुत शोध में इन दोनों भाषाओं के नाटकों का चयन किया है, क्योंकि इससे नाटककारों के पात्रों की मानसिकता को समझने का अवसर ज्यादा मिल सके और शोध को सफलतापूर्वक सम्पूर्ण किया जा सके।

9. पूर्व सम्बद्ध साहित्यवलोकन

हिन्दी नाटक: संवेदना और शिल्प (1985-2005)
जम्मू विश्वविद्यालय- जम्मू (2012)
शोधार्थी- संदीप सिंह

प्रस्तुत शोध में लगभग बीसवीं सदीं के अंतिम दो दशकों के नाटकों का विवेचन किया है। उनका मानना था, कि नाटक साहित्यिक विधा होने के साथ-साथ रंगमंचीय भी है। इस शोध के नाटककारों ने समाज में व्याकत प्रत्येक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विसंगति को प्रस्तुत किया गया है। इस शोध में नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के विविध कोण और उनकी विभिन्न स्थिति, प्रेम और हिंसा, आधुनिक पुरुष और नारी, भूख, गरीबी, बेरोजगारी साम्प्रदायिकता आदि का सूक्ष्म अध्ययन करके, अपने अनुभवों एवं विचारों को ध्यान में रखते हुए, यथार्थवादी एवं आदर्शवादी रूप को प्रस्तुत किया है। आरंभिक शोध में उसने हिन्दी नाटक के जन्म से लेकर 1980 ई. तक के काल को कार्मिक विकास में रखा। उसके बाद उन्होंने अपने समय और विषय के अंतर्गत शोध किया है।

बदलते परिवेश में पनपते अंतर पीढ़ी संघर्ष के विभिन्न आयामों का एक समाजशास्त्र अध्ययन
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
झाँसी
(2007)
शोधार्थी- सुनीता त्रिपाठी

प्रस्तुत शोध में बदलते परिवेश की बात की है, उनका मानना है कि समाज में युवा वर्ग को क्रांतिकारी, विवेकहीन और अपरिपक्व समझा जाता है। द्वितीय यह वर्ग बहुत ज्यादा तनाव ग्रस्त चिन्तित है। समाज में उन कारणों को जानने का प्रयास ही नहीं किया जाता, जिनकी वजह से युवा पीढ़ी तनाव ग्रस्त है। उनकी क्या समस्याएं हैं? वे समस्याएं किन कारणों से हैं। संघर्ष सामाजिक सम्बन्धों में हर समय मौजूद रहता है। यह जीवन का एक सत्य है, इसी संघर्ष में बदलते रूपों का वर्णण किया गया है।

सठोत्तर हिन्दी और कन्नड़ नाटक: एक तुलनात्मक अध्ययन
कर्नाटक विश्वविद्यालय
धारावाड़
(2005)
शोधार्थी-एच.ए इलकलू

प्रस्तुत शोध में दोनों भाषाओं के सठोत्तरी काल का समय निर्धारित किया है। जिसमें वह समाज और दोनों भाषाओं की संस्कृति के विषय में प्रस्तुत शोध को सम्पूर्ण करता है। इस शोध में आज़ादी के बाद की दशा का वर्णन किया गया है। आज़ादी से लोगों को जो उम्मीदें थी, उनमें से किसी की भी पूर्ण होने की आस नहीं थी। इस प्रकार चीन और पाकिस्तान आक्रमणों ने देश की दशा को भद्र बना दिया था। जिसका वर्णन नाटकों में था और उसे शोध में प्रस्तुत किया गया।

विष्णु प्रभाकर के नाटकों में सामाजिक चेतना
महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय
(2004)
शोधार्थी- मरियाम्मा वीं. मेथ्यु

प्रस्तुत शोध में विष्णु प्रभाकर के नाटकों का सामाजिक विवेचन किया है, उन्होंने विष्णु प्रभाकर के बारह पूर्णक नाटकों पर शोध का अध्ययन किया। इस शोध में उन्होंने छ: अध्याय किए हैं। प्रथम अध्याय में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन किया है, इसके अतिरिक्त, उसने प्रस्तुत शोध में संयुक्त परिवार तथा उसका टूटना, पीढ़ी संघर्ष, क्रांति की नयी चेतना, प्रेम और

विवाह सम्बन्ध, बेरोजगारी आदि सामाजिक समस्यायों का अध्ययन किया। प्रस्तुत शोध में विष्णु प्रभाकर के नाटकों को बहुत गहनता से जांचा और परखा। प्रस्तुत शोध में भी यही प्रयास रहेगा कि विषय को सम्पूर्ण जाँच कर यथार्थ को प्रस्तुत किया जाए।

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में परम्परा और आधुनिक बोध
(2000)
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली
शोधार्थी- विजयपाल

प्रस्तुत शोध में सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों की परम्पराओं का वर्णन किया है। शोधार्थी ने सुरेन्द्र वर्मा के छ: नाटकों को लिया। इन नाटकों में, उन्होंने भोगे और समझे हुए यथार्थ को प्रस्तुत किया है। शोधार्थी ने आधुनिक जीवन मूल्यों और प्रवृत्तियों के तहत विश्लेषण किया। इसके प्रथम अध्याय में स्वतंत्रता से पूर्व और उत्तर के नाटकों का संक्षेप विवेचन है। सम्पूर्ण शोध में वर्मा जी के नाटकों में विसंगति बोध, अकेलापन, पारिवारिक सम्बन्धों का विघटन, नाटकीय संघर्ष, व्यंग्य, यौन सम्बन्ध आदि को प्रस्तुत किया गया है।

आधुनिक हिन्दी नाटकों में पारिवारिक समस्या (1950-1970)
(1991)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
दिल्ली
शोधार्थी- महेश कुमार

प्रस्तुत शोध में 1950 ई. से 1970 ई. के उन नाटकों को लिया, जो पारिवारिक समस्याओं से सम्बंधित हैं। हिन्दी नाट्य-साहित्य का यह काल विशेष रूप से आधुनिक समस्या पर केन्द्रित है। इसमें मध्य वर्ग की समस्या का वर्णन है। यह आज़ादी के बाद का वह समय था, जब भारत स्वतंत्र रूप से अपना शासन शुरू कर चुका था और इस समय भारत ने अनेक योजनाएं बनाई, लेकिन इन का आम जनता को कोई लाभ नहीं हुआ। इस समय जनता की त्रासदी बहुत बढ़ चुकी थी, जिसका

वर्णन नाटकों में था और शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध में उसका विवेचन किया है। भारत के चीन और पाकिस्तान के साथ युद्ध भी इसी काल में हुए। उसका भी प्रभाव नाटकों में है। इसमें उन सभी नाटकों का वर्णन है, जो यथार्थ रूप से समाज के साथ सम्बंधित है।

1990 के बाद पंजाबी नाटक का मनोविश्लेनात्मक अध्ययन
(जतिंद्र बराड़, सतीश कुमार वर्मा, स्वराजबीर और पाली भूपिंदर के विशेष संदर्भ में)
(2015)
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला
शोधार्थी- हरविन्दर कौर

प्रस्तुत शोध में बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक और इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के प्रसिद्ध पंजाबी नाटककारों के नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है। इन चार नाटककारों के सभी समस्यामूलक नाटकों को प्रस्तुत कर, आधुनिक समस्याओं से प्रेरित करवाया है। इस शोध में शोधार्थी ने मध्य वर्ग की त्रासदी की ओर विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने विशेष रूप से कृषकों और युवाओं की मानसिक घुटन को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध में भी शोधार्थी ने पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है, लेकिन वह इससे थोड़ा भिन्न है, क्योंकि इसमें हिन्दी और पंजाबी के नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन तुलनात्मक दृष्टि से किया है।

पंजाबी नाटक में राज्य की संस्थाएं और उनके प्रति विद्रोह का अंतर्संबंध
पंजाब विश्वविद्यालय
चंडीगढ़
(2010)
शोधार्थी- रेशम सिंह

प्रस्तुत शोध में राजनीतिक सत्ता पर करारी चोट दी है। उन्होंने पंजाबी नाटकों के माध्यम से राजसत्ता दमनकारी संस्थानों के द्वारा जन-सामान्य पर किए जा रहे शोषण की त्रासदी को प्रस्तुत किया, और साथ ही उसके निवारण का सुझाव

भी प्रस्तुत शोध के द्वारा दिया। शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध के द्वारा उन नाटकों का भी अध्ययन किया, जिसके माध्यम से सत्ताधारी से मुक्ति पाएं जाने का संदेश मिले। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस शोध के माध्यम से पंजाब की राजनीतिक दशा का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है।

पंजाबी नाटकों में नारी का स्वरूप
पंजाब विश्वविद्यालय
चंडीगढ़
(2002)
शोधार्थी- कुलजीत कौर

प्रस्तुत शोध में स्त्री के दमन को दूर करने और उसे सम्पूर्ण सम्मान देने की बात की गई है। इस शोध में उन्होंने प्रस्तुत किया गया है कि कुछ औरतें अपनी सम्पूर्ण ज़िन्दगी में दुखों को भोगती हैं, लेकिन उसका विद्रोह नहीं करना चाहती। कहने और सुनने से ज्यादा असर देखने से पड़ता है, इसी कारण नाटकों की सहायता ली। इस शोध में उन्होंने अपने प्रथम अध्याय में नारी दमन, हिंसा आदि का वर्णन, दूसरे अध्याय में नारी के विद्रोह का सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक के अतीत नाटकों का अध्ययन तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन किया है। प्रस्तुत शोध में बलवंत गार्गी, अजमेर औलख, आत्मजीत और पाली भूपिंदर सिंह का विशेष संदर्भ में अध्ययन किया गया और औरतों की त्रासदी को प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय: सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

1.1.1.1 परिवेश का अर्थ

परिवेश शब्द का अर्थ- एक व्यक्ति के आसपास की परिस्थितियों, लोग, वस्तु और घटनाओं से है, जो उनके जीवन को प्रभावित करती हैं अथवा एक शब्द, जिसका उपयोग उस स्थान का वर्णन करने के लिए किया जाता है, जहाँ एक व्यक्ति रहता है। परिवेश के पर्यायवाची शब्द- वातावरण, माहौल, इर्द-गिर्द, चौगिरदा आदि हैं। परिवेश शब्द के अर्थ को जानने का प्रयास करें, तो परिवेश परिधि, घेरा, वातावरण आदि से बना है। परिवेश की सत्ता बदलते मूल्यों पर ही आधारित है। भिन्न-भिन्न आलोचकों और शब्दकोशों के द्वारा अपने-अपने दृष्टिकोण से इसकी व्याख्या की गयी है, डॉ. हरदेव बाहरी के *शब्दकोश* के अनुसार-

> परिवेश संस्कृति पुल्लिंग है, जिसका अर्थ 'परिधि और वेष्टन' है, इसके अलावा उन्होंने महान पुरुषों देवी-देवताओं के चित्रों में उनके मुख मंडल के चारों ओर दिखलाया जाने वाले प्रकाश का घेरा अथवा प्रभा मंडल को भी परिवेश माना है। (485)

प्रो. रामचन्द्र पाठक के *शब्दकोश* के अनुसार परिवेश का अर्थ- "परिधि और सूर्य का मंडल है।" (434)

परिवेश शब्द को अंग्रेजी भाषा में milieu कहते हैं और *oxford dictIonary* के अनुसार इसका अर्थ "The social environment that you live or work in background." (971)

पंजाबी भाषा के भाई कान्ह सिंह नाभा के *महान कोष* के अनुसार- "परिवेश को सामान्य व्यक्ति और समाज का घेरा और दायरा माना है।" (753)

1.1.1.2 परिवेश की परिभाषा

परिवेश समय, स्थान और संदर्भ के आधार पर सदैव साथ रहता है। समय के अनुकूल परिवेश का बदलना सामान्य घटना है, क्योंकि परिवर्तन के कारण प्रचलित सामाजिक व्यवस्था और सम्बन्धों में बदलाव आता है, जैसे प्रसिद्ध आलोचक आचार्य शुक्ला भी साहित्य में कुछ निश्चित मान्यताओं को लेकर चले हैं। वे अपने समय की चिंतन-धाराओं से प्रभावित होकर साहित्य में मूल्य दृष्टि का प्रतिपादन करते हैं। सामान्य रूप में परिवेश का प्रयोग वातावरण के अर्थ में किया जाता है। भाषाविज्ञान और सूक्ष्म साहित्य चिन्तन के आधार पर, ये दोनों ही शब्द आपस में भिन्न हैं। परिवेश को परिभाषित करते हुए, डॉ. रघुवंश *हिन्दी साहित्य की समस्याएँ* में लिखते हैं-

> भारतीय संस्कृति की परम्परा में परिवेश को देखें, तो परिवेश देश-काल से सम्बंधित है। लेखक अपने समाज तथा परिवेश में जो यथार्थ घटनाएँ और परिस्थितियाँ देखता है, उन्हीं को साहित्य में अभिव्यक्ति देता है। (36)

सं. वचनदेव कुमार *लेखक और परिवेश* में इसकी परिभाषा देते हुए कहते हैं-

> किसी भी समय के साहित्य को और विशेष रूप से आज के साहित्य को तो सिर्फ अपने समय के संदर्भ और परिवेश में ही समझा जा सकता है। परिवेश यानी राजनीति, समाजशास्त्र, आर्थिक ढांचे और सारी सामाजिक बनावट से है। (27)

शैक्षिक भाषा में परिवेश को तटस्थ माना है। एक वस्तु जिस पर यह लागू किया जाता है, उसमें समय के तहत अंतर देखा जाता है। बदलते परिवेश में नियम सिद्धान्त दिशा और निरन्तरता नहीं मिलती। बदलते परिवेश की धारणा को तब देखते हैं, जब प्रत्येक क्षेत्र के परिवर्तन को एक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। एक परिस्थिति में प्रारम्भ से कुछ कारणों के आधार पर जब निश्चित स्वरूपों में निरंतर परिवर्तन होता है, तो हम उसे प्रक्रिया कहते हैं। सामाजीकरण व्यवस्थापन और संघर्ष भी परिवेश को प्रभावित करते हैं। राम आहूजा *भारतीय सामाजिक व्यवस्था* में लिखते हैं- "सामाजिक सम्बन्धों के स्थापित स्वरूपों, सामाजिक मूल्यों, संरचनाओं अथवा उप-व्यवस्थाओं में बदलाव ही सामाजिक परिवेश में बदलाव कहलाता है।" (347)

बदलते परिवेश के अध्ययन में एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक हम एक श्रृंखला का अवलोकन करते हैं। परिवेश की दोनों अवस्थाओं की विशेषताओं का समान होना आवश्यक नहीं हैं। परिवेश का स्वरूप किसी भी क्षेत्र में, किसी भी रूप में परिवर्तित हो सकता है, यह प्रक्रिया ऊपर या नीचे की तरफ, प्रगति या दुर्दशा की दिशा में हो सकती है। अत: परिवेश का तात्पर्य एक निश्चित दिशा के साथ एक अवस्था से किसी अन्य अवस्था की ओर गति से है। के.एल शर्मा *भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन* में लिखते हैं- "विकास की प्रकृति एक रेखीय है और इसलिए परिवर्तन जटिल से साधारण की ओर होता रहता है। जिसके अनुकूल परिवेश का भी बदलाव देखा जा सकता है।" (23)

1.1.1.3 परिवेश के विभिन्न प्रकार

प्रत्येक व्यक्ति का अपना परिवेश होता है, उसमें ही वह जीता है और जीवन की विभिन्न प्रक्रियाओं को गतिशील रखता है। विभिन्न व्यक्तियों के सहयोगी भाव से समाज का निर्माण होता है। ऐसे में समाजानुकूल परिवेश की प्रक्रिया सामने आती है। डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' *साहित्य और परिवेश* में लिखते हैं-

> साहित्य मानव समाज की भावात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। अत: उसके प्रेरक तत्त्व के रूप में मनुष्य के परिवेश का बहुत महत्त्व है। किसी भी काल के साहित्येतिहास को समझने के लिए, उस परिवेश को ठीक प्रकार से समझना अत्यन्त आवश्यक है। (45)

बदलते परिवेश का सम्बन्ध समाज से ही है, इसलिए इसे एक समाज सम्बन्धी विषय भी कह सकते हैं। हमारी पूर्व-पीढ़ी के सदस्यों की ओर देखें, तो वह जो अनुभव किया करते थे, वैसे ही कार्यों को वह स्वाभाविक अपना लिया करते थे। सामान्य शब्दों में कहें, तो पूर्व पीढ़ी के लोगों के मूल्यों से ही नव पीढ़ी के मूल्यों का जन्म होता है। आज हम जो भी कार्य करते हैं, वह एक सीमा तक हमने अपने पूर्वजों से अर्जित किया है। बदलते परिवेश का अभिप्राय सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आ जाने से है। यदि परिवेश के प्रकारों की बात की जाए, तो अलग-अलग समय के साहित्यकारों ने

परिस्थितियों के अनुसार, इसके विविध रूपों का वर्णन किया है। डॉ. नरेश मिश्र *साहित्यकार और भाषायी परिवेश* में लिखते हैं-

> परिवेश के निर्माण में पुराण, इतिहास, भूगोल, प्रकृति अभिरुचि और भाषायी संदर्भ की समन्वित भूमिका होती है। लेखक अपने लेखन के प्रारम्भिक चरण में परम्परा और निकट परिवेश से अधिक जुड़ा और उसमें अधिक सक्रिय रहता है। धीरे-धीरे बृहत्तर संसार से जुड़ता जाता है, लेकिन साहित्यकार अपने दृश्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और मनोवैज्ञानिक समकालीन परिवेश के अनुकूल रहने का भी प्रयत्न करता है। (02)

इस परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि आलोचक ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और मनोवैज्ञानिक, पाँच प्रकार के परिवेश का उल्लेख किया है। इस प्रकार डॉ. सरिता वाशिष्ठ *युगबोध और हिन्दी नाटक* में लिखती है-

> परिवेश की चेतना के निर्माण में केवल वर्तमान सक्रिय नहीं रहता, अतीत की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। स्पष्ट है कि परिवेश का सामान्य अर्थ 'समय और वातावरण' से लिया जाता है और इसका आधार सामाजिक परम्पराएँ, साहित्यिक प्रवृत्तियां, राजनीतिक मान्यताएँ और आर्थिक परिस्थितियाँ हो सकती हैं। मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ भी इसका आधार बनती हैं। (22)

इस परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि आलोचक ने सामाजिक परम्पराएँ, साहित्यिक प्रवृत्तियां, राजनीतिक मान्यताएँ, आर्थिक परिस्थितियाँ और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ के आधार पर, इसे विभाजित किया है। इस प्रकार डॉ. शिवप्रसाद सिंह *आधुनिक परिवेश और नवलेखन* में लिखते हैं-

> परिवेश हम सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक गतिविधियों तथा स्थितियों में निर्मित वातावरण को कहते हैं। उसका प्रभाव समकालीन साहित्य पर पड़ता है और साथ ही हमारी संवेदना को भी प्रकट करते हैं। (06)

इस परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि आलोचक ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिवेश के आधार पर इसे विभाजित किया है।

उपर्युक्त आलोचकों के कथनों से यह अभिप्राय ग्रहण किया है कि परिवेश को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के आधार पर विभाजित किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध में भी परिवेश को सामाजिक परिवेश, राजनीतिक परिवेश, आर्थिक परिवेश और मनोवैज्ञानिक परिवेश के आधार पर विभाजित किया है।

1.1.2 साहित्यकार का परिवेश के साथ सम्बन्ध

कोई भी साहित्यकार अपने परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। परिवेश के ज्ञान से ही किसी भी व्यक्ति अथवा साहित्यकार की मानसिकता का स्पष्ट ज्ञान हो पाना सरल हो जाता है। परिवेश का स्वरूप समय की गति के साथ बदलता रहता है। समय निरंतर परिवर्तनशील है। अत: हमारा परिवेश सतत परिवर्तनशील है, इसके साथ ही रचना के संदर्भ में हमारे विचार भी मूल्यों की तरह बदलते रहते हैं। हमारा रचनात्मक प्रयत्न परिवेश के सहारे, उसके अनुरूप उतर कर सामने आता है। परिवेश रचनाकार के मन में स्थित सूक्ष्म संदर्भ है। परिवेश की मौलिकता ही सर्जक की नियति है। डॉ. सिद्धनाथ कुमार *लेखक का परिवेश* में लिखते हैं-

> साहित्य अपने समय का तापमापक यंत्र होता है, इसमें अपने जमाने की गर्मी मालूम होनी चाहिए। जिस साहित्य पर अपने जमाने की छाप नहीं, उसकी रचना युग विशेष में होने की कोई सार्थकता नहीं है। वह मूलत: बाह्म समकालीन परिवेश की प्रतिक्रियाओं का अंकन होता है और ये प्रतिक्रियाएँ लेखक-परिवेश की अपनी क्षमता एवं अपनी दृष्टि पर निर्भर हैं। एक ही समकालीन परिवेश में रहकर कोई अज्ञात प्रियतम के रहस्यमय गीत गाता है और कोई युगार्थ की पुकार सुनाता है। (61)

साहित्यकार कला के विषय में भी अपने समाज से अछूता नहीं रह सकता। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उस पर सामयिक विचारधारा और परिवेश का प्रभाव अवश्य पड़ता है। हमारे पौराणिक साहित्य में बौद्ध और वैष्णव युग के साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से अपने युग परिवेश के अनुसार अपने-अपने सम्प्रदायों का प्रचार प्रसार किया। अत: साहित्यकार परिवेश के आधार पर ही साहित्य का सृजन करता है। परिवेश से साहित्यकार भावरुपी सामग्री ग्रहण करके, साहित्य सृजन द्वारा

समाज को नयी दिशा व अनुकूल गति के साथ गतिशील रहने की प्रेरणा देता है। साहित्यकार का परिवेश सामान्य व्यक्ति से कहीं अधिक विस्तृत और गम्भीर होता है। इसलिए उसकी अभिव्यक्ति भी विस्तृत और महत्त्वपूर्ण होती है। साहित्यकार का मानस रंगीन शीशे के उस पात्र की तरह होता है, जो अपने व्यापक परिवेश को अपने आकार के अनुपात में ग्रहण करता है और उसे विशेष रंग प्रदर्शित करता है।

साहित्यकार जिस देश-काल और वातावरण में रहता है, उस युग और समय का अपना प्रभाव होता है। ऐसे में साहित्यकार अपने समय के सुख-दुःख, प्रतिकूलता आदि से जुड़े परिवेश में डूबा रहता है और साहित्य सृजन की सम्भावना रहती है। कोई भी साहित्यकार अपने पूर्वजों विशेषकर दादा और पिता से वंशक्रम में प्राप्त विचारों से जुड़े परिवेश से अत्यधिक रूप में प्रभावित रहता है और साहित्य रचना के समय परिवेश के स्वरूप ही उभर कर सामने आते हैं।

साहित्य भी समाज के साथ-साथ चलता है। जिस ओर समाज बढ़ेगा अथवा उस समाज के लोग, जिस प्रकार की समस्या और सुविधाओं से गुजरेंगे, वैसे ही साहित्य की रचना होगी। इस प्रकार यदि प्रस्तुत शोध की चयनित विधा नाटक के विषय में बात करें, तो नाटक समाज में रहने वाले किसी व्यक्ति-सृजन का प्रतिफल है। नाटककार अपने समय और अपनी प्रतिक्रियाओं से अलग कुछ नहीं होता। नाटक के संदर्भ में तो इस बात का महत्त्व और भी अधिक हो जाता है, क्योंकि श्रव्य तथा दृश्य दोनों होने के कारण, यह सामाजिकों से अंतरंग स्थापित करता है। इसमें किसी भी समस्या को बहुत ही गंभीरता के साथ प्रदर्शित किया जा सकता है। नाटक न केवल समकालीन समाज में संचार किए हुए चेतना प्रवाह को दर्शाता है, अपितु वह उसमें क्रांतिकारी चेतना को भी जाग्रत करता है।

नाटक में मनुष्य के चरित्र का विकास विभिन्न परिस्थितियों के माध्यम से दिखाया जाता है। यह मानवीय स्वभाव है कि वह विभिन्न वातावरण में, विभिन्न प्रकार का आचरण करता है। इस काल के नाटकों में परिवेश को प्रधान स्थान मिला है और प्राचीन नाटकों की विचार प्रधानता को हटाकर, आधुनिक परिवेश की ओर उन्मुख हुआ है। आज परिवेश या वातावरण ने नाटकों में अभूतपूर्ण महत्त्व प्राप्त कर लिया है। परिवेश नाटक का एक तत्व मात्र नहीं रह गया बल्कि, यह आज के नाटकों का सब कुछ नहीं तो, बहुत कुछ अवश्य हो गया है। डॉ. रमासेन गुप्ता ने *हिन्दी तथा बंगला नाटकों के तुलनात्मक अध्ययन* में लिखा है-

वर्तमान नाट्य साहित्य में समस्याओं की प्रमुखता तथा तन्त्र विशिष्टता की दृष्टि से जिन नाटकों में किसी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक समस्या का इस रूप में चित्रण होता है। उनमें घटना व चरित्र का स्थूल चित्रण गौण तथा आलोचना एवं सूक्ष्म वैज्ञानिक मनोविश्लेषण का स्थान प्रमुख है, वो सामाजिक समस्या मूलक नाटक कहलाते हैं और उसमें नाटककार पर वर्तमान की सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव रहता है। (150)

1.1.3 जन-सामान्य का समकालीन परिवेश के साथ सम्बन्ध

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, मनुष्य प्रत्येक समाज में चाहे वह आदिकालीन हो या आधुनिककाल, अपने व्यक्तिगत समूह में ही निवास करना पसंद करता है। मानव और उसके समाज का विकास व्यवस्थित ढंग से हुआ है, जिसे हम आज सभ्य और सांस्कृतिक मानव की संज्ञा देते हैं। मनुष्य ने विभिन्न प्रकार की जीवन अवस्थाओं को पार करके, अपनी आज की सभ्यता को अर्जित किया है, जिसे हम समकालीन परिवेश कह रहे हैं। समकालीन परिवेश अपने एक खास समय की पहचान है, जो अपने समय के महत्त्वपूर्ण तत्वों से साक्षात्कर कराते हैं। हम सब जानते हैं, कि समय परिवर्तनशील है, उसके साथ-साथ मानव जीवन में बदलाव का आना स्वाभाविक ही है। हमारी इस बौद्धिक जीवन दृष्टि को विकसित करने में अनेक बुद्धिजीवियों एवं विचारकों का योगदान रहा है, जिसके कारण हमारी संस्कृति को सर्वोच्च स्थान दिया गया, लेकिन समकालीन पश्चिमी परिवेश की नकल ने नैतिकता के मानदण्ड ही बदल दिए हैं। आधुनिकता की एक नयी परिभाषा, इन दिनों भारतीय संस्कारों पर हावी हो रही है।

इस प्रकार जन-सामान्य का समकालीन परिवेश के साथ सम्बन्ध की बात करें, तो प्रस्तुत शोध के चयनित काल की बदलती परिस्थितियों का प्रभाव जन-सामान्य पर प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिल रहा है। समकालीन निम्नवर्गीय या मध्यवर्गीय परिवार के लोगों से लेकर, रचनाकार के वर्ग विशेष और लघुमानव से विशिष्ट मानव तक, यानी देश की किसी भी वर्ग की जनता, इससे अप्रभावित न रह सकी। औद्योगिक विकास, विज्ञान के नित नये-नये प्रयोगों से वैज्ञानिक दृष्टियों का विकास, भ्रष्ट राजनीति, सामाजिक उथल-पुथल, इंटरनेट की प्रधानता आदि ऐसे ही

तत्व हैं, जिन्होंने जन-सामान्य में घुसपैठ कर सम्पूर्ण मानवीय परिवेश को ही बदल कर रख दिया। इस समकालीन औद्योगिक विकास और नयी वैज्ञानिक दृष्टियों के कारण ही हमारे जीवन में बनावटी यांत्रिकता एवं औपचारिकता का प्रवेश हो गया है, जैसे मोबाइल इंटरनेट आदि के ज्यादा प्रयोग के कारण, हम अपने असल रिश्तों को भूलते जा रहे हैं और अनजान व्यक्तियों से दोस्ती कर रहे हैं। इससे सामाजिक मूल्यों में ह्रास होने लगा है। निरंतर सम्बन्धों की खोज में भटकता मानव अपने संस्कारों और वैयक्तिक तथा नैतिक आदर्शों को भूल गया और शारीरिक एवं मानसिक भूख मिटाने के लिए, वह पशुओं जैसा व्यवहार करने लगा, जिसके फलस्वरूप 2000 से 2018 के मध्य परिवेश में अतीत की तुलना से काफी बदलाव आया है। प्रस्तुत शोध में ऐसे अनेक तत्वों का सम्बन्ध जन-सामान्य से है, जिनका प्रभाव समाज के विविध क्षेत्रों पर पड़ जाने से परिवेश बदल रहे हैं और इनका विश्लेषण प्रस्तुत शोध में किया गया है।

1.1.4 परिवेश बदलने के कारण

समय परिवर्तनशील है। उसके साथ-साथ मानव जीवन में बदलाव का आना स्वभाविक ही है। ऐसी परिस्थितियों में हर व्यक्ति की मानसिकता भी बदलती जा रही है। यदि इक्कीसवीं शताब्दी से पहले की बात की जाए तो, आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक परिवर्तन जारी है। मानव एक जिज्ञासु प्राणी है और वह प्रत्येक क्षेत्र में कुछ नया खोजने का प्रयास निरंतर जारी रख रहा है। इस प्रकार इस निरंतर विकास के परिवर्तित परिवेश के कारण, हमने प्राप्त भी बहुत कुछ किया और साथ-ही-साथ खोया भी बहुत कुछ है। समाज और साहित्य की विकासशील परम्परा और नवीन प्रयोगों की द्वंदात्मक प्रगति ही बदलते परिवेश के कारण बनते हैं। साहित्य अपनी दृष्टिपरक एवं दूरगामी खोज के द्वारा समाज को उसका वास्तविक रूप दिखाता है। किसी भी समय के साहित्य और विशेष रूप से आज के साहित्य को तो, अपने समय के संदर्भ और परिवेश में ही समझा जा सकता है।

आज का मानव आदर्शवाद को छोड़ कर समकालीन जीवन और परिवेश के साथ जुड़ कर भौतिक धरातल पर आ गया है। आज वैज्ञानिक प्रगति, आर्थिक विकास और औद्योगीकरण ने मनुष्य को अपने साथ मिला लिया है। सामान्य जीवन में यदि

हम बदलते परिवेश की बात करें, तो प्रवास की भी बड़ी भूमिका होती है। लोगों का बड़ी संख्या में एक समाज से दूसरे समाज में अथवा अपने ही समाज में प्रवसन नए परिवेश को जन्म देता है। लोग गाँव से शहर और शहरों से उपनगरों आदि में आन्तरिक प्रवास करते हैं, जिसका बदलते परिवेश पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

बदलते परिवेश में प्रगति एक ऐसी धारणा है, जिसमें अतीत की तुलना वर्तमान से की जाती है, लेकिन एक निश्चित सामान्य पैमाने के आधार पर बदलते परिवेश का पूर्ण रूप से मूल्याँकन नहीं कर सकते, क्योंकि बदलाव भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में होता रहता है। वास्तव में किसी एक क्षेत्र का बदलता परिवेश या परिवर्तन दूसरे क्षेत्र से सम्बंधित होता है, जैसे प्रौद्योगिकी का सम्बन्ध सांस्कृतिक विकास के बहुत निकट का है। के.एल शर्मा की रचना *भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन* के अनुसार-

> परिवर्तन से होने वाली माँगों और चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए, ज्ञान और तकनीक की जानकारी के नए स्तरों को प्राप्त करने हेतु, आधुनिकता और बदलाव की आवश्यकता होती है। इन्हीं परिस्थितियों के कारण सामाजिक परिवर्तन होता है। (285)

समाज के भिन्न-भिन्न अंग जब एक दूसरे से सम्बंधित तथा एक दूसरे पर निर्भर रहते हुए, कार्य करते हैं और जिस प्रकार क्रियाशील एवं संगठित होते हैं, उसे व्यवस्था कहते हैं। इसके अंतर्गत ही सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था आती है, जिससे देश-काल की आवश्यकता के अनुसार नियम बनाकर समाज को सुचारू रूप से चलाया जाता है, इसी व्यवस्था का सम्बन्ध हमारी किसी आवश्यकता की पूर्ति से होता है और इस व्यवस्था को परिवेश के अनुकूल ही स्थापित किया जाता है। अत: सामान्य व्यक्तियों की आवश्यकता एवं रुचियों में बदलाव के कारण व्यवस्था की प्रकृति में भी परिवर्तन होता रहता है। पुराने परिवेश के स्थान पर नऐ परिवेश का स्थान ग्रहण होता रहता है, संघर्ष भी चलता है और इसी प्रकार व्यवस्था-निर्माण की प्रक्रिया गतिमान रहती है। सामान्य शब्दों में कहें तो, किसी भी समाज और साहित्य के बदलते परिवेश के बहुत-से कारण हो सकते हैं। एस.पी. श्रीवास्तव *भारतीय सामाजिक समस्याएं* में लिखते हैं-

> भारतीय समाज विभिन्न कारणों के फलस्वरूप रूपांतरित हो रहा है। औद्योगीकरण, शहरीकरण, सामाजिक बदलाव, शिक्षा का प्रसार, जनसंचार और राजनीतिक बदलाव ने मिलकर भारतीय समाज के परम्परागत स्तम्भों में बुनियादी फर्क ला दिया है। (05)

यदि हम आज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों को गहराई से देखें, तो परिवेश बदलने का कोई एक कारण स्पष्ट नहीं हो रहा, बल्कि इस बदलाव के अनेक कारण हैं, लेकिन हमने कुछ प्रमुख कारणों का चयन किया, जो निम्नलिखित हैं:-

1.1.4.1 सामाजिक संघर्ष के कारण परिवेश का बदलाव

समाज हमेशा परिवर्तन की प्रक्रिया के दौर में रहता है और यह परिवर्तन वर्ग-संघर्ष के द्वारा होता है। इस संघर्ष का सबसे बड़ा कारण परम्परा तथा आधुनिकता के बीच टकराव भी है, क्योंकि वे परम्परा के मूलभूत सिद्धान्तों को बनाये रखना नहीं चाहते। दूसरे शब्दों में कहें तो सामाजिक सम्बन्धों के स्थापित स्वरूपों, सामाजिक मूल्यों, संरचनाओं अथवा उप-व्यवस्थाओं में बदलाव या संघर्ष भी सामाजिक बदलाव लाते हैं। इसी प्रकार परिवार व्यवस्था, विवाह व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था, जाति व्यवस्था या काम-काज करने की व्यवस्था के कुछ पक्षों में संघर्ष के कारण भी सामाजिक परिवेश में बदलाव आता है, लेकिन इनमें से किसी भी व्यवस्था में समग्र बदलाव कभी नहीं होता। राम आहूजा *सामाजिक परिवर्तन और विकास* में लिखते हैं-

> आर्थिक परिवर्तन, सामाजिक समूहों तथा समाज व्यवस्था के विविध अंगों के बीच गहन संघर्ष के माध्यम से अन्य परिवर्तनों को जन्म देता है। अत: परिवर्तन समूहों या सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के विभिन्न भागों के बीच संघर्ष के फलस्वरूप होता है। (353)

ऐसे ही समाज में स्त्री-पुरुष परिवार की मूल इकाई होते हैं और परिवार समाज का अभिन्न अंग है, इसी आधार पर प्रत्येक स्त्री-पुरुष का कर्त्तव्य बनता है कि वह अपने परिवार और समाज को सही ढंग से चलाए। जब तक वह ऐसी मानसकिता को नहीं अपनाएंगे, तब तक वह अपने परिवार के सभी सदस्यों को एक साथ लेकर

नहीं चल सकते, अन्यथा थोड़ी-सी चूक होने पर यह संघर्ष बन जाएगा। डॉ. एस.पी. श्रीवास्तव *भारतीय सामाजिक समस्याएं* में लिखते हैं-

> सामाजिक समस्या मानवीय सम्बन्धों की वह समस्या है, जो समाज के लिए गंभीर रूप से हानिकारक सिद्ध होती है और जिसके कारण बहुत-से लोगों की महत्त्वपूर्ण इच्छाएं पूरी नहीं हो पाती है। (03)

सामाजिक क्षेत्र में एक जैसा बदलाव हमेशा नहीं रहता; बल्कि समय के अनुरूप बदलता रहता है। इस बदलती मानसिकता में पुरानी परम्पराएं, नियम और व्यवहार अनावश्यक हो जाते हैं। ऐसी नयी परम्पराओं, मूल्यों, नियमों तथा व्यवहारों को व्यक्ति जल्दी स्वीकार नहीं करता, जिसके कारण सामाजिक संघर्ष शुरू हो जाता है। प्रस्तुत शोध में भी इस प्रकार के संघर्ष को देखा गया है, जिस में दाम्पत्य का टकराव, पिता-पुत्र का टकराव, नयी और पुरानी पीढ़ी का टकराव, बुजुर्गों के साथ गलत व्यवहार और अकेलापन, जैसी समस्या उत्पन्न होती जा रही हैं। इन समस्याओं के कारण भी परिवेश में बदलाव देखने को मिलता है, उदाहरणस्वरूप ऐसी स्थिति में रहने वाले व्यक्तियों में चिड़चिड़ापन बढ़ जाएगा या वह संयुक्त परिवार छोड़ कर एकल में रहना पसन्द करेंगे। अत: हम कह सकते हैं कि सामाजिक संघर्ष भी बदलते परिवेश का कारण बनता है।

1.1.4.2 विज्ञान और तकनीक के कारण परिवेश का बदलाव

विज्ञान एवं तकनीक की प्रगति ने बदलते परिवेश को गति दी है, इससे बड़े पैमाने पर उत्पादन, परिवहन व संचार में बड़ा परिवर्तन आया है तथा इन सभी का लोगों के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। चिकित्सकीय तकनीक आदि ने मृत्यु दर को प्रभावी रूप से घटा दिया हैं तथा पोलियो, चेचक आदि रोगों को जड़ से उखाड़ दिया है। तकनीक और वैज्ञानिक विकास का समाज के आर्थिक पहलूओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है, जिसके परिणामस्वरूप परिवेश में बदलाव आ रहा है। विज्ञान ने विश्व को छोटा कर दिया है। मोटर साइकिल, मोबाइल, कंप्यूटर, टेलीविजन आदि ने संस्कृति प्रसार हेतु नए अवसर प्रदान कर दिए हैं।

बदलता परिवेश एक गतिमान तंत्र हैं, जिसमें नए घटक आते हैं तथा पुराने छूटते जाते हैं। आज का युग विज्ञान के चमत्कारों का युग है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान ने क्रांति उत्पन्न कर दी है। जब तक विज्ञान ने अपने पंख तेज़ी से नहीं पसारे थे, तब तक विश्वव्यापी बदलाव सहजता से होना संभव नहीं था, लेकिन इस कंप्यूटर युग में तो पूरा विश्व ही एक गाँव की तरह हो गया है। संसार के किसी भी कोने में हुआ परिवर्तन, पल भर में प्रत्येक स्थान पर दिखायी देने लगता है। समय ने दुनियावी विचारों और भेद-भावों को तेज़ी से परिवर्तित किया है। इंटरनेट और यातायात के साधनों ने नए युग को जन्म दे दिया है, जिसके कारण विश्व के अधिकांश नागरिकों के जीवन में बदलाव दिखायी देने लगा है। आज के वैज्ञानिक और तकनीक युग में विज्ञान की प्रक्रिया तथा विचारों का प्रभाव किसी-न-किसी रूप में ज्ञान-क्षेत्रों को प्रभावित करता है तथा यही ज्ञान बदलते परिवेश का कारण बनता है, जो यह स्पष्ट करता है कि ज्ञान और परिवेश के द्वन्द्वात्मक विकास से एक नया संवाद संपन्न होता है। हमारा समाज जिस रफ़्तार से आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है। उसी रफ़्तार से सामाजिक सम्बन्धों का विघटन अथवा उनमें बिखराव की स्थिति उत्पन्न है। जितना आधुनिक मानव सुविधावादी हो रहा है तो उसके समक्ष कुछ चुनौतियां भी उभर रही हैं। डॉ. रजन तिवारी *स्वतंत्रयोत्तर, हिन्दी नाटक जन साधारण परिप्रेक्ष्य* में लिखते हैं-

> आधुनिकीकरण की दौड़ में संस्कार ग्रस्त मानसिकता प्रगतिशील पगों की बेड़ियों के समान अवांछनीय प्रतीत होती है। अपने परम्परागत रीति-रिवाजों, विश्वासों, मान्यताओं तथा पारिवारिक-सामाजिक सम्बन्धों को न तो हम उसी विश्वास के साथ अंगीकृत और व्यवहृत कर पा रहे हैं और न ही उसे अनुप्रयोगी, जीर्ण-शीर्ण समझकर झटके के साथ तोड़ पा रहे हैं। इस प्रकार की द्वंद्वात्मक मन:स्थिति में सतत जीने वाले समाज से जो आशा की जा सकती है, उसी के अनुरूप उसमें बिखराव, विघटन एवं विसंगतियाँ प्रत्यक्ष होने लगी हैं। (39)

प्रस्तुत शोध में भी कुछ पात्र आधुनिक वैज्ञानिकता के साथ जुड़े हुए दिखायी दे रहे हैं और वह इंटरनेट आदि की बातें भी करते हैं। इस इंटरनेट की सहायता से रोजगार तलाशने का यतन भी करते हैं और भ्रष्ट राजनेताओं को नसीहत देने के लिए, उनकी रिकॉडिंग को सोशल-मीडिया पर फैला देते हैं। निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि विज्ञान और तकनीक के कारण परिवेश में बदलाव आया है।

1.1.4.3 औद्योगीकरण के कारण परिवेश का बदलाव

औद्योगिक शब्द का सम्बन्ध उस उद्योग से है, जिसमें वस्तुओं को तैयार करने का काम किया जाता है। औद्योगीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमे आधुनिकतम प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाता है और जिसका उद्देश्य उत्पादन के साधनों में वृद्धि करना, मनुष्यों के काम करने की जगह मशीनों पर निर्भर करना और कम-से-कम मेहनत में जीवन स्तर को ऊपर उठाना है, लेकिन इसके अच्छे प्रभाव के साथ-साथ बुरे प्रभाव भी पड़े हैं। भारत में औद्योगीकरण उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम में प्रारम्भ हुआ है, इससे पहले हमारे देश में हर व्यक्ति और वर्ग के पास अपना-अपना काम था, उदाहरणस्वरूप किसान अपना सारा काम अपने हाथों से करते थे, चमार वर्ग के लोग सारा काम अपने हाथों से करते थे, कपड़ा बनाने वाले लोग, चरखा आदि चलाकर अपने हाथों से सारा काम करते थे और तरखान लकड़ी का काम अपने हाथों से किया करते थे और उनकी आर्थिक दशा भी अच्छी थी, लेकिन बदलते परिवेश में औद्योगीकरण का स्वरूप हम देखें, तो इसने बहुत सारे लोगों का रोजगार छीन लिया है। आज यहाँ हज़ार मजदूरों की जरूरत है, वहाँ एक मजदूर काम कर रहा है। प्रस्तुत शोध में भी कुछ पूंजीपति पात्र, तो इस औद्योगीकरण से बहुत खुश हैं, लेकिन निम्न और मध्य वर्ग में इस औद्योगीकरण के कारण बेरोजगारी बढ़ी, जिसके कारण उनमें रोष की लहर भी देखी जा रही है। राम आहूजा *भारतीय सामाजिक व्यवस्था* में लिखते हैं-

> औद्योगीकरण से पूर्व हमारे पास यह व्यवस्था थी: (I) कृषिक अमुद्रणीय अर्थव्यवस्था (II) तकनीकी का वह स्तर जहाँ घरेलू इकाई आर्थिक विनिमय की इकाई भी थी, (III) पिता-पुत्र व भाई-भाई के बीच व्यावसायिक भेद नहीं था, (Iv) एक ऐसी मूल्य व्यवस्था थी, जहाँ युक्तिसंगतता के मानदंड की अपेक्षा बुजुर्गों की सत्ता और परम्पराओं की पवित्रता दोनों को ही महत्त्व दिया जाता था, लेकिन औद्योगीकरण ने हमारे समाज में सामान्य रूप से आर्थिक व सामाजिक-सांस्कृतिक बदलाव तथा विशेष रूप से परिवार में परिवर्तन किया है। (58-59)

1.1.4.4 शिक्षा के कारण परिवेश का बदलाव

शिक्षा मानव को एक अच्छा इंसान बनाती है, इसके द्वारा समाज के आधारभूत नियमों, व्यवस्थाओं और समाज के प्रति मूल्यों को सीखता है, दूसरे शब्दों में कहें, तो शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में बदलाव आता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति प्रत्येक दिन नए-नए अनुभव प्राप्त करता है। शिक्षा ने समाज को कई प्रकार से प्रभावित किया है। शिक्षा से न केवल व्यक्तियों की अभिवृत्तियाँ, विश्वास, मूल्य एवं आदर्श विचारधाराएं बदली हैं, बल्कि इसने व्यक्ति की भावना को उत्पन्न किया है। भारत में शिक्षा न केवल पुरुषों में बढ़ रही है, बल्कि स्त्रियों में भी। बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि जितनी पढ़ाई के प्रति आज के माता-पिता की रोचकता है, उतनी अतीत के माता-पिता में न थी। विपिन्न गुप्त *हिन्दी नाटक में समसामयिक परिवेश* में लिखते हैं-

> समाज में शिक्षा की अनिवार्य भूमिका रही है। शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति, धर्म, अर्थ, उद्योग, राजनीति आदि सभी से है। यहीं कारण है कि शिक्षा सामाजिक नियन्त्रण की अभिकर्ता है। वैदिक युग से आधुनिक युग तक शिक्षा पद्धति परिवर्तित होती रही है। लेकिन इनका उद्देश्य समाज कल्याण ही रहा है। (119)

समकालीन समाज में हम देखते हैं कि हमारे समाज का बहुत बड़ा हिस्सा आज पढ़ा-लिखा है, यह लोग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं। इस शिक्षा के प्रसार के कारण भी परिवेश में बदलाव आया है। प्रस्तुत शोध के नाटकों में ऐसे अनेक पात्र हैं, जो अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं और बाद में अपने अधिकारों को प्राप्त भी करते हैं। यदि इस बदलाव का किसी को श्रेय जाता है तो वह है शिक्षा। वी.एन. सिंह और जनमेजय सिंह *भारत में सामाजिक आंदोलन* में लिखते हैं-

> यह सम्भव नहीं है कि गाँवों और शहरों के सभी शिक्षित युवाओं को नौकरी प्राप्त हो जायेगी। इस पर नि:संदेह गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। इस तरह शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि उसका सीधा सम्बन्ध देश की समस्याओं से हो। सभी वर्ग के लोगों को बुनियादी शिक्षा दी जानी चाहिए। (246)

1.1.4.5 क्रांति के कारण परिवेश का बदलाव

मनुष्य के जीवन में क्रांतियाँ आधारभूत परिवेश लाती हैं। यह अधिकारों या संगठनात्मक संरचना में होने वाला एक मूलभूत परिवर्तन है, जो सामान्य से कम समय में घटित होता है। मानव इतिहास में अनेक क्रांतियाँ घटित हुई हैं। इनमें काफी वैचारिक और सैद्धांतिक मामले चर्चित रहें हैं, जिनके परिणामस्वरूप संस्कृति, अर्थव्यवस्था, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थानों में काफी बदलाव आया। राजनीतिक सिद्धान्त के अंतर्गत क्रांति वह है, जो किसी राजनीतिक सत्ता के बदलते परिवेश से आरंभ होती है और फिर वहीं के सामाजिक जीवन को नए रूपों में ढाल देती है। सामान्य शब्दों में कहें तो, क्रांतियों के कारण भी बदलाव आते हैं, क्योंकि इसके क्रिया कलापों में लोगों की भागीदारी बढ़ जाती है। एस.एल. दोषी *आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* में लिखते हैं-

> यूरोप और अमेरिका की आधुनिकता का निर्माण ढेर सारी क्रांतियों ने किया है। वहाँ राजनीतिक क्रांतियाँ हुईं, वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांतियाँ हुईं। यह सब परम्पराएँ थी और इन्होंने आधुनिकता के भविष्य को तय कर दिया। (75)

क्रांति किसी भी क्षेत्र में हुई हो, उसका गहरा प्रभाव समाज पर जरूर पड़ता है, लेकिन समाज के सभी सांस्कृतिक पक्षों पर इसका प्रभाव, उस समय अर्थात् तत्काल नहीं पड़ता। सामान्य शब्दों में कहें तो क्रांति का अर्थ है- सत्ता के ढांचे के परिवेश में बदलाव लाना या मौजूदा शक्ति सत्ता को बदलने से है, इसके साथ ही अन्य समूह समाज के अन्य ढांचे में भी परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं। वास्तव में, क्रांति समाज के बुनियादी ढांचे और परिवेश में बदलाव लाती है। इस प्रकार यदि हम आधारभूत क्रांतियों की बात करें, जिसकी वजह से बहुत बड़ा बदलाव आया है, उसके विषय में वी.एन. सिंह और जनमेजय सिंह *भारत में सामाजिक आन्दोलन* में लिखते हैं-

> वर्ष 1966-67 में भारत में हरित क्रांति को औपचारिक रूप से अपनाया गया। जिसने किसानों की आमदन को दोगुना कर दिया। 1760 से लेकर 1840 तक यूरोप में नयी-नयी वस्तुओं का निर्माण हुआ, जिन्हें कुल मिलाकर औद्योगिक क्रांति का नाम दिया गया। इसके बाद औद्योगिक उत्पादन में अभूतपूर्व बदलाव आया। (60)

क्रांति के पूर्व के प्रशासन में परिस्थिति और प्रतिष्ठा की प्राप्ति की लालसा ज्यादा होती है। क्रांति के कारण बदलते परिवेश के परिणामस्वरूप आर्थिक क्षेत्र में पुराने बन्धनों से जनता को मुक्ति प्राप्त होने की आशा होती है। भारत के कुछ भागों में 'हरित क्रांति' ने किसानों की दशा और दिशा को बदल दिया था। ऐसे ही हम कह सकते हैं, कि क्रांति द्वारा मानव गरिमा की भावना और समाज के दलित वर्गों में परिवर्तित परिवेश की मानसिकता को जागृत किया जाता है, जैसे स्वतंत्रता से पूर्व के दिनों की तुलना में आज हम अधिक स्वतंत्र और विमुक्त महसूस कर रहें हैं। प्रस्तुत शोध में भी कुछ किसान और युवा अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए क्रांति करते हुए दिखायी दिए हैं। क्रांति चाहे किसी भी क्षेत्र में क्यों ना हो, उसका परिणाम उन्नति या अवनति के रूप में उभर कर आता है। वी. एन. सिंह *भारतीय सामाजिक चिन्तन* में लिखते हैं-

> समाज और व्यक्ति के जीवन के हर पहलू में क्रांतिकारी बदलाव हो और व्यक्ति का और समाज का विकास हो, दोनों ऊंचे उठें, केवल शासन बदले इतना नहीं बल्कि व्यक्ति और समाज में भी बदलाव करें। (316)

1.1.4.6 कानूनी स्तम्भों के कारण परिवेश का बदलाव

कानूनी स्तम्भों को सामाजिक एकता तथा सामाजिक बदलाव का प्रमुख स्रोत कहा जाता है। किसी देश के कानून का उस देश की ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्ध होता है। भारत में आधुनिक विवेकशील कानून का निर्माण ब्रिटिश शासन के समय शुरू हुआ और यह प्रक्रिया अभी तक चल रही है। आधुनिक कानून परम्परागत कानून से अलग होता है, क्योंकि परम्परागत कानून धर्म तथा परम्परा पर आधारित होता था, लेकिन आधुनिक कानून उपयोगितावादी दृष्टिकोण पर आधारित है। आज हम देखते हैं कि प्रजातांत्रिक सामाजिक संरचना के द्वारा बदलाव लाने के लिए, आम जनता की सहभागिता पर बल दिया जा रहा है। आज हमारे समाज का बहु-वर्ग कानून की सारी जानकारी रखता है, जिसके कारण प्रशासनिक व्यवस्था को जनता के प्रति उत्तरदायी बनना पड़ता है। बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि 'जाति पंचायत' के स्थान पर 'ग्राम पंचायत' आ गयी। लोकतांत्रिक राज तथा सामुदायिक विकास योजना के द्वारा अनेक संस्थागत मूल्यों को स्थापित किया गया है। यदि हम अतीत की बात करें, तो

उस समय जमींदारी व्यवस्था थी, वह लोग अपनी इच्छा अनुसार कुछ भी कर लेते थे। कानूनी स्तम्भों के कारण यह एक क्रांतिकारी बदलाव हुआ कि यहाँ पर जमींदारी व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया है। कानून के माध्यम से जन-सामान्य को अधिकार तथा कर्त्तव्य दोनों दिए गये हैं। जनता की सहभागिता और सरकार की अच्छी नीतियों के कारण सामाजिक बदलते परिवेश की गति तीव्र हो गयी है। कमजोर वर्गों के लोगों को विशेष सुविधाएं दी जा रही हैं। उच्च वर्ग की मानसकिता में भी परिवर्तन आने लगा है, लेकिन इस बदलाव के बाद भी जाति-पाति, साम्प्रदायिकता और परम्परागत ऊच-नीच के मूल्यों पर पूर्ण रोक नहीं लग सकी है, प्रस्तुत शोध में भी यहाँ पूंजीपति और जमींदार मध्य वर्ग का शोषण करते हैं, तो वह कानून का सहारा लेकर उसका विरोध करता है। अमर कुमार *योगेन्द्र सिंह का समाजशास्त्र* में लिखते हैं-

> आज़ादी के बाद सामंतवादी जमींदारी प्रथा तथा जागीरदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया, लेकिन जमींदारी प्रथा की मानसिकता अभी भी व्यक्तियों में पायी जाती है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में। (69)

1.1.4.7 राजनीतिक प्रक्रिया के कारण परिवेश का बदलाव

सन 1947 में हमें राजनीतिक आज़ादी मिली और उस समय के नेताओं को एक बिखरी अर्थव्यवस्था, व्यापक निरक्षरता, चौंकाने वाली गरीबी का सामना करना पड़ा। उसके बाद हर साल अनेकों उद्योगों का निर्माण होने लगा और अन्तर्राष्ट्रीय समझौते भी होने लगे, जिससे व्यापार को उत्साहित किया जा सके। उस समय कृषि में प्रगति दर भी कुछ हद तक स्थिर थी, लेकिन उसके बाद शोध में लगातार निवेश, भूमि सुधार, क्रेडिट सुविधाओं के दायरे का विस्तार और ग्रामीण बुनियादी ढाँचे में सुधार आदि, कुछ अन्य निर्धारित कारक थे, जो देश में कृषि क्रांति लाए थे। इस प्रकार देश में कृषि का क्षेत्र भी मजबूत हुआ। परिवहन की दृष्टि से देखें, तो भारत का नाम दुनिया के सबसे बड़े परिवहन नेटवर्क में आने लगा है। इन सबका श्रेय उस समय के नेताओं को ही जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वतंत्रता के पूर्व जो हमारे परिवेश थे, उसकी तुलना में बदलाव आने लगा है, यह बदलाव इन क्षेत्रों के आलावा भी देखा जा सकता है, जैसे शिक्षा के क्षेत्र में देखें, तो भारत ने अपनी शिक्षा प्रणाली को वैश्विक स्तर के

समतुल्य लाने में कामयाबी हासिल कर ली है। 86 वें संशोधन में 6-14 साल के बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा का मौलिक अधिकार भी दिया गया। चिकित्सा के क्षेत्र में भी भारत ने काफी सफलता हासिल की और मौत दर काफी घटा दिया है।

राजनीतिक प्रक्रिया में हम यह भी देखते हैं कि स्वतंत्रता के बाद, भारत को पुराना रेल-नेटवर्क विरासत में मिला था। उस समय बहुत कम लाइनें और स्टेशन थे, जिसके मालिक भूतपूर्व रियासतों के प्रमुख थे, लेकिन उस समय के राजनेताओं ने इसका राष्ट्रीयकरण किया और आज भारतीय रेलवे विश्व के सबसे बड़े नेटवर्क में से एक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समय-समय पर अच्छी सरकारें आयी और उनकी सोच ने परिवेश को बदला। स्वतंत्रता के बाद सभी जाति और धर्म के लोगों को समान अधिकार देने का प्रस्ताव भी पास किया। राजनीतिक प्रक्रिया में भी इस प्रकार के भेदभाव को खत्म किया गया।

स्वतंत्रता के बाद पक्ष और विपक्ष आदि सभी पार्टियों ने, सबको एक साथ जोड़ने की भूमिका निभाई। सामान्यत: यह माना जाता है कि राजनीतिक संचार केवल चुनावों से सम्बंधित होता है, किन्तु ऐसा नहीं है। राजनीति मोटे तौर पर उस प्रकिया को निर्धारित करती है और उससे सम्बंधित होती है, जिसके द्वारा समाज नीतिगत मामलों पर सर्वसम्मति पर पहुँचता है। इस तरह, राजनीति संचार का आधार विशिष्ट वर्ग अथवा आम जनता के व्यापक सम्बन्ध वाले मामलों के बारे में नागरिकों, मीडिया एवं नेताओं के 'कथोपकथन' हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अच्छी और बुरी राजनीतिक प्रक्रिया के कारण भी परिवेश में बदलाव हुआ है।

राजनीति युग सापेक्ष नीति होती है। राष्ट्र के निर्माण में, मानव के उत्थान-पतन, में जीवन के उतार-चढ़ाव में इसका विशिष्ट योगदान होता है। राजनीति के वास्तविक रूप के दर्शन को केवल साहित्य में देखा जा सकता है। सच्चा साहित्यकार जिस मिट्टी में जीता है, जिस स्थान पर रहता है और जिस युग के राजनीति परिवेश में उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। वह उसी वातावरण से प्रेरित होकर साहित्य का निर्माण करता है। डॉ. ममता *साठोत्तर हिन्दी नाटक और राजनीति* में लिखती है-

> साहित्य और राजनीति का आधुनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सैद्धांतिक दृष्टि से दोनों का लक्ष्य समाज के स्वस्थ एवं विसंगति विहीन बनाना है। राजनीति सामाजिक यथार्थ का अंग है और साहित्य सामाजिक यथार्थ की

रागात्मक अभिव्यक्ति है। मानव कल्याण के प्रश्नों को हल करते समय साहित्य और राजनीति को अलग नहीं किया जा सकता। (14)

1.1.4.8 भारतीय परम्परा की पौराणिकता के त्याग के कारण परिवेश का बदलाव

समकालीन जीवन और परिवेश को देखें, तो हमारे भारत में सभी को आधुनिक बनने की होड़ सी लगी हुई है। आधुनिक होने का सीधा सा अर्थ पौराणिकता का त्याग करना। पश्चिमी देशों में जो हो रहा है, वहीं हमारे लिए भी आदर्श मान लिया गया है। वहाँ की सभ्यता को अधिक अपनाने के कारण ही तत्कालीन परिवेश का विकृत अर्थ सामने आ रहा है। हमारे युवक आधुनिक बनने की होड़ में भारतीय पहरावे को छोड़ कर कोट पैंट और टाई आदि पहनने लगे हैं। परम्पराएँ हमेशा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की ओर जाती है। किसी खास व्यक्ति की कोई विशेष परम्परा एवं सभ्यता नहीं होती, लेकिन समूह या समाज बराबर चलते रहते हैं और इसलिए परम्पराएँ भी चलती रहती हैं। इन परम्पराओं के अनुकूल ही परिवेश बदलते रहते हैं। पुराने परिवेश के स्थान पर नये परिवेश स्थान लेते हैं। दैनिक जीवन में जो भी घटनाएँ घटती है, सामान्य जीवन उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

समकालीन संरचना में हम पारम्परिक परिवेश की भूमिका को नज़र-अंदाज कर रहे हैं। जिसके कारण परिवेश बदल रहे हैं। हमारा तर्क है कि भारतीय समाज में आज जो भी है, इसका बहुत बड़ा निर्धारण, यहाँ के बदलते परिवेश और परम्पराओं ने किया। परम्पराओं के साथ में ही स्थानीय और आंचलिक इतिहास जुड़ा होता है, जो सामान्य जीवन और परिवेश को प्रभावित करता है। एस. एल. दोषी *आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता एवं नव-समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* में लिखते हैं-

> परम्परा और आधुनिकता के परिवेश एक दूसरे को जोड़ते हैं। परम्पराएँ अतीत की हैं। इनकी समाज में वैधता है, लेकिन ये परम्पराएँ जड़ नहीं है। इन्हें आधुनिकता के परिवेश के साथ समझौता करना पड़ता है। तभी ये जीवित रह सकती हैं। (84)

भारतीय परम्परा के अनेक स्रोत रहे हैं और यह उन सभी मूल्यों को दर्शाती है, जो सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक संरचना के बीच द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध स्थापित करती है। हम देखते हैं कि भारतीय परम्परा और आधुनिकीकरण में कोई खास विरोधाभास भी नहीं है, लेकिन भारतीय संस्कृति में परिवर्तन हो रहा है। इनके अनुसार वैदिक संस्कृति, जिसकी अभिव्यक्ति अनेक ग्रंथों में हुई है, न केवल कर्मकाण्ड, विश्वास तथा सांस्कृतिक क्रियाओं के क्षेत्र में है, बल्कि विश्व के अनेक धर्मों से अलग भी है। हमारी भारतीय परम्परों के अनुसार जन्म और पुनर्जन्म को माना जाता था। जिसके अनुसार निम्न जाति का व्यक्ति, इस जन्म में अच्छा कार्य करता है, तो वह अगले जन्म में उच्च जाति में जन्म लेता है। हमारे जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अछूत सामाजिक समूह बहुत पाए जाते थे, लेकिन बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि आज हमारे समाज के लोगों में पौराणिक कट्टरता नहीं है। अमर कुमार *भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण* में लिखते हैं-

> भक्ति आंदोलनों के सारे लोगों ने हिन्दू-मुस्लिम की कट्टरता की आलोचना की, जैसे-कबीर, गुरु नानक इत्यादि। इन लोगों ने जाति, लिंग और धार्मिक विश्वासों के आधार पर आधारित अयोग्यता को समाप्त किया। जैसे ही मध्यकालीन भारत से हम आधुनिक भारत में प्रवेश करते हैं, तब हम धार्मिक तथा सांस्कृतिक धर्म सुधार आंदोलन देखते हैं, जिसके कारण लघु और वृहत परम्परा के बीच अंत: क्रिया हुई। ऐसा लगता है कि सुधार आंदोलन ब्रिटिश शासन के आने के बाद हुआ। दयानंद सरस्वती, विवेकानंद और महात्मा गाँधी का उदय हिन्दू धर्म की लघु परम्परा और वृहत परम्परा में परिवर्तन लाया। उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक राजा राममोहन राय ने सांस्कृतिक परिवर्तन में अधिक ज़ोर दिया। (28-29)

इस प्रकार देखते हैं कि आज के लोग अवैध पौराणिक परम्पराओं का त्याग कर रहे हैं। जिसके कारण परिवेश अपने आप बदल रहा है। प्रस्तुत शोध में भी कुछ युवा पात्र इस प्रकार की मानसिकता के हैं, जो प्राचीन परम्पराओं को चुनौती दे रहें हैं। इस विषय में सरला गुप्ता 'भूपेन्द्र' *समकालीन हिन्दी नाटक चेतना का आयाम* में लिखते हैं- "व्यक्ति-चेतना ने व्यक्ति को दोहरा व्यक्तित्व प्रदान किया है: एक ओर परम्पराओं को स्वीकारता है तो दूसरी ओर इसका विरोध भी करता है।" (16)

1.1.4.9 ग्रामीण और शहरी विकास के कारण परिवेश में बदलाव

आज के बदलते परिवेश में सामाजिक परिस्थितियाँ भी बहुत तेजी से बदल रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य की प्रवृत्ति भौतिक सुख पाने की ओर अधिक उन्मुख हो रही है। आधुनिक आविष्कारों के माध्यम से अपने जीवन को अधिक खुशहाल बनाने की मानसिक प्रवृत्ति प्रत्येक वर्ग अर्थात् चाहे वह ग्रामीण हों, चाहे शहरी हों, उनमें पनप रही है। इसलिए प्रत्येक वर्ग की मनोवृत्तियों में सामाजिक व्यवस्था के प्रति भी सजगता दिखलाई पड़ रही है। जिसके कारण उनमें दूषित व्यवस्था के प्रति विद्रोहत्मक मनोवृत्ति पनपती है। ऐसी मानसिकता के कारण ग्रामीण और शहरी वर्ग, सामाजिक अव्यवस्था के प्रति आवाज उठाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप दोनों के परिवेश बदल रहे हैं।

आज यदि हम सबसे पहले ग्रामीण परिवेश की बात करें, तो पहले लोगों की विचारधारा थी कि ग्रामीण लोग, शहरी लोगों के मुकाबले पिछड़े हुए हैं, लेकिन आज के बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि शहरों के मुकाबले ग्रामीण परिवेश अधिक आकर्षित होते जा रहे हैं। अतीत की दृष्टि से देखें, तो गाँव भारतीय संस्कृति का मुख्य स्थान है। गाँवों की दशा दिन-व-दिन बदल रही है। लेकिन जो शांति गाँवों में पहले थी, वह शांति तो अब नहीं है। वहाँ शहरी परिवेश अपना पूरा प्रभाव जमाता जा रहा है। गाँवों वालों का मत था कि शहर जाकर नयी पीढ़ी बिगड़ जाती है, लेकिन आज के बदलते परिवेश हम देखते हैं कि यह भ्रम लोगों में दूर होता जा रहा है। प्रस्तुत शोध में भी देखते हैं कि कुछ युवा गाँव में रह कर, अपना अच्छा-खासा काम चला रहे हैं।

ऐसे ही यदि हम शहरों के विकास की बात करें, तो गाँव के साथ-साथ इनका परिवेश भी बदला है। औद्योगीकरण शहरों की सामाजिक व्यवस्था बदलने में मुख्य भूमिका निभा रही है। कोई भी बदलाव सबसे पहले यहीं आता है। आधुनिक विकास की दृष्टि से हम देखें, तो शहरों में नये-नये काम हो रहे हैं। जिसके कारण शहर महानगरों में बदलते जा रहे हैं। महानगरों के लोगों का जीवन अत्यधिक व्यस्त और त्रस्त है। घर, परिवार, मित्रजन सबके होते हुए भी, एक प्रकार का अकेलापन उन लोगों को सता रहा है। बदलते परिवेश में हम देख रहे हैं कि महानगर के लोग उस भीषण भीड़ भरी जिन्दगी में अपने-आपको खोकर, पहचान की तलाश में भटक रहे

हैं। तनाव से मुक्ति तो उन्हें किसी दवा-दारू से भी नहीं मिल रही। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शहरी विकास में आधुनिकरण के कारण बदलाव तो आया है। मुकेश कुमार और सुंधाशु शेखर *भूमंडलीकरण नीति और नियति* में लिखते हैं-

> भूमंडलीकरण की आकमक अपसंस्कृति, सहिष्णु, भारतीय संस्कृति का विकृत कर रही है। भारतीय संस्कृति के सत्य, प्रेम और संतोष जैसे मूल्य आज हाशिए पर हो गए जबकि चारों और असत्य अन्याय एवं उपभोक्तावाद का बोलबाला हो गया है। (353)

यह सत्य है कि हमारे समाज का परिवेश बदल रहा है और विकास की कुछ दिशाएँ स्पष्ट होती जा रही हैं, लेकिन फिर भी हम उन सभी लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल नहीं हो पाए हैं, जो हम चाहते थे।

अत: बदलते परिवेश के कारणों का वर्णन करते हुए हम कह सकते हैं कि यह कहना गलत न होगा कि भारत में सामाजिक बदलाव की प्रकृति ही ऐसी है कि इसमें आधुनिक व परम्परा का परिवेश समन्वय स्पष्ट दिखायी देता है। एक ओर तो हमने उन विश्वासों, प्रथाओं और संस्थाओं की उपेक्षा की है, जिनकी आवश्यकता अनुभव नहीं की गयी, तो दूसरी ओर हमने उन मूल्यों को अपनाया है, जिनको हमने अपने मौलिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक समझा है। बदलते परिवेश में हम अनुभव कर रहें हैं कि ब्रिटिश काल की तुलना में, आज व्यक्तिगत स्वतंत्रता अधिक है, सामाजिक पैमाने में उन्नति के अधिक अवसर प्राप्त हैं, हम प्राचीन परम्परागत सामाजिक प्रथाओं को छोड़ने में तथा नए विचारों को प्राप्त करने के आदी हो गये हैं। सरल शब्दों में कहें तो, हमें पारम्परिक परिवेश को समझने और उसमें समय की आवश्यकता के अनुसार नए तत्त्व जोड़ने की आवश्यकता है। परम्परा को परिवेश से जोड़ने और उसमें नए प्रयोग करना, यही आधुनिकता का मूलाधार है। नये जीवन मूल्यों का अनुकरण करना चाहिए, लेकिन अपने विवेक को नहीं खोना चाहिए।

1.1.5 तुलनात्मक साहित्य का प्रारम्भ, परिभाषा, स्वरूप एवं इसके विविध पक्ष

1.1.5.1 तुलनात्मक साहित्य: विषय प्रवेश

भारत बहुभाषी देश है। गुजराती, मराठी, कन्नड़, मलयालम, तलिम, तेलुगु, उड़िया, बंगला, असमी, कश्मीरी, पंजाबी, सिन्धी, हिन्दी और उर्दू भारतवर्ष की प्रधान आधुनिक भाषाएं हैं। यह सभी भाषाएं ऐतिहासिक रूप से संस्कृत, प्राकृत, पाली और अपभ्रंश भाषाओं से जुड़ी हुई हैं। स्वतंत्रता के बाद इन भाषाओं का विकास बढ़ा और आज प्राय: यह सभी आधुनिक भाषाएं अपने-अपने राज्यों में विकसित हो रही हैं। ये सभी भाषाएं विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बन रही हैं और पहले की अपेक्षा अधिक व्यवहार में हैं। अब इन भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना सुलभ हो गया है। कैलाश नाथ पाण्डेय *हिन्दी आलोचना का पुन: पाठ* में लिखते हैं-

> किसी भी वस्तु के अध्ययन और परिक्षण में तुलनात्मक दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण होता है। बिहारी के काव्य-सौष्ठव के सम्बन्ध में मिश्र बन्धुओं की आलोचना ने कतिपय भ्रान्त धारणाओं को प्रोत्साहित दिया। बिहारी और देव का झगड़ा प्रसिद्ध है। (74)

भारत विभिन्न भाषाओं के साथ-साथ विभिन्न सांस्कृतियों का देश भी है। भारत में अलग-अलग प्रदेश की संस्कृति, वहाँ के भाषिक साहित्य में निहित रहती है। उस संस्कृति को राष्ट्रीय स्तर पर एकता की अनुभूति से भी जोड़ा जा सकता है, जिससे अधिक से अधिक लोग उससे परिचित हों, इसलिए तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। तुलनात्मक साहित्य में विभिन्न भाषाओं में लिखित साहित्य की तुलना की जाती है। तुलनात्मक साहित्य एक सामान्य विषय होने के साथ-साथ जटिलताओं से भी परिपूर्ण है। तुलनात्मक समालोचना तभी श्रेयस्कर सिद्ध हो सकती है, जब उसका आधार वैज्ञानिक हो और समालोचक पक्षपात को छोड़कर समालोचना करें। मूल्याँकनपरक आलोचना की श्रेष्ठता को नापने के लिए तुलनात्मक पद्धति महत्त्वपूर्ण है। शोध के क्षेत्र में भी तुलनात्मक अध्ययन का विशेष महत्त्व है।

तुलनात्मक अनुसंधान मनुष्य के विचारों, भावों और सामाजिक चेतना का दर्शन है, इससे भाषा और साहित्य में गहन सम्बन्ध स्थापित करके, उसका रूप विस्तृत किया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा ऐसी विशेषताओं को उजागर किया जाता है, जो सामान्य अध्ययन से संभव नहीं हो सकती। इसने मानवीय सम्बन्धों के कई आयाम खोले हैं। परिणामत: मनुष्य अपने सीमित दायरे से बाहर वैश्विक स्तर तक अपने विचारों को अभिव्यक्त करने और वैश्विक विचारों से लाभान्वित होने का अवसर प्राप्त कर सका है।

तुलनात्मक अध्ययन से मानव का सीमित ज्ञानक्षेत्र विस्तृत बन जाता है और ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में भाषिक, साहित्यिक या प्रादेशिक बंधनों की बाधा उत्पन्न नहीं होती। साहित्य में अलग-अलग भाषाओं में भावों की अभिव्यक्ति होती है। इसमें मानवीय विचार ही मुख्य होते हैं। तुलनात्मक अनुसंधान में इन्हीं की तुलना की जाती है। तुलनात्मक अनुसंधान की दृष्टि तटस्थ तथा वस्तुनिष्ठ होती है, इसका मुख्य लक्ष्य साहित्य की अलग-अलग कृतियों में समानता या विषमताओं की खोज करना होता है, इसलिए तुलनात्मक अनुसंधान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

1.1.5.2 तुलनात्मक साहित्य का अर्थ और परिभाषाएँ

1.1.5.2.1 **तुलनात्मक साहित्य का अर्थ**

तुलनात्मक साहित्य अपने पारिभाषिक अर्थ में एक नया शब्द है। पश्चिम एवं भारतीय साहित्य शिक्षा जगत में बहुत कुछ वाद-विवाद के बावजूद, यह विषय काफी लोकप्रिय हो गया और अब यह अनिश्चित अथवा अस्पष्ट नहीं रहा। पश्चिम में यूनान के प्राय: सभी प्रसिद्ध आलोचक- अरस्तू, लोंजाइनस आदि, वस्तु-विधान तथा शैली-तत्वों के विषय में सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण करते समय आरम्भ से ही अनेक कवियों एवं नाटककारों की संरचनात्मक अथवा भाषिक प्रयोग-विधियों का तुलनात्मक अध्ययन करते रहें हैं, भ. ह. राजुरकर *तुलनात्मक अध्ययन* में लिखते हैं-

> इसका प्रचलन आगे इतना व्यापक हो गया, कि नाम बदलने के प्रयत्न व्यर्थ प्रतीत हुए और फिर हिन्दी में जब यह कार्य आरम्भ हुआ तो, उसी तरह अंग्रेजी के पद का शाब्दिक अनुवाद कर लिया गया (10)

तुलनात्मक साहित्य में तुलना शब्द, जिसका अर्थ दो वस्तुओं या दो से अधिक वस्तुओं की समानताओं और असमानताओं का अध्ययन करना होता है। तुलनात्मक साहित्य अंग्रेजी के 'Comparative Literature' का शाब्दिक अनुवाद है। डॉ. हरदेव बाहरी अपने *शब्द कोश* में तुलना शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- "तुलना- 1. तोला जाना, मापित होना 2. तौल में समान होना 3. सधकर स्थित होना (जैसे- तुलकर बैठना) 4. सदना 5. सन्नद्ध या उतारू होना।" (367) दो या दो से अधिक वस्तुएँ, किस संदर्भ में एक दूसरे के समान हैं और किस अर्थ में भिन्न है, यही लेखा-जोखा तुलना है।

तुलना के बाद तुलनात्मक शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए डॉ. हरदेव बाहरी अपने *शब्द कोश* में लिखते हैं- "तुलनात्मक- कई वस्तुओं के गुणों की समानता और असमानता दिखाने वाला (जैसे तुलनात्मक अध्ययन) है।" (367)

तुलनात्मक शब्द के प्रयोग के बारे में इन्द्रनाथ चौधरी *तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य* में लिखते हैं-

> तुलनात्मक शब्द में तुलना करने की प्रक्रिया जुड़ी हुई है और तुलना में वस्तुओं को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, जिससे उनमें साम्य या वैषम्य का पता लग सके। (14)

तुलना करना एक तरह से मनुष्य का स्वभाव हो गया है। वह हर वस्तु की खामियों-खूबियों को तुलनात्मक अंदाज में देखता-परखता है। किसी भी वस्तु की गुणवत्ता, उसके विपरीत गुणवत्ता वाली वस्तु के ज्ञान के आधार पर ही तय होती है। तुलनात्मक आलोचनात्मक व्यवहार का आयाम है। चाहे एक भाषा में लिखित साहित्य का अध्ययन हो अथवा एक से अधिक भाषाओं में लिखित तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन हो, दोनों ही स्थितियों में अध्ययन का केन्द्रीय विषय साहित्य ही है। तुलनात्मक साहित्य में विभिन्न भाषाओं में लिखित साहित्य अथवा उनके संक्षिप्त घटकों की साहित्यिक तुलना होती है और यही उसका आधार तत्त्व है। किसी भी लेखक की कृति में निहित विशिष्ट प्रवृत्ति को उभारने के लिए, आलोचक ही किसी

अन्य तुलनीय कृति के साथ उसकी तुलना करता है, लेकिन तुलनात्मक आलोचक के लिए यह काम सचेतन से होता है। वह तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करता हुआ, कृतियों में निहित उनकी विशिष्टताओं को प्रकाश में लाता है। वास्तव में तुलनात्मक आधारभूत पद्धति है। डॉ. गगनदीप कौर ने *बावा बलवंत और नागार्जुन: संदर्भ प्रगतिवाद (तुलनात्मक अध्ययन)* में लिखा है-

> साहित्यकारों, साहित्यिक रचनाओं और अन्य साहित्यिक रूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि उनकी विशिष्टताएँ प्रकाशवान हों, जिससे विभिन्न भाषाओं, देशों, जातियों के सांस्कृतिक सम्पर्क अथवा संघर्ष एवं समन्वय के चित्र उभर कर सामने आते हैं। (42)

1.1.5.2.2 तुलनात्मक साहित्य की परिभाषाएँ

तुलनात्मक साहित्य एक से अधिक भाषाओं में रचित साहित्य है और यह साहित्य अलग-अलग भाषाओं में लिखा जाता है, किन्तु व्यापक परिप्रेक्ष्य में उसमें समानता और विषमता के तत्त्व मिल जाते हैं। तुलनात्मक साहित्य को पाश्चात्य विद्वानों ने 'तुलनात्मक व्युत्पत्ति' का नाम दिया है। जर्मन के आलोचकों के इसे 'साहित्य का तुलनात्मक विज्ञान' नाम दिया है। प्राय: तुलनात्मक साहित्य के बारे में विद्वानों में मतभेद है। हमने कुछ विद्वानों की परिभाषाओं के माध्यम से इसे समझने का प्रयास किया है। तुलनात्मक साहित्य की परिभाषा देते हुए, डॉ. नगेन्द्र *तुलनात्मक साहित्य* में लिखते हैं-

> तुलनात्मक साहित्य एक प्रकार का अंत: साहित्यिक अध्ययन है, जो अनेक भाषाओं के साहित्य को आधार मानकर चलता है और जिसका उद्देश्य होता है, 'अनेकता में एकता का संधान'। (81)

तुलनात्मक साहित्य की परिभाषा देते हुए इन्द्रनाथ चौधरी *तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य* में लिखते हैं- "तुलनात्मक साहित्य विभिन्न साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन है तथा साहित्य के साथ ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों का भी तुलनात्मक अध्ययन है।" (20)

तुलनात्मक साहित्य के विषय में भ. ह. राजूरकर और राजमल बोरा के द्वारा सम्पादित रचना *तुलनात्मक अध्ययन भारतीय भाषाएँ और साहित्य* में डॉ. टी. मोहन सिंह अपने आलेख *हिन्दी-तेलुगु तुलनात्मक अध्ययन: शोध सर्वेक्षण* में लिखते हैं-

> भारतवर्ष सामाजिक संस्कृति का देश है। तुलनात्मक अध्ययन द्वारा अनेक प्रकार की विघटनशील प्रवृत्तियों को दूर कर हमारी मूलभूत एकता की पुन: स्थापना का प्रयास किया जाता है। वर्तमान आशांतिपूर्ण वातावरण में अपरिचय-जनित आशंकाओं का निराकरण एक भारतीय आत्मा को सुप्रतिष्ठित करने का उदात्त कार्य तुलनात्मक अनुसंधान करता है। (134)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि तुलनात्मक अध्ययन भारतीय भाषाओं में लिखित साहित्य में साम्य-वैषम्य का उद्घाटन करता है। भाषा को आधार मानकर किया जाने वाला, यह एक साहित्यिक अध्ययन है। तुलनात्मक अध्ययन भारतीय विभिन्नता में एकता के सूत्र को खोजता है।

1.1.5.3 तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन का इतिहास

वैश्विक ज्ञान एवं विचारों को आदान-प्रदान के लिए तुलनात्मक साहित्य का विकसित होना जरूरी है। भारतीय और पश्चिमी साहित्य समीक्षा जगत में तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन का निरंतर विकास हो रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें, तो विश्व स्तर पर तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन विधि को एक अंतर-अनुशासनीय अध्ययन विधि मानते हुए, इसकी प्रासंगिकता को मानवीय ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में स्वीकृत किया गया है। परिणामत: यूरोप, अमेरिका और रूस के आलावा भी संसार के बहुत सारे देशों के विश्वविद्यालयों में इसके स्वतंत्र विभाग स्थापित हो चुके हैं।

तुलनात्मक साहित्य के कार्य एवं उससे सम्बंधित विचारों का प्रारम्भ इंग्लैंड और यूरोप से माना जाता है। यूरोप में तुलनात्मक अंतर-दृष्टियों का प्रयोग लगभग दो हजार वर्ष से आरम्भ हुआ माना जाता है। इस प्रकार यदि उन्नीसवीं शताब्दी की बात

करें, तो सेंट वब ने इसका प्रयोग किया। हनुमानप्रसाद शुक्ला ने *तुलनात्मक साहित्य-सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य* में लिखा है-

> इंग्लैंड में सेंट वब ने सन 1868 में तुलनात्मक साहित्य शब्द का प्रयोग किया और सन 1886 में प्रो. एच. एम पाँसनेट ने 'Comparative Literature' नामक पुस्तक में तुलनात्मक साहित्य की कार्यपद्धति के उल्लेख के साथ इस विधा-शाखा को प्रस्थापित करने का प्रयास किया था। (23)

इन्द्रनाथ चौधरी ने *तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य* में लिखा है- "तुलनात्मक साहित्य शब्द का प्रयोग सबसे पहले अंग्रेजी के कवि मैथ्यु अर्नाल्ड ने सन 1848 में अपने एक पत्र में किया था।" (10)

भारत में तुलनात्मक साहित्य आलोचना क्षेत्र में विधि-पूर्वक ढंग से तुलनात्मक अध्ययन भले ही अभी प्रारम्भिक प्रयत्न शुरू हुए हों, परन्तु इसका इतिहास बहुत प्राचीन है। सतिन्दर सिंह *तुलनात्मक भारतीय साहित्य* में लिखते हैं-

> आदि ग्रन्थ को पहला भारतीय तुलनात्मक वाणी-संग्रह माना जा सकता है, जो भाषाई और इलाकाई की सरहदों को भी पार करता है और परम्परा की निरंतरता की ओर भी संकेत करता है। (107)

भारत के प्राचीन साहित्य से भी इसकी सूचना मिलती है, जैसे देव-बिहारी की तुलना तो लगभग जनश्रुति की तरह प्रचलित हुई। आनन्दवर्धन और कुंतक ने संस्कृत और प्राकृत के रचनाकारों का गहन तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया। आधुनिक भारत में तुलनात्मक साहित्य की बात करें, तो डॉ. देवराज उपाध्याय ने *साहित्यिक शोध के सिद्धान्त और समस्याएँ* में लिखा है-

> हिन्दी में तुलनात्मक साहित्य पर पहली पुस्तक सन 1982 में मेरे द्वारा लिखित 'तुलनात्मक साहित्य की भूमिका' प्रकाशित हुई थी। वस्तुतः बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में डॉ. नगेन्द्र ने दिल्ली विश्वविद्यालय में एम.ए. हिन्दी के पाठ्यक्रम में 'कम्पोजिट कोर्स' के नाम से एक नया विषय समाविष्ट कर हिन्दी में भारतीय साहित्य के अध्यापन का सूत्रपात किया था। (28)

1.1.5.4 तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन का स्वरूप (पाश्चात्य दृष्टिकोण)

तुलनात्मक साहित्य अंग्रेजी के 'कम्पेरेटिव लिट्रेचर' का ही शाब्दिक अनुवाद है। 'लिट्रेचर' अर्थात् 'साहित्य' की यह देन है। तुलनात्मक साहित्य का क्षेत्र किसी एक देश की राष्ट्रभाषा या प्रादेशिक भाषाओं में निर्मित साहित्य के अध्ययन तक सीमित नहीं है, इसके अध्ययन के अंतर्गत देश की एकाधिक प्रादेशिक भाषाओं और अन्य किसी देश की भाषाओं में निर्मित साहित्य, अन्य ज्ञान क्षेत्र, इतिहास, सामाजिक विज्ञान, कला विज्ञान, दर्शन शास्त्र एवं सांस्कृतिक क्षेत्र आदि का समन्वयात्मक अध्ययन का व्यापक प्रयास है। उन्नीसवीं शताब्दी से इसका अर्थ कलात्मक कृतियाँ हो गयी, जो पहले मौखिक थी और बाद में प्रकाशित होने लगी। फ्रांस में लिट्रेचर (साहित्य का पर्याय) का अर्थ है 'साहित्यिक अध्ययन' हो गया। इसी कारण उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कोई कठिनाई नहीं हुई। जर्मनी में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तुलनात्मक साहित्य के संदर्भ में एक नया नाम प्रस्तुत किया गया, जिसे 'साहित्य का तुलनात्मक विज्ञान' कहा गया।

पश्चात्य साहित्य के अतीत में तुलनात्मक साहित्य की बात करें, तो सन 1558 से इसका प्रयोग अंग्रेजी में हो रहा था। इन्द्रनाथ चौधरी *तुलनात्मक साहित्य की भूमिका* में लिखते हैं-

> इसी समय फ्रांसिस मेयर्स ने इसके अर्थ को ध्यान में रखकर एक पुस्तक लिखी थी, जिसका शीर्षक था, ए कम्पेरेटिव डिसकोर्स ऑफ ओवर इंगलिश पोएट्स विद द ग्रीक लैटिन एंड इंगलिश पोयट्स, परन्तु 'तुलनात्मक' तथा 'साहित्य'- इन दो शब्दों का युग्म प्रयोग करते हुए, पहले-पहल मैथ्यू आर्नल्ड ने जब तुलनात्मक साहित्य पद की सृष्टि पर उनका कहना था कि पिछले 50 वर्षों के तुलनात्मक साहित्य पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यूरोप की तुलना में इंग्लैंड इस मामले में काफी पिछड़ा हुआ है। (02)

तुलनात्मक अध्ययन के कार्यक्षेत्र की व्यापकता को किसी भी तरह की संकुचित सोच में आबद्ध करना अनुचित माना जाएगा, फिर भी इस क्षेत्र में पाश्चात्य साहित्य को तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से इसे तीन क्षेत्रों में विभक्त किया गया है-

1.1.5.4.1 पैरिस-जर्मन स्कूल (तुलनात्मक साहित्य का फ्रांसिसी संप्रदाय)

1.1.5.4.2 अमरीकी स्कूल (तुलनात्मक साहित्य का अमरीकी संप्रदाय)

1.1.5.4.3 रूसी स्कूल (तुलनात्मक साहित्य का रूसी संप्रदाय)

1.1.5.4.1 पैरिस-जर्मन स्कूल (तुलनात्मक साहित्य का फ्रांसिसी संप्रदाय)

तुलनात्मक साहित्य के सम्बन्ध में पैरिस-जर्मन स्कूल के विद्वानों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक है। इनके प्रवर्तक पी.वी. टिहेम और यू. वीसटीन माने जाते हैं। उनके अनुसार तुलनात्मक साहित्य कोई काव्य-शास्त्रीय, सौन्दर्यात्मक कलापरक, अनुशासन नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अध्ययन है। इन्होंने विभिन्न साहित्यों के परस्पर सम्बन्धों, प्रभाव-सूत्रों, आदान-प्रदान, रूपांतरणों के कारणों के अध्ययन पर बल दिया है। इनके आश्रय से साहित्य का कालक्रमिक अध्ययन, जहाँ साहित्यिक विकासवाद, ऐतिहासिक सापेक्षवाद तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों को तुलनात्मक अध्ययन के महत्त्वपूर्ण घटक माने जाते हैं। यह साहित्य तथा ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों के आपसी सम्बन्धों को महत्त्व नहीं देते, इन्होंने तुलनात्मक साहित्य को 'सामान्य साहित्य' से अलग माना है, जहाँ विभिन्न साहित्यों में पाए जाने वाले सामान्य तत्वों का अनुशीलन होता है। पैरिस-जर्मन स्कूल के आचार्यों का मानना है कि तुलनात्मक साहित्य की कसौटी काव्यशास्त्रीय सौंदर्यबोध के अनुशासन से नहीं तय होती, यह ऐतिहासिक अनुशासन से तय होती है।

फ्रांसीसी तुलनात्मक साहित्य पारम्परिक ढ़ंग से प्रांतीय, अन्तर्प्रान्तीय, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय प्रभावों और आधार-सूत्रों की खोज करता हुआ, यह दिखाता है कि कैसे साहित्य के उपादान एक देश से दूसरे देश की यात्रा करते हैं और एक देश के बिम्ब, प्रतीक, कैसे दूसरे साहित्य में अपनी जगह बना लेते हैं। इन आचार्यों ने वास्तविक अर्थों में विभिन्न साहित्यों के आपसी सम्बन्धों, प्रभाव-सूत्रों, आदान-प्रदान, रूपान्तरणों पर गंभीर चिन्तन किया और इसके अनुशीलन का मार्ग प्रशस्त किया है। इस दृष्टि से पैरिस-जर्मन स्कूल के अनुसार तुलनात्मक साहित्य विविध साहित्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का अथवा अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक सम्बन्धों का इतिहास है या

फिर वह साहित्येतिहास की शाखा है। हनुमानप्रसाद शुक्ला ने *तुलनात्मक साहित्य-सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य* में लिखा है-

> पैरिस-जर्मन स्कूल के महत्त्वपूर्ण आचार्य रेने एतियम्बल के परिवर्तित दृष्टिकोण ने इस प्रक्रिया को अधिक सुविधाजनक बनाते हुए, अनछुए क्षेत्रों की ओर आकर्षित किया। इनके यहाँ साम्य-वैषम्य की दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन काफी सफल रहे हैं और इस कारण एतियम्बल, पीश्वाज तथा रूसो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जिन्होंने तुलनात्मक साहित्य के संदर्भ में प्रभावशाली संश्लेषणात्मक अध्ययन का प्रसार किया। पैरिस-जर्मन स्कूल ने साहित्य, ज्ञान एवं अन्य मानवीय विषयों के साथ तुलनात्मक साहित्य को जोड़ने का कोई प्रयास नहीं किया और न ही काव्य-शास्त्रीय के अनुशासन की ओर ध्यान दिया, बल्कि इनका दृष्टिकोण ऐतिहासिक अध्ययन ही ज्यादा रहा। (45)

पैरिस-जर्मन स्कूल के विचारकों ने तुलनात्मक साहित्य में तथ्यात्मक बातें एवं घटनाओं के विश्लेषण से ज्यादा बल तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के अंतर्गत शास्त्रीय अध्ययन पर किया है। उनका दृष्टिकोण सिर्फ साहित्यिक इतिहास के उल्लेख तक सीमित रहा। इस प्रकार परंपरावादी फ्रांसीसी विचारकों के दृष्टिकोण में तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा कम और विषय संग्रह सूची का प्रमाण ज्यादा मालूम होता है। इन्द्रनाथ चौधरी *तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य* में लिखते हैं- "यूरोपीय साहित्य के विस्तृत संश्लेषण का उन्होंने विरोध किया और अनुरूपता या वैषम्य के आधार पर मात्र तुलना की अपेक्षा की।" (17)

पैरिस-जर्मन स्कूल के संश्लेषणात्मक दृष्टिकोण रखने वाले एतियमब्ल, पीश्वाज और रूसो जैसे विचारकों ने तुलनात्मक साहित्य अध्ययन के क्षेत्र में साम्य वैषम्यमूलक तुलना को स्वीकार करते हुए, व्यापक दृष्टिकोण स्थापित किया है। उनके मतानुसार तुलनात्मक साहित्य काव्यशास्त्रीय सौंदर्यपरकता के अभाव में, सिर्फ ऐतिहासिक संकलनात्मक अध्ययन तक ही सीमित रह जाता है। इस सम्बन्ध में पैरिस जर्मन स्कूल के फ्रांसीसी विद्वान तथ्यात्मक प्रमाणों के विश्लेषण के आग्रही हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के पहले चरण में जर्मनी में गोएथे ने इस विचार का सूत्रपात प्रस्तुत किया था। पैरिस विश्वविद्यालय से फ्रांसीसी भाषा में इसकी पहली पत्रिका 'रिव्यू द लितरेव्यूर कंपनी' प्रकाशित हुई। इस पत्रिका की भूमिका में लिखा था कि तुलनात्मक साहित्य साहित्येतिहास का ही एक अंश है। यह अंतर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक सम्बन्धों का

अध्ययन है तथा विभिन्न भाषाओं के लेखों, जीवनियों, प्रेरणाओं एवं कृतियों की तथ्यानुपरक उपलब्धियों की छानबीन है। जहाँ पहली पीढ़ी के आलोचक पीश्वाज ने तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में साम्य या वैषम्यमूलक दृष्टि को स्वीकार किया। इन्द्रनाथ चौधरी *तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य* में लिखते हैं-

> पैरिस-जर्मन स्कूल ने वस्तुतः विभिन्न साहित्यों के आपसी सम्बन्धों, प्रभाव-सूत्रों, आदान-प्रदान, रूपांतरणों का कारण सम्बंधी अध्ययन किया है और इस दृष्टि से पैरिस-जर्मन स्कूल के अनुसार तुलनात्मक साहित्य विविध साहित्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है। (22)

पैरिस-जर्मन स्कूल तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि पैरिस-जर्मन स्कूल की तुलनात्मक दृष्टि को भी प्रस्तुत शोध में अपनाया गया है, जिसमें प्रमुख है-

1. इस सम्प्रदाय का मानना है कि तुलनात्मक साहित्य कोई काव्य-शास्त्रीय, सौंदर्यात्मक कलापरक, अनुशासन नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अध्ययन है। उसी प्रकार, प्रस्तुत शोध में नाट्य-साहित्य के माध्यम से समकालीन परिवेश की तुलना अतीत के परिवेश के साथ करते हुए, बदलते परिवेश को प्रस्तुत किया गया है।

2. इस सम्प्रदाय ने वास्तविक अर्थों में विभिन्न साहित्यों के आपसी सम्बन्धों, प्रभाव-सूत्रों, आदान-प्रदान, रूपान्तरणों पर गंभीर चिन्तन करने को कहा है और साथ ही इसके गंभीर अभ्यास की प्रशंसा भी की है, प्रस्तुत शोध में भी ऐसा करने का प्रयास किया गया है।

3. पैरिस-जर्मन स्कूल का मानना है कि तुलनात्मक आध्यात्मिक सम्बन्धों का अध्ययन है तथा विभिन्न भाषाओं के लेखों, जीवनियों, प्रेरणाओं एवं कृतियों की तथ्यानुपरक उपलब्धियों की छानबीन है, प्रस्तुत शोध में भी शोधार्थी दो भाषाओं के नाट्य-साहित्य का चुनाव कर, उसका गहराई से अध्ययन कर उद्देश्यों की प्राप्ति करने का प्रयास किया है।

1.1.5.4.2 अमरीकी स्कूल (तुलनात्मक साहित्य का अमरीकी संप्रदाय)

बीसवीं शताब्दी में अमेरिकी विश्वविद्यालयों में सर्वप्रथम अध्ययन-अध्यापन के रूप में तुलनात्मक साहित्य का प्रवेश हुआ, जहाँ काव्यशास्त्रीय सौंदर्यात्मक कलापरक तथा विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि को महत्त्व दिया जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो, यह स्कूल 'साहित्य-इतिहास' की सामान्य संरचना के अंतर्गत, तुलनात्मक साहित्य के स्थान को निर्धारित करता हुआ, एक तरफ ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों से साहित्य के सम्बन्धों का अध्ययन करता है, साथ ही साहित्य आलोचना को तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकृति देते हुए सदृश्यता, शैली-पक्ष, विधा, साहित्यिक लहरों और परम्पराओं की तुलनात्मक जांच-परख द्वारा साहित्यिक कृतियों के कलात्मक स्वरूप को प्रस्तुत करता है। सतिन्द्र सिंह *तुलनात्मक भारतीय साहित्य* में लिखते हैं-

> अमरीकी स्कूल साहित्यिक कृतियों में सदृश्यता, रूढ़ियों, शैली-विज्ञान, रूपाकार, धाराओं और परम्पराओं के तुलनात्मक अनुसंधान की ओर रुचि रखते हुए, उनकी कलात्मक प्रकृति को स्पष्ट करता है। (64-65)

स्वतंत्र-विभाग के रूप में तुलनात्मक साहित्य का प्रारम्भ सबसे पहले कारनेल विश्वविद्यालय में हुआ। अमेरिका के हार्वर्ड, थेल, प्रिंसटन, शिकागो और फिलाडेल्फिया आदि विश्वविद्यालयों ने, इसमें बड़ी तत्परता दिखायी। इंग्लैड के ड्राइडन और डॉ. जानसन ने भी बहुभाषीय तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किए हैं। अमरीकी स्कूलों के विद्वानों ने साहित्येतिहास की सामान्य संरचना के अंतर्गत तुलनात्मक साहित्य का स्थान निरुपित करते हुए, ज्ञान के विविध क्षेत्रों के बीच साहित्य को महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में माना है, इसके साथ ही साहित्यालोचन को भी साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में माना है। हनुमानप्रसाद शुक्ला *तुलनात्मक साहित्य- सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य* में लिखते हैं- "फ्रांसीसी सम्प्रदाय के विपरीत अमरीकी स्कूल के आचार्यों ने काव्य-शास्त्रीय पर अधिक बल देते हुए, मानवीय समस्याओं से सम्बंधित विषयों को प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी।" (47)

तुलनात्मक साहित्य में अमरीकी संप्रदाय में रेने वेलेक, हैरी लेविन, डैविड मेलोन आदि विचारकों ने तुलनात्मक अध्ययन को साहित्य अध्ययन के लिए

आवश्यक बताया है। अमरीकी तुलनात्मक विचारकों के लिए फ्रांसीसी संप्रदाय का तुलनात्मक अध्ययन इतिहासमूलक अध्ययन है, जो संकुचित दृष्टिकोण माना जा रहा है। उन विचारकों का मानना है कि तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत ज्ञान एवं मानवीय विषयों का विश्लेषण भी आवश्यक रहता है। इस संप्रदाय के तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के केंद्र में काव्यशास्त्रीय कलापरक दृष्टि एवं ज्ञान के अन्य विषयों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। इन्द्रनाथ चौधरी *तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य* में लिखते हैं-

> साहित्य की तुलना ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों के साथ संभव है और इसलिए वह तुलनात्मक साहित्य का विषय भी है, मगर ज्ञान इन क्षेत्रों के सुसंगत पर ही और साहित्य से भिन्न एवं स्वतंत्र तथा निश्चित अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित करने पर ही इस प्रकार का अध्ययन संभव हो पाता है। (45)

अमरीकी स्कूल के तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि अमरीकी स्कूल की तुलनात्मक दृष्टि को भी प्रस्तुत शोध में अपनाया गया है, जिसमें प्रमुख है-

1. अमरीकी स्कूल के अनुसार तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत ज्ञान एवं मानवीय विषयों का ही विश्लेषण होना चाहिए। प्रस्तुत शोध में भी मानवीय विषयों से सम्बंधित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

2. इस संप्रदाय का मानना है कि तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के केंद्र में काव्यशास्त्रीय कलापरक दृष्टि एवं ज्ञान के अन्य विषयों को विशेष महत्ता दी जाए। प्रस्तुत शोध में नाट्य विधा का चुनाव कर, उसमें मानवीय समस्या और ज्ञान से जुड़े नाटकों के अध्ययन को ही महत्ता दी गयी है।

3. अमरीकी स्कूल के अनुसार साहित्यिक कृतियों में सदृश्यता, रूढ़ियों, शैली-विज्ञान, रूपाकार और परम्पराओं के तुलनात्मक अनुसंधान की ओर ही रुचि रखते हैं। प्रस्तुत शोध में भी हिन्दी और पंजाबी नाटकों में ऐसी धाराओं की तुलना की गयी है।

1.1.5.4.3 रूसी स्कूल (तुलनात्मक साहित्य का रूसी संप्रदाय)

तुलनात्मक साहित्य के पाश्चात्य अध्ययन को ध्यान में रखते हुए, यदि रूसी स्कूल की बात की जाए, तो इसकी भी विशेष महत्ता है। रूसी स्कूल की समाजशास्त्रीय सांस्कृतिकपरकता की यथार्थवादी दृष्टि है, जहाँ विभिन्न सामाजिक जीवन में घटित होने वाले समस्तरीय ऐतिहासिक परिवर्तनों को उनके आपसी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परस्पर-क्रिया के आश्रय से तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन किया जाता है। हनुमानप्रसाद शुक्ला *तुलनात्मक साहित्य- सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य* में लिखते हैं- "रूसी सम्प्रदाय के अंतर्गत साहित्यिक विधाओं और अलग-अलग देशों के जनसमुदाय के विकास को प्रस्तुत किया गया।" (48)

रूसी स्कूल चिंतकों की दृष्टि से साहित्य, समाजशास्त्रीय यथार्थवादी अध्ययन है और वह साहित्य को एक सामाजिक उत्पत्ति मानते हैं। इस स्कूल के अनुसार हर देश के वर्ग-सम्बन्धों की बनावट, राजनीतिक और विचारात्मक संघर्ष के ज्ञान के अभाव में अलग-अलग साहित्यों के आपसी सम्बन्धों के वास्तविक रूप को पहचानना असंभव है। इस संप्रदाय का अधिकार क्षेत्र बहुत ही विस्तृत और अध्ययन सार्थक परिणामों के अनुसंधान की ओर रहा है। भ. ह. राजुरकर *तुलनात्मक अध्ययन: स्वरूप और समस्याएँ* में लिखते हैं-

> रूसी स्कूल के विद्वानों के लिए तुलनात्मक साहित्य एक ऐसा अध्ययन है, जो विभिन्न देशों के सामाजिक जीवन के ऐतिहासिक विकास पर निर्भर करता है। तुलनात्मक अध्ययन के अंतर्गत साहित्यिक विधाओं, आन्दोलनों तथा साहित्यिक संवृति का अध्ययन होता है। (78)

रूसी स्कूल के तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि रूसी स्कूल की तुलनात्मक दृष्टि को भी प्रस्तुत शोध में अपनाया गया है, जिसमें प्रमुख है-

1. रूसी स्कूल का मानना है कि समाजशास्त्रीय और सांस्कृतिक परम्परा की यथार्थवादी दृष्टि को ही प्रस्तुत किया जाए, वैसे ही प्रस्तुत शोध में भी कुछ सामाजिक समस्याओं से सम्बंधित नाटकों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। जिसमें परम्परा और आधुनिकता की बात की गयी है।

2. इस सम्प्रदाय ने सामाजिक जीवन में घटित होने वाले परिवर्तनों को भी प्रस्तुत किया गया है, प्रस्तुत शोध का विषय ही बदलते परिवेश पर आधारित है, इसलिए इसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन को नाट्य-साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष रूप में कहें तो, तुलनात्मक साहित्य के इन सम्प्रदायों ने तुलनात्मक साहित्य के स्वरूप को व्याख्यायित करते हुए, उसकी विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख किया है। इन सम्प्रदायों के विद्वान इस बात के लिए सकारात्मक हैं कि तुलनात्मक साहित्य, साहित्यिक समस्याओं का अध्ययन है। दूसरे शब्दों में कहें तो, यह तीनों दृष्टियाँ एक-दूसरे की पूरक हैं तथा सुव्यस्थित रूप से परस्पर सम्बन्ध होकर साहित्येतिहास का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद तथा तुलनात्मक आलोचना, इन दो मूलभूत नियमों की ओर संकेत करती है। इन मूलभूत नियमों के आश्रय से एक सुव्यवस्थित कार्य-प्रविधि की सृष्टि होती है, बहुत सारे आपसी विरोधों के बावजूद इन तीनों सम्प्रदायों की बात में समन्वय है कि तुलनात्मक साहित्य एक से अधिक साहित्यों की साहित्यिक समस्याओं का अध्ययन है।

1.1.5.5 तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन का स्वरूप (भारतीय दृष्टिकोण)

भारतीय परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक साहित्य का विस्तार उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। इस शताब्दी में ही भारत में अंग्रेजी शिक्षा अमल में लाई गयी। जिससे तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में रुचि बढ़ी और साथ-ही-साथ इस अध्ययन के लिए प्रेरणा मिली। भारतीय इतिहास में इससे पूर्व तुलनात्मक साहित्य अध्ययन की कोई विशेष परम्परा न थी। जैसा कि भारत में तुलनात्मक साहित्य का प्रसार भारतीय विद्वानों के स्थान पर यूरोपीय विद्वानों ने शुरू किया, किन्तु तुलनात्मक दृष्टि का वास्तविक प्रसार अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क में आने से ही संभव हुआ। भारत के संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य एक विकासशील शाखा है। यहाँ, यह नयी संकल्पना लेखक, पाठक और आलोचक की दृष्टि से अलग-अलग हो सकती है। हर लेखक अपनी कृति को स्वतंत्र और अपूर्व मानता है। किन्तु आज की प्रचलित धारणा यह है कि तुलना के लिए दो विभिन्न भाषाओं की सामग्री को ही आधार बनाया है। वैसे भारत में

तुलनात्मक अध्ययन पहले भी होता था। डॉ. चैतन्य जसवंतराय अपनी संपादित रचना *तुलनात्मक साहित्य: भारतीय संदर्भ* में लिखते हैं-

> 19वीं शताब्दी तक तुलनात्मक साहित्य की प्रवृत्ति को बल मिलने लगा था। माइकेल मधुसूदन दत्त ने बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, होमर, वर्जिल, दांते, टेसो, मिल्टन..... जैसे साहित्यकारों को एक-दूसरे के समानान्तर रख कर देखा है, अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि यूरोपीय नाटक यथार्थ, उदात्त आवेग तथा वीरता को लेकर चलते हैं तो भारतीय नाटक प्रेम और कोमलता लिए हुए हैं .....। यह अपने ढंग का पहला भारतीय तुलनात्मक प्रयास था। (64)

जहाँ तक भारतीय तुलनात्मक साहित्य का प्रश्न है, इसका विकास 17वीं-18वीं शताब्दी में नजर आने लगा था। मैक्स मूलर और विलियम जोन्स जैसे विद्वानों ने भारतीय साहित्य का अनुवाद पाश्चात्य साहित्य में किया, जिससे भारतीय तुलनात्मक साहित्य की प्रवृत्ति को बल मिला, बाद में रविन्द्रनाथ टैगोर और बंकिमचन्द्र चटर्जी ने तुलनात्मक अध्ययन में अपनी अहम भूमिका प्रस्तुत की, भारतीय साहित्य के अतीत में तुलनात्मक साहित्य की बात करें, तो उस समय के साहित्यकार भी इससे भली-भाँति परिचित थे। डॉ. देवराज उपाध्याय *साहित्य शोध के सिद्धान्त और समस्याएँ* में लिखते हैं-

> संस्कृत में कालीदास और आचार्य दंडी की तुलना। हिन्दी में सूर, तुलसी, देव और बिहारी की जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध है। आचार्य आनंदवर्द्धन और आचार्य कुंतक ने भी संस्कृत और प्राकृत कवि एवं नाटककारों का सूक्ष्म गहन तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। (149)

तुलनात्मक अध्ययन को ऐतिहासिक दृष्टि से देखें, तो भारत में भारतीय साहित्यकारों या विद्वानों से पहले भारतीय विधाओं में रुचि रखने वाले यूरोपीय विद्वानों ने भारतीय तुलनात्मक साहित्य की नींव रखी थी। चार्ल्स विकलिंस के द्वारा 1785 में अनुदित 'भगवद्गीता' की भूमिका में लिखते हुए भारत के प्रथम गर्वनर-जनरल वारेन हेस्टिंग ने 'गीता' के धर्मत्व की ईसाई मुक्ति भावना से तुलना की थी और साहित्यिक मूल्याँकन की दृष्टि से गीता के परस्पर इलियड और ओडेसी का उल्लेख किया था। इस प्रकार यूरोपीय विद्वानों की प्रारंभिक चेष्टाएँ तुलनात्मक भारतीय साहित्य के स्थान पर तुलनात्मक व्याकरण धर्म तथा दर्शन के अध्ययन से

जुड़ी हुई थी, फिर भी साहित्येतिहास के क्षेत्र में भारतीय साहित्य को एक इकाई के रूप में स्वीकार न करने के बावजूद भारत की विभिन्न भाषाओं के स्वतंत्र इतिहास का अध्ययन करते हुए, इन यूरोपीय विद्वानों ने आवश्यकता के अनुसार यूनानी, लातिनी तथा यूरोपीय साहित्य के साथ, इनकी तुलना की और अध्ययन के परिप्रेक्ष्य को एक सीमा तक विस्तृत किया गया। इसके विषय में डॉ. आनंद पाटिल *हिन्दी साहित्य सरोकार और साक्षात्कार* में लिखते हैं- "चार्ल्स विलकिस द्वारा निव्कोब, सर विलियम जोन्स, मैक्स मूलर, गार्सा द तासी, गेटे आदि जैसे विद्वान विदेशी होकर भी भारतीय साहित्य और संस्कृति का अध्ययन करने लगे।" (81)

भारत में सन 1873 में बंकिमचन्द्र चटर्जी ने शेक्सपियर और कालीदास की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया, इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिस समय यूरोप में तुलनात्मक साहित्य का प्रसार हो रहा था, उस समय बंकिमचन्द्र जैसे साहित्यकार भारत में यूरोपीय साहित्य को अपने साथ मिला रहे थे। बंकिमचन्द्र चटर्जी ने अपने निबन्धों में चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'कुमारसंभव' तथा 'पैराडाइजलास्ट' का विवेचन किया अथवा भक्ति एवं श्रृंगारिकता के आश्रय से विद्यापति और जयदेव की तुलना की, तब उन्होंने विभिन्न साहित्यिक दुनिया को खंडित न मानकर एक ईकाई के रूप में स्वीकार किया और इस तरह से एक ऐसी चेतना का प्रसार हुआ, जिसके फलस्वरूप आगे चलकर भारतीय साहित्य में व्यावहारिक अनुशासन के रूप में तुलनात्मक साहित्य का प्रसार हो सका।

भारत अनेक भाषा, पंथ और संप्रदायों का देश है। भारतीय भाषा का संकलित साहित्य सम्पूर्ण यूरोपीयन से कम नहीं है। इन सभी साहित्यों में अपनी प्रतिभा कलात्मकता भाषा सौंदर्य एवं अपनी-अपनी विशिष्ट विभूतियाँ हैं। सांस्कृतिक एकता को मजबूत बनाने में भी तुलनात्मक अध्ययन प्रमुख भूमिका निभा सकता है। हमारे देश के एकाधिक भाषाओं में साहित्य लिखते हैं, इन सभी रचनाओं में भारत की गरिमा और महिमा दिखायी पड़ती है। तुलनात्मक साहित्य हमारी दृष्टि को विशाल बना सकता है।

तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में यदि भारतीय आलोचकों के दृष्टिकोण देखें, तो इन्द्रनाथ चौधरी *तुलनात्मक साहित्य- भारतीय परिप्रेक्ष्य* में लिखते हैं-

> तुलनात्मक साहित्य राष्ट्रीय साहित्य के इतिहासों के झूठे अलगाव के खिलाफ लड़ता है, वस्तुतः तुलनात्मक साहित्य एक ओर जहाँ एकक साहित्याध्ययन को एक ऐसी पद्धति प्रदान करता है, जिससे परिप्रेक्ष्य का विस्तार हो सके, वहाँ दूसरी ओर राष्ट्रीय परिधि की संकीर्णता को तोड़ता हुआ, विभिन्न राष्ट्रीय संस्कृतियों में प्रभावित प्रवृत्तियों और आंदोलनों की खोज करता है एवं मनुष्य की दूसरी ज्ञानात्मक क्रियाओं के साथ साहित्य के सम्बन्धों को तोलता है। (24)

हनुमानप्रसाद शुक्ला *तुलनात्मक साहित्य- सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य* में लिखते हैं- "तुलनात्मक साहित्य की एक और हिमाकत रही कि उसने अपने क्षेत्र में सर्वसत्तावादी विचारधाराओं और अंधराष्ट्रवाद या अंधपरंपरावाद की भी पोल खोल दी।" (66)

डॉ. कृष्णा शर्मा और डॉ. जाहिदुल दीवान के द्वारा संपादित रचना *अनुवाद और तुलनात्मक अध्ययन: एक भारतीय दृष्टि* में डॉ. हिमांशी श्रीवास्तव ने अपने आलेख *साहित्यिक अनुवाद और तुलनात्मक अध्ययन: एक विश्लेषण* में तुलनात्मक अध्ययन के विषय में लिखा है-

> वर्तमान वैश्वीकरण के युग में तुलनात्मक की भूमिका अनिवार्य रूप से विकसित हुई है। अनुवाद सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक साहित्यानुभूति, विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान, उद्योग, व्यापार, पर्यटन तथा बौद्धिक विमर्श आदि के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। (52-59)

डॉ. चैतन्य जसवंतराय अपनी संपादित रचना *तुलनात्मक साहित्य: भारतीय संदर्भ* में लिखते हैं-

> बहु-संस्कृतिवाद तथा सांस्कृतिक अध्ययन के लिए विभिन्न भाषाओं के साहित्य के अनुवाद की आवश्यकता है और उच्च शिक्षा में इन अनुवादों के प्रयोग के तुलनात्मक साहित्य का ज्ञान नितांत जरूरी है। विशेष रूप से भूमंडलीकरण के इस युग में विभिन्न भाषाओं और संस्कृति में विनियोजन, समांगीकरण और सहयोजन के चलते यह और भी अधिक आवश्यक हो गया है कि अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी साहित्य वर्चस्व को तोड़कर अर्थात् भूमंडलीय एक प्रस्तरीय दृष्टि को नकारकर एक नए तुलनात्मक साहित्य की रचना की जाए। (107)

भ. ह. राजुरकर और राजमल बोरा की रचना *तुलनात्मक अध्ययन भारतीय भाषाएँ और साहित्य* में लिखा है-

> भारतीय भाषाएं और भारतीय साहित्य की समस्याओं का स्वरूप 'तुलनात्मक अध्ययन' से स्पष्ट होता है, इससे हम भाषाओं का अंतरंग ठीक से जान सकते हैं। किसी भी भाषा का सम्मान करने का अर्थ होता है उस भाषा को बोलने वाले समुदाय का सम्मान। हिन्दी भाषा का सम्पर्क यदि भारतवर्ष की अन्य भाषाओं से निरंतर बढ़ता रहेगा, तो निश्चित ही हिन्दी के माध्यम से राष्ट्र की भावनाओं की अभिव्यक्ति में सहायता मिलेगी। तुलनात्मक अध्ययन का यह महत्त्वपूर्ण कार्य है। (11)

डॉ. रविन्द्र कुमार जैन ने *तुलनात्मक अनुसंधान एवं उसकी समस्याएं* में लिखा है- "विभिन्न साहित्यों के विविध रूपों में व्यक्त मानव चेतना की अखण्डता, विराटता एवं जिजीविषा को तुलनात्मक अध्ययन द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।" (34)

डॉ. रामछबीला त्रिपाठी ने *हिन्दी और भारतीय भाषा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन* में लिखा है-

> जनजीवन, प्रशासन एवं उच्च कक्षाओं में इन भारतीय भाषाओं के प्रचलन के कारण, अब यह आवश्यक हो गया है कि हिन्दी तथा हिन्दीतर भारतीय भाषा साहित्यों की समान प्रवृत्तियों का विवेचन विश्वलेषण हो, जिससे एक-दूसरे को समझने में साथ-साथ गुणों एवं अवगुणों के ग्रहण और त्याग की प्रक्रिया प्रारम्भ हो। आज का युग अपने में ही सीमित रहने का नहीं है। अपने घेरे से बाहर निकलकर पड़ोसियों और साथियों को समझने में भारतीय भाषा साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। राष्ट्रभाषा हिन्दी की समृद्धि एवं गौरव के लिए तो यह आवश्यक है कि भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य का ज्ञान उसमें समाविष्ट हो, अलग-अलग भाषाओं के लिए भी यह गौरव का विषय है कि उनके साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में आंककर उनका मूल्याँकन किया जाये। (02)

उपर्युक्त भारतीय आलोचकों के दृष्टिकोण के प्रस्तुतीकरण के बाद, हम कह सकते हैं कि भारत सामाजिक संस्कृति का देश है। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा अनेक प्रकार की विघटनशील प्रवृत्तियों को दूर कर, हमारी मूलभूत एकता की पुन: स्थापना का प्रयास हो सकता है। समस्त क्षेत्रीय भाषाएं भारतीय जनजीवन के विभिन्न रूपों एवं गुणों का प्रतिनिधित्व करती हैं, अत उन भाषाओं के साहित्यों के साथ हिन्दी

भाषा एवं साहित्य के विभिन्न पक्षों की तुलना भारतीय साहित्य की परिकल्पना का प्रथम सोपान है। अत: कहा जा सकता है कि हिन्दी और पंजाबी के नाटकों के क्षेत्र में हो रहा तुलनात्मक अध्ययन, इसी भावना का प्रतीक है। प्रस्तुत शोध में तुलनात्मक अध्ययन के समय भारतीय आलोचकों के दृष्टिकोण को प्रमुख रूप से अपनाया गया है, निसंदेह पाश्चात्य दृष्टिकोण को भी अपनाया है, लेकिन प्रधानता भारतीय दृष्टिकोण की रही है। उदाहरणस्वरूप-

1. जैसे भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भारतीय जनमानस को अधिकाधिक समझा जा सकता है तथा समृद्ध किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध में हिन्दी और पंजाबी नाटकों के माध्यम से यही प्रयास किया गया है।

2. जैसे डॉ. नगेन्द्र का मानना है कि तुलनात्मक अध्ययन अनेकता में एकता का संधान है। प्रस्तुत शोध में भी हिन्दी और पंजाबी के नाटकों का गहराई से अध्ययन कर समानता को प्रकट किया गया है।

3. जैसे भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा नवीन संदर्भ के साथ भाषा एवं साहित्य का सम्बन्ध गहन होता है। प्रस्तुत शोध में भी नवीन संदर्भ को ही अपनाया गया है।

4. जैसे डॉ. रामछबीला त्रिपाठी का मानना है कि तुलनात्मक अध्ययन के हिन्दी तथा हिन्दीतर भारतीय भाषा साहित्यों की समान प्रवृत्तियों का विवेचन हो, प्रस्तुत शोध में भी हिन्दी भाषा के नाटकों के साथ क्षेत्रीय भाषा पंजाबी के नाटकों की तुलना की गयी है।

5. जैसे इन्द्रनाथ चौधरी का मानना है कि तुलनात्मक अध्ययन राष्ट्रीय परिधि की संकीर्णता को तोड़ता हुआ, विभिन्न राष्ट्रीय संस्कृतियों में प्रभावित प्रवृत्तियों की खोज करता है, प्रस्तुत शोध में भी यह प्रयास किया गया है।

6. जैसे डॉ. चैतन्य जसवंतराय का मानना है कि बहुसंस्कृतिवाद तथा सांस्कृतिक अध्ययन के लिए तुलनात्मक की आवश्यकता है, प्रस्तुत शोध में भी यही प्रयास किया गया है।

7. जैसे डॉ. रविन्द्र कुमार जैन का मानना है कि तुलनात्मक अनुसंधान विभिन्न साहित्यों के विविध रूपों में व्यक्त मानव चेतना को प्रस्तुत करता है, प्रस्तुत शोध में

भी हिन्दी और पंजाबी नाटकों के पात्रों के माध्यम से उनकी चेतना को प्रस्तुत किया गया है।

8. जैसे डॉ. हिमांशी श्रीवास्तव का मानना है कि वर्तमान वैश्वीकरण के युग में तुलनात्मक अध्ययन की भूमिका सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक साहित्यानुभूति के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, प्रस्तुत शोध में भी इन तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है।

1.1.5.6 तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद का सम्बन्ध

आज सम्पूर्ण विश्व साहित्य का अध्ययन करें, तो हम देखते हैं कि तुलनात्मक के साथ-साथ अनुवाद का महत्त्व भी बहुत बढ़ रहा है। 'अनुवाद' संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका शब्दार्थ 'पुन: कथन' होता है। इसका सम्बन्ध स्रोतभाषा के संदेश का पहले अर्थ पर आधारित और बाद में शैली आधारित लक्ष्यभाषा के निकटतम स्वाभाविक एवं समानार्थ उपादान प्रस्तुत करने से होता है। आज अनुवाद सिर्फ सारलेखन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह अभिज्ञान और रसास्वादन भी होता जा रहा है। आज विश्व की सभी भाषाओं का अनुवाद कार्य आसान और सरल होता जा रहा है, लेकिन भौगोलिक परिवेशगत और भाषाकीय अंतर के कारण यह जटिल भी होता जा रहा है। भोलानाथ तिवारी ने *भाषाविज्ञान* में लिखा है-

> एक भाषा भाषीय जब दूसरी भाषा सिखता है तो, दोनों भाषाओं की समस्याएँ भाषा सीखने वाले के लिए समस्या या कठिनाई नहीं उत्पन्न करती, दोनों में अंतर ही कठिनाई उत्पन्न करती है।.... ऐसे ही अनुवाद में भी दो भाषाओं के अंतर की कठिनाई उत्पन्न करते हैं, समानताएँ नहीं। (20)

इस प्रकार अनुवाद महत्त्वपूर्ण माना जाता है, लेकिन भाषा के ज्ञान के अभाव में कुछ समस्याएँ आती हैं। ऐसे ही कई बार अलग भाषा, भाषाकीय संरचना की भिन्नता, अलग संस्कृति, अलग परिवेश आदि भिन्नता के कारण ही मूल रचना का अनुवाद सही नहीं होता; उदाहरण के रूप में हम देखें तो, हिन्दी भाषा का ज्ञान रखने वालों के लिए पंजाबी, गुजराती, मराठी और बांग्ला जैसी आर्यभाषाओं में परस्पर अनुवाद आसान होगा, इसके विपरीत गैर-आर्यभाषाओं जैसे द्रविड़, तेगलू, मलयालम, कन्नड़ और तमिल भाषा में अनुवाद कठिन होगा।

1.1.5.7 आधुनिक युग में तुलनात्मक साहित्य की आवश्यकता

किसी विषय के प्रति, स्पष्ट ज्ञान की वृद्धि में तुलनात्मक अध्ययन का बड़ा योगदान होता है। प्राप्त ज्ञान की स्पष्टता एवं स्थिरता भी तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ही प्राप्त की जाती है। यदि गहराई से देखा जाए तो, मनुष्य का ज्ञान, विज्ञान और बड़े-बड़े निर्णय लेने वाली वृद्धि का विकास भी तुलनात्मक प्रक्रिया पर निर्भर करता है। मनुष्य जो ज्ञान प्राप्त करता है, उसकी प्रकृति के अनुरूप उन तथ्यों की सीमा निर्धारित कर लेता है। जब हम यह कहते हैं कि यह व्यक्ति बहुत अच्छा है, तो इसका अर्थ यही होता है कि जितने व्यक्तियों को हम जानते हैं, उनमें वह बहुत अच्छा है। हमारा निर्णय उसी सीमा के अंदर होता है, जिन परिस्थितियों में हम जीते हैं, मनोविज्ञान के अनुसार यदि हमारे पास तुलनात्मक दृष्टि न हो, तो हमारी निर्णयात्मक बुद्धि का आधार भी बहुत छोटा हो जाता है। ऐसे ही किसी विषय के प्रति अस्पष्टता हो, तो उसे अच्छी तरह समझने और समझाने के लिए, उससे सम्बंधित किसी दूसरे विषय से तुलना की जाए, तो वह विषय स्पष्ट समझ आ जाएगा।

तुलनात्मक साहित्य, साहित्यिक अध्ययन की ऐसी शाखा है, जो प्रत्येक देश-काल की साहित्यिक अभिव्यक्ति की मूलभूत संरचना से सम्बंधित है। तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा को समझने के लिए भारतीय साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट करना आवश्यक है। पश्चिमी देशों, जैसे यूरोप में एक भाषा, एक जाति, एक राष्ट्र जैसी अवधारणा है, किन्तु भारत एक बहु-भाषिक, बहु-जातीय, बहु-सांस्कृतिक देश है, जिसमें अनेकता में एकता एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इस अवधारणा के बावजूद भारत में तुलनात्मक अध्ययन की सार्थकता और भी अधिक हो जाती है। भारतीय साहित्य अपनी अनेकता या विवधता को साथ लेकर चलता है, यही विश्व को भारत की देन है। डॉ. कृष्णा शर्मा और डॉ. जाहिदुल दीवान के द्वारा संपादित रचना *अनुवाद और तुलनात्मक: एक भारतीय दृष्टि* में रेखा सेठी अपने आलेख *भारतीय भाषा और साहित्य में अनुवाद एवं तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता* में लिखती है-

> आज का समय तुलनात्मक की महत्ता का समय है। यह समय भारतीय भाषाओं के विस्तार का समय है। अपने साहित्य, संस्कृति और भाषा के प्रति सजगता का

समय है, क्योंकि इसके माध्यम से ही भाषाओं के बीच संवाद, समन्वय और जुगलबंदी का रागात्मक सम्बन्ध बनता है। (35)

तुलनात्मक साहित्य अध्ययन क्षेत्र में पैरिस-जर्मन स्कूल, अमरीकी स्कूल, रूसी स्कूल; कलकत्ता स्थित जादवपुर यूनिवर्सिटी के तुलनात्मक साहित्य के विभाग के योगदान से, तुलनात्मक साहित्य की संकल्पना विकसित एवं स्पष्ट हुई है। तुलनात्मक साहित्य स्थान, काल, भाषा, रचना आदि सीमाओं का अतिक्रमण कर सिर्फ साहित्य विकास को देखता है। भारत जैसे बहुभाषीय देश की संस्कृति, सामाजिक चेतना, साहित्यिक समृद्धि जैसे वैविध्य को तुलनात्मक साहित्य अध्ययन के सहारे प्रस्तुत किया जा सकता है। वर्तमान समय में भारतीय विद्वानों का तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन की ओर ध्यान आकर्षित हुआ है। फिर भी तुलनात्मक साहित्य अध्ययन में प्रयुक्त प्रणाली, संदर्भ, तकनीक, सोच, पद्धतियाँ आदि में विसंगतता पायी जाती हैं। इस क्षेत्र में अभी भी उचित विकास एवं संशोधन की आवश्यकता की जरूरत है, क्योंकि तुलनात्मक अध्ययन की कार्यप्रणाली के अपर्याप्त ज्ञान के चलते ज्यादातर संशोधनकर्ता तुलनात्मक अध्ययन का स्वरूप धारण न करते हुए, योगात्मक रूप धारण करते हैं, तो सिर्फ साहित्यिक बातों की ओर ध्यान देते हैं। भारत की इसी अनेकता में एकता का प्रवाह है, जिसमें तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन भारतीय साहित्य इतिहास की अवधारणा के लिए आवश्यक है। भारत की विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्यिक अभिव्यक्ति का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन के लिए आवश्यक है।

तुलनात्मक अध्ययन को यदि हम साहित्यिक दृष्टि से देखें, तो इसके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। साहित्य में 'सूर के कृष्ण' और 'मीरा के कृष्ण' की अक्सर तुलना की जाती है। एक ही नायक के प्रति अलग-अलग साहित्यकारों के भिन्न-भिन्न विचारों को पढ़ने के पश्चात, उस नायक का स्वरूप और स्पष्ट हो जाता है, इसी प्रकार विभिन्न भाषा साहित्यों की विशिष्ट शाखाओं के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा उनकी रचना-प्रक्रियाओं और उनसे सम्बंधित समुदायों के जीवन के प्रति दृष्टिकोण, उनके आदर्शों और उनकी रुचियों के प्रति स्पष्ट हो जाता है, इसी प्रक्रिया के द्वारा दो जातियां, दो प्रान्त एवं दो देश, एक दूसरे को निकटता से देखते हैं और समझते हैं, जिससे राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में उन्मुक्त एवं स्वच्छ भावनाओं का संचार होने लगता है।

भारतीय साहित्य की एकता को प्रमाणित करने के लिए 1954 में साहित्य अकादमी की स्थापना हुई थी। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्ण ने तब कहा कि भारतीय साहित्य एक है, अपितु यह बहुत-सी भाषाओं में लिखा जाता है। भारत में तुलनात्मक साहित्य की स्थापना, एक पृथक अनुशासन के रूप में 1956 में जादवपुर विश्वविद्यालय में हुई थी। वहाँ इसके नेतृत्वकर्ता बुद्धदेव बसु थे। इस विभाग का उद्देश्य था, कि पाठ्यक्रमों के अनुसार बांग्ला साहित्य के साथ यूरोपीय साहित्य की तुलना करना। इसके पश्चात दक्षिण भारत की हिन्दी प्रचार सभा का उच्च शिक्षा और शोध संस्थान पहला विश्वविद्यालय था, जहाँ एम.ए. हिन्दी के पाठ्यक्रम में तुलनात्मक साहित्य को स्थान दिया गया। अब भारत की विभिन्न भाषाओं में एम.ए. तथा पीएच.डी के पाठ्यक्रमों में तुलनात्मक साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज तुलनात्मक साहित्य का प्रचार-प्रसार पश्चिम से कहीं अधिक, भारत में दिखायी पड़ता है, जिसके लिए भारत एक बहुभाषिक देश होना बहुत बड़ा कारण है।

आज भारत में एकाधिक भाषाओं में रचित साहित्य अध्ययन को एक व्यापक आयाम प्रदान करने के लिए, हिन्दी भाषा को केंद्र में रखकर तुलनात्मक अध्ययन होना जरूरी लगता है, जिससे सही मायने में भारतीय साहित्य के इतिहास के उद्देश्य को सिद्ध कर भाषिक कुंठाओं के भेदभाव को मिटाया जा सकता है। इस प्रकार भारतीय साहित्य अध्ययन के तुलनात्मक साहित्य अध्ययन ही उचित माध्यम लगता है।

भारत जैसे बहुभाषी और सांस्कृतिक वैविध्य वाले देश को समझने के लिए तुलनात्मक अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है। यूरोप और अमरीका की तुलना में भारत में तुलनात्मक साहित्य की संभावनाएँ अधिक है, क्योंकि यूरोप के विभिन्न देशों में जितनी भाषिक व सांस्कृतिक विविधताएं हैं, उतनी तो अकेले भारत में ही है। डॉ. राम विलास शर्मा *भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएं* में लिखते हैं-

> किसी भी भाषा का साहित्य निर्माण अन्य भाषाओं के साहित्य में नितांत अलगाव की अवस्था में नहीं हो सकता। लोग यूरोपियन साहित्य की बात करते हैं, भारतीय साहित्य की भी बात करते हैं। यूरोप राष्ट्र नहीं है, भारत राष्ट्र है। लोग भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की बात करते हैं, यूरोप के स्वाधीनता आंदोलन की बात नहीं करते, शायद उन्हें ऐसे आंदोलन की आवश्यकता नहीं पड़ी। यूरोप में एक मंडी है, पर यूरोप का कोई राष्ट्रीय अर्थतंत्र नहीं है। यूरोपीय साहित्य

> यूरोप का राष्ट्रीय साहित्य नहीं है। भारत साहित्य भारत का राष्ट्रीय साहित्य है। (06-07)

साहित्य का सामान्य विकास और अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उसके इतिहास का अध्ययन तुलनात्मक का आवश्यक अंग है। इस साहित्य का आधार तथ्यात्मक होना चाहिए, जिससे विभिन्न देशों के बीच यातायात के फलस्वरूप साहित्यिक आदान-प्रदान तथा परस्पर प्रेरणा-प्रभाव ग्रहण के जो ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं, उनके आधार पर ही तुलनात्मक साहित्य की सुदृढ़ पीठिका स्थापित की जा सकती है। तुलनात्मक अध्ययन में नाना साहित्यों का अध्ययन हो सकता है अथवा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर तुलना प्रस्तुत की जाती है, जहाँ यह एक भाषा के अंतर्गत रचित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है, वहीं विभिन्न भाषाओं में चर्चित साहित्यों की सहायता से भी यह संभव है। उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तुलनात्मक साहित्य, साहित्य अध्ययन की वह विधि है, जिसमें एक अथवा एक से अधिक देशों की, एक अथवा से अधिक भाषाओं की, कम से कम दो साहित्यिक रचनाओं की तुलना, इस आधार पर की जाती है कि सम्पूर्ण मानव-जाति के भावों, अनुभवों और ज्ञान में एक मूल रिश्ता हो, इसलिए सम्पूर्ण मानव को समझने के लिए, उसके बारे बहु-पक्षीय ज्ञान प्राप्त करने में तुलनात्मक साहित्य बड़ी सार्थक भूमिका निभा सकता है। मई 2020 में प्रकाशित *साहित्य अमृत* पत्रिका में कुमुद शर्मा के द्वारा रचित आलेख *भारतीय भाषाओं और साहित्य में समरसता और एकात्मता के सूत्र* में लिखती है-

> आज जरूरत इस बात की है कि हम विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य में निहित दार्शनिक विवृत्तियों को खोलें, उसकी केन्द्रीय संवेदनाओं को, मूल्यपरक अनुभव सत्ता का विश्लेषण करें। उनमें निहित एक समान सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के अप्रतिम उदाहरणों से समझने की कोशिश करें और जाने कि हमारी विविधता प्रकृतिजन्य है, वह केवल परिधि पर है, केंद्र-स्थल तो एक ही है। (128-131)

1.1.5.8 तुलनात्मक साहित्य में हिन्दी और पंजाबी

किसी भी समाज में भाषा और संस्कृति का एक रूप नहीं होता, बल्कि इनके विविध रूप होते हैं। भाषा के विभिन्न रूपों का प्रमुख आधार स्थान भेद है। किसी भी विशाल क्षेत्र में व्यवहृत भाषा और संस्कृति के कई क्षेत्रीय रूप होते हैं। जैसे पंजाबी भाषा के तीन विशिष्ट रूप मिलते हैं- माझी, मालवई और दोवाबी। ऐसे ही हिन्दी भाषी क्षेत्र के वे खंड जिनकी अपनी अस्मिता है। जैसे ब्रज, बुंदेलखंड, अवध आदि जनपद हैं। 'जनपदीय आधार' का तात्पर्य अकेला बोलियों के क्षेत्र से नहीं है, इसके साथ वहाँ के लोगों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक विभिन्नता से भी है, इस प्रकार दोनों भाषाओं के नाटकों में भी इस प्रकार की विभिन्नता देखने की मिलती है। इस विभिन्नता को भी तुलनात्मक आधार बनाया गया है।

हिन्दी भारत की सम्पर्क भाषा है। इसका अभिप्राय यह भी है कि मराठी, गुजराती, कन्नड़ और पंजाबी आदि भाषओं के बीच सम्पर्क स्थापित करने के लिए, हिन्दी भाषा एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। समसामयिक जीवन-स्थितियों की समानता के कारण हिन्दी तथा किसी भी प्रादेशिक भाषा में समानता तथा लोक-जीवन में अंतर होने के कारण, इनमें असमानता भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। यही कारण है कि हिन्दी की अन्य प्रादेशिक भाषाओं से तुलना करना उचित तथा लाभप्रद जान पड़ता है। अन्य प्रादेशिक भाषाओं की अपेक्षा पंजाबी का हिन्दी से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पंजाब चारों ओर से हिन्दी प्रदेश हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा तथा राजस्थान से घिरा हुआ है। इन सभी प्रदेशों की राज्यभाषा हिन्दी होने के कारण हिन्दी बोलने और समझने वालों की बहुत संख्या है। पंजाब तथा हरियाणा की राजधानी, केंद्र शासित प्रदेश, चंडीगढ़, में भी हिन्दी तथा पंजाबी भाषी लोग पर्याप्त मात्रा में हैं। पंजाबी तथा हिन्दी के इस सह-अस्तित्व को स्वीकार करने से तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता स्पष्ट दिखने लगती है, इसके साथ ही पंजाब के साहित्यकार पंजाबी के साथ-साथ हिन्दी साहित्य में भी प्रतिष्ठित हुए हैं। पंजाब की धरती ने उपेन्द्रनाथ अश्क, मोहन राकेश और भीष्म साहनी आदि जैसे हिन्दी के महान साहित्यकारों को जन्म दिया है। इस दृष्टि से भी हम देखें, तो हिन्दी और पंजाबी साहित्य की तुलना महत्त्वपूर्ण है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी और पंजाबी की नाट्य-गतिविधियों को विशेष प्रोत्साहित किया गया। सन 1960 से 1980 के दो दशक, हिन्दी तथा पंजाबी नाट्य-साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इस समय तक एशियन थिएटर इंस्टीट्यूट तथा नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा की स्थापना हो चुकी थी। 1961 में रविन्द्र शताब्दी का आयोजन किया गया और इस वर्ष प्रत्येक प्रदेश की राजधानी में रंग-भवनों का निर्माण किया गया। इसका प्रभाव भारत की प्रत्येक भाषा की नाट्य रचना पर पड़ा। पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला ने नाटक एवं रंगमंच को एक विषय के रूप में अपनाया, जिससे पंजाबी नाट्य एवं रंगमंच को विशेष प्रोत्साहित किया गया। तुलनात्मक दृष्टि से देखें, तो इन दो दशकों में पंजाबी और हिन्दी भाषा के नाट्य-साहित्य की बहुत उन्नति हुई। डॉ. अनिल कुमार ने *लोक-रंग* में प्रस्तुत अपने आलेख *पंजाब के हिन्दी साहित्य पर ठहर कर कार्य करने की जरूरत है* में लिखते हैं-

> इधर का पंजाब पहले से कम उर्वर नहीं है। कुछ लोग जब कहते हैं कि इधर कुछ खास नहीं हो रहा है यहाँ तो उनकी सोच पर संदेह होता है। पहले कुछ नाम थे जिनका सिक्का चलता था। नाम के अनुसार ही मंजिल आंक ली जाती थी कई बार, कइयों की। अब ऐसा नहीं है। जिस भी जिले में आप जाएँगे कुछ नाम बहुत ही सक्रिय और उम्दा मिलेंगे। वे समझते हैं पंजाब की संस्कृति को। जानते हैं पंजाबियत की रंगत को। उनके पास प्रस्तुति का एक सलीका और कहन की विशेष क्षमता है। जहाँ और जिस अंचल सी वे हैं वहाँ का परिवेश अपनी पूरी जीवंतता के साथ वर्तमान है उनके लेखन में। युग परिवेश को भी व्याख्यायित कर रहे हैं पूरी बौद्धिकता के साथ। (02)

हिन्दी और पंजाबी भाषा के अतीत के सम्बन्धों की बात करें, तो ये एक ही धरती पर जीते हैं। हिन्दी एवं पंजाबी एक शरीर की दो भुजाओं की भांति हैं और दोनों को एक दूसरे से शक्ति प्राप्त होती है। इसलिए हिन्दी एवं पंजाबी के नाटककारों ने जीवन की लगभग एक जैसी समस्याओं को अपने नाटकों का विषय बनाया है। हिन्दी एवं पंजाबी साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा बहुत पुरानी नहीं, विशेष रूप से आधुनिक गद्य का विश्लेषण करते हुए, इस प्रकार का अध्ययन अपेक्षाकृत बहुत कम मिलता है। इस कारण दोनों भाषाओं के नाटकों के तुलनात्मक अध्ययन का विशेष महत्त्व है।

1.1.6 इक्कीसवीं शताब्दी तक हिन्दी और पंजाबी नाटकों के विकास में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक परिवेश और भाषा एवं शिल्प पक्ष

1.1.6.1 हिन्दी नाटकों के विकास में-

इक्कीसवीं शताब्दी तक हिन्दी नाटकों के विकास में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक परिवेश देखें, तो भारतेन्दु युग से ही हिन्दी नाटकों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं को आधार बना कर दर्शकों के सन्मुख प्रस्तुत किया गया है। भारतेन्दु तथा उनके समकालीन नाटककारों ने लोक-चेतना के विकास के लिए नाटकों की रचना की। भारतेन्दु का युग नाट्य-साहित्य की दृष्टि से सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का दौर था, उसके नाटकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ जन-सामान्य को जागृत करना तथा उसमें आत्मविश्वास को जगाना था। इस युग में, इन समस्याओं से सम्बंधित अन्य भाषाओं से भी काफी नाटक अनुवादित किए गए हैं। आचार्य राम चन्द्र शुक्ला *हिन्दी साहित्य का इतिहास* में लिखते हैं- "नाम लेने योग्य अच्छे मौलिक नाटक बहुत दिनों तक दिखायी न पड़े। अनुवादों की परम्परा लगातार चलती रही।" (493)

सामाजिक हिन्दी नाटकों की बात करें, तो भारतेन्दु के नाटक *भारत दुर्दशा* एवं *अँधेर नगरी* उस समय की सामाजिक स्थिति को प्रस्तुत करते हुए, सुधार के उद्देश्य से रचे गये थे। भारतेन्दु के सामाजिक नाटकों में *विद्यासुंदरम, वैदिक हिंसा हिंसा न भवति, प्रेमयोगिनी* आदि भी हैं। राधाचरणदास का नाटक *दुःखनी बाला,* प्रताप नारायण मिश्र का नाटक *कलाकौतुक,* बालकृष्ण भट्ट का नाटक *जैसा काम वैसा परिणाम,* काशी नाथ खत्री का नाटक *विधवा विवाह,* बाबु गोपालराय गहमरी का नाटक *विधा विनोद* आदि सामाजिक समस्याओं से भरपूर थे। इन नाटकों का मूलस्वर समाज-सुधार था। इस युग में जो तीव्र संघर्ष सामाजिक स्तर पर सुधारवाद की भावना से हो रहा था, वह इस काल के नाटकों में दिखायी देता है।

राजनीतिक हिन्दी नाटकों की बात करें, तो भारतेन्दु युग के समय देश विषम परिस्थितियों से गुजर रहा था। एक और राजनीतिक दासता थी; तो दूसरी और

सामाजिक अध:पतन। उस समय के हिन्दी नाटककारों ने इन दोनों समस्याओं को समान रूप से लिया। भारतेन्दु हरीशचंद्र के *अंधेर नगरी* और *भारत दुर्दशा* राजनीतिक सत्ता का सशक्त प्रतिरोध करने वाले नाटक हैं, जो बहुत चर्चित एवं मंचित हुए हैं। भारतेन्दु के अलावा, इस युग में राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी, बाल कृष्ण भट्ट, गोपालराम गहमरी, प्रताप नारायण मिश्र आदि समकक्ष नाटककार थे, जो इस विषय पर लिखते रहे। तत्कालीन ब्रिटिश राजनीतिक सत्ता एवं उसकी अनैतिकताओं का विरोध प्रसाद के *चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, अजातशत्रु* एवं *ध्रुवस्वामिनी* आदि नाटकों में दिखायी देती है। उपेन्द्रनाथ अश्क का *अंजो दीदी* , दयाप्रकाश सिन्हा का *सीढ़ियां,* कुसुम कुमार *दिल्ली ऊँचा सुनती है* आदि नाटकों में राजनीतिक जीवन की व्यवस्था के ऊपर कटाक्ष किया गया है।

आर्थिक हिन्दी नाटकों की बात करें, तो भारतेन्दु ने भी अपने नाटक *भारत-दुर्दशा* में राष्ट्रप्रेम के साथ-साथ, उस समय के देश की आर्थिक दशा को प्रस्तुत किया। *वैदिकी हिंसा न हिंसा न भवति* नामक नाटक में मांस भक्षियों पर गहरा व्यंग्य किया गया है। *प्रेमजोगिनी* नामक नाटक में स्त्री की त्रास भरी आर्थिक स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। *अंधेर नगरी* में अव्यवस्थित राज्य व्यवस्था पर गहरी चोट की गई है। भारतेन्दु के अतिरिक्त राधाकृष्णदास के नाटक *दुःखनी बाला* में तत्कालीन नारी की आर्थिक त्रासदी को प्रस्तुत किया गया है, इसके अतिरिक्त प्रसाद ने *सज्जन, कल्याणी-परिणय, एक घूँट* और *कामना* आदि नाटकों के माध्यम से स्वाधीनता की भावना के साथ-साथ रिश्वतखोरी की समस्या और पैसे की कमी के कारण गृहस्थी स्त्री की दशा को प्रस्तुत किया गया है। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने अपने नाटक *रोशनी एक नदी है* तथा *ठहरी हुई ज़िन्दगी* में आर्थिक परिवेश का चित्रण बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है। मोहन राकेश का नाटक *आधे-अधूरे* में पारिवारिक यथार्थ के साथ मध्यवर्गीय आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

मनोवैज्ञानिक हिन्दी नाटकों की बात करें, तो भारतेन्दु का *वैदिक हिंसा हिंसा न भवति* हिन्दी का प्रथम प्रहसन माना जाता है, इसमें उन्होंने मनोवैज्ञानिक ढंग से हास्य-व्यंग्य के द्वारा ही जटिल समस्या को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है, उसके बाद राधाचरण गोस्वामी का *बूढ़े मुँह मुहाँसे*, देवकीनंदन त्रिपाठी का *रक्षा बन्धन* और बालकृष्ण भट्ट का *जैसा काम वैसा परिणाम* आदि नाटकों में मनोविज्ञान की झलक नज़र आ रही है। द्विवेदी युग में हरिऔध, सुदर्शन, गोविन्दवल्लभ पन्त और

माखनलाल चतुर्वेदी ने मनोविज्ञान की दृष्टि से कुछ नाटकों की रचना की। मोहन राकेश के द्वारा रचित नाटक *आषाढ़ का एक दिन* के पात्रों में मनोवैज्ञानिक झलक मिल रही है। इसकी प्रमुख नायिका मल्लिका आदर्शवाद का पल्ला पकड़कर भी अंसतुष्ट रही है। उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटक *अंजो दीदी* में एक स्त्री के मनोवैज्ञानिक चरित्र को प्रस्तुत किया गया है।

भाषा एवं शिल्प पक्ष की दृष्टि से बात करें, तो प्रसाद युग तक हिन्दी नाटक संस्कृति नाट्य सिद्धान्त से विशेषत: प्रभावित थे। लेकिन इस युग के बाद हिन्दी नाटकों में नवयुग प्रांरम्भ हुआ, नाटक विषयक और शिल्प दोनों दृष्टि से और अधिक समृद्ध हुए। इस युग तक आते-आते रामलीला, नौटंकी आदि का प्रचार अपेक्षाकृत कम हो गया और पाश्चात्य नाट्य शैली का प्रभाव कई नाटककारों पर पड़ा। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों पर तो प्रभाव पड़ा ही; साथ-ही-साथ अन्य नाटककारों पर भी इसका प्रभाव पड़ने लगा, जिनमें डॉ. धर्मवीर भारती, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, मणि मधुकर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, मृणाल पाण्डे, शरद जोशी, शंकर शेष आदि और इसके अलावा भी कई नाटककार भाषा एवं शिल्प दृष्टि से सफल रहे हैं।

1.1.6.2 पंजाबी नाटकों के विकास में-

यदि हम पंजाबी नाटकों के विकास में बदलते सामाजिक परिवेश का हिन्दी नाटकों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करें, तो प्रारम्भिक पंजाबी नाटक भी हिन्दी नाटकों की तरह अन्य भाषाओं से अनुवादित हुए हैं। बुध सिंह ने, बालक राम के नाटक *पूर्ण भगत* जो एक सामाजिक नाटक था, उसका पंजाबी में अनुवाद किया है। प्रथम पीढ़ी में आई.सी. नंदा, हरचरन सिंह, संत सिंह सेखों, गुरदयाल सिंह खोसला, बलवंत गार्गी आदि नाटककारों ने अपने समय की कुरीतियों को नाटकों की विषयवस्तु बनाया। दूसरी पीढ़ी में सुरजीत सिंह सेठी, हरशरन सिंह, रोशन लाल आहूजा और तीसरी पीढ़ी में आत्मजीत, अजमेर सिंह औलख, चरनदास सिधु, गुरशरन सिंह, रविन्द्र रवि, अजैब कमल आदि नाटककारों ने मजदूर वर्ग और कृषक जीवन की समस्याओं का वर्णन किया था। चौथी पीढ़ी में पाली भूपिंदर सिंह, स्वराजबीर, मनजीतपाल कौर, दविंदर कुमार, वरिआम मस्त, राजवंत कौर मान, नसीब बवेजा, केवल धालीवाल आदि नाटककारों ने नारी चेतना, दलित चेतना, प्रवासी चेतना आदि सामाजिक समस्याओं पर अपनी चिंता प्रकट की है।

राजनीतिक पंजाबी नाटकों की बात करें, तो बृज लाल शास्त्री, लाला कृपा सागर, बावा बुद्ध सिंह आदि नाटककारों के नाम प्रथम पीढ़ी के अनुवादित राजनीतिक नाटककारों में आते हैं। बावा बुद्ध सिंह ने इस विषय से सम्बंधित *सुंदरी छल्ला* और *नार नवेली* हैं। इसमें राजनीतिक सत्ता को बदलने के लिए समाज सुधार लहरों का प्रभाव भी दिखायी देता है। ईश्वर चन्द्र नंदा ने *माँ दा डिप्टी,* गुरबक्श सिंह प्रीतलड़ी का *राज कुमारी लतिका*, नानक सिंह का *बी.ए. पास* आदि इस विषय से सम्बंधित नाटक हैं। कपूर सिंह घुम्मण ने देश की आज़ादी से सम्बंधित काफी नाटक लिखे हैं, इसके अलावा गुरशरण सिंह के भी इस विषय पर काफी नाटक लिखे हैं।

आर्थिक पंजाबी नाटकों की बात करें, तो आई.सी. नंदा ने श्रीमती नौरा रिचर्डस की प्रेरणा से *दुल्हन* और *सुभद्रा* नामक नाटकों की रचना की। दुल्हन नाटक बेटियों को बेचे और खरीदे जाने की आर्थिक समस्या से सम्बंधित है, गुरबख्श सिंह प्रीतलड़ी के नाटक *राज कुमारी लतिका,* नानक सिंह के नाटक *बी.ए. पास,* करतार सिंह दुगल के नाटक *एक सिफ़र सिफ़र* आदि नाटकों में सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ आर्थिक समस्याओं को भी प्रस्तुत किया गया है। इन नाटकों में पढ़े-लिखे युवाओं का बेरोजगारी से जूझना आदि समस्याओं को मुख्य रूप से प्रस्तुत किया गया है।

मनोवैज्ञानिक पंजाबी नाटकों की बात करें, तो पंजाबी में मनोवैज्ञानिक नाटकों की शुरुआत ईश्वर चन्द्र नंदा के द्वारा रचित नाटक *दुल्हन* से मानी जाती है। इसके बाद ज्ञानी दित्त सिंह का नाटक *राजा लखदात,* आरूढ़ सिंह का नाटक *सुका समुद्र*, गुरबखश सिंह का नाटक *मनमोहन नाटक*, बलवंत गार्गी का नाटक *लोहा कुट* गुरदयाल सिंह फुल के नाटक *झूठा बाज़ार* और *लज्जा* प्रमुख रूप इस कोटि में आते हैं।

पंजाबी नाटकों को भाषा एवं शिल्प पक्ष की दृष्टि से देखें, तो आई.सी नंदा से ही पंजाबी नाटककारों ने रंगमंच और भाषा एवं शिल्प दृष्टि से लिखने का प्रयास किया है। इनमें प्रसिद्ध नाटककार बलवंत गार्गी, गुरशरण सिंह, संत सिंह सेखों, हरचरन सिंह, कपूर सिंह, डॉ. चरण दास सिधू आदि नाटककारों ने समय-समय पर भाषा एवं शिल्प दृष्टि के लिए स्वागत का प्रयोग नाटकों में भी किया गया है और देशों-विदेशों में जाकर नये-नये रंग-विधान ढूंढने का प्रयास भी किया गया है।

1.1.7 चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटक एवं नाटककारों का सामान्य परिचय

इक्कीसवीं शताब्दी अपनी अनेक असाधारण विशेषताओं की गुणवत्ता से भरी हुई है। विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति, औद्योगीकि और प्राविधिक यंत्रों को चकाचौंध कर देने वाले विकास, मानव-संसार के लिए उपयोगी साधन बनते जा रहे हैं और आज हम सब इनका खूब फायदा उठा रहे हैं। समकालीन नाटककारों ने जो भी नाटक लिखे हैं, उन नाटकों में आज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक आदि परिस्थितियों का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है। समकालीन नाटककारों ने कोई भी ऐसा पक्ष अछूता नहीं रहने दिया, जिसको छुआ न हो, उन्होंने अपनी रचनाओं में सभी विषयों को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध के लिए चयनित नाटकों के साथ-साथ नाटककारों का भी सामान्य परिचय दिया गया है, जिससे नाटककारों की मानसिकता को बड़ी गहराई से देखा जा सके। डॉ. तारकनाथ बाली *आलोचना प्रकृति और परिवेश* में लिखते हैं

> मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्तित्व का निर्माण पारिवारिक और सामाजिक वातावरण से होता है और व्यक्ति को जन्म से ही माता-पिता के कुछ संस्कार प्राप्त होते हैं। अत: व्यक्तित्व के निर्माण में पारिवारिक और सामाजिक वातावरण का महत्त्व सभी स्वीकार करते हैं। (66)

इसलिए चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के परिचय के साथ-साथ नाटककारों के पारिवारिक और सामाजिक वातावरण को समझना भी लाजमी हो जाता है।

हिन्दी नाटक:-

अजय शर्मा- *मोहम्मद जलालुद्दीन* (2018)

अजय शुक्ला- *ताजमहल का टेंडर* (2016)

सुशील कुमार सिंह- *सिंहासन खाली है* (2016)

स्वदेश दीपक- *काल कोठरी* (2015)

असग़र वजाहत- *जिस लाहौर नइ देख्या ओं जम्याइ नइ* (2015)

मधु धवन- *आज की पुकार* (2014)

हृषीकेश सुल्भ- *अमली* (2010)

किशोर कुमार सिन्हा- *धारा एक सौ चवालीस* (2009)

नादिरा जहीर बब्बर- *सुकुबाई* (2008)

नादिरा जहीर बब्बर- *जी जैसी आपकी मर्जी* (2008)

सुशील कुमार सिंह- *चार यारों की यार* (2008)

विभा रानी- *आओ ! तनिक प्रेम करें* (2006)

कृष्ण बलदेव वैद- *कहते है जिसको प्यार* (2004)

मीरा कांत- *हुमा को उड़ जाने दो* (2002)

पीयूष मिश्रा- *गगन दमामा बाज्यो* (2001)

पंजाबी नाटक:-

कुलदीप सिंह दीप- *तूं मेरा की लग्गदैं* (2016)

निर्मल जोड़ा- *सौदागर* (2015)

अजमेर सिंह औलख- *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* (2015)

नाहर सिंह औजला- *सुपर वीज़ा* (2014)

अनीता शबदीश- *कथा रिड़दे परिंदे दी* (2012)

ओंकारप्रीत सिंह- *प्रगटिओ खालसा* (2009)

गुरचरण सिंह जसूजा- *कंधा रेत दियां* (2008)

स्वराजबीर- *कल्लर* (2007)

दविंदर दमन- *छा विहूणे* (2006)

जतिंद्र बराड़- पायदान (2005)

सतीश कुमार वर्मा- *लोक मना दा राजा* (2004)

पाली भूपिंदर सिंह- *चन्दन दे ओहले* (2003)

अजमेर सिंह औलख- *निक्के सूरजां दी लड़ाई* (2003)

आत्मजीत- *मैं ता एक सारंगी हाँ* (2002)

गुरचरण सिंह जसूजा- *परियां* (2000)

डॉ. अजय शर्मा-

डॉ. अजय शर्मा का जन्म 31 अगस्त 1960 को जालन्धर में हुआ, इनके माता-पिता सरकारी अध्यापक थे, उनका जैसे-जैसे तबादला होता रहा, वैसे ही इनकी शिक्षा भी प्रभावित होती रही, इनकी आरम्भिक शिक्षा गाँव जंडियाला और हायर सेकंडरी, जालन्धर के साईं दास स्कूल से पूरी हुई। बाद में बी.ए.एम.एस. गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर, से पूरी की। डॉ. अजय शर्मा ने नाटकों के साथ-साथ उपन्यासों की भी रचना की, जिनमें- *चेहरा और परछाई, खुली हुई खिड़की, आकाश का सच, बरसा की गलियां, काल-कथा, शहर पर लगीं आँखें, नौ दिशाएं, भगवा, कागद, कलम न लिखणहार, समंदर और सफेद गुलाब, महामृत्यु का ब्लैक होल* और *उधड़न* आदि उपन्यास हैं और *छल्ला मुड़ के नहीं आया, मोहम्मद जलालुद्दीन, आपरेशन ब्ल्युस्टार, दलित पंडित* और *लाँकडाउन* आदि पाँच नाटकों की रचना की। डॉ. अजय शर्मा को 2012 में केद्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा पुरस्कार प्रदान करने वाली चयनित कमेटी का सदस्य होने का गौरव भी प्राप्त है, केद्रीय सरकार द्वारा वर्ष 2016-17 में उपन्यास *कागद कलम न लिखणहार* के लिए एक लाख रुपए एवं प्रशंसा पत्र से सम्मानित किया गया है। डॉ. अजय शर्मा दो वर्ष के लिए 'अमर उजाला' मैगजीन के उप-सम्पादक रहे और वर्तमान में 8 वर्ष से 'दैनिक सवेरा टाइम्स' के फीचर सम्मादक के रूप में काम कर रहे हैं। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *मोहम्मद जलालुद्दीन* का चयन किया गया है।

नाटक *मोहम्मद जलालुद्दीन* वर्तमान युवा पीढ़ी की नैतिक मानसिक दशा एवं इंसानियत को प्रस्तुत करता है और साथ ही जाति और धर्म की कट्टरता को भी कम होते हुए दिखाया गया है। इस नाटक का नायक पंजाब के जालन्धर शहर का रहने वाला है, अपने फ़िल्मी दुनिया में काम करने के सपने को पूरा करने के लिए, वह मुंबई चला जाता है। वहाँ आंतकवादी हमला होने के कारण हिन्दू, मुसलमानों से नफ़रत करके दंगे कर रहें थे। नायक का नाम मोहन जालंधरी था और वह हिन्दू जाति से सम्बन्ध रखता था, लेकिन नायक जब लोकल ट्रेन पर चढ़ता है, तो अजनबी होने के कारण हिन्दू भीड़ उसका नाम पूछती है, तो वह जैसे ही मोह.. जल.. कहता है, हिन्दू भीड़ उसे मोहम्मद जलालुद्दीन समझ कर जान से मारने की नीयत से हमला कर देती है और हमले के बाद, ट्रेन से बाहर फैंक देते हैं। नायक जख्मी हालात में किसी मुसलमान के घर की शरण लेता है, जिनकी बेटी एक नर्स होती है। उस

परिवार के सभी सदस्यों को पता चल जाता है कि अजनबी एक हिन्दू है, वह फिर भी एक-दूसरे से इस बात को छुपा कर, उसका बहुत अच्छे-से इलाज करते हैं, जिससे वह जल्दी ठीक हो जाता है। अजनबी के चले जाने के बाद वह अल्लाह का शुकराना करते हैं कि हमने किसी व्यक्ति की जान बचा ली, इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह नाटक जातिवाद और धर्म से ऊपर हो कर मानवता के मूल्यों को प्रस्तुत करता है।

अजय शुक्ला-

ताजमहल का टेंडर नामक नाटक से प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले नाटककार अजय शुक्ला का जन्म 7 जुलाई 1955 को हुआ। अजय शुक्ला ने लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. की पढ़ाई पूरी की और 1980 में रेल यातायात सेवा में अधिकारी के रूप में नियुक्त हो गये। वर्ष 2015 में यातायात के पद से आप सेवानिवृत हुए तथा अब लखनऊ में रह रहे हैं। अजय शुक्ला के द्वारा रचित नाटकों की बात करें, तो इनके द्वारा *दूसरा अध्याय, ताज महल का टेंडर, ताजमहल का उदघाटन* आदि तीन नाटकों का निर्माण किया गया और इसके आलावा *प्रश्नचिन्ह* नामक काव्य संग्रह एवं *प्रतिबोध* नामक काव्य की रचना भी की गई है, अजय शुक्ला ने अंग्रेजी भाषा में भी अपनी कुछ रचनाएँ रची। यदि पुरस्कारों की बात की जाए तो *दूसरा अध्याय* नामक नाटक पर इन्हें 'साहित्य कला परिषद' द्वारा पुरस्कार प्राप्त हुआ और *ताज महल का टेंडर* पर इनको 'मोहन राकेश' नामक सम्मान से सम्मानित किया गया है। आकाशवाणी के लिए लिखे एकमात्र नाटक *हम होंगे कामयाब* के लिए आप 'राष्ट्रीय पुरस्कार' से सम्मानित हो चुके हैं। *ताजमहल का टेंडर* नामक नाटक को अक्टूबर 1998 में पहली बार राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, रंगमंडल में मंचन किया गया था, प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *ताजमहल का टेंडर* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *ताजमहल का टेंडर* एक मौलिक रचना है, इसकी कथा समकालीन राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था से सम्बंधित है। जिसको अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं में अनुवादित किया जा चुका है। इस नाटक का आधार परिकल्पना पर आधारित है कि बादशाह शाहजहाँ इतिहास से निकलकर अचानक आधुनिक दिल्ली के प्रशासन से अपनी बेगम की याद में ताजमहल बनाने की इच्छा

प्रकट करता है। बादशाह के अतिरिक्त अन्य सब कुछ आज का ही है। सरकारी मशीनरी, नौकरशाही, नेतागिरी, भिन्न प्रकार की घूसखोरी, एक-एक फ़ाइल को वर्षों तक क्लर्कों के द्वारा दबाना आदि, देखते ही देखते पच्चीस वर्ष गुज़र जाते हैं। जिस दिन टेंडर पूरा होना था, उस दिन बादशाह दुनिया को अलविदा कह जाता है। यह नाटक हमारी आज की भ्रष्ट प्रशासनिक व्यवस्था को इतिहास के माध्यम से बदलते परिवेश की दृष्टि को प्रस्तुत करता है। इस नाटक का मुख्य उद्देश्य आधुनिक युग में फैली रिश्वतखोरी और भ्रष्ट अफसरशाही की सच्चाई को प्रस्तुत करना है।

सुशील कुमार सिंह-

सुशील कुमार सिंह का जन्म 3 नवंबर 1946 को कानपुर के बंगाली मोहल्ले में एक सुसंस्कृत एवं समृद्ध परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम रत्नदेव और माता का नाम श्रीमती बिरसा देवी था। सुशील कुमार सिंह के पिता साहित्यिक अभिरुचि वाले व्यक्ति थे। इस प्रकार यदि सुशील कुमार सिंह की शिक्षा की बात करें, तो इन्होंने आरम्भिक शिक्षा बंगाली मोहल्ले के पास ही एक अन्य मोहल्ले में एक पाठशाला से प्राप्त की। कक्षा पाँच के पश्चात हाईस्कूल की शिक्षा बी.एन.एस.डी. हायर सेकंडरी स्कूल से प्राप्त की और डी.ए.वी कॉलेज कानपुर बीएस.सी. में प्रवेश लिया, सुशील कुमार सिंह मेडिकल क्षेत्र में जाकर डॉक्टर बनना चाहते थे, इसलिए उन्होंने बीएस.सी. जीव-विज्ञान में दाखला लिया। मेंढक, केचुएँ, घोघे एवं मछली इत्यादि की चीर-फाड़ भी की, किन्तु उनकी नाट्य-गतिविधियों को देखते हुए, उनके पिता ने घोषणा कर दी कि यह डॉक्टर बनने के लायक नहीं है। वे सुशील कुमार सिंह को हार्नस फैक्ट्री में ही लगाना चाहते थे। इसी कारण सुशील कुमार सिंह को अंग्रेजी टाइप भी सीखनी पड़ी और बीएस.सी. के पश्चात विज्ञापन एजेंसी में छ: महीने बतौर एजेंट काम भी किया।

प्रशिक्षण समाप्त करने के बाद सुशील कुमार सिंह ने कई क्षेत्रों में काम किया, इन्होंने उत्तर-प्रदेश 'संगीत नाटक अकादमी' तथा कई अन्य संस्थाओं के लिए नाटक कार्यशालाओं का निर्देशक-संचालन भी किया। उन्होंने टी.वी नाटक एवं सीरियल लिखे तथा निर्देशित भी किये। सुशील कुमार सिंह ने दूरदर्शन के प्रोड्यूसर के रूप में

भी काम किया। सुशील कुमार सिंह की रचनाओं की बात करें, तो इनके द्वारा रचित नाटक- *सिहांसन खाली है, आचार्य रामानुज, नागपाश, आज नहीं तो कल, चार यारों की यार, बापू की हत्या हजारवीं बार, गुडबाई स्वामी, बेबी तुम नादान और अलख आज़ादी की* हैं और इनके द्वारा कुछ बाल नाटिकाएँ भी लिखी गई, जिसमें- *वैसे तो सब ख़ैर कुशल है, विश्व-भ्रमण, बापू के नाम, ठग ठगे गये, लोककथा कनुए नाई की* और *तमाशा* है। आप संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की थिएटर 'सीनियर फेलोशिप' की चयन समिति के सदस्य भी रह चुके हैं। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *सिंहासन खाली है* और *चार यारों की यार* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *सिंहासन खाली है* की कथा भ्रष्ट लोगों के द्वारा अच्छे लोगों के खिलाफ साजिश रचने को प्रस्तुत करती है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने प्रस्तुत किया है कि मानव सभ्यता के क्रमिक विकास के समय से जब पहली बार 'सत्ता', 'सिंहासन' तथा 'राजा' की स्थापना हुई होगी, उसी समय से राजा और प्रजा के सम्बन्धों में ज़हर घुल गया होगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय लोकतंत्र के राजनीतिक चरित्र में जिस प्रकार गिरावट आयी है, उसको यह नाटक बयान करता है। इसकी शुरुआत सिंहासन के असली हकदार की खोज से होती है। सभी खुद को सिंहासन के असली दावेदार बताते हैं, लेकिन बुरे लोग उनके खिलाफ साजिश रचते हैं और शासन फिर से भ्रष्ट लोगों के हाथों में चला जाता है।

सुशील कुमार सिंह का दूसरा चयनित नाटक *चार यारों की यार* है, इस नाटक में सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्थितियों को प्रस्तुत करता है। साथ ही इस नाटक में नारी जीवन की विडम्बना को सहज और सरल संवादों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। नाटक की सारी कथावस्तु बिन्दिया नामक पात्र के इर्द-गिर्द घूमती है। बिन्दिया जैसी अनेक औरतें इस देश में अपना दर्द छुपाए जीवन व्यतीत कर रही हैं। आज भी हमारे समाज में पुरुष की प्रधानता होने के कारण नारी को झुकना पड़ता है, लेकिन इस नाटक की नायिका पुरुष-प्रधान समाज को चुनौती देते हुए आपबीती सुनाती है। इस नाटक में कुल छ: पात्र हैं। यह सारे के सारे पात्र अपनी भाषा के द्वारा विभिन्न परिस्थितियों, विभिन्न वातावरण और एक विभिन्न संस्कृति को प्रस्तुत करते हैं। यह नाटक परम्परागत नाटकों की शैली से भिन्न है। नाटककार ने बिन्दिया के माध्यम से नारी जीवन की अंधकारमयी व्यंग्यपूर्ण त्रासदी का जीवंत यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। बिन्दिया की कथा इस देश की अनेक औरतों की त्रासदी को प्रस्तुत

करती है। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से स्त्री-पुरुष के आधुनिक सम्बन्धों को भी प्रस्तुत किया है।

स्वदेश दीपक-

स्वदेश दीपक एक प्रसिद्ध नाटककार, उपन्यासकार और लघु कहानी लेखक थे। इनका जन्म अगस्त 1942 में अंबाला छावनी, हरियाणा में हुआ। स्वदेश दीपक हिन्दी साहित्यिक परिदृश्य पर 1960 के दशक के मध्य से सक्रिय हैं, इन्होंने हिन्दी एवं अंग्रेजी में एम.ए. की डिग्री प्राप्त की और 25 से भी अधिक पुस्कतें लिखी। स्वदेश दीपक ने 26 साल अम्बाला के गाँधी मेमोरियल कॉलेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर के पद पर नौकरी की, यदि स्वदेश दीपक की रचनाओं की बात करें, तो इनमें- *अश्वारोही, मातम, तमाशा, प्रतिनिधि कहानियाँ, बाल भगवान, किसी अप्रिय घटना का समाचार नहीं, मसखरे कभी नहीं रोते* आदि कहानी संग्रह हैं, *नंबर 57 स्क्वाड्रन, मायापोत* नामक उपन्यास हैं और *बाल भगवान, कोर्ट मार्शल, जलता हुआ रथ, सबसे उदास कविता, काल कोठरी* आदि नाटकों की रचना की। स्वदेश दीपक को संगीत नाटक अकादमी द्वारा सम्मानित भी किया गया है। कुछ वर्ष पहले इनकी मौत हो गई। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *काल कोठरी* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *काल कोठरी* में आधुनिक युग के रंगकर्मियों के जीवन-संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने निपुण एवं कलाकार व्यक्तियों को भी बेरोजगारी की त्रासदी में गुजरते हुए दिखाया है। इस नाटक का मुख्य पात्र रजत है जो एक समर्पित कलाकार है, लेकिन वह मध्य वर्ग से सम्बंधित है और उसे नाटक करने से इतना पैसा नहीं मिलता कि घर का गुजारा अच्छे-से चला सके। घर का खर्च चलाने के लिए, वह नौकरी करने का मन बना लेता है, लेकिन वहाँ भी भ्रष्टाचार का बोलबाला है। इन्टरव्यू में उससे ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, कि लगता है कि इंटरव्यू लेने वाले नाट्य-कला का मजाक उड़ा रहे हों। रजत कला का अपमान होते देखकर अपने-आपको काबू में नहीं रख पाता और इंटरव्यू लेने वाले से भिड़ जाता है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने आधुनिक भ्रष्टाचार के चक्र में योग्य उम्मीदवारों को पिसते हुए दिखाया है।

असग़र वजाहत-

असग़र वजाहत का जन्म 5 जुलाई 1946 को फतेहपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ, उन्होंने अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय से एम.ए. हिन्दी की एवं वहीं से पीएच.डी की उपाधि भी हासिल की है। पोस्ट-डॉक्टरल रिसर्च जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय दिल्ली, से किया। 1971 से जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, दिल्ली के हिन्दी विभाग में अध्यापन किया और बाद में पाँच वर्ष लोरांड विश्वविद्यालय, बुडापेस्ट (हंगरी) में भी अध्यापन किया। असग़र वजाहत मूलत: और प्रथमत: कहानीकार हैं, लेकिन कहानी के आलावा भी गद्य साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन किया। असग़र वजाहत के लेखन में अनेक कहानी संग्रह, पाँच उपन्यास, आठ नाटक और कई अन्य रचनाएँ शामिल हैं। असग़र वजाहत के प्रसिद्ध नाटकों की बात करें, तो इनमें- *फिरंगी लौट आये, इन्ना की आवाज, वीरगति, समिधा, जिस लाहौर नईं देख्या ओं जम्याइ नइ, अकी, गोडसे@गाँधी कॉम* हैं, ने देश के बाहर भी लोकप्रियता के नये मानदंड कायम किये, हबीब तनवीर ने इस नाटक का पहला शो 27 सितंबर 1999 को किया था। इसके बाद यह नाटक इतनी चर्चा में आ गया कि इसके प्रदर्शन दुबई, वाशिंगटन, सिडनी, लाहौर तथा अन्य शहरों में हुए। यदि असग़र वजाहत के सम्मान की बात करें, तो इन्हें हिन्दी अकादमी के द्वारा 'श्रेष्ठ नाटककार' का सम्मान प्राप्त हुआ, उसके बाद 'आचार्य निरंजननाथ सम्मान-2012', 'संगीत नाटक अकादमी सम्मान-2014' और हिन्दी अकादमी का सर्वोच्च 'शलाका सम्मान-2016' प्राप्त हुआ। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *जिस लाहौर नइ देख्या ओं जम्याइ नइ* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *जिस लाहौर नइ देख्या ओं जम्याइ नइ* देश की आज़ादी के साथ विभाजन की त्रासदी के कहर को प्रस्तुत करता है। नाटक के मुख्य बिंदु बूढ़ी औरतें और पुरानी हवेलियां हैं, जिनके वारिस विभाजन के कारण या तो मारे गये थे या उनको यह सब छोड़ कर जाने को मजबूर होना पड़ा था। नाटककार प्रस्तुत नाटक के माध्यम से रतन की बूढ़ी माँ की त्रासदी को प्रस्तुत कर रहा है, जिसका सारा परिवार शायद दंगो में मारा गया है। वह अभी भी उस हवेली में ऊपर वाले कमरे में रह कर, अपने बच्चों का इंतजार कर रही है। मुसलमान परिवार को जब पता चलता है कि ऊपर के मकान में हिन्दू औरत है तो, वह उनसे परेशान होकर उसे निकालने का प्रयास करते हैं, लेकिन इसके विपरीत रतन की माँ सबका दिल जीत लेती है और

सबके साथ ईद, दिवाली मनाती है। कुछ कट्टर मुसलमान यह सहन नहीं कर पाए और इस नफ़रत की आग को बढ़ाने लगे। धीरे-धीरे यह नफ़रत की आग इतनी बढ़ जाती है कि एक साम्प्रदायिक दंगे का रूप धारण कर लेती है और कुछ लोगों की जान भी चली जाती है। नाटक में बूढ़ी औरत और सिकन्दर मिर्ज़ा के आपसी प्रेम से यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि हिन्दू और मुसलमानों के ऊपर एक इन्सानियत का भी रिश्ता होता है। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से लाहौर से जुड़ी अपनी यादें एवं उस समय से आज तक संस्कृति के बदलते परिवेश को भी प्रस्तुत किया है। नाटककार ने इस नाटक में ऐतिहासिक कथा के माध्यम से समकालीन समस्याओं को भी प्रस्तुत किया है।

डॉ. मधु धवन-

डॉ. मधु धवन ने अपनी रचनाओं में भारतीय नारी, समाज, देश आदि समस्याओं के यथार्थ रूप को प्रस्तुत करते हुए, अनेक मानवीय प्रश्नों को उठाया है और मानव को सही दिशा में सोचने की बैचेनी को पैदा किया है। डॉ. मधु धवन का जन्म 21 अप्रैल 1952 को तरन-तारन, पंजाब में हुआ, इन्होंने 1968 में महारानी कॉलेज से बी.ए. और एम.ए. की डिग्री प्राप्त की और बंगलौर विश्वविद्यालय से पीएच.डी की उपाधि हासिल की। शिक्षा के प्रति अधिक रूचि होने के कारण, उन्होंने अपने-आपको सीमित क्षेत्र में नहीं बाँधा, 1974 में उनकी शादी श्री विज धवन से हुई और विवाह के उपरांत चेन्नई शहर रहने लगे। डॉ. मधु धवन ने सौ से अधिक पुस्तकों की रचना की, आपने दक्षिण में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन की समस्याओं के निवारणार्थ स्कूल शिक्षकों के लिए लगभग 200 कार्यशालाएँ चलाई हैं। 'द संडे इंडियन' ने विश्व की 111 हिन्दी लेखिकाओं में आपको दो बार चुना गया है। आपने एक महाकाव्य, चार खंडकाव्य, चार नाटक, अस्सी एकांकी, तेरह उपन्यास, दो पत्रकारिता, छह राजभाषा, एक विज्ञापन-कला, एक भाषातंरण कला, संचार माध्यम, मीठी हिन्दी साहित्य का इतिहास, दो कविता संकलन, एक साहित्यिक निबन्ध तथा कई पुस्तकों का सम्पादन-लेखन भी किया है। *इंटरनेट का माऊस* कहानी संग्रह के लिए मध्य प्रदेश सरकार द्वारा राष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित किया गया। इसके आलावा सम्मानों की बात करें, तो 14 सितम्बर 2001 में इंटरनेशनल बायोग्राफिकल कैम्ब्रिज इंग्लैंड द्वारा 'अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व' के रूप में सम्मानित किया

गया। 2002 में मद्रास के दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा में विशिष्ट साहित्यिक रचनाकार के रूप में उन्हें सम्मानित किया गया। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *आज की पुकार* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *आज की पुकार* समकालीन सामान्य जीवन से सम्बंधित नाटक है। इसमें मध्य वर्ग की त्रासदी और राजनीति के गिरते हुए मीनार को संभालने का संदेश प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक की सभी घटनाएँ आधुनिक समाज से सम्बंधित हैं। इस नाटक की कथा पंजाब के एक गाँव की है, जहाँ शुद्ध, साफ़, शीतल हवा बहती है। नदियों का जल साफ़ है, कोई भी किसी का दुश्मन नहीं, सब मेहनत से कमाते हैं। इस नाटक का मुख्य उद्देश्य सामान्य लोगों द्वारा बेरोजगारी को किस प्रकार खत्म करना है, उसकी एक उदाहरण प्रस्तुत की गयी है। इसका मुख्य पात्र दयानिधि है, जिसने एक मास्टर और गाँव के कुछ लोगों की सहायता से, एक उच्च कोटि का होटल बना लिया है, जिसमें गाँव के बेरोजगारों को रोजगार दिया जाता है। नाटक के अंत में भ्रष्ट नेता की दखलंदाजी को युवाओं के द्वारा मीडिया का साथ लेकर उसको करारी चोट दी जाती है। इस प्रकार इस नाटक में एक नयी स्वतंत्र सोच को प्रस्तुत किया गया है।

हृषीकेश सुल्ब-

इक्कीसवीं शताब्दी के प्रमुख नाटककार के नाम से प्रसिद्धी प्राप्त करने वाले हृषीकेश सुल्ब का जन्म 15 फरबरी 1955 को बिहार के लहेजी नामक छोटे से गाँव में हुआ, इन्होंने आरम्भिक शिक्षा गाँव से प्राप्त की, आपके पिता स्वतंत्रता सेनानी श्री रमाशंकर श्रीवास्तव आपकी आगे की शिक्षा हेतु, आपको लेकर पटना चले आये और उच्च शिक्षा बी.एन. कॉलेज, जो कि पटना विश्वविद्यालय के अंतर्गत है, वहाँ से प्राप्त की। प्रकाशित पुस्तकों की बात करें, तो नाटक के आलावा कुछ प्रतिनिधि कहानियाँ भी हैं, जिनमें *हलन्त, वसंत के हत्यारे, तूती की आवाज़, बाँधा है काल, वधस्थल से छलाँग* और *पत्थरकट* आदि हैं, यदि नाटकों की बात करें, तो *माटीगाड़ी, अमली, बटोही, धरती आबा* आदि हैं। हृषीकेश सुल्ब को उनके कथा संग्रह *वसंत के हत्यारे* के लिये 'इंदु शर्मा अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान' प्राप्त हुआ और रंगमंच गतिविधियों एवं

नाटक-लेखन के लिए 'पाटलीपुत्र पुरस्कार' प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *अमली* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *अमली* में बिहार की संस्कृति और कमजोर आर्थिकता के कारण जन-सामान्य की त्रासदी को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, इसके दो पात्र सूत्रधार और गडबड़िया *अमली* नाटक को एक ओर सांस्कृतिक परम्परा से जोड़ते हैं तो, दूसरी ओर प्राचीन परम्परा से भी जोड़ते हैं। यह नाटक रुचिकर एवं मनोरंजन परक होने के साथ-साथ हमें यह सोचने को भी मज़बूर कर देता हैं कि इतनी प्रगति आने के पश्चात भी बिहार कई सामाजिक क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ क्यों है? यहाँ की सांस्कृतिक चेतना का सहज और वैज्ञानिक विकास नहीं हो सका और प्रत्येक क्षेत्र में जीने के लिए जरूरी साधनों की कमी रही है। इसकी नायिका अमली की कथा भी बिहार की धरती से जुड़ी है, इसके अन्य पात्र अमली को एक ओर संस्कृत परम्परा से जोड़ते हैं तो दूसरी ओर लोक परम्परा से जोड़ते हैं। नाटक की कथा रोचक होने के साथ-साथ हमें प्रेरित भी करती है कि किस प्रकार मध्य वर्ग अपनी रोजी-रोटी कमाने के लिए प्रदेश जाता है और बाद में उनके परिवार के साथ क्या बीतती है?

नादिरा जहीर बब्बर-

नादिरा जहीर बब्बर प्रगतिशील लेखक संघ के संस्थापक कॉमरेड सज्जाद जहीर की पुत्री और मशहूर नेता-अभिनेता राज बब्बर की पत्नी है और इनका जन्म 20 जनवरी 1948 को हुआ। रंगमंच, सिनेमा और टेलीविजन की मशहूर कलाकार नादिरा जहीर बब्बर अपने कलाकर्म और सामाजिक सक्रियता के कारण जानी जाती हैं। राष्ट्रीय नाट्य-विद्यालय की स्नातक, संगीत नाटक अकादमी, यश भारती, महिला शिरोमणि पुरस्कारों से सम्मानित नादिरा जहीर बब्बर ने अपनी संस्था 'एकजुट' के माध्यम से रंगमंच के क्षेत्र में कई नये प्रतिमान कायम किये हैं। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *सकुबाई* और *जी जैसी आपकी मर्जी* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *सकुबाई* सामाजिक समस्याओं से जुड़ा हुआ है। इस नाटक की मुख्य पात्र सकुबाई है, जो किसी गाँव से आकर शहर में बाई का काम करती है। इस नाटक में उच्च वर्ग के जीवन के विरोधाभास को उजागर किया गया है, वहीं बारिश में अपने घर को ठीक करने की अपेक्षा दूसरों के घरों को ठीक करने की एक स्थिति बाई

के किरदार के माध्यम से दिखायी गयी है, साथ ही मालकिन के बेटे पामोल द्वारा दूध न पीना, एक रोचक दृश्य रहा। वहीं स्वयं के घर में एक गिलास दूध के पीछे दस हाथों की झड़प गरीबी और विवशता का प्रतीक रहा है। यह नाटक हमें सोचने पर मजबूर करता है कि हममें से कितने लोग वास्तव में श्रम की गरिमा का मूल्य जानते हैं और उसकी कद्र करते हैं। इस नाटक के अंत में नाटककार ने गरीबी के निवारण के लिए शिक्षा को प्रोत्साहित किया है।

दूसरे चयनित नाटक *जी जैसी आपकी मर्जी* के माध्यम से एक स्त्री के बचपन, युवा एवं प्रौढ़ मन की कोमल भावनाओं को बड़े ही रोमांटिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक की प्रशंसा इस बात से और बढ़ जाती है कि इसकी लेखका भी स्त्री है और उन्होंने खुद ही निर्देशक की भूमिका अदा करके इसके मंचन के द्वारा नारी की भावना को प्रस्तुत किया है। नारी पर प्राचीन काल से ही ज़ुल्म हो रहे हैं और उसकी व्यावहारिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाए जा रहे हैं, लेकिन इस नाटक में नारी जीवन की परिभाषा को ही बदल दिया गया है। नाटककार ने नाटक में उन सभी रूढ़िवादी मुद्दों पर चर्चा की है, जिसकी वजह से स्त्री को घुटन महसूस होती है। नाटककार ने खुद इसकी भूमिका में लिखा है कि यह नाटक हमारे समाज की मानसिकता को बहुत गहराई से प्रतिबिम्बित करता है, चाहे वह धार्मिक मान्यताएं हों, जो स्त्री का दमन करती है, चाहे वह रूढ़िवादी प्राचीन परम्पराएँ हों। इस नाटक के संवाद लम्बे जरूर हैं, लेकिन भाव की दृष्टि से रोचकता को प्रकट करते हैं। नाटक के माध्यम से उन सभी रूढ़ियों का खंडन किया गया है, जो बेटा-बेटी पैदा होने पर उत्पन्न होती है, भाव बेटा-बेटी पैदा करना नारी के वश की बात नहीं है। वर्षा नामक पात्र को इस स्थिति का सामना करना पड़ता है, उसकी सास उसे इस बात का ताना देती है कि आप ने लड़का पैदा क्यों नहीं किया? प्रस्तुत नाटक हमारे समाज के बहुत-से सामाजिक, राजनीतिक एवं पारिवारिक मुद्दों से जुड़ा हुआ है।

मीरा कांत-

मीरा कांत इक्कीसवीं शताब्दी की प्रसिद्ध नाटककार है, इनका जन्म 1958 को श्रीनगर में हुआ, इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. और जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय से पीएच.डी की डिग्री प्राप्त की। मीरा कांत ने नाटकों के आलावा कहानी संग्रह और उपन्यास भी लिखे हैं। इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह- *हाईफन, कागजी बुर्ज, गली दुल्हनवाली* हैं, इन्होंने दो उपन्यास *तत: किम* और *उर्फ़ हिटलर* भी लिखे हैं, यदि नाटको की बात की जाए तो *ईहामृग, नेपथ्य राग, भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर, कंधे पर बैठा था शाप, हुमा को उड़ जाने दो* और *पुनरपि दिव्या* हैं। मीरा कांत को 'मोहन राकेश सम्मान', 'सेठ गोबिन्द दास सम्मान 2003', 'अंबिका प्रसाद दिव्य स्मृति सम्मान-2004' 'डॉ. गोकुल चन्द गांगुली पुरस्कार-2008', और 'हिन्दी अकादमी का साहित्यकार सम्मान' प्राप्त हो चुके हैं। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* की कथा कल्पना पर आधारित है, लेकिन इसमें सत्ताधारी लोगों की घटिया सोच को भी प्रस्तुत किया गया है, इसको काल्पनिक पक्षी हुमा की भाँति प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में हुमायूँ के जीवन को पूर्ण विराम से पलटकर देखने का एक प्रयास किया है। हुमायूँ का शाब्दिक अर्थ- वह शख्स है जिसके सिर पर हुमा अर्थात् भाग्य लाने वाले एक ख्याली परिंदे की छाया पड़ी हो; जानी भाग्यवान। अपने नाम के विपरीत बादशाह हुमायूँ के जीवन का घटना-क्रम तो उसे एक बदकिस्मत बादशाह करार देता है, उसकी मौत भी एक बदकिस्मत मौत साबित हुई। पहले पुस्तकालय की सीढ़ियों से फिसलकर घायल होना, फिर मौत के बाद मैयत उठने का लगभग दो सप्ताह का लंबा इंतजार। नाटक में प्रस्तुत किया गया है कि इसकी मौत का भी भ्रम था कि बादशाह मृत हैं या जीवित। इस नाटक को अंत में राजनीतिक कथा में बदल कर प्रस्तुत किया गया है कि राजनीति में जहां जिन्दगी और मौत दोनों सिर्फ़ अलग-अलग दो मोहरे होते हैं और यह खेल सदियों से अलग-अलग साम्राज्यों एवं हुकूमतों के द्वारा खेला जाता रहा है। आज के नेता लोग भी इससे नहीं बच सके। नाटककार ने इतिहास के माध्यम से आधुनिक राजनीतिक समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

कृष्ण बलदेव वैद-

कृष्ण बलदेव वैद हिन्दी के आधुनिक गद्य-साहित्य में सबसे महत्त्वपूर्ण लेखकों में गिने जाने वाले हैं, इन्होंने डायरी, कहानी और उपन्यास विधाओं के अलावा नाटक और अनुवाद के क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया है। इनका जन्म 27 जुलाई 1927 को डिंगा, नामक स्थान में हुआ जो अभी पंजाब, पाकिस्तान में है और मृत्यु 6 फ़रवरी 2020 को न्यू यॉर्क, संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई। इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. और हार्वर्ड विश्वविद्यालय से पीएच. डी की उपाधि हासिल की। आप 1950 से 1966 के बीच हंसराज कॉलेज, दिल्ली और बाद में पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में अंग्रेजी साहित्य के अध्यापक रहे। कृष्ण बलदेव वैद बाद में मध्य न्यूयॉर्क स्टेट विश्वविद्यालय, अमेरिका और ब्रेंडाइज विश्वविद्यालय में अंग्रेजी एवं अमरीकी-साहित्य का अध्यापन भी किया। इनके द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटक- *भूख आग है, हमारी बुढ़िया, सवाल और स्वप्न, परिवार-आखाड़ा, कहते हैं जिसको प्यार* और *मोनालिज़ा की मुस्कान* हैं। कृष्ण बलदेव वैद को 'छत्तीसगढ़ राज्य का 'पंडित सुन्दरलाल शर्मा सम्मान' और 'हिन्दी अकादमी दिल्ली का शलाका' सम्मान प्राप्त हुआ। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *कहते हैं जिसको प्यार* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *कहते हैं जिसको प्यार* में आज के बदल रहे मानवीय मूल्यों और सम्बन्धों को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है और साथ ही यह नाटक रंगमंचीयता दृष्टि से भी सफल रहा है क्योंकि नाटककार ने नाटक के प्रयेक अंक के आरम्भ में मंच से सम्बंधित दिशा-निर्देश दिये हैं। इस नाटक की तीन मुख्य पात्र हैं, जो नाटक की कथा को प्रभावित करती हैं। इन तीनों पात्रों को ही केंद्र मानते हुए नाटककार ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को रचनात्मक विमर्श के साथ प्रस्तुत किया है। इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है कि आज के व्यक्ति की जिन्दगी उनके द्वारा किए गये समझौतों में ही उलझ कर रह गई है। इस नाटक की गीता पात्र भी यही कहती है कि कुछ समय पहले की हुई गलतियों की सज़ा हम सारी जिन्दगी भुगतते हैं।

पीयूष मिश्रा-

पीयूष मिश्रा का जन्म 13 जनवरी 1963 को ग्वालियर, मध्य प्रदेश में हुआ। पीयूष मिश्रा एक प्रसिद्ध नाटक अभिनेता, संगीत निर्देशक, गायक, गीतकार और पटकथा लेखक हैं। इनका पालन-पोषण ग्वालियर में ही हुआ और बाद में इन्होंने दिल्ली स्थित नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा से स्नातक की शिक्षा प्राप्त की। इनकी शादी परिया नारायण से हुई। 1986 में नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा पास होने के बाद पीयूष मिश्रा ने दिल्ली में ही थिएटर करना शुरू कर दिया। इन्होंने 'मकबूल गुलाल गैंग्स ऑफ वासेपुर' जैसी फिल्मों में गाने भी गाये हैं। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *गगन दमामा बाज्यो* का चयन किया गया है।

गगन दमामा बाज्यो नाटक भगत सिंह के जीवन पर आधारित है। गगन दमामा बाज्यो, गुरु ग्रन्थ साहिब की एक सूक्ति है जिसका मतलब 'तू आज से भिड जा बाकी देख लेंगे'। इस नाटक में भगत सिंह की उस सोच को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें उन्होंने आज के हिंदुस्तान की कल्पना कर ली थी। इस नाटक में हम देखते हैं कि भगत सिंह और सुखदेव बैठे हुए हैं और आपस में बातचीत कर रहे हैं कि जहाँ तक आज़ादी का सवाल है तो हिंदुस्तान को सिर्फ आज़ादी की जरूरत नहीं है और अगर यह गलत तरीके से मिल गई, तो आज के सत्तर साल बाद भी हालात ऐसे ही रहेंगे। अंग्रेज चले जाएँगे कालाबाजारी का साम्राज्य होगा, अमीर और अमीर होता जायेगा और गरीब और गरीब होता जायेगा। धर्म और जाति के आधार पर दंगे होंगे। आज हम यथार्थ में यह सब देख रहे हैं।

किशोर कुमार सिन्हा-

किशोर कुमार सिन्हा का जन्म 1955 को अलीगढ़ नामक शहर में हुआ और वहीं से स्कूल एवं कॉलेज की शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने 1976 में सेंट स्टीफेंस नामक कॉलेज से एम.एससी. प्रथम स्थान में प्राप्त की। 1977 में भारतीय राजस्व सेवा एवं 1978 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में कार्यरत हुए। किशोर कुमार सिन्हा ने अपने साहित्य की शुरुआत उपन्यासों से की, इन्होंने बंधुओं मजदूरों पर आधारित प्रथम उपन्यास *गाथा भोगनपूरी* लिखा और आगरा शहर की व्यवस्था के लिए दूसरा

उपन्यास *बेताज शहर* लिखा। नाटकों की बात करें, तो किशोर कुमार सिन्हा के द्वारा सबसे पहला नाटक *किस्सा पंचायत राज का* और दूसरा *झाँसी का किला* लिखा और बाद में *धारा एक सौ चवालीस, यू एंड योर पैट्स* की रचना की गई। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *धारा एक सौ चवालीस* को चयन किया गया है।

चयनित नाटक *धारा एक सौ चवालीस* की कथा में प्रस्तुत किया गया है कि जब किसी दो धर्मों के बीच साम्प्रदायिक दंगे होते हैं, तो उन दंगों से आम लोग, पुलिस और पत्रकार किस प्रकार प्रभावित होते हैं। इस नाटक की कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है कि पहले इतने भयानक दंगे नहीं होते थे, जितने आज हो रहे हैं। पहले लोगों के बीच अमन-चैन था और वह आपस में मिल-जुल कर रहते थे। अमीर भी थे, गरीब भी थे, लेकिन आपस में अजनबी नहीं थे। दौलत और गरीबी के फांसले इतने लम्बे नहीं थे, जितने आज हैं। नाटककार ने प्रस्तुत किया है कि मंदिर और मस्जिद में सब लोक जाते थे, शहरों में प्रत्येक धर्म का बहुत बड़ा आयोजन होता था, लेकिन एक दिन नुमाइश के दंगल में झगड़ा हो गया, अचानक झगड़ा साम्प्रदायिक दंगों में बदल जाता है और फिर धारा एक सौ चवालीस लगा दी जाती है, जिससे आम लोगों की जिन्दगी अस्त-व्यस्त हो जाती है। इस नाटक में नाटककार ने प्रस्तुत किया है कि ये बात पुरानी भी है और नहीं भी, क्योंकि आज भी दंगे हो रहे हैं और धाराओं का प्रयोग भी किया जाता है।

विभा रानी-

विभा रानी का जन्म 29 मार्च 1959 को बिहार के मधुबनी जिले में हुआ। विभा रानी प्रसिद्ध नायिका, लेखिका, कलाकार और कवियत्री है और इन्होंने सफल रंगकर्मी, नाटी लेखिका और फ़िल्मी अदाकारा के रूप में अपनी पहचान बनाई है। विभा रानी को बचपन से ही कला से अधिक लगाव रहा, इन्होंने अपनी आरम्भिक शिक्षा मधुबनी जिले से पूरी की और बाद में एम.ए. के लिए दरभंगा की ओर रुख किया। विभा रानी को पढ़ाई के साथ-साथ लिखने का भी शौक था। इनके माता-पिता दोनों ही पेशे से शिक्षक थे। विभा रानी ने एम.ए. करते हुए आकाशवाणी के लिए ड्रामा लिखना शुरू किया, जिसे वह खुद अपनी आवाज़ में सुनाने गईं, वहीं से उनका जुड़ाव थिएटर से हुआ। विभा रानी की मैथिली और हिन्दी में आज तक 20 किताबें

छप चुकी हैं। जिनमें कहानियों और नाटकों का समावेश है। विभा रानी को 'कथा अवार्ड', 'मोहन राकेश सम्मान', 'घनश्याम सराफ साहित्य सम्मान' और 'साहित्यसेवी सम्मान' आदि प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *आओ तनिक प्रेम करें* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *आओ तनिक प्रेम करें* की कथा के माध्यम से आज के समाज की कई कुरीतियों पर कलात्मक तरीके से प्रहार किया गया है। इस नाटक के मुख्य पात्र सुलतान और सलीमा हैं, इन दोनों में उम्र का भी काफी अंतर है। सुलतान 60 साल की उम्र के बाद महसूस करता है कि अब तक उनके जीवन में प्रेम के लिए कोई जगह ही नहीं थी और इस उम्र में ही वह सलीमा नामक लड़की से प्रेम कर बैठता है। प्रेम और शांति का संदेश देती हुई कहानी आज के जटिल सम्बन्धों को मनोवैज्ञानिक तरीके से आगे बढ़ाती है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने यह संदेश देने का भी प्रयास किया है कि हमें अपने बुजुर्गों का सम्मान करना चाहिए।

पंजाबी नाटक

कुलदीप सिंह दीप-

कुलदीप सिंह दीप चौथी पीढ़ी के प्रसिद्ध नाटककार और रंगकर्मी हैं, इनका जन्म 4 मई 1968 को पंजाब और हरियाणा के बॉर्डर पर स्थित रोझांवाली नामक गाँव में हुआ, रोझांवाली गाँव जिला फतेयाबाद, हरियाणा में है। कुलदीप सिंह दीप का गाँव ज्यादा विकसित नहीं था और गाँव के ज्यादा लोग निम्न किसानी से सम्बंधित हैं। इनके परिवार में कोई भी पढ़ा-लिखा नहीं था, कुलदीप सिंह दीप अपने परिवार में से पहले ऐसे व्यक्ति थे; जिन्होंने पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की और अध्यापक की नौकरी के लिए नियुक्त भी हुए। कुलदीप सिंह दीप ने लगभग 30 नाटकों की रचना की, इनमें से प्रसिद्ध नाटक *ए यंग कौन लड़ेगा, खुदकुशी दे मोड़ ते, तूं मेरा की लग्गदैं, भूबल दी आग* हैं। कुलदीप सिंह दीप को भाषा विभाग के द्वारा 'आई.सी. नंदा' पुरस्कार और हरियाणा पंजाबी साहित्य अकादमी द्वारा 'नाट अवार्ड' मिल चुका है। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *तूं मेरा की लग्गदैं* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *तूं मेरा की लग्गदैं* आधुनिक युग में बदलते पारिवारिक परिवेश से सम्बंधित है। इस नाटक का मुख्य पात्र प्रदुमन सिंह है, उसने अपनी सारी ज़िन्दगी रेलवे की नौकरी में गुज़ार दी और सारी कमाई अपने परिवार को भेजता रहा। उन्होंने अपनी मेहनत से बच्चों को पढ़ाया-लिखाया और एक अच्छा मकान बनाया, जब प्रदुमन सिंह अपनी नौकरी खत्म कर घर आता है तो परिवार के सभी सदस्य उससे परेशान हो जाते हैं और अपनी आज़ादी में घुटन महसूस करते हैं। प्रदुमन सिंह यह सब देखकर बहुत निराश हो जाता है, इसके विपरीत प्रदुमन सिंह ने जहाँ नौकरी की थी, वहाँ उसका गणेशी नामक एक नौकर था, जो उसे अपने परिवार से भी ज्यादा प्यार करता था, बाद में प्रदुमन सिंह; गणेशी के पास रह कर अपना बाकी का जीवन व्यतीत करने का निर्णय ले लेता है। यह नाटक हमारे आधुनिक समाज में बदलती पारिवारिक परिस्थितियों पर भी प्रश्न चिन्ह लगाता है।

निर्मल जोड़ा-

निर्मल जोड़ा का जन्म पंजाब के मोगा जिले के बिलासपुर नामक गाँव में हुआ। निर्मल जोड़ा ने आरम्भिक शिक्षा अपने ही गाँव से प्राप्त की और सरकारी ब्रजिन्द्रा कॉलेज, फरीदकोट से बीएस.सी. और पंजाब कृषि विश्वविद्यालय लुधियाना एम.एस.सी. एवं पीएच.डी की डिग्री प्राप्त की और बाद में पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला से एम.ए. पंजाबी की डिग्री भी प्राप्त की। निर्मल जोड़ा ने पहले पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना में नौकरी की और अब पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ के युवक भलाई के निर्देशक हैं। निर्मल जोड़ा एक नाटककार के साथ-साथ कवि, आलोचक, टेलीविजन कलाकार और रंगमंच के निर्देशक भी हैं। निर्मल जोड़ा के द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटक *मैं किहा सी, वापसी, स्वामी, मैं पंजाब बोलदा हां, सौदागर* और *माता गुजरी-साका सरहंद* आदि हैं। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *सौदागर* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *सौदागर* आधुनिक युवा पीढ़ी में फैली हुई नशे की समस्या से सम्बंधित है। हमारे समाज के ही कुछ व्यक्ति अपने आर्थिक हित के लिए नशा बेचने का काम करते हैं और साथ-साथ ज्यादा विक्री के लिए नादान युवाओं को अपने जाल में फंसा कर नशेड़ी बना रहे हैं, जिससे उनका काम अच्छा चलता रहे। इस नाटक का

मुख्य पात्र सौदागर है, जो गाँव का आदर्श पुरुष है और पहले गाँव का मुखिया भी रह चुका है, लेकिन सौदागर खुद नशा बेचने का काला धंधा करता है और अपने बेटे के लिए सारे गाँव की ज़मीन खरीद लेना चाहता है। वह अपने बेटे को नशे से बचाने के लिए, अपने गाँव की अपेक्षा चंडीगढ़ पढ़ने के लिए भेजता है और अपने गाँव में अनेक लोगों को नशे का आदी बना रहा है, लेकिन सौदागर की आँखे उस समय खुलती हैं, जब उनके खुद के बेटे की नशे के कारण मौत हो जाती है। इस नाटक में नाटककार ने आधुनिक नशे का बीज बो रहे राजनेताओं और आम लोगों को संदेश दिया है कि वे खुद अपनी अंश को मिटा रहे हैं।

अजमेर सिंह औलख-

अजमेर सिंह औलख का जन्म 19 अगस्त 1942 को कुभड़वाल नामक गाँव, जिला मानसा, पंजाब में एक गरीब किसान के घर हुआ। अजमेर सिंह औलख साहित्य के साथ-साथ शिक्षा से भी जुड़े हुए थे और कुछ समय पहला नेहरु मैम्मोरियल कॉलेज से सेवा मुक्त हुए थे। कुछ समय पहले अजमेर सिंह औलख को कैंसर की भयानक बीमारी ने घेर लिया था, लेकिन बाद में सही होने के बावजूद भी 15 जून 2017 को इनका देहांत हो गया। अजमेर सिंह औलख ने अपनी कलम से अनेक नाटकों की रचना की, जिनमें प्रसिद्ध हैं- *भंजीयां बाहा, सत बगाने, कहर सिंह दी मौत, सलवान, एक सी दरिया* और *झना दा पानी*। इनके ज्यादा नाटकों का विषय पंजाब की किसानी से सम्बंधित है और आप प्रगतिवाद विचारधारा से भी प्रभावित थे। 2006 में प्रकाशित इनका एकांगी-संग्रह *इश्क बाझ नमाज दा हज नाही* के लिए 'भारतीय साहित्य अकादमी अवार्ड' भी मिला है और साथ ही 'पंजाबी साहित्य रतन' के रूप में भी सम्मानित किया गया। 2000 में पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की ओर से 'जीवन गौरव' सम्मान और 1999 में भाषा विभाग पंजाब की ओर से भी सम्मानित किया गया है। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* और *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* पंजाब एवं भारतीय समाज की आर्थिक त्रासदी को प्रस्तुत करता है। इस नाटक में नाटककार ने निम्न किसानी जीवन की दु:खद स्थिति, साहूकारों के द्वारा लगाया गया ब्याज और कर्ज़ होने के कारण छोटे

किसानों की ज़मीन बिक जाने के कारण उत्पन्न संकट, मजदूर वर्ग का शोषण, बनावटी सामाजिक शानो-शौकत, युवा पीढ़ी की भटकन और शादियों पर अपनी झूठी प्रशंसा का दिखावा करना आदि का यथार्थ रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में आर्थिक संकट के कारण पात्र का गाँव से शहर जाना और वहाँ मजदूरी करना आदि एक गहरी मानसिकता को प्रस्तुत करता है। वर्ग परिवेश के कारण मुख्य पात्र चरणे का किसान से मज़दूर बनना और मेजर का शराब का आदी बनना आदि अनेक आधुनिक परिवारों की त्रासदी को प्रस्तुत करता है, जो गलत खर्च के कारण खुद-ब-खुद ऐसी स्थिति में ग्रस्त होते हैं, जिससे सारी ज़िन्दगी बाहर आना बहुत मुश्किल हो जाता है।

दूसरा चयनित नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* आधुनिक किसानी समस्याओं से जुड़ा हुआ नाटक है, इसमें मध्य वर्गीय किसानों के कर्ज़, युवा पुत्र का नशेड़ी होना, औद्योगिक क्रांति के कारण जमीनों पर कब्जा और सरकार के कर्मचारियों का लोकतंत्र की हत्या कर तानाशाह का रूप दिखायी देना आदि समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक का मुख्य पात्र बचना है, जो बहुत ज्यादा कर्जई है, जिसके कारण वह आत्महत्या की सोच रहा है। इस नाटक में बेटियों की बदलती मानसकिता को प्रस्तुत किया गया है। बचने किसान की बेटी अमन अपने पिता को आत्महत्या से रोकती है और सरकार विरोधी किसानी संघर्ष में भी आगे बढ़कर हिस्सा लेती है, वह पिता बचने और नशेड़ी भाई गगन द्वारा विरोध करने पर भी नहीं रूकती और किसानी संघर्ष में पुलिस की गोली से शहादत दे देती है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने बदलती युवा मानसिकता को प्रस्तुत किया गया है।

नाहर सिंह औजला-

नाहर सिंह औजला का जन्म पंजाब के नसराली गाँव जो मलेरकोटला के नजदीक, पंजाब में हुआ। नाहर सिंह औजला ने अपनी आरम्भिक शिक्षा गाँव नसराली से प्राप्त की और उच्च शिक्षा खन्ना कॉलेज से प्राप्त की। नाहर सिंह औजला का पिता एक निम्न किसान था और नाहर सिंह औजला ने भी अपने पिता के साथ किसानी का काम किया एवं निम्न लोगों की त्रासदी को देखा, इस लिए इनके नाटकों में आम किसानों और मजदूरों की समस्याओं को बड़ी गहराई से ही प्रस्तुत किया गया

है। नाहर सिंह औजला, गुरशरण सिंह के नाटकों से बहुत प्रभावित थे इसी कारण उन्होंने कॉलेज पढ़ते समय अपने गाँव में एक 'लोक कला केंद्र नसराली' नामक नाटक मंडली की स्थापना भी की थी। नाहर सिंह औजला की शादी अवतार कौर औजला से 1986 में हुई, जो कनाडा की वसनीक थी और 1987 में नाहर सिंह औजला भी कनाडा चले गये। नाहर सिंह औजला के द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटक *डालरां दी दौड़, रौकी, अहसास, तिड़के रिश्ते, नवें युग की बात, सुपर वीज़ा, नशियां दा नदीन* और *सहम दे पल* आदि हैं। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *सुपर वीज़ा* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *सुपर वीजा* विदेशों में बुजुर्गों की स्थिति को प्रस्तुत करता है। इस नाटक का मुख्य पात्र करतार सिंह अपनी पत्नी के साथ अपने बेटे मनप्रीत सिंह जो विदेश में रहता है, उसके पास बहुत प्यार से जाते हैं, लेकिन वहाँ उसके बेटे की पत्नी हरमन, उन दोनों को नफ़रत की नज़र से देखती है और उनको माता-पिता का आदरभाव एवं सम्मान नहीं देती, जिस कारण करतार सिंह को विदेश सोने के पिंजरे जैसा प्रतीत होने लगता है, नाटक के अंत में करतार सिंह वापस भारत आने का मन बना लेता है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने बदलते पारिवारिक रिश्तों एवं पराई संस्कृति की घुटन को, एक सामान्य व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया है। इस नाटक का उद्देश्य तत्कालीन समाज का यथार्थवादी रूप प्रस्तुत करना था।

गुरचरण सिंह जसूजा-

गुरचरण सिंह जसूजा का जन्म पंजाब के अमृतसर शहर में हुआ, इन्होंने आरम्भिक शिक्षा भी अमृतसर से ही प्राप्त की एवं पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ से एम.ए. पंजाबी पास की और बाद में दिल्ली में नौकरी शुरू कर दी। गुरचरण सिंह जसूजा ने पहले एक कवि के रूप में साहित्य में प्रवेश किया था, लेकिन बाद में वह नाटक की और आकर्षित हुए और उन्होंने बहुत-से नाटकों की रचना की, जिनमें प्रसिद्ध हैं- *मकड़ी दा जाल, अंधकार, एक हीरो की तलाश, कंधा रेत दियां, अंधकार, जंगल, मखनशाह* और *परियां*। इनके द्वारा कुछ आलोचनाएँ भी लिखीं गई, जिनमें *पंजाबी नाटक-सिद्धात ते तकनीक* प्रसिद्ध हैं। गुरचरण सिंह जसूजा को पंजाबी साहित्य आकादमी की ओर से 'साहित्यिक पुरस्कार' प्राप्त हुआ और साथ ही हिन्दी

नाट्य-संघ के द्वारा भी सम्मानित किया गया। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *परियां* और *कंधा रेत दियां* को चयन किया गया है।

चयनित नाटक *परियां* एक काल्पनिक नाटक है। इसमें कल्पना के आधार पर पारिवारिक और दफ्तरी समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में नाटककार ने परियों के प्रति अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है कि परियां कहाँ से आती हैं? अब परियां कहाँ हैं? और इनके पंख कैसे निकल आते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए, उन्होंने समकालीन जीवन के द्वारा सिद्ध किया है कि जब स्त्री ज़ाग जाती है, तो उसके पंख निकल आते हैं। यह पंख निकल आने के कारण वह जागरूक हो जाती है और किसी का दमन सहन नहीं करती। इस नाटक में नेता ललित सेठ, डॉ. डेश और प्रोफैसर जैसे दोषी व्यक्तियों का स्त्रियों द्वारा विरोध करके उसको सज़ा दिलाई जाती है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने स्त्री और मध्य वर्ग को इंसाफ लेते हुए दिखाया है और साथ ही पूंजीपति और भ्रष्ट नेताओं को नसीहत देने का प्रयास भी किया गया है।

दूसरा चयनित नाटक *कंधा रेत दियां* समकालीन भ्रष्टाचार, अफसरशाही और वेश्याओं की समस्या से जुड़ा हुआ है। इस नाटक में मुख्य पात्र बचन सिंह है। उसने 20-25 वर्ष पहले नकली कोकीन का काम करके काफ़ी पैसा कमाया था, लेकिन अब वह सब बुरे कामों को छोड़ चुका है और उस गलत काम की नमोशी उन्हें आज भी होती है। उसका बेटा कुंदन सिंह इंजीनियर अफसर भी उस नकली कोकीन की आमदन की ही ऊपज है। कुंदन सिंह खुद भ्रष्ट नहीं है और न ही ऐसी रिश्वत को स्वीकार करता है, लेकिन अपने बाप के कारण वह दाग़ी है। ऐसे ही इस नाटक की एक पात्र उर्मिला है, वह खुद बहुत साफ़ सुथरे चरित्र की है, लेकिन उसकी माँ वेश्या थी, उसका उसकी इच्छा के बिना हुआ जन्म ही उसे दागी बना देता है। इस प्रकार इस नाटक में ठेकेदारों के काले कारनामों को भी प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इस नाटक में एक क्लर्क पात्र है, जिसकी तीन बेटियाँ जवान हैं और उनकी शादी भी करनी है, लेकिन कम तनखाह होने के कारण वह रिश्वतखोर बना हुआ है।

स्वराजबीर-

स्वराजबीर का जन्म 22 अप्रैल 1958 को पंजाब के गुरदासपुर जिले के घुमाण पंडोरी के नजदीक मलोवाली नामक गाँव में हुआ, स्वराजबीर ने अपना साहित्यिक जीवन एक कवि के रूप में शुरू किया, लेकिन बाद में उनकी नाटकों में ज्यादा रुचि पैदा हुई। स्वराजबीर के द्वारा काफी नाटकों की रचना हुई है, जिसमें *धर्मगुरु, मेदनी, कृष्णा, शायरी, कल्लर, जन दा गीत, हक, तस्वीरा* और *अग्नि कुंड* हैं। इनके ज्यादा नाटक किसानी समस्याओं से सम्बंधित हैं। पेशे से आई.पी.एस अधिकारी रहे, स्वराजबीर की लेखनी हमेशा समाज के गंभीर मुद्दों को उठाती रही है। उनकी लेखनी का यह जादू है कि उनके नाटक बड़े पैमाने पर शोध के लिए प्रेरित करते हैं। स्वराजबीर को पंजाब साहित्य अकादमी के द्वारा भी सम्मानित किया गया है। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *कल्लर* को चयन किया गया है।

चयनित नाटक *कल्लर* की कथा में पुरानी पीढ़ी के संघर्ष और निम्न किसानी की त्रासदी को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में ही स्वराजबीर ने समकालीन युग में युवाओं के द्वारा गलत तरीके से प्रवास धारण करने की प्रवृत्ति के यथार्थ रूप को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक की कथा एक ऐसे परिवार से जुड़ी है, जो अपनी मेहनत और संघर्ष के साथ अपनी इस धरती से, अपना नया जीवन गतिशील करते हैं। इस नाटक का मुख्य पात्र दलबीर सिंह नौकरी न मिलने और खेती योग्य भूमि कम होने के कारण विदेश जाना चाहता है। उसका पिता गुरदयाल सिंह सख्त मेहनत करके अपनी भूमि को ऊपजाऊ बनाता है और अपनी भूमि में से कल्लर को खत्म कर देता है। गुरदयाल सिंह सख्त मेहनत करने के बाद भी पारिवारिक खर्चों के कारण कर्ज़ के नीचे है। दलबीर की पढ़ाई, लड़की की शादी पर ज्यादा खर्ज आदि कारणों से गुरदयाल सिंह आर्थिक संकट में फंस जाता है। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से मध्य वर्ग की ज्यादा इच्छाओं के कारण उत्पन्न हुई समस्याओं को प्रस्तुत किया है, जो आधुनिक बदलते परिवेश को सबसे ज्यादा प्रभावित करती है।

पाली भूपिंदर सिंह-

पाली भूपिंदर सिंह का नाम एक पंजाबी नाटककार और रंगमंच के निर्देशक के रूप में प्रसिद्ध है। पाली भूपिंदर सिंह का जन्म 6 सितंबर 1965 को पंजाब के जैतों नामक शहर में हुआ। पाली भूपिंदर सिंह ने अपनी आरम्भिक शिक्षा जैतों से हासिल की और बी.ए. सरकारी कॉलेज, फरीदकोट से की। इनके द्वारा काफी नाटक और आलोचनाओं की रचना की गई, इनके प्रसिद्ध नाटक- *रात चानणी, चंदन दे ओहले, मैं फिर आवगां, उस नूं कहीं, मिट्टी दा बावा, सिरजना* आदि हैं। पाली भूपिंदर सिंह ने बतौर लेखक और निर्देशक 'स्टूपैड सेवन' नामक फिल्म में काम भी किया है, इनको पंजाबी नाटक और रंगमंच के प्रति योगदान के लिए गुरु नानक देव विश्वविद्यालय से 'आई.सी. नंदा' नामक अवार्ड प्राप्त हुआ, उसके बाद पंजाबी साहित्य अकादमी की ओर से 'करतार सिंह धालीवाल' अवार्ड भी प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *चन्दन दे ओहले* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *चन्दन दे ओहले* समकालीन युवा पीढ़ी का प्रवास की ओर जाने की स्थिति को प्रस्तुत करता है। इस नाटक में प्रधान नामक एक पात्र जिसकी एक बेटी और एक बेटा है। प्रधान किसी-न-किसी तरीके से अपने बेटे को विदेश भेजना चाहता है। प्रधान को शर्मा नामक एक व्यक्ति मिलता है, जो उसे बताता है कि उसकी नज़र में एक विदेशी लड़की है, जो विदेश से आयी है और उसने शादी के बाद विदेश ही जाना है, लेकिन उसका पिता पैसे मांगता है। प्रधान पैसे देने को तत्पर तैयार हो जाता है, लेकिन जब विदेशी लड़की को पैसों की सच्चाई पता चलती है, तो वह शादी से इन्कार कर देती है। प्रधान और उसके बेटे बनी को विदेश जाने की इतनी लालसा होती है कि वह विदेशी लड़की के लालची पिता मि. गेल के साथ अपनी बेटी माणा की शादी कर उन्हें विदेश भेज देते हैं, चूँकि वह वहाँ जाकर अपने भाई को बुला सके। इस नाटक में नाटककार ने डालरों की दौड़, झूठी-मिथ्या शोहरत, बदलती संस्कृति और रिश्ते-नातों में खत्म होती जा रही नैतिकता का वर्णन किया है।

आत्मजीत-

आत्मजीत पंजाबी भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार है, इनका जन्म 1950 को एक साहित्यकार और अध्यापक एस.एस. अमोल के घर हुआ। इन्होंने खालसा कॉलेज

अमृतसर से एम.ए. की और बाद में नाटक के क्षेत्र में पीएच.डी भी की। आत्मजीत के द्वारा बहुत-से नाटक लिखे गये हैं, जिनमें कुछ प्रसिद्ध- *कब्रिस्तान, चाबियां, हवा महल, रिश्तियाँ दा की रखिएँ नाम, शहर बीमार है, चिड़िया, पूरण, पंच नंद दा पानी, कैमलूप्स दियां मछियाँ, मंगू कामरेड, तत्ती तवी दा सच्च, तस्वीर दा तीजा पासा* और *मुड़ आ लामां तो* आदि हैं। आत्मजीत नाटक लिखने के साथ-साथ निर्देशक के रूप में भी देश-विदेश में जाने जाते हैं। आत्मजीत के बहुत सारे नाटक हिन्दी में अनुवाद हो चुके हैं। इनके द्वारा रचित नाटक *तत्ती तवी दा सच* के लिए इन्हें 2009 में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित भी किया गया है। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *मैं ता एक सारंगी हां* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *मैं ता एक सारंगी हां* समकालीन स्त्री की त्रासदी को प्रस्तुत कर रहा है। इस नाटक की तीन मुख्य पात्र हैं- गीता, मीना और पाल। इन तीनों ने ही किसी-न-किसी व्यक्ति के द्वारा बचपन में ही जिस्मानी संताप को भोगा है और उसको ही वह अभी तक भुला नहीं पायी। इस नाटक के माध्यम से हम देखते हैं कि निम्न एवं मध्य वर्ग की बेटियों को हवस का शिकार ज्यादा बनाया जाता है। इन तीनों पात्रों पर अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुकूल इतना गहरा प्रभाव पड़ता है कि इन्होंने शादी न करने का फैसला कर लिया और साथ ही उन सभी समस्याओं का डट कर विरोध कर रही हैं, जिसका सामना उन्हें अपने जीवन में करना पड़ा। उनका मानना था कि जिस प्रकार का संताप हमने भोगा है; ऐसा संताप कोई और न भोगे। नाटककार ने इन तीनों पात्रों के माध्यम से बदलते सामाजिक रिश्तों की यथार्थवादी दशा को प्रस्तुत करते हुए स्त्री को शक्ति का प्रतीक बताया है।

सतीश कुमार वर्मा-

सतीश कुमार वर्मा का जन्म 04 सितंबर 1955 को सनोर जिला पटियाला, पंजाब में हुआ, उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए. हिन्दी, एम.ए. अंग्रेजी, एम.फिल और पीएच.डी करने के बाद पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला में नौकरी की। सतीश कुमार वर्मा ने पंजाबी नाट्य क्षेत्र में बहुत बड़ा नाम कमाया है। पिछले 40 वर्ष से थिएटर में इनकी अहम भूमिका रही है। इन्होंने नाट्य-साहित्य की आलोचनाओं के अलावा खुद भी नाटक लिखे, इनके प्रसिद्ध नाटक- *परत आऊन तक,*

लोक मना दा राजा और *दायरे* हैं। सतीश कुमार वर्मा ने *बरैखत और पंजाबी नाटक, पंजाबी नाट चिन्तन, पंजाबी रंगमंच दी भूमिका, पंजाबी नाटक प्रगति और प्रसार, पंजाबी नाटक दा इतिहास और पंजाबी नाटक* और *रंगमंच के सौ वर्ष* आदि प्रसिद्ध आलोचनाएँ लिखी। सतीश कुमार वर्मा को अलग-अलग समय अलग-अलग संस्थाओं के द्वारा सम्मानित भी किया गया है। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *लोक मना दा राजा* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *लोक मना दा राजा* की कथा में महाराजा रणजीत सिंह के फलसफे को नाटकी रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक की कथा ऐतिहासिक होते हुए भी समकालीन समस्याओं को प्रस्तुत कर रही है। महाराजा रणजीत सिंह को पंजाब के लोग एक बहादर योद्धे के रूप में देखते हैं। पंजाबी लोग उसके डर से नहीं, बल्कि उनकी निडरता, दलेरी और सहनशीलता से, उन्हें याद करते हैं। महाराजा रणजीत सिंह की सहनशीलता और जन-सामान्य के प्रति सहृदय की भावना के कारण ही उसके राज्य में सभी धर्म के लोगों को पूर्ण अधिकार थे। इस नाटक की कथा में शिकारी की रक्षा, माँ का प्यार, बाल मोह और सभी धर्मों के आदरभाव आदि उदहारणों को प्रस्तुत कर, यह बताने का प्रयास किया है कि उस समय शांतिपूर्ण माहौल था। इस नाटक में अच्छी प्रशासनिक व्यवस्था की उदाहरण प्रस्तुत कर, आज की व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाए गये हैं। डॉ. सतीश कुमार का ये नाटक रंगमंच की दृष्टि से भी सफल रहा है।

दविंदर दमन-

दविंदर दमन का जन्म 15 जुलाई 1943 को संगरूर जिले के गाँव भट्टीवाल कलां, पंजाब में हुआ। इनके पिता कामरेड दलीप सिंह स्वतंत्रता सेनानी थे और उन्होंने काफी समय जेल भी बताया। दविंदर दमन ने आरम्भिक शिक्षा अपने गाँव से प्राप्त की और पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से बी.ए. की। दविंदर दमन पंजाबी के प्रसिद्ध नाटककार, नाटक निर्देशक और प्रसिद्ध रंगकर्मी हैं। दविंदर दमन के द्वारा बहुत सारे नाटकों की रचनाएं की गई, जिनमें प्रसिद्ध हैं *नहीं बैठना बिगानी छावें, तपश, कामागाटामारू, सुनेहा, छां विहूणे, सूर्य दा कत्ल, कतरा कतरा जिन्दगी, छिपण तो पहला, बल्दे जंगला दे रुख* और *पानी ते अग तुरदी* आदि हैं। दविंदर दमन को समय-समय पर बहुत-सी संस्थाओं के द्वारा सम्मानित भी किया गया है। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *छां विहूणे* को चयन किया गया है।

चयनित नाटक *छां विहूणे* की कथा समकालीन युग में बदलते जीवन मूल्यों से जुड़ी हुई है। इस नाटक में समकालीन समाज की आर्थिक समस्या को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है, एक परिवार जिसका मुख्य सदस्य ही कमाकर परिवार को चला रहा हो, यदि उसी की मौत हो जाए, तो उस परिवार का बाद में क्या हाल होगा? ऐसी त्रासदी को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है। बाद में चाहे उनका बेटा किसी प्राइवेट सैक्टर में नौकरी शुरू कर भी लेता है, लेकिन उनकी तनखाह ही इतनी कम होती है कि अगली तनखाह आने से पहले रसोई का सारा समान खत्म हो जाता है, नाटक के अंत में नाटककार एक आशावादी संदेश भी दिया है, जिसमें बच्चे खुद भूखे रहकर अपनी माँ के लिए खाना लेकर आते हैं।

जतिंद्र बराड़-

जतिंद्र बराड़ चौथी पीढ़ी के प्रसिद्ध नाटककार है। इनका जन्म 1945 में हुआ, मध्य वर्ग के होते हुए भी इन्होंने इंजीनियर की डिग्री प्राप्त की। इन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक असमानताओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जतिंद्र बराड़ ने दलित वर्ग और दाम्पत्य की त्रासदी के साथ-साथ बच्चों के भविष्य के प्रति चिंता प्रकट की। जतिंद्र बराड़ ने समकालीन समस्याओं को लेकर काफी नाटक लिखे; जिनमें कुछ प्रसिद्ध नाटक हैं- *फासले, कुदेसना, पायदान, फाइल चलती रही, मिर्च मसाला*। जतिंद्र बराड़ ने अपने नाटकों का निर्माण अपने निजी अनुभव के आधार पर किया। जतिंद्र बराड़ को 'पद्मश्री अवार्ड' से भी सम्मानित किया गया है। प्रस्तुत शोध में इनके द्वारा रचित नाटक *पायदान* का चयन किया गया है।

चयनित नाटक *पायदान* की कथा आधुनिक युग की जाति-पाति और ऊच-नीच की भावना को प्रस्तुत करती है, इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने प्रस्तुत किया है कि आज भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति आधारित विभाजन बहुत ज्यादा बढ़ रहा है, अब इसे खत्म करना बहुत ही मुशिकल और कठिन है। इस नाटक में नाटककार ने एक ही घर में दो नौकर पात्रों की कथा को प्रस्तुत किया है। जिसमें एक रामू जो उच्च जाति राजपूत से सम्बंधित है और दूसरी पात्र बीरो है, जो पढ़ी-

लिखी है, लेकिन निम्न जाति से सम्बंधित हैं। रामू पात्र अपनी उच्च जाति का गौरव प्रस्तुत कर अपने-आपको बड़ा और बीरो को दलित समझता है। लेकिन बीरो उसे ऐसी बातें सुनाती है कि उसके दिमाग से जातिवाद का कीड़ा निकल जाता है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने नारी की बदलती सोच को भी प्रस्तुत किया गया है।

ओंकारप्रीत सिंह-

ओंकारप्रीत सिंह का जन्म जलंधर जिले के मदार नामक गाँव में हुआ। ओंकारप्रीत सिंह 1991 में भारत से कनाडा चले गए, वहीं से पॉलिटेक्निक पढ़ाई की, इन्होंने वहाँ से बी.टेक कम्पूटर साइंस और मास्टर गणित में की और वहीं किसी कम्पनी में एक मनेजर की नौकरी कर रहे हैं और वुडब्रिज़ उनटारीऊ में रह रहे हैं। ओंकारप्रीत सिंह ने पंजाबी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में अपनी रचनाएँ लिखी। ओंकारप्रीत सिंह नाटककार के आलावा एक अच्छे कवि भी हैं, इनके द्वारा सौ से अधिक कविताओं का निर्माण भी किया गया है, इनके प्रसिद्ध नाटक *प्रगटिओ खालसा* और *आजादी दे जहाज* हैं, ओंकारप्रीत सिंह के द्वारा रचित नाटक *प्रगटिओ खालसा* का सबसे पहला रंगमंच 1999 में खालसा पंथ की सिरजना के 300 वें साल की ख़ुशी के जश्न में प्रस्तुत किया गया और कुछ समय बाद में चेतना प्रकाशन के द्वारा इसका प्रकाशन किया गया। ओंकारप्रीत सिंह को कनेडियन समाज में अपना साहित्यिक योगदान देने के कारण 'कनेडियन हाउस ऑफ़ कामनज' और अन्य सामाजिक और साहित्यिक संगठनों से भी सम्मानित किया गया है।

चयनित नाटक *प्रगटिओ खालसा* की कथा को ऐतिहासिक आधार बनाकर आधुनिकता को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस नाटक में नाटककार ने एक गरीब परिवार की त्रासदी को प्रस्तुत किया है, पहले समय में जैसे अमीर, शाह और जमींदार वर्ग के लोग गरीबों का शोषण किया करते थे। प्रस्तुत नाटक में भी ऐसी कथा को ही प्रस्तुत किया गया है कि एक गरीब व्यक्ति अपने परिवार समेत साहूकार के खेतों में काम करता है और साहूकार उनको फसल का कुछ हिस्सा दे देता है, नाटक में दिखाया गया है कि उस गरीब व्यक्ति का शरीर बहुत कमजोर है और वह अपने साथ अपनी पत्नी और एक बच्चे से भी पूरी तेज गर्मी में काम ले रहा है, गर्मी ज्यादा

होने के कारण उन सबको बार-बार पसीना साफ करना पड़ रहा है, शाम तक जब गर्मी कम होती है तो वहाँ बहुत बड़े पेट वाला साहूकार आ जाता है, उसके सामने तीनों मजदूर हाथ जोड़कर खड़ जाते हैं, साहूकार उन तीनों की ओर गुस्से से देखता है और अपने आदमियों से आनाज की बोरियों को उठाने को कहता है, गरीब व्यक्ति और उसकी पत्नी साहूकार के आगे गिड़-गिड़ाते हैं, लेकिन साहूकार उनकी एक नहीं सुनता, इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने आज की पूंजीवादी व्यवस्था को प्रस्तुत किया है कि आज भी अमीर व्यक्ति गरीबों का इसी तरह शोषण कर रहे हैं।

अनीता शबदीश

समकालीन पंजाबी रंगमंच में अदाकार और निर्देशक की भूमिका प्रस्तुत करने वाली अनीता शबदीश का जन्म 23 अक्टूबर 1970 को पंजाब के गुरु हरसहाय, जिला फिरोजपुर में हुआ, अनीता शबदीश पहले कथक डांसर बनना चाहती थी, लेकिन सरकारी कॉलेज, मोहाली, में दाखला लेने के बाद वह डॉ. आत्मजीत के नाटकों से प्रभावित होकर, रंगमंच से जुड़ गई। अनीता शबदीश ने पंजाबी भाषा में 20 से अधिक नाटक लिखे, जिनमें प्रसिद्ध- *चिड़िया दी अंबर वल उड़ान, सुलगदे सपने गदर दे, कथा रिड़दे परिंदे दी, लड़की जिस नू रोना नहीं औंदा, हवा जे ऐदां ही वगदी रही, जिस पिंड दा कोई नाम नहीं, मोहन दास* और *मन मिट्टी दा बोलिया* आदि हैं। इनके द्वारा रचित नाटक *सुलगदे सपने गदर दे* और *चिड़िया दी अंबर वल उड़ान* दोनों कनाडा में खेले गये हैं।

चयनित नाटक *कथा रिड़दे परिंदे दी* की कथा आधुनिक बुद्धिजीवियों के अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करती है। इस नाटक को चार अंको में विभाजन करते हुए नाटककार ने प्रस्तुत किया है कि आधुनिक बुद्धिजीवी प्राचीन परम्पराओं को त्यागना भी चाहते हैं और इसके विपरीत सामाजिक बंधनों में जकड़े हुए जातिगत संस्कारों को भी नहीं छोड़ना चाहते। इस नाटक का मुख्य पात्र प्रगतिशील लेखक है। प्रगतिशील लेखक इस अन्तर्द्वन्द्व में फंसा हुआ है कि जब भी वे कुछ लिखने लगता है तो उसकी मृत बेटी उनसे इंसाफ मांगने के लिए आ जाती है क्योंकि उसने अपने नाटकों के पात्रों के माध्यम से जीवन मूल्यों का प्रचार किया और बहुत सारे लोगों के लिए आदर्श बन कर उनकी मदद की, लेकिन अपनी खुद की बेटी के लिए इंसाफ नहीं कर सका। नाटक के शुरू से लेकर अंत तक मुख्य पात्र अन्तर्द्वन्द्व का शिकार होता रहता है।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: सामाजिक पक्ष

2.1.1 सामाजिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और सामाजिक परिवर्तन के कारण

मनुष्य प्रकृति के साथ मिलकर रहना पसन्द करता है, वह अकेला नहीं रह सकता। सामाजिक प्राणी होने के कारण जन्म से लेकर मृत्यु तक, अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति के लिए समाज पर निर्भर रहता है। समाज के बिना उसका मानसिक विकास संभव नहीं है। समाज यानी लोगों का समूह, जहाँ सभी लोग मिल-जुल कर रहते हैं और उन्हें मानवीय सुरक्षा मिलती है। समाज सामान्य मानव समूह न होकर सामाजिक सम्बन्धों का एक व्यापक जाल है। हरदेव बाहरी ने *हिन्दी शब्दकोश* में समाज शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है- "समाज- समुदाय, दल, समूह, सभा (जैसे- आर्य समाज, संगीत समाज) झुंड, गिरोह, समूह (जैसे-सत्संग समाज) संघटित संस्था, आयोजन आदि हैं।" (805)

बुनियादी रूप से समाज मानव के जटिल सम्बन्धों का ऐसा समूह है, जिसमें कई घटक होते हैं, जैसे- व्यक्ति, वर्ग और समुदाय आदि। समाज में रहते हुए; व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है और आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सामाजिक क्रियाओं में हिस्सा भी लेता है। इस प्रकार व्यवहारों का यह कर्म सदैव चलता रहता है। समाज के विषय में एस.एस चन्द्र *भारतीय सामाजिक संरचना* में लिखते हैं-

> समाज मनुष्यों का एक ऐसा समूह है, जिसमें कई समूहों का एक वृहद समुदाय है। यह मनुष्यों के आपसी सम्बन्धों का पुंज है। इसमें प्रत्येक मानव अपने आत्म-संरक्षण का प्रयास करता है। (15)

सामाजिक सम्बन्धों के आदान-प्रदान को ही सामाजिक परिवेश कहा जाता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य की प्रवृत्ति एक ऐसे संगठन के निर्माण में व्यस्त रहती है, जो उसके व्यवहार और स्वभाव का अनेक प्रकार से मार्ग-दर्शन और नियन्त्रण करता है। इस प्रकार सामाजिक परिवेश का स्वरूप बदलता रहता है, इस

बदलाव के कारण पारिवारिक विघटन और मूल्यों में गिरावट जैसी भावनाओं ने मानव को घेर लिया है। जिसके कारण सामाजिक परिवेश दूषित हो रहा है। जगदीश सहाय श्रीवास्तव *समाज दर्शन की भूमिका* में लिखते हैं-

> स्वतंत्रता के बाद बनने वाले सामाजिक अधिनियमों का मुख्य उद्देश्य रूढ़ियों तथा कुरीतियों के प्रभाव को कम करके सामाजिक न्याय में वृद्धि करना था, लेकिन दुर्भाग्य से यही अधिनियम पारिवारिक विघटन का भी महत्त्वपूर्ण कारण बन गये। (35)

भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन को अगर हम ऐतिहासिक दृष्टि से देखें, तो वर्तमान सामाजिक परिवर्तन की जड़ें, ब्रिटिश काल से जोड़ी जा सकती हैं, उस समय राष्ट्रीय आंदोलन की विचारधारा, भारतीय संविधान की रूपरेखा और योजना आयोग आदि कुछ ऐसी ऐतिहासिक गतिविधियाँ थीं, जो परिवर्तन के लिए प्रेरित करती रहीं। आज़ादी के पहले महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे अनेक क्रांतिकारी लोग भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए बौद्धिक जागरूकता का प्रचार करते रहें, जिससे हमारे समाज का सामान्य वर्ग बहुत प्रभावित हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में अनेक विरोधाभासी विचारकों के कारण भारतीय सामाजिक संरचना में आंतरिक तथा बाहरी परिवर्तन होता रहा, जिसमें परम्परागत परिवेश की मान्यताएं और आधुनिक परिवेश की प्रवृत्तियां एक साथ चलती रहीं।

भारतीय समाज एक ओर पुरानी परम्पराओं, मूल्यों, मान्यताओं का अनुगामी रहा है तो, वहीं दूसरी ओर समकालीन जनपदीय परिस्थितियों से प्रभावित होकर आधुनिक चिंतन के साथ विभिन्न सामाजिक संघर्षों की ओर भी प्रस्थान कर रहा है। जिस प्रकार वैज्ञानिक क्रांति के कारण पश्चिमी रंगढंग को अपना रहा है, वैसे ही पश्चिमीकरण के कारण समाज में स्थितिगत परिवेश भी बदल रहे हैं।

सालों पहले हमारे समाज में कई कुरीतियां थीं, वो व्यक्ति को जीने तो देती थी; पर अपने हाल पर नहीं। उस समय समाज में कुछ कुरीतियां तो ऐसी थी, जिनमें सांसे तो अपनी होती, लेकिन उसकी लगाम समाज के हाथों में होती थी। इन कुरीतियों में बंधन बहुत ज्यादा थे, जिनको तोड़ पाना संभव नहीं था। उस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह थी, कि ऐसे संस्कार और संस्कृति होते हुए भी लोगों में इंसानियत थी। इसके विपरीत यदि हम वर्तमान समय की बात करें, तो सामाजिक आधारों में न

पहले वाली रीति रही और न ही नीति। लोगों की भावनाओं से खेलना इस दौर में सामान्य-सी बात हो गयी है। पहले वाले संस्कार और संस्कृति बेजान होते जा रहे हैं, आज के बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि हमारी सामाजिक एकता ख़त्म होती जा रही है। हम जानते हैं कि समाज सम्बन्धों पर आधारित होता है, इस लिए सामाजिक एकता का होना भी बहुत जरूरी है। समाज की एकता के विषय में एन. आर. शर्मा और आर. के. शर्मा अपनी रचना *सामाजिक विघटन* में लिखते हैं-

> समाज को संगठित रखने के लिए एकता और सहानुभूति जरूरी इसके लिए समूह के सदस्यों के मध्य सम्बन्धों की स्थापना हेतु प्रेरक तत्वों का होना आवश्यक है। समाज के सदस्यों के बीच सहयोग, सहानुभूति, अपनत्व की भावना होनी चाहिए। समूह के सदस्यों के मध्य 'हम की भावना होनी' चाहिए। (12)

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रत्येक समाज में अनेक समूह, समितियाँ, संगठन आदि पाए जाते हैं, जिनकी सहायता से व्यक्तियों की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। परिवार, पड़ोस, जाति, गाँव, नगर, समुदाय, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक संगठन आदि अनेक समूह और विभाग हैं, जिनसे समाज बनता है। इसलिए इन सब में एकता का होना अति आवश्यक है।

इस अध्याय में हमने दोनों भाषाओं के नाटकों की तुलना करते हुए तुलनात्मक प्रविधि को अपनाया और तुलनात्मक अध्ययन के समय पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोणों का सहारा लिया गया, साथ ही नाटकों के माध्यम से विभिन्न सामाजिक कारकों के जनसमुदायों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन के लिए समाजशास्त्रीय प्रविधि को प्रमुख रूप से अपनाया गया है। इस अध्याय में प्रस्तुत शोध का उद्देश्य 'हिन्दी तथा पंजाबी के नाटकों में सामाजिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन' की पूर्ति करते हुए 'संयुक्त परिवार प्रणाली की परम्परा और बदलता परिवेश', 'नयी और पुरानी पीढ़ी की सोच में संघर्ष और बदलते परिवेश', 'बदलते परिवेश में बुजुर्गों के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण', 'बदलते सामाजिक परिवेश में दाम्पत्य सम्बन्धों में परिवर्तन', 'बदलते सामाजिक परिवेश में नारी के प्रति दृष्टिकोण', 'भ्रष्टाचार से प्रभावित सामाजिक परिवेश', 'बदलते सामाजिक परिवेश में प्रवास की प्रवृत्ति', 'वर्तमान सामाजिक परिवेश में युवाओं की मानसिकता' और 'आधुनिक साहित्यकारों

के द्वारा समाज के यथार्थ रूप का प्रस्तुतीकरण' आदि का दोनों भाषाओं के नाटकों के पात्रों के माध्यम से वर्णन किया गया है।

2.2.1 2000 से 2018 के चयनित नाटकों में बदलते परिवेश के सामाजिक तत्त्व

2.2.1.1 संयुक्त परिवार प्रणाली की परम्परा और बदलता परिवेश

परिवार, समाज और समुदाय की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। आधुनिक युग के परिवेश ने परिवार को प्रभावित ही नहीं किया, बल्कि विघटित भी किया है। सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से सामाजिक संघर्ष के कारण परिवेश के बदलाव को भी प्रस्तुत किया गया है, इस कारण के अनुकूल देखें, तो प्रस्तुत अध्याय में बदलाव भी सामाजिक संघर्ष के कारण ही दिखायी दे रहा है, इस संघर्ष ने केवल संयुक्त परिवार ही नहीं, पति-पत्नी और बच्चों को भी प्रभावित किया है। आधुनिक परिवेश ने व्यक्तिवाद और अंहवाद को उभारा है, इसमें एक व्यक्ति अपने-आपको सब कुछ मानकर चलने लगा है। उत्तर-आधुनिकता के कारण जो व्यापक और स्वेच्छापूर्ण परिवेश हमारे परिवारों के सामने आए हैं, उसका वास्तविक रूप आसानी से देखा जा सकता है। पहले परिवार में आपसी सम्बन्ध मधुरतापूर्ण थे, आज परिवार में न वो लगाव है और न ही प्यार। बेटे को बाप नहीं समझ रहा और बाप को बेटा नहीं समझ रहा, दोनों ही एक दूसरे को बोझ समझते हैं।

पहले परिवार साफ-सुथरे सरोकारों से भरे हुए थे, आज के परिवार में न ही वो सरोकार रहा और न ही वो संस्कार, बस भाग-दौड़ का एक सिलसला है, जो रोज़ सुबह उठते ही शुरू हो जाता है और शाम को सोने तक खत्म होता है। इस भाग-दौड़ की ज़िन्दगी में किसी के लिए समय ही नहीं है। यदि इस भाग-दौड़ की ज़िन्दगी में थोड़ा-सा समय अपने परिवार और समाज के लिए निकाल लें तो, कठोर परिवेश में परिवर्तन आ सकता है। परिवार व्यक्तियों का वह समूह होता है, जो विवाह और रक्त

सम्बन्धों से जुड़ा होता है। परिवार मनुष्य के जीवन का बुनियादी पहलू है। व्यक्ति का निर्माण और विकास, परिवार से ही होता है। परिवार मनुष्य को मनोवैज्ञानिक सुरक्षा प्रदान करता है। प्रेम, स्नेह, सहानुभूति, आदर-सम्मान आदि जैसी भावनाएँ सिखाता है।

परिवार का समाज में विशेष महत्त्व है; किन्तु इससे भी अधिक महत्ता भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की हुआ करती थी। संयुक्त परिवार में प्रत्येक व्यक्ति की जिम्मेदारी होती थी कि स्वास्थ्य, आर्थिक, सामाजिक एवं सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं को सभी मिल कर वहन करते थे। कोई भी अकेला व्यक्ति परेशानी नहीं उठाता और न ही किसी एक पर तनाव रहता था। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव, नौकरी की समस्या, आर्थिक परिस्थिति आदि ने संयुक्त परिवारों को छोटे परिवारों में बदल दिया और प्रत्येक व्यक्ति पर तनाव रहने लगा। जिस कारण पहले जैसा पारिवारिक परिवेश न रह कर बदलने लगा। डॉ. विपुल शंकर नागर *अनुसंधान के नये सोपान* में लिखते हैं-

> आजकल समाज और व्यक्ति के कारण ही परिवार बदलते चले जा रहे हैं, जिसके कारण परिवार टूटता, बिखरता दिखलाई दे रहा है। ऐसी परिस्थितियों में संयुक्त परिवार लघु परिवार की ओर अग्रसर हो रहा है। (12)

यदि हिन्दी नाटकों के द्वारा आधुनिक बदलते पारिवारिक परिवेश की बात करें, तो यह एक सामाजिक संघर्ष का प्रतीक है, इस समस्या से सम्बंधित नादिरा ज़हीर बब्बर का नाटक *जी जैसी आपकी मर्जी* है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने अशिक्षित तथा असभ्य माने जाने वाले लोगों की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया है कि इक्कीसवीं शताब्दी में इतनी वैज्ञानिक उन्नति आने के पश्चात भी हमारे परिवारों की स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया। आज भी परिवार में लड़के-लड़की में मतभेद रखा जाता है और घर के बड़े लोग भी इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं, जिसके कारण संयुक्त परिवार टूटने लग जाते हैं। इस नाटक की मुख्य पात्र दीपा है। वह इस नाटक की कथा के माध्यम से बताना चाहती है कि हमारे समाज में ये कैसे संयुक्त परिवार हैं, जो लड़की को देखना पसन्द नहीं करते, लेकिन लड़कों की हर बात पूरी होती है। ऐसे संयुक्त परिवार की त्रासदी को प्रस्तुत करती हुई नाटककार दीपा पात्र के माध्यम से कहलाती है कि एक दिन उनकी दोनों दीदियाँ बीमार हो गयी, परिवार का सारा काम उन्हें और उनकी अम्माँ को ही करना पड़ा,

काम खत्म होते-होते वह बहुत थक गयी, लेकिन अगले दिन स्कूल का टेस्ट होने के कारण पढ़ने बैठ जाती है। उस समय उसका भाई बाहर से आता है और चिल्लाकर पानी मागता है, लेकिन दीपा थकी होने कारण न कर देती है। उसके बाद घर में बवाल खड़ा हो जाता है, जिसे दीपा पात्र बताती है-

> भैया ने मुझे ज़ोर से थप्पड़ मारा और कहा ढीठ हो गयी है ढीठ, एक दिन जमके धुलाई कर दूँगा न फिर दिमाग ठिकाने आ जाएगा। अंदर से बाबूजी चिल्लाते हुए बोले, "इसे आज ठीक कर ही दे बिटवा..." ये सुनकर भैया मुझे मारने लगे, मैं ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी, मैंने क्या किया है? कि दादी डांट रही है, भैया मार रहा है, अंदर से बाबूजी चिल्ला रहे हैं। मेरी बात सुनके बाबूजी गुस्से से बाहर निकले और मेरा हाथ पकड़कर घसीटते हुए ले जाकर स्टोर में बंद कर दिया। और बोले- "अब कोठरी में बैठ कर चिल्ला जितना चिल्लाना है," यह था हमारा संयुक्त परिवार। (15)

समकालीन युग में बहुत-से ऐसे परिवार मिल जाएँगे, जहाँ पति-पत्नी सम्बन्ध-विच्छेद की कगार पर हैं, लेकिन पति के अत्याचार की शिकार पत्नियाँ लोक-लाज वश तथा संतान के भविष्य का ख्याल कर परिवार में जीवन व्यतीत कर रही हैं। वह पति की मार तक खाती हैं; लेकिन आगे से उफ़ तक नहीं करती। दीपा अपने संयुक्त परिवार की एक कथा और सुनाती है, जिसमें दीपा बताती है कि उसकी बुआ जो अपने चारों बच्चों को लेकर दो-दो महीनों के लिए यहाँ आ जाती है, नाटक में दीपा पात्र के अनुसार-

> एक दिन मेरी बुआ का बड़ा बेटा बहुत तेज आवाज़ में टी.वी. देख रहा था, दुर्गा दीदी अंदर पढ़ रही थी, दीदी ने जब उससे आवाज़ कम करने को बोला, तो दीदी को चिढ़ाने के लिए आवाज़ और तेज कर दी, दीदी ने गुस्से में जाकर टी.वी. बंद कर दिया, बस फिर क्या था, उधर से बुआजी का अटैक शुरू हो गया, ज़ोर-ज़ोर से रोने लगीं ए$ए$ए पूरा नाटक और कहने लगी "चलो चलो बच्चों सामान बाँधों, हम भिखारी नहीं हैं, ये सुनकर अम्माँ बुआजी के आगे हाथ-पाँव जोड़ने लगीं, "माफ़ कर दो दीदी माफ़ कर दो" और दुर्गा दीदी को थप्पड़ मारा और कहा "बुआजी से माफ़ी माँग" इतने में बाबूजी आ गए उन्होंने आते ही बिना कुछ समझे बिना कुछ पूछे अम्माँ और दीदी को दो-तीन थप्पड़

लगा दिए और बोले "तेरी तो...कुतिया कमीनी।" ऐसा था हमारा परिवार। (16)

नादिरा ज़हीर बब्बर का यह नाटक हमारे आधुनिक पारिवारिक परिवेश पर बहुत सारे प्रश्न खड़े करता है। इस नाटक की आलोचना करते हुए, जयदेव तनेजा *आधुनिक भारतीय नाट्य-विमर्श* में लिखते हैं-

> समाज में विवाह-संस्था के आरम्भ होने से लेकर आज के उत्तर-आधुनिक युग तक परिवार में पुरुष-स्त्री का सम्बन्ध कमोबेश स्वामी-सेवक के रिश्ते जैसा ही रहा है। परिस्थिति और परिवेश के साथ केवल उसका ऊपरी रंग रूप ही बदला है। नादिरा बब्बर का मानना है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक स्त्री को पुरुष पर ही निर्भर रहना पड़ता है। और सारी उम्र वह उसकी और उसके परिवार की मर्जी के मुताबिक कठपुतली की तरह नाचती है। (290)

वर्तमान में यह भी देखने को मिला है कि जिनके पास परिवार नहीं होता, वह ऐसे प्रेम को तरसते नजर भी आ रहे हैं। विभा रानी का नाटक *आओ ! तनिक प्रेम करें* में जीवन की जद्दोजहद में फँसे एक व्यक्ति को साठ साल की उम्र में यह ख्याल आता है कि उसने बगैर पारिवारिक प्रेम से अपना जीवन व्यतीत किया है। रिटायर होने के उपरांत वह चाहता है कि वह शादी करे और अपने परिवार के साथ ही वक्त बिताए। नाटक में हम देखते हैं रिटायर होने के बाद वह शादी करता है और बाद में अपनी पत्नी से स्वयं कहता है-

> दरअसल ..... जी मैं चाहता हूँ कि तुम यहाँ .... मेरे पास आओ। इधर बैठो। मुझे देखो, मुझे छुओ, मुझे स्पर्श करो। मुझे जानो, मुझे समझो..... मुझे..... मुझे..... प्यार करो। मैं तरस गया हूँ ..... (12)

जीवन भर सगे-संबंधियों और दफ़्तरों में खपने के बाद; वह अब जीवन के अंतिम क्षण सकून से बिताना चाहता है, यह व्यक्ति की जिजीविषा ही है, जो बुढ़ापे में सब भुला कर आराम के कुछ क्षण व्यतीत करना चाहती है। इस प्रकार उसकी पत्नी भी उसकी भावना को समझती है और उन्हें प्यार से कहती है "जी.. मैं आज आपको औरंगाबाद का गुजिया बनाकर खिलाऊँगी, मैंने अपनी नानी से सीखा है, गुजिया बनाने में काफी मेहनत करनी पड़ती है। यह कोई नमकपारे नहीं जो काटे और घी में डाल दिए।" (14) नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से आम जन समूह की जो

भावनाएँ और प्रेम होता है उसको प्रस्तुत किया है, वर्तमान में हम देखते हैं कि व्यक्ति का जीवन जब प्रेम से नहीं, अपितु छल-कपट व धन केन्द्रित हो जाए, तो पारिवारिक सम्बन्धों में आपसी प्रेम समाप्त हो जाता है। प्रेम, मानवीय मूल्यों के अभाव में जीवन कितना जटिल हो सकता है, इसका ब्यौरा वहीं व्यक्ति दे सकता है, जिसने सब ऊंचाइयां प्राप्त की हों, किन्तु जीवन के अंतिम क्षण तक पारिवारिक सुकून को प्राप्त न कर सका हो,

ऐसे ही यदि हम पंजाबी नाटकों में पारिवारिक परिवेश को देखें, तो परिवार समाज की एक छोटी इकाई अथवा आपसी सम्बन्धों का ही एक छोटा-सा स्वरूप है। परिवार मानव-जीवन के प्रारम्भ से ही इसके साथ रहा है। परिवार व्यक्ति के सामाजीकरण का एक प्रमुख साधन भी है। सामाजिक संघर्ष के कारण बदलते पारिवारिक परिवेश की बात करें, तो इस विषय से सम्बंधित कुलदीप सिंह दीप का नाटक *तूं मेरा की लग्गदैं* है। इस नाटक का मुख्य पात्र प्रदुमन सिंह है, जिसने सारी ज़िन्दगी रेलवे की नौकरी करके अपने परिवार को संभाला और बच्चों को पढ़ाया-लिखाया, लेकिन जब वह अपनी नौकरी से रिटायर होकर अपने परिवार के साथ रहने के लिए घर आया, तो उसे सब बदला-बदला सा लगता है क्योंकि वह पहले दिन ही अपनी पत्नी को योगा करते देखकर मजाक करता है, लेकिन उसकी पत्नी उसे कड़वे शब्दों में कहती है आज सब कुछ पहले जैसा नहीं रहा, अब परिवार बदल चुका है, यदि परिवार में रहना है तो बोलने से पहले सोच लिया करो, उस समय उनकी पत्नी के साथ वार्तालाप-

> प्रदुमन: बचन कुरे, आज तो तुम योगा सिऊ करने लगी हो, कल को बोघा सिऊ करोगी और मुझे करे-कराए को ठुकरा रही हो.... मेरे कौन-सी खुजली पड़ी हुई है? माँडल ही पुराना है ... इंजन तो आठो-आठ मारता है .....चलो चाय लाओ,
>
> बचन कौर: फिर बदतमीजी .....? तुझे बोला है न, यदि जहाँ रहना है तो इस कलमुही जुबान को लगाम लगा कर रखो .... अब यह तेरा घर नहीं, बच्चों का घर है।
>
> प्रदुमन: मेरा घर नहीं ..... बच्चों का घर है? (उदास संगीत चलता है) (24-25)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम एक संयुक्त परिवार में ऐसे बुजुर्ग की त्रासदी को देख सकते हैं, जिसने सारी जिन्दगी अपने परिवार के नाम की; लेकिन रिटायर होने के बाद वह परिवार को देखकर टूट जाता है।

इस प्रकार पाली भूपिंदर सिंह के द्वारा रचित नाटक *चंदन दे ओहले* में पंजाब के उन लोगों की मानसिकता को प्रस्तुत किया जो किसी भी तरीके विदेश जाना चाहते हैं, इस नाटक की कथा के माध्यम से हम एक ऐसे परिवार को देखते हैं, जो अपनी बनावटी शानो-शौकत को बढ़ाने के लिए अपने ही परिवार के सदस्यों की बलि दे देते हैं, नाटक की कथा के अनुसार एक सेठ अपने बेटे को विदेश भेजना चाहता है, लेकिन वह अपनी योग्यता के आधार पर तो जा नहीं सकता, फिर उसके लिए किसी विदेशी लड़की के साथ शादी करने का विचार विमर्श किया जाता है, लेकिन वह भी सफल नहीं होती, अंत में उस परिवार के सदस्य अपनी बेटी को किसी बुजुर्ग से शादी कर विदेश भेजने को तैयार हो जाते हैं, इसलिए कि बाद में उनकी लड़की अपने भाई और उस परिवार के सदस्यों को विदेश बुला सके। लड़की माणा, पंजाब में किसी गैर जाति के लड़के के साथ शादी करना चाहती थी, लेकिन उसके परिवार वालो ने इंकार कर दिया। इस निर्णय पर माणा कोई विरोध नहीं करती और चुपचाप शान्त हो जाती है, लेकिन आज उस परिवार के सदस्य अपने स्वार्थ के लिए, उससे बिना पूछे, उसकी शादी किसी और जाति के बुजुर्ग के साथ कर रहे हैं। माणा अपने ही परिवार के आगे गुहार लगाती हुई कहती है-

> माणा: मैंने इस परिवार के लिए सब कुछ त्याग दिया, जैसा आप लोगों ने कहा वैसा मानती रही आज तक .... मैंने इस परिवार के लिए अपने हाथों से अपने ही प्यार का गला दबा दिया। आज आप सब मेरे साथ इतनी नाइंसाफी न करें ... आप इस तरह से खून के रिश्तों का मूल्य न लो ... (66)

प्रस्तुत संवाद के माध्मय से हम देख सकते हैं कि नाटककार ने पंजाब के मालवा क्षेत्र के लोक जीवन की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया है, हम देख रहे हैं कि आज के पारिवारिक रिश्तों में कितना स्वार्थ आ गया है। इस स्वार्थ की भावना के कारण ही परिवार के कुछ सदस्य घुटन महसूस करते हैं, इस घुटन के कारण ही कुछ सदस्य संयुक्त परिवार में रहने की बजाय एकल रहना पसंद करते हैं। सुभाष शर्मा *भारतीय महिलाओं की दशा* में लिखते हैं-

> पिछले कुछ दशकों से भारत में आधुनिकीकरण, शहरीकरण, शिक्षा का प्रसार और अब निजीकरण के कारण संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं तथा नाभीय परिवार (न्यूक्लियर फेमिली) की संख्या बढ़ रही है जिसमें प्राय: पति, पत्नी और अविवाहित बच्चे भी हैं। (356)

निष्कर्ष रूप से दोनों भाषाओं के नाटकों की तुलना करते हुए और सामाजिक संघर्ष के कारण बदलते परिवेश को देखते हुए, हम कह सकते हैं कि आज सामाजिक सम्बन्धों के साथ-साथ आत्मीय रिश्तों से जुड़े सम्बन्ध भी बहुत कमजोर पड़ रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि इस आधुनिकता के दौर में रक्त सम्बन्धों के साथ में अब नातेदारी तथा रिश्ते भी स्वार्थ की आग में झुलसने को मजबूर हैं। वैसे तो हमारे सामाजिक सम्बन्धों और सगे रिश्तों में खूनी जंग का एक लंबा इतिहास रहा है। पहले इस प्रकार की घटनाएँ राजघरानों के आपसी स्वार्थों के टकराने तक सीमित रहती थीं, लेकिन अब यह विषय और भी गंभीर हो गया है, क्योंकि अब छोटे-मोटे निजी स्वार्थों को लेकर रक्त सम्बन्धों अथवा नातेदारी सम्बन्धों की बलि चढ़ाने में जन-सामान्य भी शामिल हो गये हैं।

2.2.1.2 नयी और पुरानी पीढ़ी की सोच में संघर्ष और बदलता परिवेश

इन चालीस-पचास वर्षों में विज्ञान की सहायता से दुनिया बहुत निकट आ गयी है, अनेक सांस्कृतियों का इससे मिलन हुआ, जिसका प्रभाव हमारे सामाजिक परिवेश पर भी पड़ा। नयी शिक्षा और सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित वर्तमान पीढ़ी, पिछली पीढ़ी के मुकाबले स्वभाव एवं संस्कारों से भिन्न है, जिसके कारण सामाजिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसमें पुरानी और नयी पीढ़ी के स्वभाव में बहुत बड़ा टकराव नज़र आ रहा है। सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से शिक्षा के कारण परिवेश का बदलाव और भारतीय परम्पराओं के त्याग के कारण बदलाव को स्पष्ट किया है, प्रस्तुत बदलाव भी इन कारणों से दिखायी दे रहा है, क्योंकि स्कूलों और कॉलेजों से निकलने वाले शिक्षित युवक-युवतियाँ एवं नवीन सभ्यता से प्रभावित नयी पीढ़ी और पुरानी परम्परा एवं संस्कारों से ओत-प्रोत पुरानी पीढ़ी, इन दोनों पीढ़ीयों के बीच में टकराव चल रहा है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात हमारे देश की युवा पीढ़ी भी परम्परागत मान्यताओं के प्रति बदलाव दिखाने लगी है। नयी पीढ़ी परम्परागत मान्यताओं के बंधनों को स्वीकार नहीं करना चाहती, आधुनिक जगत के साथ प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सम्बन्ध जुड़ जाने के कारण देश की युवा पीढ़ी भी पश्चिमी दर्शन के रहन-सहन को स्वीकार करने लगी है। इस नये चिंतन के माध्यम से हमारे परम्परागत परिवेश में बदलाव आ रहे हैं। आज की यह युवा पीढ़ी पुराने आदर्शों एवं परिवेश पर प्रश्न चिन्ह लगा रही है। आज पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच चल रहे वैचारिक संघर्ष को हम प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं। विचारों का टकराव केवल नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच आयु का नहीं है, यह संघर्ष दोनों की विभिन्न विचारधारा, दृष्टिकोण एवं मान्यताओं का है। नयी पीढ़ी हम उस विचारधारा को कहेंगे, जिनकी मानसिक संरचना जीवन-पद्धति और विषय-बोध की दृष्टि से नयी होती है। व्यक्ति समाज के आन्तरिक ढांचे में बदलाव चाहता है। अब तक समाज में अनेक परिवर्तन हुए हैं, किन्तु समाज में वर्ग-भेद की प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कई क्रांतियों के पश्चात भी उच्च, मध्य और निम्न वाली वर्ग-स्थिति आज भी देखने को मिल रही है।

नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच आज ही नहीं, बल्कि सदैव से विषमता रही है। इन दोंनो के बीच असल समस्या यह है कि पुरानी पीढ़ी ये समझती है कि उनकी समाज को समझने में उम्र बीत गयी है और युवा पीढ़ी ये समझती है कि अब वह काफी बड़े हो गये हैं और उनकी उम्र इतनी हो गयी है कि वे सब कुछ कर एवं सोच सकते हैं। दोनों के बीच सारी समस्या ही यही है।

आधुनिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति स्वच्छन्द रूप से जीवन निर्वाह करना चाहता है; किन्तु जब बच्चे अपने जीवन सम्बंधी निर्णय स्वयं लेने की बात करते हैं तो माता-पिता इंकार कर देते हैं। जब बच्चे परम्परागत मान्यताओं को तिरस्कार कर ऐसा करने पर उतारू भी हो जाएं, तो माँ-बाप कार्य में व्यवधान डालने का प्रयास करते हैं, ताकि वह अपने उद्देश्य में सफल न हो। विभा रानी का नाटक *आओ ! तनिक प्रेम करें* में हम देखते हैं कि माँ-बाप का विरोध न कर पाने के कारण बच्चे भीतर ही भीतर घुटते रहते हैं। उनकी यह घुटन जब सीमा पार कर जाती है और वह घर से भागने जैसा निर्णय लेने को मजबूर हो जाते हैं। इस नाटक में हम देखते हैं कि ओम गुप्ता की बेटी सपना पहले अपनी माँ से कहती है कि वह एक लड़के को पसंद करती है, जिससे वह शादी भी करना चाहती है, लेकिन आगे से उसकी माँ उसे कहती है कि इस

विवाह के लिए उसके पिता कभी नहीं मानने वाले, अंत सपना घर से भागकर शादी कर लेती है और बाद में वह अपने माता-पिता के साथ रिश्ता रखना चाहती है, लेकिन अपने पिता के डर के कारण वह घर नहीं आती, सपना अपनी एक दोस्त से कहती है- "मैं चाह कर भी अपने पिता के विचारों को बदल न सकी।" (47) सपना अपनी दोस्त से कहती है कि मुझे नहीं लगता कि मैंने जो भी किया सही है या गलत, लेकिन मैंने अपनी माँ की इच्छाओं का भी गला दबाया है, जो अक्सर मुझसे कहा करती थी- "मेरी बेटी इतनी सुंदर है, जब बोहले पर बैठेगी तो महारानी से कम नहीं लगेगी, हमारे लातूर में मण्डप को बोहले कहते हैं। (49)

इस विषय से सम्बंधित स्वदेश दीपक का नाटक *काल कोठरी* भी है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने दिल्ली के किसी रजत नामक एक नाट्य-कर्मी पात्र की कथा को प्रस्तुत किया है, जो अपनी नौकरी की तलाश में इन्टरव्यू देने के लिए जाता है, वहाँ इन्टरव्यू लेने वाला शर्मा आई.ए.एस. ऑफिसर विषय से सम्बंधित प्रश्न न पूछ कर; थिएटर का मजाक उड़ाता है। रजत आधुनिक सोच का शिक्षित पात्र है और अच्छे-बुरे की पहचान भी जानता है। वह उन पुराने लोगों की तरह अफसर की चापलूसी करने की अपेक्षा, उसे खरी-खरी बातें सुनाता है। वार्तालाप के अनुसार-

रजत: तो आप शराबी का अभिनय देखना चाहते हैं।

शर्मा: जी। कर सकते हैं, तो दिखाइए करके।

रजत: (लड़खड़ाती आवाज़) आप महान हैं सर, एकदम महान। जानते हैं क्यों? क्योंकि आपके नाम के साथ लगे हैं, तीन जादू-अक्षर-मैजिक लैटर्ज़- आई.ए.एस। किशोर चन्द शर्मा आई.ए.एस कमिश्नर कल्चर। हर वक्त आपकी महानता के चर्चे। आप चालीस के हुए तो पत्रिकाओं के विशेषांक, आप पचास के हुए तो पत्रिकाओं में हाहाकार। आप महान है, सर एकदम महान।

(सधी आवाज़) कौन है कोई दूसरा, आपके अतिरिक्त, जिसे इतनी चिंता लगी हो कला और संस्कृति की। लगा दी है, अपने पुरस्कारों की बरसात और बना दिया है, कलाकारों को कुत्ता, पालतू कुत्ता। पुचकारने पर भी दुम हिलाता कुत्ता, ठोकर खाने पर भी दुम हिलाता कुत्ता। मालिक का कुत्ता, अगर नहीं हाथ चढ़े आपके तो हम थिएटर वाले, क्योंकि बहुत सख्त हड्डी के बने होते हैं, हम

> हरामी थिएटर वाले। बताऊं मैं क्यों नहीं मिलते हमारे जैसे लोगों को सरकारी स्पांसर्ड शोज़ क्योंकि नहीं आता हमें आला अफसरों के तलुए चाटना। (37)

प्रस्तुत नाटक के माध्यम से हम कह सकते हैं, कि बदलते परिवेश में आज के युवाओं की मानसिकता भी बदल रही है, आज वह चापलूसी करने की अपेक्षा, अपने अधिकारों की माँग करता है। वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा आधुनिक जीवन दृष्टि ने युवा मानस को नया चिन्तन दिया है। नयी पीढ़ी अब आँख मूँद कर सब कुछ स्वीकार कर लेने के पक्ष में नहीं है। पीयूष मिश्रा के द्वारा रचित नाटक *गगन दमामा बाज्यो* में भगत सिंह के पिता किशन सिंह ने बेटे की शादी के लिए लड़की देखी है। वह मित्र के साथ पिता के लिए संदेश भिजवाता है कि उसे पढ़ी-लिखी लड़की चाहिए, इस पर पुरानी पीढ़ी के किशन सिंह भड़क जाते हैं। उदाहरणार्थ-

> भगवती भाई: जी, वो कुछ ऐसा कह रहा था कि लड़की अगर थोड़ी पढ़ी-लिखी हो तो...।
>
> किशन सिंह: (चिंघाड़ कर) अरे पढ़ी-लिखी लड़की को क्या फ्रेम में सजा के रखेगा ...? (56)

नयी एवं पुरानी पीढ़ी में वैचारिक मतभेद बना हुआ है। स्वीकार-अस्वीकार की यह प्रक्रिया सदैव चलती रहती है, जिससे नये और पुराने के बीच आज एक दुर्लभ खाई बन गई है। इस संवाद के माध्यम से नाटककार ने युवा मानसिकता को व्यक्त किया है, कि किस प्रकार बड़ो का सम्मान किया जाता था, कुसुम खेमानी *हिन्दी नाटक के पाँच दशक* में लिखते हैं-

> व्यक्ति-परिवेश और समष्टि की पारस्परिकता आज टूट चुकी है। परिवेश से टुटा हुआ व्यक्ति समष्टि अवहेलना कर सकने में भी असमर्थ है। वस्तु-योजना की अपेक्षा पात्र-संयोजना की दृष्टि से आज का नाटककार इस स्थिति का साक्षताकार कराता है। (96)

यदि हम पंजाबी नाटकों के माध्यम से नयी और पुरानी पीढ़ी की सोच में संघर्ष और बदलते परिवेश की तुलना करें, तो पहली पीढ़ी से ही पंजाबी नाटककारों का ध्यान सामाजिक चेतना की ओर ज्यादा रहा है। वस्तुत: पुरानी और नयी पीढ़ी का संघर्ष नूतन और पुरातन का संघर्ष है, जो थोड़ी-बहुत मात्रा में सदैव रहता है। किन्तु वर्तमान युग में अचानक भारी परिवर्तन हो जाने के कारण टकराव की परिस्थितियाँ

अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली बन गयी हैं, आज एक परिवार की माँ और बेटी में ज़मीन-आसमान का अंतर हो गया है। जिस माँ ने घर की चारदवारी में, पर्दे की ओट में, दिन रात गृहस्थी की चक्की चलाकर, अपने सुख सुविधाओं का ध्यान रखे बिना ही, रुखा-सूखा खाकर, फटा-पुराना पहनकर जीवन व्यतीत किया हो, वहीं उसकी ही बेटी शिक्षित होकर, आधुनिक रहन-सहन, व्यवहार, स्वतंत्रता की अभ्यस्त बन गयी है। वह सामूहिक कार्यक्रमों में भी भाग लेती है। माँ की अपेक्षा उसके जीवन की गति विभिन्न विस्तृत क्षेत्रों तक फैल चुकी है, तो विचारधारा में मतभेद तो अवश्य ही पैदा होंगे, इसी तरह पिता और पुत्र में भी यही असमानता देखी जा सकती है।

पंजाबी नाटककार स्वराजबीर के द्वारा रचित नाटक *कल्लर* जो कि पंजाब के माझे क्षेत्र से सम्बंधित है, इसमें हम देखते हैं कि गुरदयाल सिंह का बेटा दलबीर जबरदस्ती विदेश जाना चाहता है और अपने माता-पिता से चोरी पासपोर्ट भी बनवा लेता है, लेकिन उसका पिता विदेश जाने का विरोध करता है और अपने पंजाब और पंजाबीयत के विषय में बताते हुए यहाँ खेती करने की सलाह देता है, लेकिन नयी पीढ़ी का दलबीर इसकी कोई परवाह नहीं करता-

गुरदयाल: लेकिन तुमने पासपोर्ट को बनवा कर करना भी क्या है? जो पढ़ाई तू यहाँ कर रहा है, उसे एक बार पूरा तो कर ले।

दलबीर: इस पढ़ाई को पूरा करने के बाद भी क्या होगा? आप तो ऐसे कह रहे हो, जैसे पढ़ाई के बाद नौकरी तैयार खड़ी हो !

गुरदयाल: अच्छा, नौकरी न सही .... तो घर की खेती भी है !

दलबीर: खेती तो पिता जी मुझसे नहीं होगी, सारी जिन्दगी भईयों और दलितों वाला काम है ..... यह मुझसे नहीं होगा।

गुरदयाल: क्या बोला भईयों और दलितों वाला काम है ..... क्या हुआ इस काम को? तेरे बाप, दादा, पड़दादा यही काम करते रहें हैं ...

दलबीर: करते रहें होंगे .... लेकिन मुझसे नहीं होगा यह काम !

गुरदयाल: वाह... कैसे नहीं होगा तुझसे ... आया बड़ा सरदार ... हम सब मूर्ख थे, जिन्होंने मिट्टी के साथ मिट्टी होकर सारी जिन्दगी गुजार दी, पागल यह

हमारे माझे की धरती है ये सोना उगाती है सोना, इसे क्यों छोड़ कर जाना चाहता है तू, (37)

इस नाटक के माध्यम से हम देखते हैं कि नाटककार ने पंजाब के माझे क्षेत्र की उपजाऊ धरती को दिखाया और साथ ही नयी पीढ़ी के युवाओं की सोच को बड़ी गहराई से प्रस्तुत करते हुए, इस बात को दर्शाने का प्रयास किया है कि आज के युवाओं में किस प्रकार का परिवर्तन आ रहा है। डॉ. राजदीप कौर अपनी रचना *स्वराजबीर की नाट-चेतना* में लिखती है- "समकालीन के संदर्भ में स्वराजबीर ने अपने नाटकों के माध्यम से युवा मानसिकता को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया है।" (34)

इस स्थिति को आलोचनात्मक प्रविधि से देखें, तो कुलदीप सिंह दीप का नाटक *तूं मेरा की लग्गदैं* में इसको प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्रदुमन सिंह रिटायर होकर घर आता है, आमदनी कम होने के कारण वह अपने शिक्षित बच्चों को खर्च कम करने के लिए कहता है और घर के नौकर को भी हटा देता है। पिता की इस कारवाई के कारण पुत्र जीत गुस्से में आकर उसे काफी बोलता है, वार्तालाप के अनुसार-

जसपाल: जब दुःख देने वाले घर ही आ जाए तो .... सुख कहा नसीब होगा...

प्रदुमन: कौन आ गया..?

जीत: तुम ही हो बापू जी....

प्रदुमन: मैं....वो कैसे?

जसपाल: तुझे बैठे-बिठाए को और तो कोई काम नहीं सूझता, बस नौकर को हटा दिया...

प्रदुमन: बेटे आमदन कम होगी तो खर्च भी कम करना ही पड़ेगा।

जीत: लेकिन पापा जी स्टेटस नाम की भी कोई चीज होती है ....अब हम नौकरों का काम करेंगे। (56-57)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम नयी और पुरानी पीढ़ी की मानसकिता को बड़ी गहराई से देख सकते हैं कि किस प्रकार पुरानी पीढ़ी के लोग एक-एक पैसे को बचाने का प्रयास करते हैं, लेकिन नयी पीढ़ी बनावटी शानोशौकत के लिए फालतू खर्च

करती है। ऐसी मानसिकता में अंतर होने के कारण ही दोनों पीढ़ियों में काफी टकराव पैदा हो रहा है।

अत: प्रस्तुत नाटकों की तुलना करते हुए, हम कह सकते हैं कि हिन्दी और पंजाबी के नाटककारों ने आधुनिक युग के युवाओं की पुरानी परम्पराओं के त्याग की प्रवृत्ति और शिक्षा के कारण बदलती मानसिकता के यथार्थ को अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। इन नाटकों के माध्यम से इस बात की पुष्टि भी होती है कि जितनी हमने सामाजिक उन्नति की है, उतना ही हमने अपने रिश्तों को खोखला भी किया है।

2.2.1.3 बदलते परिवेश में बुजुर्गों के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण

आधुनिक काल में विशेषकर पिछले तीन-चार दशकों की नयी पीढ़ी ने माता-पिता के प्रति बहुत कठोर व्यवहार को अपना लिया है। यदि इसके पूर्व युगों की बात करें, तो पहले मानव जाति के द्वारा भोगे जाने वाले दुखों और उसकी सांस्कृतिक क्षमता के अनुपात में इतना व्यापक और बड़ा अंतर नहीं था। औद्योगिक क्रांति के कारण आज के मानव को अतीत की तुलना से अत्यन्त व्यस्त बना दिया है और ग्रामीण-जीवन की पुरानी प्राकृतिक पद्धति से भिन्न पद्धति पर निर्मित शहरों या महानगरों को मुख्य चेतना-केंद्र बना दिया है।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से इनके अनुकूल बदलाव देखें तो, शिक्षा के कारण परिवेश का बदलाव, ग्रामीण एवं शहरी विकास के कारण परिवेश में बदलाव और औद्योगीकरण के कारण परिवेश का बदलाव, प्रमुख हैं। इनके अनुकूल परिवर्तन देखें तो, इस संस्कृति परिवर्तन ने जीवन के बहुत सारे रिश्तों को बदल दिया है। उत्तर-आधुनिकता के कारण सभी पुराने ढांचे को यथावत स्वीकार कर लेना, आज के संदर्भ में बहुत कठिन हो गया है। भारतीय समाज में बुजुर्गों का सदैव से आदरभाव, अन्य समाज से अधिक रहा है। इनको परिवार का मुखिया और एक मार्गदर्शन के रूप में देखा जाता था, लेकिन हमारे समाज में आधुनिकता आने के कारण इस पवित्र रिश्ते में बदलाव आना शुरू हो गया है।

आज हम देखते हैं कि प्रत्येक माता-पिता का अपने बच्चों के प्रति विशेष उत्तरदायित्व रखते हैं, जिसके लिए उन्हें कभी कठोर व्यवहार भी करना पड़ता है। लेकिन आज के बच्चे माँ-बाप के कठोर व्यवहार के सामने दबकर नहीं रहना चाहते, बल्कि पूर्ण स्वतंत्रता चाहते हैं। वैयक्तिक स्वतंत्रता माँ-बाप और संतान के सम्बन्धों के लिए भले ही अच्छी न हो, किन्तु बच्चे माता-पिता के नियन्त्रण को अपने विकास-मार्ग में बाधा समझते हैं। विभा रानी के द्वारा रचित नाटक *आओ ! तनिक प्रेम करें* में हम देखते हैं कि आज के बच्चे अपने माता-पिता की सेवा से अधिक ध्यान अपने कैरियर की ओर देते हैं। इस नाटक की एक स्त्री पात्र आज की पीढ़ी के विषय में कहती है- "वे आज के बच्चे हैं। समय के अनुसार चलना जानते हैं। हमारे और उनके वक्त में बहुत फर्क आ गया है।" (15) माता-पिता सोचते ही रह जाते हैं कि कब बच्चे बड़े हों और उनकी सेवा करें, जिस प्रकार उन्होंने अपने माता-पिता की सेवा की थी। इस नाटक में एक पुरुष ऐसी धारणा अपने बच्चों के लिए रखता है- "क्या हमने-तुमने नहीं किया? अपने माँ-बाप को नहीं संभाला? मगर आजकल के बच्चे .....? (15) आज की नयी पीढ़ी अपने नैतिक मूल्यों को भूलकर अपनी भौतिक सुख-साधनों की होड़ में सब भुला चुकी है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि आज की पीढ़ी अपनों से ही स्वतंत्रता चाहती है, जिसके कारण पारिवारिक रिश्तों में दूरियां बढ़ रही हैं।

बदलते परिवेश में बुजुर्गों के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण को ही प्रस्तुत करता स्वदेश दीपक का नाटक *काल कोठरी* भी है, जो एक थियेटर की कथा से सम्बंधित है, उसमें एक नवीन नामक बुजुर्ग पात्र है, जो अपनी सारी ज़िन्दगी संतान के लिए संताप भोगता रहा और उसी संताप को उसने एक कथा के माध्यम से लिख कर एक नाटक का रूप दिया है। वह अपने इस नाटक का मंचन करना चाहता है और इस उद्देश्य से वह बहुत-से निर्देशकों से मिला, लेकिन किसी ने हाँ, नहीं की। अंत उसको दिलासा देने के लिए कौल नामक निर्देशक उसके नाटक के मंचन के लिए तैयार हो जाता है। नवीन काफी बुजुर्ग है और किसी बीमारी के कारण अस्पताल में भर्ती होता है, लेकिन उसे अपने नाटक के मंचन की इतनी खुशी होती है कि डॉक्टर को बिना बताये अपने नाटक की रिहर्सल देखने आ जाता है, नवीन जब अपने नाटक के विषय में कुछ सुझाव देना का प्रयास करता है तो कौल उस बुजुर्ग के साथ बूरा व्यवहार करता है। वार्तालाप के अनुसार-

नवीन: एकालाप का यह भाग अभिनेता को लगभग प्रलाप, अर्ध-पागलपन की स्थिति में बोलना चाहिए।

कौल: (बिल्कुल नाराज़) पागलपन एकदम नहीं आता। स्टेज बाई, स्टेज आएगा। अब समझा आज तक आपका कोई नाटक स्टेज क्यों नहीं हुआ। यु डोंट नो ए, बी, सी ऑफ स्टेज क्राफ्ट। आप मुझे समझायेगें, मुझे।

नवीन: (खड़े होकर) कौल साहब मुझे क्षमा कर दें। आपको डिस्टर्ब किया। (पत्नी की तरफ देखकर) चलते हैं। आप जैसे ठीक समझें नाटक करें।

(पत्नी नवीन को सहारा देकर बाहर ले गयी। कांता के साथ लेखक की पत्नी फिर प्रवेश। सब हड़बड़ा गये)

पत्नी: बैठे रहिए। आप लोग बैठे रहिए। उनकी ओर से क्षमा माँगने आयी हूँ। जानती हूँ, आप उनका नाटक नहीं कर रहे। इतना कम है क्या, कि उनका दिल रखने के लिए अपने झूठामूठा उनके नाटक का सीन कर दिया। कितने अच्छे होते हैं, आप थिएटर वाले। किसी का दिल नहीं दुखाते। वह पिछले तीन दिन से अस्पताल में हैं। जिद कर बैठे रिहर्सल देखनी है। डॉक्टर से बिना पूछे यहाँ ले आई। अच्छा चलती हूँ। (47-48)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम कह सकते हैं कि नाटककार ने एक ऐसे जनपदीय क्षेत्र का वर्णन किया है यहाँ बुजुर्गों की मानसिकता को भी नहीं समझा जाता, जैसे हम जानते हैं कि बुजुर्गों का सम्मान अकेले परिवारों में ही नहीं घटा, सामान्य वर्ग के लोगों ने भी इस वर्ग को उपेक्षित करना शुरू कर दिया। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने यह भी सिद्ध किया है कि बुजुर्ग चाहे किसी भी दुर्दशा में क्यों न हों, सदैव सब की भलाई ही चाहते हैं, लेकिन आधुनिक युवाओं को उनकी बात ऐसी चुभती है, जैसे उन्होंने तो सारी ज़िन्दगी में किया ही कुछ न हो।

पंजाबी नाटकों से इस समस्या की तुलना करें, तो सतीश कुमार वर्मा के द्वारा रचित ऐतिहासिक नाटक *लोक मना दा राजा* में प्रस्तुत किया गया है कि महाराजा रणजीत सिंह के समय बुजुर्गों का अपने परिवार और समाज में तो सम्मान था ही, साथ-ही-साथ राज दरबारों में भी बहुत सम्मान दिया जाता था। जो आज बहुत कम देखने को मिलता है। महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में एक बार बूढ़ी औरत जिसे

आँखों से भी दिखायी नहीं देता था, वह कर्मचारियों के रोकने पर भी आ जाती है। वार्तालाप के अनुसार-

> बूढ़ी: महाराजा मैंने सुना है कि तुम पारस हो, पारस से लग जाने पर प्रत्येक वस्तु सोना बन जाती है। मैं अंधी जरुर हूँ, लेकिन मुझे यकीन है कि मेरा यह बर्तन सोने का बन जाएगा।
>
> महाराजा: हाँ माँ ! यह सोने का ही बन गया है, कोई भी तुझसे खो नहीं सकता (सभी लोग हैरानी से राजा और बूढ़ी औरत की तरफ देखते हैं)
> सिपाहियों, इस बर्तन को सोने की मोहरों से भर दिया जाए और इस बुजुर्ग औरत को हिफाजत से, घर छोड़ आओ। याद रहे इस सोने के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं होनी चाहिए। (34)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम महाराजा रणजीत सिंह के काल में बुजुर्गों की स्थिति देख सकते हैं, यदि इसकी तुलना आज से करें तो आज बुजुर्गों की स्थिति अच्छी नहीं है। *लोक मना दा राजा* नाटक विषयवस्तु की दृष्टि से ऐतिहासिक है लेकिन नाटककार ने इतिहास के माध्यम से वर्तमान की सामाजिक समस्याओं को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया है। इस नाटक के विषय में नसीब बवेजा *सतीश कुमार वर्मा का नाट जगत* में लिखती हैं- "'लोक मना दा राजा' नाटक ऐतिहासिक होते हुए भी आधुनिक समस्याओं को प्रस्तुत कर रहा है।" (23)

समकालीन समाज में बुजुर्गों की स्थिति को प्रस्तुत करता नाटक *सुपर वीज़ा* भी है, जो नाहर सिंह औजला के द्वारा रचित है। इस नाटक का मुख्य पात्र मनप्रीत सिंह है, जो काफी समय पहले अपनी पत्नी हरमन के साथ विदेश चला जाता है और विदेश से ही अपने पिता करतार सिंह और माता धर्म कौर को सुपर वीजे के अधीन अपने पास बुला लेता है। मनप्रीत की पत्नी हरमन उन्हें बुजुर्गों वाला आदरभाव नहीं देती और हर बात पर उनसे झगड़ा करती रहती है। धर्म कौर की कानों की आवाज़ सुनने वाली मशीन खराब हो जाती है, उसका बेटा मनप्रीत तो घर लेट आता है इसलिए घर्म कौर अपनी बहु से इसे सही करवाने को कहती है, लेकिन आगे से हरमन उनके सुपर वीजे के खर्च को सुना कर झगड़ा शुरू कर देती है। शाम को जब करतार सिंह उसे मशीन सही करवाने के विषय में पूछता है, तो उस समय उनकी त्रासदी साफ़ झलकती है-

> धर्म कौर: मनु के पास समय नहीं है, ठीक कराने के लिए। हरमन को बोला था, वह ताने देने लगी, कहती पहले ही सुपर वीजे पर बहुत खर्च हो गया, तुझे मशीन की पड़ी है। (20)

इस नाटक के अंत में हम देखते हैं कि करतार सिंह और उसकी पत्नी धर्म कौर यह महसूस करते हैं कि अब वहाँ उनके रहने के अनुकूल पारिवारिक परिवेश नहीं है और वह वापस अपने देश को आने का निर्णय कर लेते हैं। करतार सिंह अपने पुत्र से कहता है-

> करतार सिंह: हरमन पुत्र तुम अपनी ज़िन्दगी अपने ढंग से जिओ, हमने वापस जाने का फैसला कर लिया। हमें नहीं मालूम था कि हमारे सुपर वीजे ने इतनी बड़ी समस्या खड़ी कर देनी है। हम तो बड़ी चाहत के साथ तुम्हारे पास आए थे, यहाँ पर तो रिश्तों को ही डालरों के साथ तोला जाता है। अब हम यहाँ नहीं रह सकते। हम तो अपने पंजाब में ही जाएँगे, कम से कम हमारी भुबल तो वहाँ पहुँच जाएँगी। (30)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देख सकते हैं कि आज हमारे समाज में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपने बुजुर्गों से ज्यादा सम्मान पैसे को देते हैं, जब इस प्रकार की स्थिति बनती है, तो बुजुर्ग अंदर से टूट जाते हैं। डॉ. रेशम सिंह *नाट सरोकार* में इस नाटक के विषय में लिखते हैं- "'सुपर वीज़ा' नाटक आज के समाज की यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत करता है।" (84)

अत: प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि समय, स्थान और परिवेश के बदलाव के साथ-साथ रिश्तों का लगाव भी बदल रहा है। आज हमारा शिक्षित समाज वैज्ञानिक उन्नति तो बहुत तेजी से कर रहा है और शिक्षा के कारण नए-नए अविष्कार भी कर रहा है, लेकिन अपने रिश्तों के प्रति मानसिक रूप से बहुत पिछड़ रहा है, यह हमारे समाज की सबसे बड़ी त्रासदी है।

2.2.1.4 बदलते सामाजिक परिवेश में दाम्पत्य सम्बन्धों में परिवर्तन

प्राचीन काल से दाम्पत्य सम्बन्धों की बात करें, तो निश्चित ही स्त्रियों का व्यक्तित्व सुरक्षित रहा होगा। वह अपना वर स्वयं चुन सकती थी। सीता हो, कुंती हो अथवा कोई सुकन्या, सभी को स्वयंवर का अधिकार रहा था। प्राचीन काल से ही विवाह के बाद स्त्रियों का पति के घर पूरा अधिकार हो जाता था। वे पति की हर तरह से सहायता करती थी। सामान्य शब्दों में हम कह सकते हैं, उस समय दाम्पत्य के सम्बन्ध अच्छे थे, इस विषय में सुभाष शर्मा *भारतीय महिलाओं की दशा* में लिखते हैं-

> हमारी प्राचीन संस्कृति में जो मिथकीय आदर्श हैं, वे कहीं-कहीं सकरात्मक भी हैं। जैसे सीता का नाम राम से पहले लिया जाता है- 'सीताराम' कहकर, न कि 'रामसीता'। इसी प्रकार 'राधेश्याम' कहकर राधा का नाम श्याम (कृष्ण) से पहले लिया जाता है। (158)

लेकिन मध्यकाल में; इनके सम्बन्धों में बदलाव आना शुरू हो गया था। हिन्दू-मुसलमान दोनों में पर्दा-प्रथा एवं बाल-विवाह का प्रचलन होने लगा। स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। सिर्फ शाही घराने की छोटी लड़कियां ही शिक्षा ग्रहण कर पाती थी। उस समय के लड़के-लड़कियों की शिक्षा के विषय में डी.एन. मजूमदार और रायचौधरी *स्त्री संघर्ष का इतिहास* में लिखते हैं-

> शाही घराने और धनी अमीरों की लड़कियां अपने घरों में ही शिक्षा प्राप्त करती थी और हम यह मान सकते हैं कि हिन्दुओं और मुस्लिमों के मध्यम वर्ग की लड़कियां तो शिक्षा से दूर रह जाती थी। (13)

मध्यकाल के बाद यदि हम आधुनिक काल की बात करें तो बहुत बड़ा बदलाव देखने को मिलता है। आज की स्त्री पढ़ी-लिखी होने के कारण प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के बराबर काम करती है। आज के पुरुष को स्त्री की कमाई तो अच्छी लगती है, लेकिन उसका बाहर अन्य व्यक्तियों के साथ बातचीत करना बुरा लगता है और उसे शक की नज़र से देखा जाता है।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से सामाजिक संघर्ष के कारण परिवेश के बदलाव को प्रस्तुत किया

गया है, इनके अनुकूल परिवर्तन देखें तो, आज के समाज में दाम्पत्य में टकराव का मुख्य कारण ही यही है। आधुनिक परिवारों में पति-पत्नी के सम्बन्ध में संघर्ष का स्वरूप बहुतात से देखने को मिल रहा है। स्त्री और पुरुष निकटता के सूत्र में बंधकर भी अज़नबी के रूप में निर्वाह करने की नियति से अभिशप्त हैं। दोनों एक दूसरे के होने में नहीं, न होने के बोध से टूटते हैं। उनके बीच अगर कहीं सम्बन्ध के पर्दे की कोई झलक है तो सिर्फ लोगों की नज़र में है।

इस प्रकार यदि हिन्दी नाटकों के माध्यम से आधुनिक युग के स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के परिवेश को प्रस्तुत करें, तो आज की नारी काम-वासना में ही भटक गई है। सुशील कुमार सिंह का नाटक *चार यारों की यार* इसी दशा को प्रस्तुत करता है। यौन-सम्बन्धों के धरातल पर लिखित यह नाटक, यह सोचने को मजबूर कर देता है कि क्या स्त्री-पुरुष (पति-पत्नी) के सम्बन्ध का आधार केवल यौन-तुष्टि ही है। इस नाटक की कथा के अनुसार एक बिन्दिया नामक पात्र अपने पहले पति को इसलिए छोड़ देती है कि वह शराब बहुत पीता था, लेकिन दूसरी शादी बहुत अच्छे व्यक्ति जो मास्टर भी लगा हुआ है; उससे करती है। शादी करने के बाद भी उसे मानसिक संतुष्टि नहीं मिलती, जिसके कारण वह अन्य पुरुषों के सम्पर्क में आती है और अपने पति की हत्या भी कर देती है। नाटक की नायिका नाटक के प्रारम्भ में ही, इस प्रकार के सम्बन्धों को सम्बोधित करती हुई कहती है-

> मैंने अपने पति की निर्मय हत्या की है। उस पति की हत्या, जो मुझसे बेहद प्यार करता था ..... अटूट विश्वास करता था। फिर भी मैंने उसकी हत्या की। उसके प्यार की हत्या की। उसके विश्वास की हत्या की। अपने इस शरीर के कारण जो वासना का अथाह कुंड है। अपने उन चार यारों की खातिर, जिनको यह शरीर मैंने पूरी तरह समर्पित कर रखा था और उस काम-कीड़ा में, मैं उन चार यारों की यार थी। उन्होंने मेरे शरीर को जैसे चाहा वैसा भोगा। (03)

इस नाटक के माध्यम से हम देख सकते हैं कि आज के दाम्पत्य में जो टकराव आ रहा है, उसका एक कारण कामकीड़ा भी है, आज बहुत सारे रिश्ते इसी कारण टूट रहे हैं, इस नाटक के विषय में डॉ. नगेन्द्रनाथ तिवारी *हिन्दी नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध* में लिखते हैं-

> चार यारों की यार जैसी नाट्य-कृतियाँ नाटककार की विकृत मनोवृत्ति अथवा उच्च वर्ग के कुछ गिने-चुने लोगों की विकृत मानसिकता को ही उदघाटित करती है। इन जैसे अन्य नाटकों में जिस कथ्य की अभिव्यक्ति हुई है, वह भारतीय समाज में अभी विशेष मान्य नहीं है। अपवाद स्वरूप स्थितियों के चित्रण तथा पश्चिमी सभ्यता और फैशन के अन्धानुकरण से इन नाटककारों को तत्कालीन ख्याति भले ही प्राप्त हो गयी हो, पर यह चिरन्तन महत्त्व नहीं पा सकेंगे। (226)

हम देख रहे हैं कि इक्कीसवीं शताब्दी तक आते-आते परम्परागत सम्बन्धों के स्थान पर नये मानवीय सम्बन्ध सामने आये हैं। आदर्शवादी मूल्यों एवं पुरानी परम्पराओं के कारण, आज परिवार की व्यवस्था टूट रही है। आज का व्यक्ति चाहे वह पुरुष हो या नारी, ऐसे कुंठित दाम्पत्य सम्बन्धों में जीने के लिए अभिशप्त हो गए हैं। दाम्पत्य सम्बन्धों में प्रेम की एकनिष्ठता लगभग गाहब हो चुकी है। पति-पत्नी दोनों ही रिश्तों की औपचारिकता निभा रहे हैं। सम्बन्धों में झूठ और दिखावे का सहारा अधिक लिया जा रहा है। नाटक *कहते हैं जिसको प्यार* जो कि कृष्ण बलदेव वैद के द्वारा रचित है, इस नाटक का पात्र अखिल शादी तो गीता से करता है, किन्तु प्रेम सम्बन्ध उसकी छोटी बहन सुजाता से बनाए हुए हैं। पत्नी के पूछने पर वह इन सम्बन्धों को अस्वीकार भी कर देता है, इस नाटक के माध्यम से हम देखते हैं कि पति-पत्नी के सम्बन्धों में झूठ एवं अविश्वास की भावना बढ़ रही है। प्यार किसी ओर से हो और विवाह किसी ओर से, यह भी किसी हद तक सम्बन्धों में तनाव पैदा करता है।

यदि पंजाबी नाटकों से इसकी तुलना करें, तो दाम्पत्य सम्बंधित काफी नाटक पंजाबी साहित्य में रचे गये। पंजाबी नाट्य-साहित्य की समीक्षा करें, तो पहले युग से लेकर आधुनिक युग तक भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से नाटककारों ने अपने नाटकों में इस समस्या को प्रस्तुत किया है। हमारे समाज की प्राचीन से आधुनिक युग तक, यही स्थिति रही है कि प्रेम विवाह को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जाता। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि कुछ ऐसे कारण हैं, जो प्रेम सम्बन्धों में रुकावट बनते हैं। चाहे औरत और मर्द में कितना ही प्यार क्यों न हो, यह ऊँच-नीच की भावना बनी रहती है। आधुनिक समाज का पढ़ा-लिखा युवा वर्ग भी, इस कारण से ही अपने जज्बातों को दबा लेता है कि इसको समाज ने स्वीकार नहीं करना, बस कुछ थोड़े-से लोग ही समाज को चुनौती देते हुए प्रेम विवाह का सम्बन्ध जोड़ते हैं। अनीता शबदीश के

द्वारा रचित नाटक *कथा रिड़दे परिदें दी* में हम देखते हैं कि बलवंत सिंह की बेटी रानों अपनी इच्छा के अनुसार एक अच्छे पढ़े-लिखे लड़के से शादी करना चाहती है, लेकिन जब अपने परिवार से इस विषय को लेकर बातचीत करती है तो उसका बहुत ज्यादा विरोध किया जाता है और बाद में बलवंत सिंह और उसके पुत्रों के द्वारा उसका कत्ल भी कर दिया जाता है। बलवंत सिंह की पत्नी उससे कहती है "उसके जन्म के समय जिन हाथों से तुमने गुड़ती दी थी, उन हाथों से ही उसका कत्ल कर दियां, क्यों किया ऐसा.. आखिर क्यों।" (34)

ऐसे ही यदि हम आत्मजीत के द्वारा रचित नाटक *मैं ता एक सारंगी हां* की बात करें, तो इसमें ऐसे दम्पति को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें पिता अपनी बेटियों पर बहुत ज्यादा अत्याचार करता है, उन्हें छोटी-छोटी बात पर कोसता है, बेटियाँ कुछ भी करें, उसका सारा इल्जाम पत्नी पर ही आता है। बेटी पाल ने एक बार स्कूल के किसी कार्यक्रम की डिबेट में भाग लिया और उसका सारा गुस्सा उसकी माता पर निकाल दिया जाता है। जिसका वह चाह कर भी विरोध नहीं कर पाती। हमारे समाज में कुछ ऐसी भी स्त्रियाँ हैं जो अपने बच्चों के लिए सारी उम्र अपने पति के अत्याचार को सहन करने के लिए मजबूर हैं। वार्तालाप के अनुसार-

> पिता: पूछ ले अपनी लाड़ली से, पहले ये कमीज़-पजामे पहनती थी, उसे रोकना पड़ा, अब ये डिबेट में जाकर बोलने लगी है, तुमने इसको ज्यादा सिर पे चढ़ा रखा है, ध्यान से सुन ले, यदि इसने कोई ऐसी-वैसी हरकत कर दी तो, मैं तेरी चमड़ी उधेड़ दूँगा,..चमड़ी... (40)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देख सकते हैं कि हमारे समाज में कुछ ऐसे दाम्पत्य भी हैं जिसमें स्त्री के लिए सदैव डर का माहौल बना रहता है। इस संवाद के माध्यम से नाटककार ने पंजाब के जन समूह की भावनाएँ, रीति-रिवाज, परंपरा, व्यवहार और भय आदि को विशिष्ट जनपदीय रूप में प्रस्तुत किया है।

आज के दाम्पत्य से सम्बंधित गुरचरन सिंह जसूजा का नाटक *परियां* भी है। इस नाटक में नाटककार ने कल्पना का आधार लेते हुए लिखा है कि जिस स्त्री के साथ बुरा व्यवहार होता है, उसके पंख अपने-आप आ जाते हैं और वह नारी से परी बन जाती है, भाव वह स्त्री जागृत हो जाती है। इस नाटक में काफी स्त्री पात्र हैं, जिनके साथ किसी-न-किसी दशा में पुरुषों के द्वारा बुरा व्यवहार किया गया है और उन्होंने

परियों का रूप ग्रहण कर लिया, लेकिन इन सबमें, सबसे ज्यादा तरस योग स्थिति मिसिज मेहता की है। मिसिज मेहता का पति बलवंत नशे का आदी है और उसने शादी के बाद उसे बहुत परेशान किया। उसे बहुत मारा-पीटा और बाद में किसी जुर्म के तहत उसे जेल हो जाती है। मिसिज मेहता बड़ी मुश्किल से अपनी दोनों बेटियों को पालती है। जब जेल से रिहा होने के बाद उसका पति फिर मिसिज मेहता के पास आ जाता है, तो उसकी परेशानियां और बढ़ जाती हैं। एक वार्तालाप के अनुसार-

> बलवंत: पुरानी बातों को फरोलने का कोई फ़ायदा नहीं। तुम तो बड़े जिगरे वाली औरत हो, धरती समान।
>
> मिसिज मेहता: हाँ, मैं बड़े जिगरे वाली हूँ। मैंने तुझे सुधारने का बहुत प्रयास किया, परन्तु मेरी कोशिशों का तुम्हारे ऊपर कोई असर नहीं हुआ। तुम्हारी बुरी आदतों ने घर को उजाड़ दिया। यदि घर का खर्च चलाने के लिए मैंने नौकरी की, तो तुमने मेरे चरित्र पर झूठी तोहमतें पायी। तुम्हारी शक भरी नज़रे हमें काँटों के समान चुबने लगी। (79)

मिसिज मेहता को अपने पति के द्वारा दिए सभी कष्ट याद आते हैं और वह सब याद कर अपना दिल हल्का कर रही है। मिसिज मेहता कहती है-

> कैसे भूल जाऊ? तेरे साथ रह कर मैं गली के कचरे से भी हल्की हो गयी। शराब के नशे में तुमने मेरे शरीर के चीथड़े उडाए। बेटियों के जन्म के दोष में मुझे लाठियों से पीटा गया। इसमें मेरा क्या कसूर था? (खूब रोती है) तेरी पशुओं जैसी मार, मुझे कैसे भूल सकती है? (80)

प्रस्तुत नाटक के माध्यम से हम देख सकते हैं कि हमारे समाज में कुछ पुरुष ऐसे भी हैं, जो अपनी नशे की लत के कारण अपने और अपने परिवार के जीवन को नर्क बना देते हैं। ऐसे पुरुष आप तो नशे में रह कर अपने बीवी-बच्चों का कुछ नहीं सोचते, लेकिन ऐसे परिवारों की औरतों को दोहरा संताप भोगना पड़ता है, पहला तो कुछ कमाने के लिए बाहर जाओ; दूसरा जो कमाया है, उसे बचाने के लिए पति की मार खाओ, क्योंकि नशेड़ी व्यक्ति तो सिर्फ अपने नशे तक ही सीमित होता है। वर्तमान के भारतीय समाज में नशे के कारण बहुत सारे परिवार पीड़ित है, क्योंकि नशे के कारण पति-पत्नी में हमेशा टकराव रहता है, जिसके कारण अन्य सदस्य भी दुखी रहते हैं। इस नाटककार के विषय में डॉ. रेशम सिंह *नाट सरोकार* में लिखते हैं- "गुरचरन सिंह

जसूजा ने अपने नाटकों में समकालीन दाम्पत्य सम्बन्धों की खीचा-तानी को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया है।" (73)

प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना के आधार पर हम कह सकते हैं कि आज दाम्पत्य से सम्बंधित परिवेश बदल रहा है। पहले स्त्री अपने पति की विरोधता नहीं करती थी और सारी ज़िन्दगी उसके जुल्मों को चुपचाप सहन करती रहती थी, लेकिन आज की नारी में बदलाव आ गया है। इस बदलाव का कारण अकेला सामाजिक संघर्ष ही नहीं है, बल्कि कानूनी स्तम्भ भी हैं, क्योंकि आज की शिक्षित नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग है। उसे अच्छे-बुरे की पहचान है और वह अपने पति के आगे बोलने का साहस भी रखती है, साथ ही कानून के माध्यम से अपने अधिकारों को भी जानती है। इसके विपरीत आज हम यह भी देख रहे हैं कि अनपढ़ के मुकाबले पढ़े-लिखे वर्गों में तलाक अधिक हो रहे हैं। बदलते दाम्पत्य सम्बन्धों में हम अकेले पुरुष को ही जिम्मेदार नहीं ठहरा सकते, क्योंकि इसमें स्त्री भी उतनी ही भागीदारी है, जितनी पुरुष की।

2.2.1.5 बदलते सामाजिक परिवेश में नारी के प्रति दृष्टिकोण

आदिकाल से लेकर आज तक का भारतीय इतिहास, इस बात का साक्षी है कि नारी किस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष की अभिन्न सहयोगिनी के रूप में अपने नारीत्व को प्रकाशित करती आयी है। नारी के सहयोग के अभाव में पुरुष ने सदा अकेलेपन का अनुभव किया है और जहाँ भी सहयोगिनी के रूप में नारी प्राप्त हुई है, वहाँ उसकी सदैव विजय हुई है। भारतीय साहित्य में नारी के विविध रूपों को चित्रित किया गया है। वास्तव में सत्य यह है कि जिस युग के समाज में नारी का जो स्थान था, उस युग के साहित्य में नारी उसी रूप में चित्रित की गयी है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज की सारी मान्यताएं, उसके युग के साहित्य में उभर आती हैं। यही कारण है कि आदिकाल से लेकर आज के साहित्य में प्रस्तुत नारी के विविध रूप देखने को मिलते हैं, भारतीय इतिहास का प्रारम्भ वैदिक युग से हुआ, उस युग में तो नारी का पूर्ण सम्मान किया जाता था, लेकिन बाद में धीरे-धीरे नारी के प्रति दृष्टिकोण बदलने

लगा और इसे पुरुष के पैर की जूती समझने लगा, लेकिन आज हम बहुत बड़ा बदलाव देख रहे हैं, सुभाष शर्मा *भारतीय महिलाओं की दशा* में लिखते हैं-

> महिलाओं को बच्चे जनने, बच्चों का पालन-पोषण करने, पति, सास-ससुर आदि की सेवा करने आदि की सीमित भूमिकाओं में देखने की परिपाटी रही है। परन्तु शहरीकरण, औद्योगिकरण, निजीकरण, शिक्षा के प्रसार, संचार माध्यमों आदि के प्रभाव के कारण काफी महिलाएँ घर से बाहर काम करने जा रही हैं, सार्वजनिक जीवन के अधिकांश क्षेत्रों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रही हैं। (305)

इक्कीसवीं शताब्दी में इतना बदलाव आने के बावजूद भी हमारे समाज में बहुत सारी स्त्रियाँ आज भी शोषण का शिकार हो रही हैं। इस विषय से सम्बंधित नादिरा ज़हीर बब्बर का नाटक *जी, जैसी आपकी मर्ज़ी* है। इस नाटक में नाटककार ने कई स्त्रियों की कथाओं को प्रस्तुत किया है और इस नाटक के माध्यम से हमें आधुनिक युग की नारी की त्रासदी भी दिखायी दे रही है। इस कथा में सुल्ताना नामक एक मुसलमान स्त्री पात्र है। जिसकी बारह-तेरह वर्ष की आयु में ही शादी कर दी जाती है। उसका पति अकील; उससे दस वर्ष बड़ा था। सुल्ताना की शादी के बाद तीन लड़कियां पैदा हुई, उनके ससुराल वालों ने यह कह कर घर से निकाल दिया, कि तू बेटे को जन्म नहीं दे सकती। सुल्ताना बहुत चिंता में रहती है और बाद में अपने मायके चली जाती है। वहाँ उसके भाई और भाभी, उसे और उसकी बेटियों को घर में ठहरने से इन्कार कर देते हैं। सुल्ताना के बाप की मृत्यु हो चुकी है और माँ अपने-आपको सुल्ताना के आगे लाचार पाती है। सुल्ताना अपने भाइयों के घर के सामने एक झोपड़ी बना कर रहने लगती है और लोगों के घरों में झाड़ू-पोचा करके, अपने बच्चों को पालने लगती है, इसी बीच छ-सात साल बीत जाते हैं। तभी मोहल्ले में रहने वाला एक हकीम साहब, जिसकी बीवी मर चुकी थी। वह सुल्ताना को देख कर गलत बातों की शायरी करता था। सुल्ताना को गुस्सा तो बहुत आता, लेकिन वह सिर झुका कर निकल जाती। एक दिन उसी हकीम साहब ने सुल्ताना से निकाह करने के लिए, उनके भाइयों से कहा। सुल्ताना के मना करने पर भी उसका निकाह हकीम साहब के साथ कर दिया जाता है। इस प्रकार हकीम के साथ निकाह होने के बाद सुल्ताना और उसकी बेटियां और दुखी रहने लगी, क्योंकि हकीम साहब ने उनके ऊपर बहुत-सी बंदशे लगा दी थी, सारा दिन उनसे दवाई रगड़ने का काम करवाता। सुल्तान को एक

बार लगा कि उसकी बेटी सबीहा एकदम डरी-डरी सी रहती है, पूछने पर भी उसने नहीं बताया। एक दिन सुल्ताना किसी काम के लिए बाहर जाती है और वापस आ कर देखती है, उनकी बेटी का साथ हकीम दुष्कर्म कर था। सुल्ताना कहती है-

> यह देख कर मेरे सिर पर खून सवार हो गया और मैंने कपड़े धोने वाला धोका उठा लिया, तब तक मारती रही जब तक उसके सिर के दो हिस्से हो नहीं गये और वह मर नहीं गया। (33)

इस नाटक के माध्यम से हम देख सकते हैं कि बदलते सामाजिक परिवेश में नारी का स्वरूप बदल रहा है। नारी अब जुल्म सहन नहीं करती। नाटककार ने आम जनपदीय भाषा का प्रयोग कर, नारी की भावना को प्रस्तुत किया है, नादिरा ज़हीर बब्बर के इस नाटक के विषय में जयदेव तनेजा *आधुनिक भारतीय नाट्य-विमर्श* में लिखते हैं-

> बारह-तेरह साल की कच्ची उम्र में अपने से दस साल बड़े वकील से ब्याही गयी सुल्ताना का अपने पति द्वारा किया गया बलात्कार, बीस साल की उम्र तक लड़का न पैदा करने के जुर्म में चार बेटियों के साथ तलाक और घर से निकाला जाना, माँ और दो-दो भाइयों के होते बेसहारा होकर फुटपाथ पर रहना, दो बेटियों की मृत्यु, अपनी इज्जत बचाने और भांजियों की शादी के वक्त सम्भावित जिम्मेदारी से बचने के लिए भाइयों-भाभियों द्वारा सुल्ताना का एक विधुर-दकियानूस हकीम साहब से जबरदस्ती निकाह, उसकी बेटी सबीहा से दुश्चरित्र हकीम द्वारा बलात्कार, गुस्से से पगलाई सुल्ताना के हाथों हकीम की हत्या एवं जेल के बावजूद उसका आत्मसम्मान के लिए लड़ना और अन्तत: बच्चों की कामयाबी के साथ जितना, दिलचस्प ही नहीं नारी के लिए प्रेरणादायक और बदलते दृष्टिकोण का प्रतीक भी है। (291)

इस प्रकार की उदाहरणों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि नारी किसी भी स्थिति में क्यों न हो; वह जीना जानती है। आज हम देखते हैं कि तलाक आम बात हो गई है, जो कि नारी के लिए कलंक है, पुरुष चाहे उसे आजादी समझे, चाहे अपमान। कुछ लोग नारी के जन्म को ही बुरा मानते हैं और आज की सदी में भी बहुत सारे लोग लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाहर नहीं भेजते, नैरेश गढ़वी और राम सोंदवी अपनी रचना *21वीं सदी में महिलाओं का बदलता स्वरूप* में लिखते हैं

महिलाओं के प्रति इन्हीं भेदभाव को दूर करने के लिए सरकार के द्वारा 8 मार्च को महिला दिवस मनाया जाता है, ताकि महिलाएं शिक्षित होकर अपनी शक्ति, अधिकार और पहचान को समझ सके। यदि महिलाएं बौद्धिक और आर्थिक रूप से सशक्त होंगी, तो वे प्रत्येक क्षेत्र में उचित निर्णय ले सकेंगी। (166)

नारी के अतीत की बात करें तो, भारतीय इतिहास के अनुशीलन से यह पता लगता है कि प्राय: राजकुल की नारी ज्ञान-विज्ञान और ललित कला में निपुण होने के साथ-साथ राजनीति और युद्ध-कला की भी शिक्षा पाती थी। मीरा कांत के द्वारा रचित नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में हुमायूँ की सेहत खराब होने पर शासन की कमान उनकी बेगम हमीदा बानो संभालती है। हुमायूँ जब सही होता है, उस समय भी हमीदा उसे पूरी राजनीतिक सलाह देती थी। इस प्रकार बाद में भी हम देखते हैं कि जब तक अकबर तजुर्बे वाला नहीं हो जाता, तबतक शासन कारोबार हमीदा बानो की देख-रेख में कुशलता से चलता है और वह अपनी नीतियों से शासन को भी बहुत सफलता से चलाती है और साथ ही जनता को यह भी पता नहीं चलने देती कि शासन की असल सत्ता किसके हाथ में है।

नादिरा जाहिर बब्बर के नाटक *सकुबाई* के माध्यम से नारी की दशा की बात करें तो, हम देखते हैं कि महाराष्ट्र में हिन्दी और मराठी साहित्य में नारी को 'बाई' भाषा से संबोधित किया जाता है, लेकिन अन्य राज्यों में नारी के लिए बाई शब्द होते हुए भी बोलचाल के शिष्टाचार के नियमों में 'बाई' का प्रयोग उचित नहीं समझा जाता, बल्कि इसके लिए बहनजी, देवीजी, सुश्री आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इस नाटक में सकुबाई कहती है- "मैं .... शकुन्तला।..... शकुन्तला नाम है मेरा। सकु तो यहाँ सब बुलाते हैं।" (22)

पंजाबी नाटकों के साथ तुलना करें, तो अनीता शबदीश के द्वारा रचित नाटक *कथा रिड़दे परिंदे दी* भी नारी के बदलते परिवेश को प्रस्तुत करता है, इसमें हम देखते हैं कि आज के आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के ऊपर पुरुष वर्ग की पकड़ मजबूत है, नारी को आर्थिक और सामाजिक आजादी होने पर भी वह इसका पूरा सुख नहीं भोग सकती। पीड़ित नारी की, दूसरी नारी चाहते हुए भी मदद नहीं कर सकती। इस नाटक में ऐसा ही होता है, एक लड़की जो किसी लड़के को पसंद करती थी और अपनी माँ की मदद से उससे शादी करना चाहती थी, लेकिन माँ भजन कौर

चाह कर भी उसकी मदद न कर सकी और उसके सामने ही, उसे मार दिया जाता है, बाद में भजन कौर अपनी बेटी के प्रति पश्चाताप करती हुई अपने पति को कोसती है-

> आप मुझे बोलने दें ..... हमारी औरतों का.... बोलने के समय शांत रहना ही सबसे बड़ा गुनाह होता है .... और तुम मर्दों का हमारे ऊपर पहरा लगाना ....मुँह के ऊपर जिंदरा लगा देना ..... मुझे उसने सब कुछ बता दिया था .... मैं उसके साथ सहमत भी थी... लेकिन उसका साथ न दे सकी... मुझसे इससे बड़ा गुनाह, अनहोनी घटने के बाद भी न बोल सकने पर हुआ.... सब कुछ ऐसे ही रह गया.... मेरी ममता की कुर्बानी दे दी गई। (30)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से नाटककार ने पंजाब की एक नारी की भावना को व्यक्त किया है कि वह किस प्रकार अपने दर्द को पहले छिपाकर रखती है और बाद में उसे लोगों के सामने प्रस्तुत करती है।

ऐसे ही नारी की दशा को बयान करता हुआ पंजाबी नाटक *चंदन दे ओहले* भी है, जो पाली भूपिंदर सिंह के द्वारा रचित है। इस नाटक का मुख्य पात्र प्रधान नामक व्यक्ति है, जो लड़का बनी और लड़की माणा का पिता है। प्रधान किसी भी तरीके से अपने बेटे बनी को विदेश भेजना चाहता है, जिससे समाज में उसकी और इज्जत बन जाए। इस नाटक की माणा पात्र, जो किसी और जाति के लड़के के साथ शादी करना चाहती है, परन्तु उनके माता-पिता इसकी इजाजत नहीं दे रहे, इसलिए वह कमरे में बंद है और उसे फोन सुनने तक की मनाही है। बनी को विदेश भेजने के लिए शर्मा (दलाल) एक एन.आर.आई. प्रेटी नामक लड़की के बारे में बताता है, जिसका बाप मि. गेल लालची है और दस लाख रुपए लेने की शर्त रखता है और साथ ही लड़की को बताने को भी मना करता है। जब शादी निश्चित हो जाती है, तो एन.आर.आई. प्रेटी लड़की को सब पता चल जाता है कि उसके पिता ने एक समझौते के तहत मेरी शादी निश्चित की है और साथ ही सभी लोगों के खतरनाक इरादों का पर्दाफाश होने पर प्रेटी भयभीत होकर बोलती है-

> प्रेटी: यह पंजाब तो बाबे नानक की धरती है, कम से कम बेटियों की तो रिसपेक्ट किया करो, लेकिन ..... भूल गयी थी मैं, कि नानक के लोग नानक के होकर भी, नानक के नहीं हैं। (49)

प्रेटी के आगे जब सब का पर्दाफाश हो जाता है, तो वह अपने पिता को थप्पड़ मार कर वहाँ से चली जाती है। नारी जो सदियों से ज़ुल्म सहन करती आयी है, उनमें से कुछ ने तो अपने-आप को बचा लिया है और कुछ नारियों का आज भी शोषण हो रहा है। जैसे इसी नाटक में एक नारी तो किसी की अधीनता स्वीकार नहीं करती और दूसरी माणा जिसकी जबरदस्ती प्रेटी के पिता के साथ शादी कर दी जाती है, ताकि वह बाद में अपने भाई को विदेश ले जा सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि माँ-बाप भी बेटे की ख़ुशी के लिए बेटी को उपेक्षित कर देते हैं। जब माणा इसका विरोध करती है तो, शर्मा पढ़ी-लिखी आधुनिक नारी के विषय में, अपने भद्दे विचार व्यक्त करता है- "चार चपेड़ें लाएं, शादी का सूट पाएं, फेरे दिलाएं और विदेश भगा दें, नारी जात है, क्या कर लेगी, यदि आदमी बुरी नीयत पर आ ही जाए।" (60)

इस प्रकार की समस्याओं से सम्बंधित आत्मजीत का नाटक *मैं ता एक सरंगी हाँ* भी है, इस नाटक की तीन पात्र मीना, पाल और गीता, जो लगभग 50 वर्ष की हैं। इन तीनों ने नारी होने का संताप भोगा है। इन तीनों में समानता इस बात की है कि इन तीनों का शोषण इनके सगे संबंधियों के द्वारा ही किया गया। मीना और पाल अपने सगे संबंधियों द्वारा किए गये गलत कामों के विषय में वार्तालाप करती हैं-

> पाल: मीना तुम्हारा बलात्कार किया, एक टीचर ने ..... परन्तु हमें शिकार बनाने की हरकत की मेरे सगे चाचे ने, जिसको मेरी माँ ने अपने हाथों से पाला था ..... मेरे से सात वर्ष बड़ा, मेरे अपना चाचा, न मैं उसे भूल सकती हूँ और न बदला ले सकती हूँ और गीता.. गीता को शिकार बनाया अपने ही कोच ने.. (80)

दुःख, अपमान और अभावग्रस्तता की मार से पस्त नारी आज भी त्रास भरा जीवन व्यतीत कर रही है। इस विषय पर डॉ. गुरतेज सिंह *अजीत* अखबार में प्रकाशित अपने आलेख *देश में आज भी सुरक्षित नहीं है नारी* में लिखते हैं-

> 2016 में भारत में हुए दुष्कर्म के कुल 36859 मामले आए हैं, जिसमें 630 मामले दादा, भाई, पिता आदि से सम्बंधित हैं और 1087 मामले बहुत ही करीबी रिश्तेदारों और अध्यापकों से सम्बंधित हैं। (04)

हमारे समाज में नारी की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में स्थिति उतनी अच्छी नहीं है, जितनी आज होनी चाहिए थी। यदि प्रौद्योगिकी

के विकास से उनके घरेलू कामों में कुछ सहूलियतें मिली (जैसे कपड़ा धोने की मशीनें, खाना बनाने के उपकरण) लेकिन उनके इस अस्तित्व पर भी एक अन्य तकनीक ने ग्रहण लगा दिया है। मादा भ्रूण की पहचान मशीनों से कर ली जाती है, जिसके कारण जन्म के पूर्व ही उनकी हत्या कर दी जाती है। यदि आर्थिक रूप से कुछ नारियाँ आत्मनिर्भर हुई हैं, मगर उन्हें दफ्तरों के साथ-साथ घर का काम भी करना पड़ता है जिससे उन्हें दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है।

प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि आज के युग में नारी की दशा में थोड़ा ही सही, लेकिन बदलाव आया है, आज की नारी पुराने समय में जी रही नारी से काफी निडर और आत्मविश्वासी है, इसमें अपने प्रति किसी प्रकार के दुराचार के विरुद्ध आवाज उठाने की क्षमता है। पहले समय की नारियों के बारे में यह पूर्णत: नहीं कह सकते कि उनमें आत्मविश्वास नहीं था, लेकिन यदि सामान्य परिवार में नारियों की स्थिति के बारे में बात करें तो उस समय बहुत कम नारियां ऐसी थी, जो अपने विचारों को बिना डरे किसी के भी सामने प्रस्तुत करती थी, इसकी वजह केवल नारी ही नहीं, उस समय का समाज और उनके आस-पास का परिवेश था जो हमेशा नारी की आवाज को दबाने का प्रयास करता था।

2.2.1.6 भ्रष्टाचार से प्रभावित सामाजिक परिवेश

भ्रष्टाचार का अर्थ, भ्रष्ट आचरण या व्यवहार से है, जो स्वार्थ से लिप्त होकर कोई भी किया गया गलत कार्य, भ्रष्टाचार कहलाता है। हम भ्रष्टाचार शब्द का प्रयोग दैनिक जीवन में करते हैं, परन्तु इसकी ठोस परिभाषा करना बड़ा कठिन प्रतीत होता है। एक बात बिलकुल स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार, व्यक्ति की किसी मनोवृत्ति, चिन्तन या गुण का नाम नहीं है, अपितु यह तो एक विशेष आचरण का परिचायक है, जो भ्रष्ट माना जाता है। इसका आशय है तौर-तरीके और नैतिकता से आदर्शों का टूट जाना, घूस आदि लेना। एम. ए. इलियट और एफ. इ. मैरिल की अनुवादित रचना *सामाजिक अव्यवस्था* में लिखा है-

> अपने अथवा अपने सगे संबंधियों, परिवार वालों और मित्रों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई आर्थिक अथवा अन्य लाभ उठाना भ्रष्टाचार है। यदि आधुनिक

भ्रष्टाचार की बात करें, तो आधुनिक भ्रष्टाचार, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के लिए, किसी निर्दिष्ट कर्त्तव्य का जानबूझकर पालन न करना है। (88)

भ्रष्टाचार का क्षेत्र बहुत विशाल है और इसके कई रूप हैं, जैसे रिश्वत, कमीशन लेना, काला-बाज़ारी, मुनाफाखोरी, मिलावट, कर्त्तव्य से भागना, चोर अपराधियों को सहयोग करना और इसके अतिरिक्त गलत कार्य में रुचि लेना आदि सभी अनुचित कार्यों को भ्रष्टाचार कहा जाता है। भारत में भ्रष्टाचार की स्थिति एक आतंक जैसी है, जहाँ प्रशासनिक से लेकर शैक्षिक तक और सामाजिक से लेकर धार्मिक तक, सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार का बोल बाला है। धन की तृष्णा में जलता हुआ आदमी बाहरी सज्जा-सजावट एवं भोग विलास के लिए पैसा कमाना चाहता है और इसके लिए सबसे लघुतम साधन है, भ्रष्टाचार। आदमी इतना स्वार्थी हो गया है कि वह भ्रष्टाचार द्वारा दुनिया भर की सम्पत्ति अपने घर में भर लेना चाहता है।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से राजनीतिक प्रक्रिया और शिक्षा के कारण परिवेश के बदलाव को प्रस्तुत किया गया है, इनके अनुकूल परिवर्तन देखें तो, इस समस्या से सम्बंधित नाटककार अजय शुक्ला का नाटक *ताजमहल का टेंडर* है। यह काल्पनिक नाटक है, इसमें नाटककार कल्पना करता है कि आधुनिक दिल्ली दरबार के शासन पर शाहजहाँ आ कर बैठ जाता है और अपनी बेगम के लिए ताजमहल बनाने की इच्छा प्रकट करता है, लेकिन आधुनिक भ्रष्ट सिस्टम ने ताजमहल बनाने में 50 वर्ष लगा दिए। जिस दिन ताजमहल का टेंडर पूरा हुआ था, उस दिन शाहजहाँ की मृत्यु हो जाती है। इस नाटक में शाहजहाँ ही ऐतिहासिक पात्र है, अन्य सभी पात्र आधुनिक युग के हैं, इसमें गुप्ता के माध्यम से आधुनिक भ्रष्टाचारी स्थिति को प्रस्तुत किया गया है।

कथा के अनुसार शाहजहाँ दरबारियों को ताजमहल बनाने का ऐलान कर देता है और गुप्ता जी को इस निर्माण का कर्ता-धर्ता बना दिया जाता है। गुप्ता जी इतने भ्रष्ट हैं कि ताजमहल का कांट्रेक्ट अपने भ्रष्ट सम्बन्धी भइया जी नामक व्यक्ति को देता है। कांट्रेक्ट मिलने की ख़ुशी में वह गुप्ता से मिलने आता है और अडवांस रिश्वत को प्रस्तुत करता है-

भइया जी: बधाई हो गुप्ता जी बधाई हो।

गुप्ता जी: बधाई तो आपको हो भइया जी, जो कांट्रेक्ट आपको मिला है।

भइया जी: वो तो आपके रहते .....

सुधीर: पता है, सिंगल टेंडर पर काम आपको दे दिया, और पेमेंट भी एडवांस ही पूरा कर दूँ, तो पता चला आप जहाँ दफ्तर आ गये हैं। (ब्रीफकेस देता है।)

गुप्ता जी: अरे ऐसी भी क्या जल्दी? अब काम शुरू हो गया है तो ये सब हो ही जाएगा। (ब्रीफकेस सुधीर को देते हैं।) (26)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देख सकते कि नाटककार ने इस बात को सिद्ध किया है कि भ्रष्ट लोग रिश्वत को एडवांस ही दे देते हैं। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आधुनिक भ्रष्ट अफसर अपना खजाना भरने के बाद सबूतों को भी मिटा देना चाहते हैं, भ्रष्ट पात्र गुप्ता जी, भइया जी को कहता है-

गुप्ता जी: अरे भइया जी देखिये, पहली बात तो ये है कि अगर यहाँ आग लग जाए, तो सारी फाइलें जल जाएंगी, फिर किसी चीज़ का कोई एविडेंस ही नहीं रहेगा। क्यों, फिर कोई क्या एक्सपोज़ करेगा? और दूसरी ये है कि दफ्तर को नयी बिल्डिग बनाने का ठेका मुझे तुरंत आपको देना पड़ेगा? है न? बोलो।

भइया जी: मान गए गुप्ता जी, आप इन्सान नहीं फरिश्ता हैं। (73)

यह समस्या आज के प्रत्येक मंत्रालय में देखी जा सकती है। हमारे देश का कोई भी शासक यदि विकास करना चाहे तो इस भ्रष्ट प्रशासन में नहीं कर सकता। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से बताया है कि किसी भी सरकारी काम को सम्पूर्ण होने में कितने-कितने साल लग जाते हैं और उसमें कितना पैसा हड़प कर लिया जाता है। पचास वर्ष बाद यदि ये टेंडर पूरा होता है, तो उस दिन शाहजहाँ पूरे हो जाते हैं, नाटककार अंत में लिखता है-

गुप्ता जी: सुधीर, मैं तुमको एक बात बताता हूँ, सुन लो। वक्त गया बात गयी पर हम नहीं जाएँगे। फिर कोई ताजमहल का ख्वाब देखेगा, तब हम फिर बुलाए जाएँगे। (80)

इस प्रकार हम इस नाटक के माध्यम से देख सकते हैं कि हमारी प्रशासनिक व्यवस्था में पहले भी भ्रष्टाचार था और आज भी है, प्रस्तुत नाटक के माध्यम से नाटककार ने आगे भी रहने के संकेत दिए हैं। डॉ. मधु धवन का नाटक *आज की पुकार* में हम देखते हैं कि एक मास्टर जी भ्रष्टाचार पर मौलिक चिन्तन करता हुआ, अपने आप से तर्क करते हुए कहता है-

> अब समय आ गया है कि हम भारत में होने वाले भ्रष्टाचार का उन्मूलन करें। देश दिन-पर-दिन नैतिक मूल्यों को विसार चुका है। हमारे प्रगति के किसी मील के पत्थर पर हमारे शहीदों ने कुर्बानी के खून से फतह की इबादत लिखी थी तो किसी मील के पत्थर पर हमने इंसानियत को शर्मसार करने वाली करतूतों की स्याह दास्तानें अंकित कर दी हैं। पहले के मुकाबले आज हालात और भी चुनौतीपूर्ण हो गये हैं। चन्द भ्रष्ट नेताओं, अफसरों और लालची कम्पनियों के अनैतिक आचरण के कारण समाज पतन की ओर जा रहा है। (46)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से नाटककार ने जन-सामन्य की समस्याओं पर चिंता प्रकट की है,

पंजाबी नाटकों में इस भ्रष्टाचार की बात करें, तो जतिंद्र बराड़ के द्वारा रचित नाटक *पायदान* में उन्होंने चूहों का प्रतीक बना कर दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार सरकारी अफ़सर भ्रष्टाचार के द्वारा सब कुछ कुतर-कुतर कर खा जाते हैं और कुछ पता भी नहीं चलने देते। वार्तालाप के अनुसार-

> खजान सिंह: सही बात है जी (अंगूर खाते हुए) यह होते हैं सरकारी चूहे। इस प्रकार के चूहे हमारी सरकार के प्रत्येक विभाग में मिल जाते हैं। यह धरती के नीचे नहीं रहते, बल्कि सरकारी कुर्सी पर बैठते हैं, इनके दांत बहुत ज्यादा तीखे होते हैं, यह कुतर-कुतर कर सप्लाई, सीमेंट असली लोहा, असली बजरी, सड़कों की लुक, लोहे का सरिया और पुल एवं डैम तक भी खा जाते हैं। इनके हाजमें बहुत ताकतवर होते हैं। सब कुछ हजम कर जाते हैं और उसकी गंदगी तक भी बाहर नहीं निकालते! समझे कि नहीं समझे। (27)

इस विषय से सम्बंधित अजमेर सिंह औलख के द्वारा रचित नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* भी है, इस नाटक की कथा पंजाब के किसी गाँव की है, जहाँ कोई विदेशी कम्पनी सरकार की मदद से बिजली का प्रोजेक्ट लगा रही है,

जिसके लिए काफी एकड़ ज़मीन की जरूरत है। इस ज़मीन को प्राप्त करने के लिए गाँव के लोगों को कोई संदेश नहीं दिया जाता, बल्कि सरकार के बल पर ज़मीन को हड़प करने का प्रयास करते हैं। ज़मीन का जो मूल्य होता है, वे कृषकों को नहीं दिया जाता, बल्कि उसको भ्रष्टाचार सिस्टम के द्वारा बहुत घटा दिया जाता है। एक वार्तालाप के अनुसार-

> एम: (सिर्फ आवाज़) अच्छा मंत्री साहब, यह बताइए, आप कृषकों को कितना दें-गे एक एकड़ का? ज्यादा से ज्यादा बीस-तीस लाख ही न? बाकी का पैसा?
>
> रंधावा: (पार्टी का एक मंत्री) (जानबूझ कर रूखापन दिखाते हुए) इससे आपका क्या मतलब? हम कृषकों को बीस-तीस लाख दें या करोड़? पैसा क्या सिर्फ कृषकों को ही तो नहीं देना पड़ता !? वह ज़मीन देने से कृषक इन्कार नहीं करेंगे क्या? वह छतीसगढ़, यू.पी, महाराष्ट्र, राजस्थान, हरियाणा में क्या हुआ और क्या हो रहा है, उसे भूल गए आप? हजारों लाखों की गिनती में जब कृषक संघर्ष करने के लिए निकल पड़ते हैं, उनको कैसे रोकना पड़ता है? (आप ही उत्तर देते हुए) सरकार को ! कृषक क्या ऐसे ही रुक जाते हैं? उनको रोकने के लिए गोली चलानी पड़ती है चतुर्वेदी जी ! गोली से कृषक मारने भी पड़ सकते हैं, उसकों मारेगा कौन? (आप ही उत्तर देते हुए) हमारी पुलिस ! और जो अफसर गोली चलाने, कृषकों को मारने की जिम्मेदारी लेगा, उसे सरकार कुछ नहीं देगी क्या? और चतुर्वेदी साहब इसके अलावा जो डिप्टी कमीशनर, तहसीलदार आपको ज़मीन दिलवाने के लिए रास्ता साफ़ करेंगे वो मुफ्त में ही करेंगे क्या? जिन एजेंटों को ज़मीन बेचने के लिए गाँव-गाँव जाकर कृषकों को भरमाना पड़ता है, वह मुफ्त में ही ऐसा कर ... देगें क्या? चतुर्वेदी साहब, कृषकों की ज़मीन छीनने के लिए तरह-तरह के पापड़ वेलने और नाटक करने पड़ते हैं सरकार को !? किसी अफसर को दो करोड़, किसी को डेड़ और किसी को करोड़ देना पड़ता है और फिर जाकर। (39)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से नाटककार ने पंजाब के किसी क्षेत्र के जनपद के लोक जीवन और लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति जनपदीय बोली से करते हुए, हमारे आज की प्रशासनिक व्यवस्था की पोल खोल दी और साथ ही इस बात को भी प्रस्तुत किया है कि भ्रष्टाचार में कोई एक अफ़सर शामिल नहीं होता और बड़े-बड़े घोटाले राजनेताओं की छत्रछाया में ही होते हैं।

अत: प्रस्तुत दोनों भाषाओं के नाटकों की तुलना करते हुए कह सकते हैं कि वर्तमान युग में भ्रष्टाचार एक संक्रामक रोग की तरह है, इसके बढ़ने का कारण राजनीतिक प्रक्रिया में बदलाव है। समाज में विभिन्न स्तरों पर फैले भ्रष्टाचार को रोकने के लिए सरकार को ओर कठोर दंड-व्यवस्था बनानी चाहिए। आज भ्रष्टाचार की स्थिति, इस प्रकार है कि व्यक्ति रिश्वत के मामले में पकड़ा जाता है और रिश्वत देकर ही छूट जाता है। निश्चित ही इस विषय के परिवेश में भी काफी बदलाव आया है, सरकार ने तो इस भ्रष्टाचार के लिए 'भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988' बना दिया है, जिसके तहत सरकारी तंत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में भ्रष्टाचार को कम किया जा सके, लेकिन यदि हम लोग स्वयं में ईमानदारी को विकसित करेंगे, तभी हमारे राष्ट्र के नाम से यह बदनामी का कलंक दूर होगा।

2.2.1.7 बदलते सामाजिक परिवेश में प्रवास की प्रवृत्ति

बदलते सामाजिक परिवेश में प्रवास की प्रवृत्ति के विषय में लिखने से पहले, हम प्रवासी भारतीयों के विषय में जानने की कोशिश करेंगे, प्रवास सामान्य शब्दों में अपने जन्म स्थान को छोड़कर अन्यत्र बस जाने को कहते हैं। सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से देखें तो, प्रवास अनेक कारणों से होता है, लेकिन सबसे मुख्य कारण आजीविका के बेहतर अवसरों की तलाश में पुराने स्थानों का त्याग है। प्रवासी भारतीयों से आशय उन लोगों से हैं, जो मूल रूप से भारतीय हैं, परन्तु विभिन्न कारणों से विश्व के दूसरे देशों में जाकर बस गए हैं। ऐतिहासिक रूप से भारत से प्रवास का प्रथम उल्लेख, हमें सम्राट अशोक के अभिलेखों में मिलता है। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए ईसा पूर्व की तीसरी शताब्दी में श्रीलंका, यूनान, अफगानिस्तान आदि देशों में अपने दूत भेजे थे। एक प्रामाणिक तथ्य है कि इस काल के व्यापारियों ने अपने जहाजों से रोम तथा चीन तक व्यापारिक गतिविधियों को संचालित किया। औपनिवेशिक काल के दौरान अंग्रेजों द्वारा उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब से मॉरीशस, फिजी और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में कार्य हेतु एग्रीमेंट के तहत लाखों भारतीयों को ले जाया गया, जिन्हें लोक भाषा में गिरिमिटिया मजदूर कहा गया।

आधुनिक समय में प्रवासियों की दूसरी लहर व्यवसायियों, शिल्पियों, व्यापारियों और फैक्ट्री मजदूरों के रूप में आर्थिक अवसरों की तलाश में निकटवर्ती देशों जैसे- थाईलैण्ड, मलेशिया, सिंगापुर, इंडोनेशिया इत्यादि देशों में व्यवसाय के लिए गयी। प्रवास की नवीन लहर वर्ष 1960 के पश्चात शुरू होती है। यह मुख्य रूप से ज्ञान आधारित प्रवास लहर है, इसके अंतर्गत साफ्टवेयर इंजीनियर, डॉक्टर और वित्तीय विशेषज्ञ तथा 1980 के पश्चात से संचार प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ और शिक्षा के लिए आयलेट्स पास करने के बाद संयुक्त राज अमेरिका, कनाडा, यूनाइटेड किंगडम, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और जर्मनी इत्यादि देशों में प्रवास किया। यह प्रवृत्ति अभी भी जारी है। डॉ. कैलाश कुमारी सहाय *प्रवासी भारतीयों की हिन्दी सेवा* में लिखती है-

> सभी देशों में प्रवासी भारतीयों का समान इतिहास रहा है। अपने देशों में काम करने के लिए अंग्रेजों को मजदूरों की आवश्यकता थी। ऐसी स्थिति में भारत के सीधे-सादे लोगों को कम समय में धनी बना देने की मृगतृष्णा दिखाकर, वहाँ ले जाना यूरोपीय भूस्वामियों के लिए सहज हुआ। (38)

सम्पूर्ण विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ से लोग भारी संख्या में दूसरे देशों के लिए पलायन कर रहे हैं। 14 मार्च 2020 को दृष्टि आई.ए.एस पर प्रकाशित *प्रवासी भारतीय: बढ़ती भूमिका* में लिखा है-

> संयुक्त राष्ट्र के जनसंख्या विभाग की ओर से जारी 'अंतर्राष्ट्रीय प्रवासी स्टॉक-2019' रिपोर्ट में यह बताया गया है कि वर्ष 2019 में दुनिया भर में भारतीय प्रवासियों की संख्या 1.75 करोड़ है। प्रवासियों की संख्या के मामले में भारत, मैक्सिको और चीन क्रमश: पहले, दूसरे और तीसरे स्थान पर हैं। (www.drishtiias.com)

आधुनिक समाज में प्रवास एक समस्या का रूप धारण कर चुका है। वर्तमान समाज में इसकी बात करें, तो यह दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

ऐसे ही यदि हम हिन्दी नाटकों में प्रवास की बात करें, तो इस समस्या से सम्बंधित हृषिकेश सुलभ का नाटक *अमली* है, जो बिहार राज्य से सम्बंधित है और इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने बिहार राज्य की बहुत सारी जनपदीय विशेषताओं को भी प्रस्तुत किया है। बिहार राज्य की एक सबसे बड़ी त्रासदी है कि यह अन्य राज्यों से पिछड़ा हुआ है, यहाँ के लोग अन्य राज्यों को ही अपना विदेश

समझते हैं और आजीविका के बेहतर अवसरों की तलाश में अपने घर को त्यागकर रोजगार की प्राप्ति के लिए किसी और जगह जाते हैं। बिहार के बहुत सारे लोग पंजाब, हरियाणा, गुजरात और देश के बड़े शहर जैसे दिल्ली, कलकत्ता, मुम्बई आदि की ओर कूच कर रहे हैं। इस नाटक में अमली का पति रमेसर भी उनमें से एक है। रमेसर अमली से बहुत प्रेम करता है, लेकिन घर का चूल्हा चलाने के लिए न चाहते हुए भी उन्हें जाना पड़ता है, क्योंकि वहाँ के साहूकार मजदूरी के पैसे बहुत कम देते हैं। अमली और रमेसर की उनकी जनपदीय भाषा में हुई वार्तालाप से उनकी त्रासदी को देखा जा सकता है-

> रमेसर: सुन ! अब सोच लिए हैं कि ई साले लुटेरों की गुलामी न करेंगे। हफ्ता-दस दिनों की बात है। रूपया-पइसा के जुगाड़ में लगे हैं। रेलगाड़ी का भाड़ा भर जुट जाए... फी तो भागोग दवन, तो पकड़ेगा कवन? सीधे कोलकाता ... । अपने गाँव-जवार के बहुत लोग है, सो झिया तक काम-धंधा न मिलता है ...खुराकी की फिकर न है। कवनो काम-धंधा मिल जाए, फिर तो हर महीने डाक बाबू से सौ टकिया नोट छुड़ाया करना।
>
> अमली: न जी, हमरे मन में धन-दौलत की लालसा ना है। तुम हमरे पास रहो, इहे संतोख है। बस इहे धन-दौलत है, हमरे खातिर।
>
> रमेसर: बड़ी बेहया है तू! घर में बइठके तुम्हारी सूरत निहारते रहें और गाँव के मालिक लोगों से लाता-गाली खाते रहें, तो संतोख मिलेगा तुझे !
>
> अमली: (रोते हुए) तुम रात-दिन जान-परान हलकान करो अउर हम... (परिहास के साथ) हम लिट्टी चोखा ले आते हैं... खाके चले जाना (37)

इस प्रकार हम देखते हैं कि अमली अपने पति को रोकने का प्रयास करती है, लेकिन घर को चलाने के खर्च के लिए पैसे की जरूरत है, इसलिए रमेसर को जाना पड़ता है। बाद में अमली रमेसर के साथ जाने के लिए कहती है, परन्तु रमेसर इस बात लिए बुरा मनाता है और प्रदेश में आने वाली मुश्किलों के बारे में बताता है कि वहाँ पर कौन अपना बैठा है? वहाँ हमारा कोई रहने का ठिकाना नहीं है-

> रमेसर: चार-पांच महीना की बात है। जल्दी ही लवटेंगे। पहली बार अपना छार-दुआर अउर फिर तोहके छोड़ के जा रहे हैं प्रदेश, सो हमरा मन भी न

> लगेगा। जइसे-तइसे रात-दिन काटेंगे। रोजी-रोटी की बात ना होती, तो जाते भला? शौक न है हमरे मन में प्रदेश घुमे का।(38)

जब अमली को लगता है कि उसका पति अब नहीं रुकने वाला तो वह उनसे कहती है इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने प्रवासी लोगों के परिवारों की दशा को भी प्रस्तुत किया है क्योंकि जब इन परिवारों के पुरुष प्रदेश में चले जाते हैं, तो उनके पीछे उनके परिवारों में केवल औरतें ही रह जाती हैं। वहाँ उन गाँव के कुछ धनाढ्य और साहूकार लोग उनकी औरतों को अपना शिकार बनाना चाहते हैं। वे उन्हें अपनी पाँवों की जूती समझते हैं और अपनी मन-मर्ज़ी करने की कोशिश करते हैं। इस नाटक की ही स्त्री पात्र अमली, जिसका पति प्रदेश चला गया है और उसका ससुराल भी नहीं है, उनके घर महादेव जो उस गाँव का साहूकार है, वह आधीरात को उनके घर गलत उद्देश्य से आता है, जब अमली उसका विरोध करती है, तो वह आगे से कहता है कि तुम लोग इज्जतदार कब से कहलाने लगे।

इस प्रकार देखते हैं कि यह नाटक आधुनिक भी है और अपनी जड़ों से जुड़ा हुआ भी। इसके अन्य पात्र अमली को एक ओर संस्कृति परम्परा से जोड़ते हैं, तो दूसरी ओर लोक परम्परा से। नाटक की कथा रोचक होने के साथ-साथ हमें यह सोचने के लिए भी प्रेरित करती है कि किस प्रकार मध्य वर्ग अपनी रोजी-रोटी कमाने के लिए प्रदेश जाता है और बाद में उनके परिवार के साथ क्या बीतती है? हिन्दी की *समीक्षा* त्रैमासिक पत्रिका के जनवरी-मार्च 2012 के अंक: 4 में प्रकाशित लव कुमार लवलीन का आलेख *संसार-समर में हारती स्त्री (अमली/ह्रषीकेश सुलभ)* में लिखते हैं-

> अमली उस पीड़ित समाज का प्रतिनिधित्व करती है। जिसे सत्ता, सम्पत्ति और षड्यंत्र ने सदा लूटा है। दरअसल अमली भारत के किसी भी पिछड़े प्रान्त के किसी भी जिले के किसी भी गाँव में मिल जाएगी। इस मायने से अमली समकालीन समाज की जीवन्त पूर्ण रचना है। (27)

यद्धपि आज के संदर्भ में पैसा मानव जीवन की बहुत बड़ी आवश्यकता है, उसके अभाव में हम जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते, परन्तु इसका यह अभिप्राय भी नहीं है कि हम इसकी प्राप्ति के लिए आत्मीय सम्बन्धों का गला घोंट दें। विभा रानी के नाटक *आओ ! तनिक प्रेम करें* में बेटा पैसे कमाने के लिए स्वयं विदेश चला जाता

है। माँ-बाप अकेले रह कर उसकी चिंता करते हैं, उसके आने का इंतजार करते हैं। वह दोनों आपस में विचार-विमर्श ही कर रहे हैं-

> एक समय था जब बच्चे दिल्ली, कोलकाता चले जाते तो माँ-बाप का कलेजा मुँह को आ जाता। माताओं के गले निवाला नहीं उतरता। आज भी वही हो रहा है। ग्लोबिजेशन के कारण बच्चे अमेरिका, इंग्लैंड, इस तरह जा रहे हैं, जैसे फिल्म देखने पास के सिनेमा हाँल में जा रहे हो बच्चे चले जाते हैं, माँ-बाप यहाँ अकेले पड़े रह जाते हैं। घर में लगे ताले की तरह। (64)

यदि पंजाबी नाटकों में प्रवास की समस्या को देखा जाए, तो पंजाब के लोगों का प्रवास की ओर ध्यान अन्य राज्यों के लोगों की तुलना में ज्यादा रहा है। पंजाबी लोग एक दृष्टि से मेहनती और बहादुर माने जाते हैं। पंजाब के इतिहास में पंजाबी लोगों की शख्सियत का रहस्य छुपा हुआ है। इसलिए अंग्रेज लोग, इन बहादुर सिखों को अपने देश की सुरक्षा और अन्य भारी कामों के लिए ले जाते रहे हैं। इस विषय में डॉ. हरचंद सिंह बेदी *प्रवास और प्रवासी साहित्य* में लिखते हैं-

> प्रवास, एक अन्तर्राष्ट्रीय वरतारा है, जो कभी इच्छा तंत्र के दबाव में रूप धारण करता है, कभी प्रवासी देशों के अपने स्वार्थ हित के लिए, कभी साबित रोटी की चाहत के लिए, कभी उसकी तलाश के लिए ज़मीन ही तैयार नहीं करता, बल्कि लंबी परवाज भी भरता है और कभी इच्छित, कभी अन इच्छित, कभी राजनीतिक कारण, कार्यों के मसले और दबाव का माध्यम भी बनता है। (13)

चयनित पंजाबी नाटकों में प्रवास के प्रति लगाव देखें, तो पाली भूपिंदर सिंह के नाटक *चंदन दे ओहले* में पंजाब के युवाओं में प्रवास की प्रवृत्ति को प्रस्तुत किया है। पंजाब के लोगों की आर्थिक दशा भारत के बाकी राज्यों से कुछ अच्छी है, लेकिन जहाँ के लोगों में विदेश जाने का रुझान कुछ ज्यादा है। इस नाटक का बनी पात्र विदेश जाना चाहता है, तब उसकी बहन माणा उससे विदेश जाने का कारण पूछती है-

> माणा: (थोड़ी गंभीरता से) तुझे लगता नहीं है कि तू विदेश जाने के लिए जरूरत से ज्यादा क्रेजी हैं.....क्या नहीं है हमारे पंजाब में.. ?
>
> बनी: प्रत्येक व्यक्ति ..... जो एक अच्छी जिन्दगी जीना चाहता है ..... वो विदेश जाना चाहता है ...एवरीबॉडी वांट्स टू गो ....! क्यों ! क्योंकि विदेश में

बैटर फ्यूचर है, बैटर लाइफ है, लाइफ की स्क्यूर्टी है... लिविंग स्टेंड है... लेकिन इधर क्या है .... मिट्टी ही मिट्टी !

माणा: इस मिट्टी में अपनेपन की महक भी है, बनी.... इस बात को मत भूल कि इस मिट्टी में ही तेरा जन्म हुआ है और इस मिट्टी में ही तू बड़ा हुआ है.. इस मिट्टी को लोग तरसते हैं...

बनी: ओ या, अनफारचूनेटली... क्योंकि जन्म लेना मेरे वश में नहीं था .... यदि होता तो कभी न जन्म लेता। (21-22)

इस प्रकार हम देखते हैं नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से इस बात को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि आजीविका के बेहतर अवसरों की तलाश में पंजाब के लोग विदेश जा रहे हैं। इस विषय से सम्बंधित स्वराजबीर के द्वारा रचित नाटक *कल्लर* भी है। *कल्लर* नाटक में नाटककार ने युवाओं की विदेश जाने की लालसा और उसके रास्ते में आने वाली मुश्किलों को आधार बनाया है। इस नाटक की दो रूपों में सिरजना हुई है। एक विदेश जाने की लालसा में खुशहाल जीवन बनाने की आशा में दुःख भोगने की स्थिति और दूसरा गाँव के कृषकों की सख्त मेहनत और दृढ़ इरादों के साथ बंजर धरती से कल्लर को खत्म कर, उसे उपजाऊ बनाने की स्थिति प्रस्तुत करता है। इस नाटक की कथा का दृश्य अमृतसर के गाँव का लिया गया है। जिसमें एक कृषक गुरदयाल सिंह, उसकी पत्नी मनजीत कौर, बेटा दलबीर सिंह और दो बेटियाँ, जिसकी वह शादी कर चुका है। दलबीर को विदेश जाकर ज्यादा धन कमाने की इच्छा है, इसी कारण वह अपने घर के सदस्यों से चोरी पाँच हज़ार रुपए में पासपोर्ट भी बनवा लेता है और अपने दोस्त कुलजीत के साथ किसी एजेंट से मिलता है, एजेंट उन्हें धोखा देता है और टूरिस्ट वीजे पर रूमानिया भेज देता है। वहाँ उनकी मुलाकात ग्रेवाल नामक एजेंट से होती है, वह भी उनकी कमाई खा कर उन्हें रहने के लिए जगह देता है और बाद में पुलिस का डरावा देकर और किसी स्थान पर जाने को कहता है-

दलबीर: अरे कुलजीत, छोड़ यह काम ..... और अपना समान उठा।

कुलजीत: क्यों, क्या हुआ?

दलबीर: यह होटल वाला कह रहा है किसी ने कम्पलेंट कर दी। ग्रेवाल का फोन आया .....बोल रहा जल्दी चले जाओ।

कुलजीत: ऐसे बकवास कर रहा हरामजादा.....असल में वह हमें यहाँ रखना ही नहीं चाहता।

दलबीर: क्यों, उन्हें हमें यहाँ रखने में क्या समस्या है?

कुलजीत: समस्या उसको यह है कि ग्रेवाल के पास नऐ लड़के आए हैं..... हमारे इंडिया से और बांग्लादेश से भी... दो महीने ग्रेवाल उन्हें यहाँ रखेगा..... और उनका वेतन आप लेगा। (89)

गाँव में उसके माँ-बाप दलबीर के विदेश जाने से बहुत खुश होते हैं, लेकिन कोई संदेश न आने के कारण चिंता में भी है। गुरदयाल सिंह अपनी पत्नी को बताता है कि कोटली वाले गाँव के गुरचरन सिंह अपनी बेटी का रिश्ता हमारे बेटे के साथ करना चाहते हैं। आगे से दलबीर की माँ मनजीत कौर खुश होती है कि इतने बड़े घर के साथ हमारा रिश्ता जुड़ेगा, लेकिन एक दिन दलबीर और कुलजीत पकड़े जाते हैं और डिपोर्ट करके इंडिया भेज दिए जाते हैं। घर आ कर वह सब बताते है कि हमारा पीछा पुलिस के द्वारा किए जाने के कारण हमने किस प्रकार अपनी जानें बचाईं और भाग कर यहाँ तक आए हैं। दलबीर अपने पिता को सब बताता है-

दलबीर: (रोता हुआ) तुम लोग किस्मत वाले हो पिता जी..... किस्मत वाले ! तुझे यह तो मालूम था कि तुमने कल्लर तोड़ना है ....तो तुम ने कल्लर तोड़ लिया ! मुझे तो यह भी नहीं मालूम था, कि मैंने क्या करना और क्या नहीं ! मेरी हालात तो उस हिरन के जैसी है, जो जंगल में कस्तूरी ढूंढने चला था, परन्तु जिसके सींग पहले ही वृक्ष के साथ अड़ गए... वह वहीं गिर पड़ा और जंगली जानवरों के द्वारा उसे मार कर खा लिया गया..... तुम बाहर के कल्लर की बात करते हो, मुझे तो ऐसे लगता है, जैसे मेरे अंदर भी कल्लर लग गया हो.... और वह कल्लर पिता जी कभी नहीं टूटता... कभी नहीं टूटता (रोते हुए) हाँ मेरे अंदर कल्लर लग गया है, पिता जी! मेरे अंदर कल्लर लग गया है .....! (111)

प्रस्तुत नाटक के माध्यम से हम आज उन युवाओं की त्रासदी को देख सकते हैं जो विदेश जाकर कुछ पैसे कमाना चाहते थे लेकिन गलत एजंटों के कारण उन्हें किसी ओर देश भेज दिया जाता है और बाद में वह बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचा कर घर वापस आते हैं।

अत: हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए कह सकते हैं कि दिन प्रतिदिन बढ़ती प्रवास की प्रवृत्ति भारतीय समाज के लिए बड़ी समस्या बनती जा रही है। आज के युवा बेहतर भविष्य और रोजगार की मजबूरी के कारण प्रवास धारण कर रहे हैं। बदलते परिवेश को हम इस दृष्टि से भी देख सकते हैं कि एक समय ऐसा था, जब हमारे देशवासी अंग्रेजों का विरोध करते थे कि हमारा देश आज़ाद करो, हम लोग तुम्हारी अधीनता को स्वीकार नहीं कर सकते, लेकिन एक समय आज का है। जब हमारे देश का युवा वर्ग किसी भी तरीके से विदेश जाकर अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करने के लिए तरस रहा है। हमारे देश की आज़ादी के इतने वर्षों के बाद, हम यह उन्नति कर पाएं है कि अपने युवाओं को, अपने ही देश में रखने के लिए लाचार दिखायी दे रहे हैं। सरकार इसकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दे रही, बल्कि इसके विपरीत आईलेट्स और इमिग्रेशन एजेंट को प्रफुल्लित करने के लिए मान्यताएं दे रही है। यह हमारी देश की सबसे बड़ी त्रासदी है, जिसकी ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। डॉ. एन.के. चतुर्वेदी *विश्व हिन्दी पत्रिका 2019* में प्रकाशित अपने लेख *औपनिवेशिक कालीन भारतीय प्रवास एवं उनसे जुड़े कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य: वर्तमान में प्रासंगिकता* में प्रवास के विषय में लिखते हैं-

> प्राचीनकाल से ही भारतवासी प्रवास पर जाते रहे हैं, जिसका उद्देश्य व्यापारिक और धार्मिक था। प्राचीनकाल में जो प्रवास हुआ वह अत्यंत बुद्धिमत्तापूर्ण था, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व में भारतीय कीर्ति फैली। जावा, सुमात्रा, श्याम, सिंहल, बाली इत्यादि दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में भारतीय धर्म, आदर्श, सभ्यता, साहित्य और कला-कौशल का प्रचार हुआ और प्रवास का गौरव बढ़ा, परन्तु औपनिवेशिक काल में भारतवासियों का प्रवास मातृभूमि के लिए कलंक साबित हुआ और संसार में भारतीय अपकीर्ति का कारण बना। प्राचीनकाल में भारतीयों ने प्रवास अपनी इच्छा से किया था, परन्तु आधुनिक भारत में प्रवास के सिरजनहार वे विदेशी सरकार और विरोधी वणिक थे, जिन्होंने अपने स्वार्थ की बेदी पर मानवता की बलि चढ़ाने में तनिक भी संकोच नहीं किया, जिसके परिणामस्वरूप विदेशों में हिंदुस्तान 'कुलियों का देश' और हिन्दुस्तानी 'कुलियों की जाति' के रूप में विख्यात हुई। (157)

2.2.1.8 वर्तमान सामाजिक परिवेश में युवाओं की मानसिकता

आज के युवाओं की बदलती मानसिकता की बात की जाए, तो सामान्य रूप से इसे हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं, जिनमें एक वर्ग वह जो चोरी, नशा आदि बुराइयों के द्वारा समाज को प्रभावित कर रहा है, दूसरा वर्ग वह है, जो समाज को अपने अच्छे विचारों के द्वारा उन्नति की ओर ले जा रहा है। सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से विज्ञान और तकनीक के कारण परिवेश का बदलाव और शिक्षा के कारण परिवेश का बदलाव को प्रस्तुत किया गया है, इनके अनुकूल आज के युवाओं की मानसिकता को समझने का प्रयास करें, तो बहुत-सी ऐसी प्रवृत्तियां देखने को मिलेंगी, जिनकी कल्पना आज से दो-तीन दशक पूर्व तक संभव भी न थी। आज उत्तर-आधुनिकता के साथ सुर-से-ताल मिला कर चलने वाले युवक-युवतियां, जिनके लिए पैसा, शोहरत और सफलता प्राप्त करना ही मुख्य लक्ष्य है। सामान्य शब्दों में कहें, तो आज इक्कीसवीं शताब्दी में मूल्यों की बात बहुत पीछे छूट गयी है। आधुनिक युवा दुनिया की हर ख़ुशी को अपनी जेब में रख कर घूमने की तमन्ना में अपनी सारी ऊर्जा खपा रहा है। दुनियादार हो जाने वाले युवाओं का यह वहीं वर्ग है जो किसी भी व्यवसायिक में प्रवेश के लिए तैयार है, जो अच्छी ज़िन्दगी की गारंटी दे सके। इनकी अच्छी ज़िन्दगी में रुपए-पैसे, कार, बंगला, विदेश यात्रा आदि सब हैं। यही कारण है कि हाल में किए गये कुछ अध्ययनों से यह स्पष्ट संकेत मिल रहा है कि आज की युवा पीढ़ी और अधिक सुविधाओं वाले व्यवसायों की ओर आकर्षित हो रही है। युवा पीढ़ी प्रत्येक युग में कुछ न कुछ नया खोजने का प्रयास करती है। इस विषय में प्रो. के. लीलावती अपने आलेख *रामचरितमानस में सामाजिक चिंतन, 'युवाओं के संदर्भ में',* गंगनांचल पत्रिका के अंक मार्च-अप्रैल 2015 में युवाओं के विषय में लिखती हैं-

> युवा वर्तमान के साथ भूत तथा भविष्य को देखकर तत्कालीन सामाजिक स्थिति-परिस्थितियों का सूक्ष्म अनुशीलन कर सकता है। युवा समकालीन सामाजिक स्थिति के आधार पर भविष्य के समाज की परिकल्पना कर वर्तमान समाज का पथ-प्रदर्शन भी करता है। (61)

आज हमारा समाज शिक्षा के कारण विकास के रास्ते पर है। देश की युवा शक्ति समाज की रीढ़ है, हमारे युवा ही समाज और देश को शिखर पर ले जा सकते हैं।

हमारे युवा देश के वर्तमान तो हैं ही, साथ वह भविष्य के भी सेतु हैं। आज देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना के बावजूद साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता, धार्मिक-असहिष्णुता, लैंगिक-भेदभाव बढ़ रहा है, लेकिन इन सबके होते हुए भी हमारा कुछ पढ़ा-लिखा युवा, सामाजिक दूरियों को खत्म करने का प्रयास कर रहा है। इस प्रकार की उदाहरण हमें असग़र वजाहत के द्वारा रचित नाटक *जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ* में मिलती है, इस नाटक में नासिर युवा अपने दोस्त अलीम से बातचीत कर धर्म की नफरत को मिटाने प्रयास कर रहा है-

नासिर: यार आलीम एक बात बता?

अलीम: पूछिए नासिर साहब।

नासिर: तुम मुसलमान हो?

अलीम: (सोचते हुए) ये तो कभी नहीं सोचा नासिर साहब।

नासिर: अरे भाई तो अभी सोच लो।

अलीम: अभी?

नासिर: हाँ हाँ अभी .... देखो तुम क्या इसलिए मुसलमान हो कि अब तुम समझदार हुए तो तुम्हारे सामने हर मजवब की किताबें रखी गयीं और कहा गया कि इसमें से जो मजहब तुम्हें पसंद आए, अच्छा लगे उसे चुन लो?

अलीम: नहीं नासिर साहब ... मैं तो दूसरे मजहबों के बारे में कुछ नहीं जानता।

नासिर: इसका मतलब है; तुम्हारा जो मजहब है, उसमें तुम्हारा कोई दखल नहीं है... तुम्हारे माँ-बाप का जो मजहब था.... वहीं तुम्हारा है।

अलीम: हाँ, जी बात तो ठीक है।

नासिर: तो यार जिस बात में तुम्हारा कोई दखल ही नहीं है... उसके लिए खून बहाना कहां तक जायज है?

हमीद: खून बहाना तो किसी तरह भी जायज़ नहीं है, नासिर साहब। (48)

वर्तमान सामाजिक परिवेश में युवाओं की मानसिकता को प्रस्तुत करता डॉ. मधु धवन का नाटक *आज की पुकार* भी है। इस नाटक की कथा पंजाब के किसी सुंदर गाँव की है, जहाँ के लोग शांतिपूर्व रह रहे हैं। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने यह संदेश दिया है कि आज के वैज्ञानिक युग में हम थोड़ी-सी समझदारी से काम करें, तो गरीबी और बेरोजगारी को किस प्रकार दूर कर सकते हैं। इस नाटक का मुख्य पात्र एक पढ़ा-लिखा युवा है, जिसको मास्टर जी के नाम से पुकारा जाता है। इस नाटक के अन्य सभी पात्र निम्न श्रेणी से सम्बंधित हैं और छोटा-मोटा काम करते हैं, मास्टर जी सब में आत्मविश्वास जाग्रत करते हुए, इन सब को मिलकर कोई अच्छा काम करने का सुझाव देते हैं-

मास्टर जी: आप लोगों ने क्या सोचा है, यह काम कैसे करोंगे.....

पवन प्रकाश: भाई, मेरे बाप ने गुटखा बेच-बेचकर इतना धन कमा लिया है कि मेरे नाम पवनप्रकाश को कोई भी नहीं जानता..... आप जानते हैं.... (सब एक दूसरे को देखते) मेरा नाम गुटखे वाले का छोरा पड़ गया है..... मैं चाहता हूँ, हम भी पैंट-कोट-टाई लगाए और मि. पवन प्रकाश कहलाए ..... (ख्वाबी दुनिया में)

सब: वाह.. क्या कल्पना है ... भाव-विभोर हो जाते हैं.....

रामदेई: आह, मेरा ब्यूटी-पार्लर हो, चूड़ियों का शोरूम हो.... मैं करीना कपूर की तरह सजूं ...

गंगाधर: मैं ऋतिक रोशन की तरह लगूँ.... मेरा एक होटल हो....

मास्टर जी: यदि आप बड़ा सोचेंगे तो बड़ा ही होगा। पर इसके लिए चाहिए ... पैसा और आपस में एकता (सब एक-दूसरे को देखते हैं। थोड़ी देर देखते रहते हैं फिर प्रण करते हैं) (18)

इस प्रकार ही सभी लोग मिलकर एक होटल खोल लेते हैं और उस होटल में गाँव के पढ़े-लिखे युवाओं को रोजगार दिया जाता है। इनके होटल का काम और नाम बहुत अच्छा चल पड़ता है और उनको अच्छी कमाई भी होने लगती है। उनके इस रोजगार के साधन में कुछ समस्याएं भी आती है, लेकिन पढ़े-लिखे युवा उस का

निवारण बहुत जल्दी निकाल लेते हैं। इस नाटक के अंत में मास्टर जी युवाओं को संदेश देते हुए कहते हैं-

> मास्टर जी: अब समय आ गया है कि हम भारत में होने वाले भ्रष्टाचार का उन्मूलन करें। देश दिन-पर दिन नैतिक मूल्यों को बिसार चुका है। हमारे प्रगति के किसी मील के पत्थर पर शहीदों ने कुर्बानी के खून से फतह की इबादत लिखी थी, तो मील के इस पत्थर पर हमने, इंसानियत को शर्मसार करने वाली करतूतों की स्याह दास्तानों अंकित कर दी है। पहले के मुकाबले आज हालात और भी चुनौतिपूर्ण हो गये हैं। चन्द भ्रष्ट नेताओं, लालची कम्पनियों के अनैतिक आचरण के कारण समाज पतन की ओर जा रहा है। आप सबने सब कुछ जान लिया है। अब अपने ढंग से कदम उठाओ। (46)

इस प्रकार हम देख रहे हैं युवा मानसिकता अपने समाज को बदलने का प्रयास कर रही है। डॉ. स्वामी प्यारी कौड़ा ने *स्वतन्त्रोत्तर हिन्दी नाटक और रंगमंच* में लिखा है-

> आज के युवाओं के संघर्ष, द्वन्द्व और जिजीविषा को केंद्र में रखकर समकालीन हिन्दी नाटकों ने परम्परागत मानकों को तोड़ा है, नयी ज़मीन तैयार की है। आज वह एलीट वर्ग के विकास और मनोरंजन का साधन न रहकर, युग सत्य और युगबोध के साक्षताकार का सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। (273)

यदि इसकी तुलना पंजाबी नाटकों के साथ करें, तो हम देखते हैं शिक्षा केवल धन अर्जित करना, डिग्री प्राप्त करना, नौकरी या प्रसिद्धी पाना नहीं, अपितु शिक्षा वह है जो हमें समाज में व्याप्त बुराइयों, कुरीतियों पर हर प्रकार की असमानता और नकारात्मकता के विरुद्ध प्रेरित करती है। दविंदर दमन के नाटक *छा विहूणे* में हम आज के युवाओं की बदलती मानसिकता देखते हैं, इस नाटक में सुधीर और जगदीप शिक्षित युवा हैं, उनके पिता की मृत्यु के बाद उनके परिवार की आर्थिक दशा बहुत कमजोर हो जाती है और एक समय का पूरे परिवार के लिए खाना भी नहीं होता, लेकिन वह अपनी माँ के लिए खाना लेकर आते हैं, वार्तालाप के अनुसार-

> माँ: अच्छा तो आप लोग मेरे खाना न खाने की वजह से नाराज और उदास हो।
>
> सुधीर: हाँ, माँ.. माँ खाना खा लो न...

माँ: मैं खाना खा लूँ...

सुधीर: माँ आप समझ क्यों नहीं रहे....

माँ: तुम लोग भूखे पेट सो जाओ और मैं खाना खा लूँ? मुझे कोई माँ कहेगा? चुड़ैल कहेगा, चुड़ैल सब ...

जगदीप: माँ सुधीर सही कह रहा है..... हम अपनी ख़ुशी से खाना नहीं खा रहे...

माँ: अपनी ख़ुशी से? यह क्यों नहीं कहते कि रसोई में कुछ नहीं है और जो है उससे सिर्फ माँ के लिए ..... तुम लोग खाओ बेटा मेरा तो आज उपवास है। (अपनी संतान की मानसकिता को देखकर खुश होती है और गरीबी को देखकर उदास) (33)

प्रस्तुत नाटक के माध्यम से हम आज के कुछ युवाओं की मानसिकता को देख सकते हैं कि किस प्रकार वे किसी भी स्थिति में क्यों न हों, लेकिन अपने माता-पिता की खूब सेवा करते हैं।

बदलती युवा मानसिकता से सम्बंधित पंजाबी के प्रसिद्ध नाटककार गुरचरन सिंह जसूजा द्वारा रचित नाटक *कंधा रेत दियां* भी है। इस नाटक में कुंदन सिंह नामक एक पात्र है, जो आधुनिक एवं नैतिक विचारों का आदमी है, उसके पिता का नाम बचन सिंह है, जिसने कई वर्ष पहले अपने बेटे की पढ़ाई के लिए भंडारी नामक व्यक्ति के साथ मिल कर बनावटी कोकीन का व्यापार किया था। उसके बाद उसने अपनी सारी ज़िन्दगी बड़ी ईमानदारी से एक पोस्ट-ऑफिस की नौकरी पर काम किया। कुंदन सिंह अब पढ़-लिख कर इंजीनियर अफ़सर बन जाता है और बाँध जैसे कार्य के लिए मान्यता देता है। राम सिंह नामक ठेकेदार भंडारी की सिफारिश से अपने गलत काम को पास करना चाहता है, लेकिन कुंदन सिंह इस बात के लिए साफ़ इन्कार कर देता है और आधुनिक नैतिक सोच की उदाहरण देता है, कुंदन सिंह भंडारी से साथ बातचीत करता है-

कुंदन सिंह: जो मटीरियल इन्होंने सप्लाई किया है उससे नदी के किनारे पर बांध बनने जा रहा है। आप सोचें यह रद्दी मटिरियल कब तक टिक पाएगा। जब

बरसात आएगी, नदी में बाढ़ आने के कारण यह बांध टूट सकता है। जिसके कारण अनेक गाँव बर्बाद हो सकते हैं। उसकी जिम्मेदारी कौन लेगा।

भंडारी: इतना कौन सोचता है।

कुंदन सिंह: माफ़ करना चाचा जी, यह इंसानियत नहीं, मैं लोगों की जिंदगियों से खिलवाड़ नहीं कर सकता। (67)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देख सकते हैं कि हमारे समाज के कुछ युवा चाहे भटके हुए हैं लेकिन कुछ युवा हमारे समाज को अपनी नैतिक सोच के माध्यम से बदल रहे हैं और एक आदर्श समाज को सिरजने का प्रयास कर रहे हैं।

निष्कर्ष रूप से हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि आज का बदलाव शिक्षा के कारण आया है। आज के युवक विचारवान, बुद्धिमान, तार्किक, शक्ति संपन्न तथा कर्मशील हैं। इन चयनित नाटकों के युवा पात्रों के माध्यम से हम देखते हैं कि बदलती युवा मानसिकता के साथ सामाजिक परिवेश भी बदल रहे हैं। आज के कुछ युवा अफसर ऐसे भी हैं, जो किसी भी स्थिति में क्यों न हो, लेकिन भ्रष्टाचार के विरुद्ध ही रहते हैं। इसकी उदाहरण कुंदन सिंह के द्वारा दी गयी है।

2.2.1.9 आधुनिक साहित्यकारों के द्वारा समाज के यथार्थ रूप का प्रस्तुतीकरण

यथार्थवाद कोई नयी विचारधारा नहीं है सृष्टि के आरम्भ से ही मानव अपने चारों ओर की वस्तुओं को देखकर उनमें विश्वास करता रहा है और यही यथार्थवादी विचारधारा की मूल पृष्ठभूमि है। यथार्थवाद का अर्थ, जैसा यह संसार है, वैसा ही उसे स्वीकर करना। इसके अनुसार संसार की प्रत्येक वस्तु सत्य और प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष का अनुभव, हमें इन्द्रियों से होता है और दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यथार्थ का अर्थ उस विश्वास अथवा सिद्धान्त से है, जो संसार को वैसा ही मानता है, जैसा वह हमें दिखायी पड़ता है। यथार्थवाद साहित्य की एक विशिष्ट चिंतन पद्धति है। जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन और समाज के यथार्थ रूप का अंकन

करना होता है। यह सत्य को उजागर करने वाली कला है। जिसे साहित्यकार ईमानदारी तथा सम्पूर्ण वस्तुपरकता के साथ उजागर करता है। यथार्थवाद का भविष्य विज्ञान के साथ जुड़ा हुआ है। यथार्थवाद का आरंभ मध्य श्रेणी के आगमन और निम्न श्रेणी की आर्थिक समस्याओं की वस्तुस्थिति के कारण हुआ। डॉ. नवनिंद्रा बहल ने *नाटकी साहित्य* में लिखा है-

> इंग्लैंड में 1731 ई. में जार्ज लिलो की 'द लंदन मर्चेंट' की प्रस्तुतकारी से इस धारणा के नाटक खेले जाने की ओर प्रयास करने लगे थे। समकालीन समाज की सही तस्वीर प्रस्तुत करने वाले यह यथार्थवादी नाटकों को बाद में चैखव ने रूस और जर्मनी में फ्रेंडरिक हैबल ने आगे विकसित किया। (177)

यथार्थ, से तात्पर्य उस विचारधारा से है, जो उस वस्तु एवं भौतिक जगत को सत्य मानती है, जिसका हम ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। पशु, पक्षी, मानव, जल, थल, आकाश इत्यादि सभी वस्तुओं का हम प्रत्यक्षीकरण कर सकते हैं, इसलिए ये सभी सत्य वास्तविक हैं। रधुवीर सहाय अपनी रचना *सामाजिक यथार्थ से शिल्प तक* में लिखते हैं- "सामाजिक यथार्थ को समझना नाटककार के लिए आवश्यक है तथा और किसी के लिए भी उतना ही आवश्यक है।" (92)

चयनित हिन्दी नाटकों में आधुनिक साहित्य और समाज के संघर्ष का यथार्थ रूप देखें, तो इस विषय से सम्बंधित डॉ. अजय शर्मा का नाटक *मोहम्मद जलालुद्दीन* है। इस नाटक के द्वारा नाटककार आज की युवा पीढ़ी की मानसिकता को प्रकट करना चाहता है। इस नाटक में शिक्षित पात्रों की मानसकिता में इस प्रकार का बदलाव देखने को मिला है कि इन्होंने पुरानी धार्मिक कट्टरता को त्यागते हुए, धर्म को अनदेखा किया और इंसानियत की रक्षा की है। इस नाटक की कथा में एक अजनबी पात्र है, जो बचपन से फ़िल्मी एक्टर बनना चाहता है और अपने घर वालों की मर्जी के खिलाफ, मुंबई चला जाता है। वहाँ हिन्दू और मुसलमानों के बीच आपसी दंगे फसाद होने के कारण माहौल खराब होता है। अजनबी मुंबई की लोकल ट्रेन में सफ़र कर रहा होता है तो वहाँ पर कुछ हिन्दू व्यक्तियों के द्वारा अजनबी को मुसलमान समझ के उस पर हमला कर दिया जाता है और उसको मरा हुआ समझ कर, ट्रेन से गिरा दिया जाता है। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से उस सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है, जो एक नैतिकता के रूप में प्रत्येक इन्सान में मौजूद होती है। जैसे अजनबी एक हिन्दू है और गंभीर हालात में वह एक मुसलमान घर के आगे मदद की

गुहार लगा रहा होता है। जब मुसलमान परिवार के सदस्य दरवाजा खोलते हैं, तो वह सारे इस बात का पर्दा रखते हैं कि वह हिन्दू है ! उस मुसलमान परिवार की सलमा नामक लड़की नर्स है और उस अजनबी मरीज़ का पूरा इलाज करती है। अजनबी के ठीक होने और चले जाने के बाद सलमा की अपने भाइयों के साथ बातचीत-

> बशीर: तू फ़िक्र न कर सलमा ! हम सब लोग इस नेक काम में तुम्हारे साथ हैं। अजनबी जिस दिन आया था, उस दिन भी साथ थे और आज भी साथ हैं।
>
> आलम: खुदा का बंदा था और कितनी देर हम लोग उसे पनाह दे सकते थे? वैसे हम लोगों ने तो, उसे पनाह देने में कोई कसर नहीं छोड़ी।
>
> बशीर: हम लोगों ने तो इस बात की भी परवाह नहीं की, कि अगर किसी को पता चल गया, तो हम पर क्या बीतेगी? हमने सारे रिश्ते और बिरादरी ताक पर रखकर इस खुदा के भेजे फ़रिश्ते की मदद की है। (60)

इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने पुरानी जाति-धर्म की कट्टरता से ऊपर होकर मानवता को मान्यता दी है। इस नाटक की कथा को नाटककार ने यथार्थ रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, आज पूरे विश्व स्तर पर हो रहे धार्मिक दंगो में आम लोगों की त्रासदी को प्रस्तुत करता यह नाटक, एक संदेश ये भी दे रहा है कि किसी घायल की मदद करने से पहले, उसके धर्म की परख करनी जरूरी नहीं है। इस नाटक की आलोचना करते हुए प्रोफेसर (डॉ.) सुनील कुमार ने अपने आलेख *व्यथा की कथा, कथा की व्यथा बनाम मोहम्मद जलालुद्दीन* जो *उत्तम हिन्दू* नामक अख़बार में प्रकाशित हुआ है, उनमें लिखते हैं- "मोहम्मद जलालुद्दीन सामाजिक सरोकार का नाटक होने की वैधता की सत्यत: पुष्टि करता है।" (03)

इसी प्रकार डॉ. मधुधवन ने अपने नाटक *आज की पुकार* में भी आज की समस्याओं पर यथार्थवादी व्यंग्य प्रस्तुत करते हुए, अपने पात्रों के माध्यम से बयान किया है-

> पवन प्रकाश: बताओं तो भारत में क्या ठीक है?
>
> गंगाधर: न सरकार ठीक, न राजनीति ठीक, न सड़कें ठीक, न अदालतें ठीक, न स्कूल कॉलेज ठीक, न आवास, न बाज़ार भाव ठीक, न सुरक्षा न यातायात ...

भारत मिसाल बन रहा है तो बेईमानी, हरामखोरी, घूसखोरी और साम्प्रदायिकता..... में अव्वल। (18)

हम देखते हैं कि आज का साहित्यकार पलायन या मुक्ति नहीं, शांति और सद्भावना चाहता है। आज वह समाज को विभाजित करने की अपेक्षा पूर्ण विकसित नये आयाम प्रदान करना चाहता है, जिससे नये मूल्य विकसित होते हों और यथार्थ अपने पूर्ण रूप से उभरने की योग्यता रखता हो। शेखर शर्मा *समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक* में लिखते हैं- "आधुनिक नाटक पहले की तुलना में यथार्थ-बोध की संवेदनात्मक स्तर पर ज्यादा है।" (139)

पंजाबी साहित्य की बात करें, तो प्रारम्भिक साहित्य धार्मिक सम्प्रदायों की भावनाओं के प्रसार, अतीत की पुनर्जीवित के आदर्श एवं सुधारवादी रचना दृष्टि की सीमायों तक ही सीमित था। बाद में प्रगतिवादी साहित्य के प्रभाव से ही यथार्थवादी बिन्दुओं का प्रवेश होने लगा। पंजाबी नाटक के क्षेत्र में रोमांटिक सुधारवादी यथार्थ से लेकर आलोचनात्मक यथार्थ के मिलते जुलते रूप दिखायी देते रहे हैं। इस प्रकार यदि पंजाबी नाटकों में यथार्थ का रूप देखें, तो इस दृष्टि से बहुत सारे नाटकों की रचनाएँ हुई हैं, इन नाटकों में यदि जतिंद्र बराड़ के द्वारा रचित नाटक *पायदान* की बात करें, तो इन्होंने आज के समाज का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार आज के लोगों में जातिवाद और अर्थ की प्रवृत्ति बढ़ रही है कि वह किसी को बुलाने से पहले उसी की जाति और आर्थिक स्थिति का अंदाजा लगाता है। इस नाटक में हम देखते हैं कि एक ही घर में दो नौकर काम करते हैं, एक राजपूत उच्च जाति से सम्बंधित, जिसका नाम रामू है और दूसरी रसोई में काम करने वाली नौकरानी बीरो है, जो निम्न जाति से सम्बंधित है। नाटक का रामू पात्र अपनी उच्च जाति के गौरव के कारण अपने आप को बड़ा साबित करता है और बीरो को छोटा दिखाता है और रामू सदैव उन लोगों से ही रिश्ता बनाने की कोशिश करता है जो आर्थिक पक्ष से मजबूत हों,

आज भारतीय परम्परा के त्याग के कारण परिवेश का बदलाव दिखायी दे रहा है, आज माता-पिता को वो सम्मान नहीं दिया जाता, जो पहले दिया जाता था। इस विषय से सम्बंधित नाहर सिंह औजला का नाटक *सुपर वीज़ा* भी है। इस नाटक में हमारे आज के समाज की दशा का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है कि आज की स्त्रियाँ शादी के पश्चात अपने सास और ससुर का कोई खास ध्यान नहीं रखती, लेकिन यदि उनके अपने माँ-बाप पर कोई विपदा आ पड़े, तो कुछ भी करने के लिए तैयार हो

जाती है। मनप्रीत ने अपने माता-पिता को विदेश अपने पास बुला लिया, लेकिन उनकी पत्नी छोटी-छोटी बात पर झगड़ने लगती है। इस नाटक में मनप्रीत अपनी पत्नी हरमन को यही बात समझा रहा है कि जितना ध्यान तुम अपने माता-पिता का रखती हो, उतना ही यदि सास-ससुर का रखें, तो हम सब शांति से रह सकते हैं। बाद में मनप्रीत के माता-पिता उन्हें छोड़ कर भारत आने की सोच लेते हैं और मनप्रीत अपनी पत्नी को कोसता है-

> मनप्रीत: यह देख लो, माँम डेड़ अपने साथ गुस्से होकर इण्डिया जा रहे हैं। हरमन मेरी एक बात याद रखना, घर की नींव ईंटों-पत्थरों से नहीं, रिश्तों से मजबूत होती है। तुझे याद है, जब तेरे भाई और भाभी ने तुम्हारे माँ-बाप को घर से निकाल दिया था। उस समय तुम्हारे हृदय पर क्या बीती थी। हमने आज तक उन्हें बुलाया नहीं। (29)

सामान्य शब्दों में, दोनों भाषाओं के नाटकों की तुलना करते हुए कहें तो आज के नाटककार समाज के साथ बड़ी गहराई से जुड़े हुए हैं, वह समाज संघर्ष के कारण, समाज में जो भी उथल-पुथल हो रही है, उसे अपने शब्दों में प्रस्तुत कर रहे हैं। ऐसी रचनाओं को सामान्य पाठक पढ़ेगा तो, उसे एक स्वार्थी और बुरे पात्र की कमियों का ज्ञान होगा और वह अपने समाज एवं परिवार में वैसी हरकत करने से पहले सौ बार सोचेगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज के साहित्यकार समाज को बदलने का प्रयास कर रहा है और ऐसा साहित्य समाज को किसी-न-किसी रूप में प्रेरित भी करता है।

इन सबके विपरीत डॉ. नीरज भारद्वाज *दैनिक सवेरा* नामक हिन्दी समाचार पत्र में 26 अगस्त 2019 को अपने एक आलेख *यथार्थ का बदलता स्वरूप* में इस विषय पर चिंता प्रकट करते हुए लिखते हैं-

> व्यक्ति का हर एक पहलू चाहे वह राजनीतिक, आर्थिक, व्यक्तिगत या धार्मिक हो, समाज से सीधा जुड़ा हुआ है और उसे दिखाना ही यथार्थ के अंतर्गत आता है। यदि विचार करें, तो साहित्यकार, समाज, लेखक, मीडिया, जनसंचार के साधन और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध, उसके आचार-विचार, आर्थिक तथा नैतिक परिस्थितियों का मूल्याँकन उसी समय करता है, जिसमें वह रह रहा होता है, साहित्य के लेखकों ने यथार्थ के चक्कर में मर्यादा की सभी हदें पार कर

दी हैं। कितनी ही कहानी और उपन्यास आज के दौर में ऐसे हैं, जिन पर कक्षा में खुल कर नहीं बोला जाता, केवल इशारे से समझा दिया जाता है। (03)

निष्कर्ष

उपरोक्त व्याख्याओं से यही बात स्पष्ट होती है कि साहित्य रचना की प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य परस्पर एक दूसरे को इस तरह प्रभावित करते हैं कि इनमें प्रत्येक क्रमश: परिवर्तन और विकसित होता रहता है, जैसे समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुन: समाज। प्रस्तुत अध्याय को तुलनात्मक दृष्टि से देखें, तो इसके अंतर्गत, समाज में व्यक्ति और व्यवस्था के बदलते अंतर्संबंधों को देखा और परखा गया है कि सामाजिक परिवेश कैसे बदल रहे हैं। निष्कर्ष रूप से सामाजिक परिवेश बदलने के कारण सामाजिक संघर्ष, शिक्षा, पौराणिकता का त्याग, भ्रष्ट राजनीति और विज्ञान एवं तकनीक आदि हैं। नवीन वैज्ञानिक प्रगति एवं बदलते हुए परिवेश के साथ-साथ, हिन्दी और पंजाबी के नाटककारों की दृष्टि भी बदल गयी है। सामाजिक संघर्ष के कारण मानव सम्बन्धों और मूल्यों में भी परिवर्तन हुआ, इस बदलाव के साथ नाटककारों ने एक नयी दृष्टि के सहारे व्यक्ति के भीतर होने वाले संघर्ष को पहचान कर और उन्हें नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। साहित्य के माध्यम से जन-साधारण में सामाजिक गतिविधियों के प्रति रुचि उत्पन्न होना, समाज को एकजुट बनाये रखने में यह मददगार हो सकता है। आधुनिक हिन्दी और पंजाबी नाट्य-साहित्य कथावस्तु के माध्यम से समाज में होने वाली घटनाओं को दिखाकर, उसके प्रति सचेत रहने का संदेश दे रहे हैं, प्रस्तुत शोध में इसको बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है।

दोनों भाषाओं के नाटकों के तुलनात्मक बिन्दुओं की बात करें, तो इक्कीसवीं शताब्दी के दोनों भाषाओं के नाटक मध्यवर्ग पर केन्द्रित हैं और साथ ही आधुनिक परिवार और उसके साथ जुड़े अनुभव एवं प्रश्नों पर भी विशेष ध्यान दे रहे हैं। यदि चयनित हिन्दी नाटकों की बात करें, तो इन नाटकों में आदर्श की स्थापना, अतीत का गौरव, राष्ट्रीय चेतना और युगजीवन के संकेत अधिक मिलते हैं, लेकिन पंजाबी में काल और कथा प्रसंगों की उतनी अनेकता दिखाई नहीं देती है। पंजाबी नाटककार अधिकतर पंजाब और पंजाब से ही विदेश गये लोगों तक सीमित दिखाई देते हैं। नारी

शोषण के विविध पक्षों पर दोनों भाषाओं में नाटक लिखे गये हैं। दोनों भाषाओं के नाटकों की नारी पात्र परिवार और पारिवारिक सम्बन्धों को नकारती नहीं हैं, वे पुरुष की तानाशाही को ही नकारती हैं। शोषण के प्रति सजगता और विद्रोह दोनों में है। भारत में हिन्दी बहुत सारे राज्यों की राज भाषा है। इसलिए हिन्दी में लिखने वाले नाटककारों की प्रादेशिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में व्यापकता और विविधता अधिक है। जबकि पंजाबी की पहचान हिन्दी की तुलना में सीमित है, इस कारण हिन्दी नाटकों में प्रस्तुत विचार और समस्याएँ पंजाबी नाटकों की तुलना में ज्यादा है, इस प्रकार ही पंजाबी की अपेक्षा हिन्दी में समष्टि केन्द्रित प्रतिनिधिक चरित्रों की बहुलता है, ये पात्र व्यापक समाज की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हैं। जबकि हिन्दी की तुलना में पंजाबी नाटकों में किसी विशेष चरित्र की प्रधानता अधिक दिखाई देती है। हिन्दी नाटकों की तुलना में पंजाबी नाटकों में कृषकों की समस्याओं को ज्यादा गहराई से प्रस्तुत किया गया है। अंत हम कह सकते हैं कि 2000 से 2018 के हिन्दी और पंजाबी नाटकों में सामाजिक विषयों पर जो नाटक लिखे गये, उनके विषय लगभग समान हैं। उन नाटकों में जीवन और समाज का यथार्थ चित्रण है किन्तु सभी की दृष्टि समाज सुधारवादी और आदर्शवादी है।

तृतीय अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: राजनीतिक पक्ष

3.1.1 राजनीतिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और राजनीतिक परिवर्तन के कारण

'राजनीति' दो शब्दों का समूह है 'राज+नीति' राज का अर्थ शासन और नीति का अर्थ उचित समय और स्थान पर कार्य करने की कला। डॉ. हरदेव बाहरी *हिन्दी शब्दकोश* में राजनीति शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं- "राजनीति-राज्य के नीति नियम" (697)

'राजनीति' मूलत: अंग्रेजी के शब्द 'पॉलिटिक्स' (politics) का सरल हिन्दी अर्थ है। राजनीति अध्ययन की परम्परा काफी प्राचीन है। यूनान के अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स' में राजनीति पर काफी चर्चा की थी। सी.एम. कोहली ने *राजनीति शास्त्र के मूल आधार* में लिखा है- "'पॉलिटिक्स' शब्द यूनानी भाषा 'पॉलिस' से निकला है और पॉलिस शब्द का भाषायी अर्थ 'नगर' अथवा राज्य है।" (01) प्राचीन यूनान का इतिहास इस बात का साक्षी है कि वहाँ प्रत्येक नगर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में संगठित तथा व्यवस्थित था। इन छोटे-छोटे नगर राज्यों का अध्ययन 'पॉलिटिक्स' के अंतर्गत होता रहा है, लेकिन यह नगर राज्य धीरे-धीरे विस्तार ग्रहण करने लगे, जिसके परिणाम स्वरूप पॉलिटिक्स भी अपने नाम और स्वरूप की प्रकृति को बदलने लगी। नगर राज्यों का विस्तार राष्ट्रीय राज्यों में होने लगा। नरेद्र बसु के *हिन्दी विश्वकोष* के अनुसार- "जब संसार में राजतन्त्र का प्रभुत्त्व था, तब राजा द्वारा राज्य की रक्षा और शासन संचालन के लिए अपनाई गयी नीति ही राजनीति थी।" (312)

राजनीति का इतिहास बहुत प्राचीन है, इसका विवरण विश्व के सबसे प्राचीन महाकाव्य महाभारत में भी मिलता है। राजनीति में सफलता हासिल करने के लिए बहुत रास्ते अपनाये जाते हैं। राजनीति का स्तर छोटा-बड़ा हो सकता है, जैसे गाँव की पंचायत से लेकर प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति के चुनाव आदि तक।

भारत लगभग दो सौ वर्षों की दासता के बाद आज़ाद हुआ। आज़ादी की लड़ाई में समूचा राष्ट्र एक-जुट होकर खड़ा था। शक्तिशाली अंग्रेजी साम्राज्य की सत्ता को चुनौती देकर भारतीय जनता ने अपनी एकता का परिणाम दिया था। अंग्रेजों ने फूट डालकर राज करने की नीति के तहत साम्प्रदायिकता भी फैलायी थी। अंग्रेजों ने ऐसा राज किया कि भारत को चोटी से उठाकर ज़मीन पर रख दिया। इस दौर को जिसने झेला आज़ादी का वास्तविक महत्त्व वहीं समझ पाया। इस भारत की गरिमा को बनाए रखने तथा हमें स्वतंत्रता दिलाने में हमारे देश के उन महान नायकों की मुख्य भूमिका रही, जिन्हें आज के समय में हम केवल किताबों, किसी गली या मोहल्ले या किसी रोड़ के नाम से जानते हैं। स्वतंत्रता के पहले हमारे देश को अंग्रेजों ने लूटा और स्वतंत्रता के बाद हमारे देश के नेताओं ने सत्ता पर रहने के लिए अंग्रेजों से भी बुरी नीतियों को अपना लिया। रूपा मंगलानी *भारतीय शासन एवं राजनीति* में लिखती है- "अंग्रेजों ने तो भारत का सिर्फ आर्थिक शोषण ही किया था, लेकिन स्वतंत्रता के बाद के नेताओं ने सत्ता पर रहने के लिए किसी भी पक्ष को नहीं छोड़ा।" (45)

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में लाखों लोगों ने अपनी कुर्बानियाँ देकर स्वतंत्रता हासिल की। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय राजनीति का जन्म हुआ। स्वाधीन भारत की प्रथम चेतना उसके नव निर्माण तथा विकास की थी और लक्ष्य था कि एक शोषणहीन, भेद रहित समाज की स्थापना और गौरवशाली राष्ट्र का निर्माण तथा भारत को अपनी परम्परागत रूढ़ियों, सामाजिक कुरीतियों, पिछड़ेपन, गरीबी आदि से छुटकारा दिलाकर, एक आदर्श राष्ट्र के रूप में अपने-आपको विश्व मानचित्र में स्थापित करना, लेकिन यह उद्देश्य आज तक भी अधूरा है। डॉ. बिर्केश्वर प्रसाद सिंह *भारतीय शासन एवं राजनीति* में लिखते हैं- "सत्ता हथियाने की इस स्वार्थ की राजनीति ने भारत में बहुत-सी बुराइयाँ ला दी, भारत के लोगों ने जो सोच कर आजादी ली थी, वह सपना बाद में कहीं दिखाई नहीं दिया।" (577)

यदि स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय राजनीति के परिवेश की बात करें, तो उस समय नेहरू की प्रमुख भूमिका रही है। उन्होंने विश्व में शांति की स्थापना को महत्त्वपूर्ण माना और राष्ट्रीय एकता को बरकरार रखा। उन्होंने निर्धन जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया, कृषकों की स्थिति सुधारने के लिए, जमींदारी प्रथा का अंत किया, लेकिन पराधीनता के इतने वर्ष बाद प्रत्येक नागरिक के लिए चिकित्सा और शिक्षा के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं

हुए। सातवें और आठवें दशक में राजनीतिक परिवेश में कुछ ज्यादा परिवर्तन देखा गया। सातवें दशक में भारत को चीन एवं पाकिस्तान से युद्ध करना पड़ा। बाद में बांग्लादेश के साथ संघर्ष के कारण भारत में महँगाई बढ़ी और आम आदमी के हालात तरसयोग हो गये। ऐसे ही आपातकाल की घोषणा ने तो राजनीतिक क्षेत्र में उथल-पुथल मचा दी। सत्ता में परिवर्तन हुआ। चारों तरफ एक ऐसा वर्ग बना, जो जन सुविधाओं का शोषण करके अपने लिए सुविधाएं बटोरने लगा। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे राजनीति में नैतिकता और ईमानदारी लुप्त होने लगी। समकालीन राजनीति पर टिप्पणी करते हुए, नरेंद्र मोहन *आज की राजनीति और भ्रष्टाचार* में लिखते हैं-

> राजनीति का उद्देश्य लोकतांत्रिक मूल्यों तथा आदर्शों का समर्थन करना होना चाहिए, पर ऐसा नहीं हो पा रहा। कहने को तो, अभी भी राजनीति का उद्देश्य लोक कल्याण है, लेकिन दुर्भाग्य है कि वर्तमान राजनीति ने अपने इस उद्देश्य और लक्ष्य का परित्याग सा कर दिया है और अब तो ऐसा लगता है कि उसने लोगों के स्थान पर संकीर्ण व निहित स्वार्थों की रक्षा करना सर्वोपरि मान लिया है। (39)

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक राजनीति में क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति भी काफी बढ़ रही है, स्वतंत्रता के बाद राजनीति में स्थानीय स्तर पर कम शिक्षित तथा सीमित हित के दृष्टिकोण रखने वाले लोग सत्ता में आए। इन लोगों ने अपनी राजनीतिक महत्वकांक्षा की पूर्ति के लिए जाति, धर्म या क्षेत्रीय समुदायों को अधिक उपयोगी बनाया। हमारे देश के नेताओं में भी समय-समय पर यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है। क्षेत्रवाद के कारण ही विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक संघर्ष और तनाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, क्योंकि इसके अनन्तर प्रत्येक क्षेत्र स्वार्थों को सर्वोच्च स्थान दे बैठता है और उसे यह चिंता नहीं होती कि उससे दूसरे क्षेत्रों के लोगों का कितना नुकसान होगा। क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति पर लगाम लगाने के लिए आवश्यक है कि देशवासियों को देशभक्ति का पाठ पढ़ाया जाए। उनसे देश के प्रति प्रेम एवं भक्ति भाव विकसित किया जाए।

इस अध्याय में हमने दोनों भाषाओं के नाटकों की तुलना करते हुए तुलनात्मक प्रविधि को अपनाया और तुलनात्मक अध्ययन के समय पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोणों का भी सहारा लिया गया, साथ ही नाटकों के माध्यम से विभिन्न राजनीतिक कारकों के जनसमुदायों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन के लिए

आलोचनात्मक और समाजशास्त्रीय प्रविधि को प्रमुख रूप से अपनाया। इस अध्याय में प्रस्तुत शोध का उद्देश्य 'हिन्दी तथा पंजाबी के नाटकों में राजनीतिक तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन' की पूर्ति की गई। जिसके अंतर्गत 'बदलते राजनीतिक परिवेश में राजनेताओं और जनता के साथ पारस्परिक सम्बन्ध', 'बदलते राजनीतिक परिवेश में साम्प्रदायिकता', 'राजनीतिक सत्ता के दबदबे में भ्रष्टाचार का प्रफुल्लित रूप', 'बदलते परिवेश में राजनेताओं का न्याय एवं पुलिस प्रशासन में दखल', 'वर्तमान की राजनीति में जातिवाद एवं परिवारवाद को बढ़ावा' और 'आधुनिक राजनीति में बढ़ते स्वार्थ के कारण परिवर्तित परिवेश' आदि का दोनों भाषाओं के नाटकों के पात्रों के माध्यम से अनुकूल प्रविधियों के द्वारा राजनीतिक परिवेश के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

3.2.1 2000 से 2018 के चयनित नाटकों में बदलते परिवेश के राजनीतिक तत्त्व

3.2.1.1 बदलते राजनीतिक परिवेश में राजनेताओं और जनता के साथ पारस्परिक सम्बन्ध

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलते राजनीतिक परिवेश में राजनेताओं और जनता के साथ पारस्परिक सम्बन्धों की बात करें, तो यह परम्परा पुरातन काल से चली आ रही है। प्राचीन काल में प्रबंधक राजा के रूप में स्वीकार होता था, जो जनता के सुख-दुःख में भागीदार होता था, परन्तु आधुनिक काल में इसका स्वरूप बदल चुका है, अब राजा का स्थान नेताओं ने ले लिया है और उनका जनता के साथ स्नेह भरा सम्बन्ध नहीं है। अब उन्हें जनता से सिर्फ वोटों की जरूरत होती है और मंत्री बनने के बाद वह अपने किए वादों को भूल जाते हैं। लोकतंत्रीय व्यवस्था में जनता की ही संप्रभुता होती है। लोकतंत्र में जनता ही सत्ताधारी होती है, उसकी अनुभूति से शासन होता है, उसकी प्रगति ही शासन का एकमात्र लक्ष्य माना जाता है। राजनीतिक लोकतंत्र की सफलता के लिए राजनेताओं और जनता के बीच

आर्थिक लोकतंत्र का गठबंधन होना आवश्यक है। आर्थिक लोकतंत्र का अर्थ है कि समाज के प्रत्येक सदस्य को अपने विकास की समान भौतिक सुविधाएं मिले। राजनेताओं का जनता के साथ सम्बन्ध को टी. आर. विनोद *मार्क्सवादी साहित्य आलोचना* में लिखते हैं-

> राजनेताओं के हाथों में मेहनतकक्ष लोगों को अपने अधीन रखने का कारगर हथियार, उनमें फूट डालना है। यह फूट धर्म, जात-पात, नस्ल राष्ट्रवाद अथवा लिंगवाद पर डाली जाती है। (67)

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से राजनीतिक प्रक्रिया के कारण परिवेश में बदलाव को प्रस्तुत किया गया है, इनके अनुकूल बदलाव हम नाटकों के माध्यम से देख सकते हैं, कि कैसे वर्तमान युग में राजनीतिक परिवेश बदल रहे हैं।

आज हम देखते हैं कि जनता से सत्ता प्राप्त करने के लिए ये जनता से झूठे वायदे करते हैं, उन्हें धर्म और जाति के बड़े सपने भी दिखाते हैं, वास्तव में जनता के कल्याण और देशहित से इनका कोई सरोकार नहीं होता। किशोर कुमार सिन्हा ने अपने नाटक *धारा एक सौ चवालीस* में राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह से प्रस्तुत किया है कि जैसे हमारे आस-पास कर्फ्यू लग जाता है। सारे शहर के लोगों का जीना मुश्किल हो जाता है, जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। कोई नेता जनता की सुध लेने नहीं आता। लेकिन जैसे धारा एक सौ चवालीस खत्म होकर कर्फ्यू घटता है, तो नेता लोग हमदर्दी व आश्वासन भरे भाषण देने पहुँच जाते हैं। नेता लोग कहते है-

> वी.आई.वी.: कहने दीजिए इनको। दुःख है, हमें बहुत दुःख है कि इतना सब कुछ हो गया हम इसकी मजिस्ट्रेट जाँच करा देंगे।
>
> कुछ लोग: जाँच-वाँच से कुछ नहीं होता.....
>
> एक महिला: मरे तो जिंदा होवें ना....
>
> वी.आई.वी.: फिर भी जांच तो करायेंगे और दोषियों को दण्ड भी देंगे। देखिए मजिस्ट्रेट साहब ... इन मोहल्लों में ..... पानी की व्यवस्था चुस्त-दुरुस्त करवा दीजिए।
>
> दूसरा वी.आई.वी. : मैं इस बात को एसेंबली तक ले जाऊंगा। (83-84)

इस प्रकार हम देखते हैं कि नेताओं को जनता से सिर्फ वोटों की जरूरत होती है; जब वह मुश्किल में होते हैं, तो उस समय कोई भी उनकी सुध लेने नहीं आता, जब मुश्किल दूर हो जाती है तो सब अपनी-अपनी राजनीतिक रोटियां सेकने आ जाते हैं। डॉ. सरिता वशिष्ठ *युगबोध और हिन्दी नाटक* में लिखती है-

> राजनेता भोली-भाली जनता को सत्ता प्रेरित हेतु वोट लेने के लिए अनेक झूठे वायदे करते हैं। सिर्फ चुनावों के समय लोगों की समस्याएँ याद आती हैं, उसके बाद कुछ नहीं, राजनेता ऐसे-ऐसे आश्वासन जनता को देते हैं कि जो पूरे नहीं किए जा सकते। (181)

सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक *सिहांसन खाली है* में भी हम ऐसी कथा देखते हैं। नाटक में नेताओं के खोखलेपन को प्रस्तुत किया है कि नेता अभी सिहांसन के योग्य है भी, या नहीं। फिर भी जनता को जादू-भरे, लुभावनाएँ शब्दों से अपनी ओर खींचने लगता है। लंबा भाषण देता फिर भी कहता- "मैंने अपनी इलेक्शन स्पीच का एक छोटा-सा टुकड़ा, बतौर ट्रेलर प्रस्तुत किया था। चूँकि आपको सुपात्र समझने में सुविधा रहे।" (12)

नेताओं के भाषण व्यवहार आदि सब जनता के लिए दिखावा होते हैं, जिसके द्वारा वे सिहांसन तक पहुँचना चाहते हैं। आज कल के नेताओं को चारों ओर कुर्सी ही दिखायी देती है। नेताओं का कुर्सी से इतना लगाव होने लगा है कि वह जनता के हित-अहित की चिंता नहीं करते, केवल अपना हित सर्वोपरि मानते हैं। नेता अपनी इस सत्ता का गलत प्रयोग करते हुए, जनता की भलाई की अपेक्षा उसका शोषण करते हैं। ऐसी राजनीतिक प्रक्रिया से सम्बंधित डॉ. मधु धवन का नाटक *आज की पुकार* भी है। जिसमें एक मध्य वर्ग समूह के द्वारा चलाए जा रहे होटल में से नेता के पी.ए. द्वारा उससे कुछ नगदी की माँग की जाती है-

> दया: जी कहिये हुज़ूर.... (फोन माइक पर कर देता है। जिसे सब सुन सकते हैं।)
>
> पी.ए.: चलो, अच्छा लगा, चुनाव आ रहें हैं। दस पेटी परसों तक भेज दो....
>
> दया: मि. दमानी जी, दस पेटी किस चीज की बनी हुई ..... लकड़ी की, टीन की.... और साइज़।
>
> पी.ए.: पेटी का अर्थ नहीं समझते.....

दया: पेटी का मतलब बक्सा, सन्दूक ही होता है, न ....

पी.ए.: (हँसते है) बरखुरदार, दस पेटी का मतलब होता है (रुककर) दस...लाख... तुम परसों तैयार रखो। फोन रख देता है। (33)

सत्ता में कूटनीतिक ढंग से स्वार्थ प्रेरित, स्वार्थ केन्द्रित राजनीति हो रही है। देशभक्ति और जनकल्याणकारी मूल्यों का ह्रास हो गया है। पदलोलुपता प्रमुख हो गयी है। आधुनिक काल की राजनीति केवल कुर्सी तक सीमित रह गयी है। सं. गिरीश रस्तोगी *समकालीन हिन्दी नाटककार* में लिखते हैं-

हिन्दी में पिछले कुछ वर्षों में एक दौर शुद्ध राजनीतिक व्यंग्य के नाटकों का आया और प्राय: हर छोटी-बड़ी नाट्य संस्था द्वारा इस प्रकार के नाटक खेले जा रहें थे। (22)

पंजाबी नाटकों की विषयवस्तु के साथ इनकी तुलना करें, तो जनता के साथ नेताओं के सम्बन्ध आदि विषयों पर अनेक नाटकों की रचनाएँ हुई हैं। राजनीति मानव इतिहास के विकास की प्रक्रिया की शक्ति का खास सहारा है। जैसे कोई भी मनुष्य जन्म लेता है, तो उसके साथ ही उसकी आशाओं का भी जन्म हो जाता है। इसलिए नेताओं के मन में भी ऐसा ही विचार रहता है कि किसी भी तरीके से सत्ता हासिल कर ली जाए और सामान्य जनता पर राज किया जाए। राजनीति में रुचि लेने वाले व्यक्ति सत्ता को प्राप्त करने के लिए, अपनी पूरी कोशिश करते हैं। जिस पक्ष को राज सत्ता प्राप्त हो जाती है, उस पक्ष के नेता सामान्य जनता और राज्य के सम्पूर्ण प्रशासन को प्रभावित करते हैं।

जैसे-जैसे विज्ञान और तकनीक की उन्नति के कारण सामान्य जनता समझदार होती जा रही, वैसे ही नेता लोग जनता को गुमराह करने के नए-नए तरीके खोज रहे हैं। हम देख रहे हैं कि आधुनिक पंजाबी नाटकों में समकालीन राजनीतिक गतिविधियों और स्थितियों के परिवर्तनों को आम आदमी के संघर्ष के साथ जोड़कर दिखाने का प्रयास किया है। वर्तमान पंजाबी नाटककारों ने राजनीति के यथार्थ स्वरूप को धरातल पर उतारा है। आधुनिक पंजाबी नाट्य-साहित्य का केंद्र आम आदमी है। जो राजनेताओं के चुनाव समय झूठे वादों और फिर पाँच साल जनता की सार न लेने से से परेशान हैं। गुरचरन सिंह जसूजा के नाटक *परियां* में चुनाव के पहले के दृश्य को प्रस्तुत किया गया है, इस नाटक की मुख्य पात्र वर्षा है, वर्षा के घर

वही मंत्री चुनाव के लिए वोट मागने आता है जिसने पाँच साल जनता की सार तक नहीं ली, वर्षा का पति उस मंत्री को वोट देने का झूठा आश्वासन दे देता है, लेकिन वर्षा अपने पति का विरोध करती है कि एक आदमी जो पहले मंत्री रह चुका है और उसने पाँच साल में आम जनता की सार तक नहीं ली, तो उसका जवाब भी उसी भाषा से देना चाहिए था, तुमने उसे आश्वासन क्यों दिया-

> जगदीश: (वर्षा का पति) वोट तो ख़ुफ़िया होती है। किसी को क्या पता चलता है कि वोट किसे दी है। इसको तो मैं वोट कभी ना दूँ। इसके मुकाबले काला कुत्ता खड़ा हो जाए, उसे वोट देनी मंजूर है।
>
> वर्षा: फिर आप ने झूठ क्यों बोला?
>
> जगदीश: और उसे क्या कहता?
>
> वर्षा: यही जो कुछ मुझे बता रहे हो कि काले कुत्ते....
>
> वर्षा: (गुस्से से) तुम्हारे जैसे गुलाम मानसिकता वाले लोगों ने ही इन नेताओं का दिमाग खराब कर रखा है। इनको बिगाड़ रखा है। इसलिए इस देश का कोई विकास नहीं हुआ। डरपोक, बुजदिल हो तुम लोग। सच कहने से क्यों डर रहे हो? (92)

हमारे देश के नेताओं की दशा इस प्रकार की बनती जा रही है, यदि चुनाव आए तो जनता के पास जाओ और चुनाव जीत जाने के पश्चात, उनकी सार भी न लो। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा और प्रजा अर्थात् नेता और जनता में आज नहीं बहुत समय पहले से ही यह अंतर देखा गया है, ओंकारप्रीत सिंह के द्वारा रचित नाटक *प्रगटिओ खालसा* में ऐतिहासिक घटना के द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि जब गुरु नानक देव जी ने जाति-पाति के भेद-भाव को खत्म करने के उद्देश्य से लंगर प्रथा चलाने का प्रयास किया था, तो उस समय उनका उपदेश था कि चाहे राजा हो, चाहे रंक हो, उनमें कोई अंतर नहीं समझा जाएगा, गुरु अमरदास जी के समय बादशाह अकबर ने भी एक पंक्ति में बैठकर लंगर खाया था, लेकिन राजा का सिपाही इस बात की चिंता प्रकट करता है कि एक राजा आम जनता में कैसे बैठ सकता है, राजा और प्रजा में बहुत अंतर होता है, वार्तालाप के अनुसार-

सिख: लंगर तो सब का साँझा होता है .... यहाँ कोई भी किसी भी समय आ सकता है।

सलाहुदीन: यह आप ने ठीक नहीं किया, यह बादशाह सलामत का अपमान है। शहनशाहे हिंदुस्तान को आप आम लोगों में बिठाकर खाना खिला रहे हो। (17)

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सिख गुरुओं ने राजा और प्रजा में कोई अंतर नहीं देखा, उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति के दुःख-दर्द को समझने का प्रयास किया था। बाद में उस समय का राजा अकबर भी इस बात को मानते हुए कहता है-

अकबर: बाबा नानक आम लोगों के दुःख को समझते थे और उसमें शामिल भी होते थे, तभी तो उन्हें सभी बराबर के बाबा-ऊ-पीर मानते हैं, उनके बारे में प्रसिद्ध कथन है- "नानक पीर....हिन्दुओं का गुरु, मुस्लिमों का पीर।" हमें इनसे कुछ सीख लेनी चाहिए। (20)

इस प्रकार हम तुलनात्मक दृष्टि से देखते हैं कि आज की राजनीति की वास्तविकता तो साहित्य में भी देखी जा सकती है। साहित्यकार जिस स्थान पर रहता है और उस युग के राजनीतिक परिवेश में उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। वह उस वातावरण से प्रेरित होकर साहित्य का निर्माण करता है। इस प्रकार हिन्दी और पंजाबी के युगीन नाटककारों ने राजनीति में बदलते परिवेश में राजनेताओं और जनता के साथ पारस्परिक सम्बन्ध का सतरंगी चेहरा प्रस्तुत किया है। इस विषय पर चिंता प्रकट करते हुए कृष्णा अग्निहोत्री *वर्तमान परिवेश व राष्ट्रीय चिंतन* में लिखती है-

राजनीति का पर्यावरण इतना दूषित है कि अच्छे ईमानदार लोग वहाँ जाना नहीं चाहते, क्योंकि चुनाव में रुपया व अपराधी मनोवृत्तियों ने तेज रफ्तार पकड़ ली है। योग्यता से अधिक धन व दादागिरी ने आधिपत्य कर लिया। इस दादागिरी व अपराधी भावनाओं में जीते अशिक्षित राजनीतिज्ञों ने अब तक अपने लिए राष्ट्र हित भुला एक खुशामदी व लालची वर्ग पैदा किया। अब वोट का सही उपयोग ही जनता ने विस्मृत कर दिया। शाराब, कपड़े व अन्य प्रलोभनों के आधार पर वोटों की खरीददारी होने लगी व प्रजातंत्र की परिभाषा ही बदल गयी। (21)

3.2.1.2 बदलते राजनीतिक परिवेश में साम्प्रदायिकता

भारतीय राजनीति का आधार भारतीय संविधान है। यदि इसके विपरीत साम्प्रदायिकता एवं हिंसा की बात करें, तो साम्प्रदायिक राजनीति इसी सोच पर आधारित होती है कि धर्म ही सामाजिक समुदाय का निर्णय करता है, इस मान्यता के अनुकूल सोचना साम्प्रदायिकता ही है। इस सोच के अनुसार एक ख़ास धर्म में आस्था रखने वाले लोग, एक ही समुदाय के होते हैं। उनके मौलिक हित एक जैसे होते हैं तथा समुदाय के लोगों के आपसी मतभेद सामुदायिक जीवन में कोई अहमियत नहीं रखते। इस सोच में यह बात भी शामिल है कि किसी अलग धर्म को मानने वाले लोग, दूसरे सामाजिक समुदाय का हिस्सा नहीं हो सकते, अगर विभिन्न धर्म के लोगों की सोच में कोई समानता दिखती है तो यह गलत है। अलग-अलग धर्मों के लोगों के हित भी अलग-अलग होंगे, और उनमें टकराव भी होगा। साम्प्रदायिक सोच जब ज्यादा आगे बढ़ती है, तो उनमें यह विचार जुड़ने लगता है कि दूसरे धर्मों के अनुयायी एक ही राष्ट्र में समान नागरिक के तौर पर नहीं रह सकते। इस मानसिकता के अनुसार या तो एक समुदाय के लोगों को दूसरे सुमदाय से अलग रहना पड़ता है या फिर उनके लिए अलग राष्ट्र बनाना ही साम्प्रदायिक राजनीति का आधार होता है।

इस समस्या का कोई समाधान नज़र नहीं आ रहा, क्योंकि हमारे राजनेता ही साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दे रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद से भारत में कई साम्प्रदायिक घटनाएँ हुई हैं। इन घटनाओं में हज़ारों लोगों ने अपनी जाने भी गंवाई हैं।

यदि साहित्य के माध्यम से इसके तथ्यों को समझने का यत्न करें, तो आधुनिक युग के नाटककारों ने सामाजिक विघटन, मूल्यहीनता, अपहरण, हत्या, बलात्कार, पुलिस प्रशासन की अव्यवस्था, छल-कपट आदि सभी प्रकार की समस्याओं एवं विकृतियों की जड़ राजनीति को माना है। विकृत राजनीति में बढ़ती हिंसा-अलगाव, तनाव, कुंठा, संत्रास, घुटन, अनैतिकता, पीड़ा, अजनबीपन, अविश्वास, विघटन, नकारात्मकता समाज में विशेष रूप से देखी जा सकती है।

वर्तमान में सत्तापक्ष एवं विपक्ष दोनों एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास कर रहे हैं। सत्ता पक्ष विपक्ष का प्रभाव देख कर जनता को भड़काता है। जिसके कारण साम्प्रदायिक हिंसा होने के कारण बढ़ जाते हैं और इस हिंसा की आग में वह अपनी

राजनीति की रोटियां सेंक लेते हैं। आज हम देख रहे हैं कि साम्प्रदायिक दंगे संकीर्ण मानसिकता की उपज होते हैं। स्वार्थी लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए इस संकीर्णता को बढ़ावा देते हैं और एक छोटा-सा कारण भी बड़े साम्प्रदायिक दंगे की जड़ बन जाता है। किशोर कुमार सिन्हा के द्वारा रचित नाटक *धारा एक सौ चवालीस* में हम देखते हैं कि दो पहलवानों की कुश्ती का दंगल ही साम्प्रदायिक दंगे के दंगल में बदल जाता है। साम्प्रदायिक दंगों में जो लोग अपने संबंधियों को खो बैठते हैं, उनमें से अधिकतर पागलों की स्थिति में पहुँच जाते हैं। पीड़ित लोगों को समझ नहीं आता कि क्या करें कहाँ जाए? असग़र वजाहत के द्वारा रचित नाटक *जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ* में रतन की माँ की ऐसी ही हालत हो जाती है। लाहौर में मिर्जा को उसकी हवेली असार हो जाती है। परन्तु रतन की माँ उस हवेली को छोड़ने के लिए तैयार नहीं और वह पाकिस्तानी पंजाबी में अपने परिवार को साम्प्रदायिकता दंगों में मारे जाने के दर्द को प्रकट करती है-

> रतन की माँ: हाँ हाँ .... मनूं मार के रावी विच रोड़ आओ .. तद हवेली ते कब्जा कर लेना.... मेरे जिंदा रयंदे ऐदा हो नहीं सकता।
>
> सिकंदर मिर्ज़ा: या खुदा मैं क्या करूँ। पुलिस ने आप पर ज्यादती की तो हमें तकलीफ होगी।
>
> रतन की माँ: बेटा मेरे उत्ते जो कहर पै चुकेया है ... उस तो बड्डा कहर होर कोई पै नहीं सकदा... जवान मुंडा नी.. रिया परिवार नहीं रिया.... लख्खां दे जवाहरात लुट ले गए .... सगे-सम्बंधी मारे गए .... (16)

इस प्रकार हम देखते हैं कि साम्प्रदायिक दंगे पूरे के पूरे परिवार खत्म कर देते हैं। राजनीति सापेक्ष में एक ऐसी नीति होती है जो राष्ट्र के निर्माण, मानव के उत्थान-पतन और जीवन के उतार-चढ़ाव में, जिसका विशिष्ट योगदान होता है। राजनीति के वास्तविक रूप के दर्शन तो साहित्य में भी किए जा सकते हैं। साहित्यकार यथार्थ को लिखने से डरते नहीं है। ऐसे ही नाटककार सुशील कुमार सिंह ने राजतन्त्री व्यवस्था से प्रेरित होकर *सिंहासन खाली है* नामक नाटक की रचना की, जिसमें उन्होंने आधुनिक युग के राजनेताओं की कूटनीतियों का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। इस नाटक में नेताओं की साम्प्रदायिक नीति को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करती हुई महिला,

नेता से पूछती है कि ये सब आपके अपने आदमी हैं, या किराए के भी? तब नेता मुस्कराते हुए धीरे से कहता है-

> कुछ अपने, कुछ किराए के और कुछ विरोधी पक्ष के लोगों को तोड़ लिया है। यह तो चुनाव है और चुनाव में हर प्रकार के हथकंडे अपनाने की छूट तो दी ही जाती है वरना..... (42)

ऐसे ही इस नाटक में राजनेताओं का जनता के साथ सम्बन्ध को प्रदर्शित करती वार्तालाप, जिसमें चुनाव के समय धमकियाँ, दंगे-फसाद, मारकाट, आगजनी, पत्थराव, शक्ति का प्रयोग आदि घटनाओं को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। सभी जानते हैं कि चुनाव के समय नेताओं के पालतू कुत्ते, गुंडे आदि बहुत काम आते हैं। नेता इन्हीं के बल पर विरोध करने वालों को ठिकाने लगा देते हैं। जब कोई समर्थन देने को तैयार नहीं या कोई जनता सवाल पूछती है, तो नेता कहता है कि- "जाओ जाओ, सालो .... देख लूँगा।.....हरामजादो ..... एक-एक को अपने गुंडों से जिंदा फुंकवाया न तो मेरा नाम भी नेता नहीं।" (45) इस संवाद के माध्यम से हम नेताओं की मानसिकता देख सकते हैं।

डॉ. देवेन्द्र शुक्ला *हिन्दी नाटकों में बिम्ब-विधान* में इस नाटक के विषय में लिखते हैं- "'सिंहासन खाली है' नाटक में व्यवस्था और सत्ता की दोगली नीति उभारी गयी है।" (47)

पंजाबी नाट्य-साहित्य में साम्प्रदायिकता की बात करें, तो स्वतंत्रता के बाद विभाजन के समय हिन्दू-मुस्लिम और सिख-मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने लाखों लोगों की जाने लीं। अंग्रेज भारत से चले गये, लेकिन उन्होंने साम्प्रदायिकता जैसी भयानक समस्या को यही छोड़ दिया। इन सभी समस्याओं का वर्णन हमें पंजाबी नाटकों में मिलता। बदलते परिवेश के आधार पर हम देखते हैं कि इन नेताओं में क्रूरता बढ़ी है, आए दिन नेता आम जनता का शोषण कर रहे हैं, चाहे उसके लिए उन्हें कोई भी हथकंडा क्यों न अपनाना पड़े। साम्प्रदायिक राजनीति से अपना स्वार्थ पूरा करने की लालसा इतनी बढ़ चुकी है कि इससे स्कूल-कॉलेज और मन्दिर-मस्जिद भी नहीं बच सके। पहले एक समुदाय की दूसरे समुदाय के साथ हिंसा होती थी, लेकिन आज स्वार्थ इतना बढ़ गया है कि नेताओं ने प्रत्येक समुदायों में फसाद खड़े कर दिए हैं। राजनीति के इस प्रभाव को मानव जीवन और समाज में अनेक रूपों में देखा जा सकता है।

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत संचालित राजनीति प्रक्रिया उस देश की राजव्यवस्था के स्वरूप और प्रकृति से निर्धारित होती है। साम्प्रदायिक राजनीतिक की व्यवस्था वर्तमान में अनेक वर्गों एवं संगठनों में विभाजित है, इसमें राजनीतिक दल, दबाव समूह, साम्प्रदायिक गुट, गैर साम्प्रदायिक गुट, बुद्धिजीवियों का वर्ग, नौकरशाही और नेताओं की लालसा आदि होते हैं। पंजाबी नाटकों के माध्यम से पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह के काल की बात करें, तो उस समय किसी प्रकार की कोई साम्प्रदायिकता को बढ़ावा नहीं दिया जाता था। इस प्रकार की उदाहरण हमें सतीश कुमार वर्मा के द्वारा रचित ऐतिहासिक नाटक *लोक मना दा राजा* में देख सकते हैं कि पहले किस प्रकार सभी धर्मों के लोग आपसी-प्रेम और भाईचारिक सांझ में रहते थे और उस समय सत्ताधारी भी सभी धर्मों का आदरभाव करते थे, साथ ही इस नाटक के माध्यम से उस समय के पंजाब की जनपदीय विशेषताओं को भी प्रस्तुत किया, सूत्रधार के अनुसार-

खुश बहुत रहते हैं हिन्दू-मुसलमान दोनों

करते हैं महाराजा से जान कुर्बान दोनों

जिसके लिए हैं एक सिक्के के दो पहलू

गुरु ग्रन्थ साहिब और पाक कुरान दोनों। (35)

इसके विपरीत आज की बात करें तो आज बहुत बदलाव नजर आ रहा है। समकालीन राजनीतिक सम्प्रदायिकता को प्रस्तुत करता नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* है, इस नाटक के रचनाकार अजमेर सिंह औलख है, इसमें मंत्री रंधावा एम.एल.ए. महिंद्र सिंह के साथ मिल कर किसी गाँव की ज़मीन विदेशी कम्पनी को डेड़ करोड़ प्रति एकड़ के हिसाब से बेच देते हैं और कृषकों को दस-बीस लाख देकर जबरदस्ती उठाने का प्रयास करते हैं।

इस नाटक में नेताओं का हिंसक रूप दिखायी दे रहा है और गाँव के सभी स्त्री-पुरुष अपने-अपने हथियारों से पुलिस का मुकाबला करते हैं। इसकी मुख्य नारी पात्र अमन अपने बाप और भाई को पीछे छोड़ कर, इस किसान आंदोलन का हिस्सा बनती है और रानी लक्ष्मीबाई की तरह ज़ुल्म का सामना करती है। अमन का पिता बचना और अमन का भाई, इस तरह पीछे आ रहें हैं; जैसे अमन को पकड़ना हो। बहुत सारे कृषक पुलिस की गोलियों को देख कर पीछे रुक जाते हैं, लेकिन अमन

बिना किसी भय से आगे बढ़ती है। इस समय चल रही, गोलियों में से एक गोली अमन को लग जाती है और अमन धरती पर गिर जाती है। सभी लोग भाग कर अमन के पास आ जाते हैं और माता जगमेल कौर अमन को संभालती है। अमन धीरे-धीरे धम तोड़ रही है और गाँव वाले पूरे जोश में आ जाते हैं और बोलते हैं-

"क्यों दे हम अपनी जमीनें आप जैसे राक्षसों को,

कैसे छोड़ दें जीने का अधिकार !

हम सब कतरा-कतरा बहा-देंगे खून का" (71)

इस प्रकार गाँव के लोग पुलिस पर हमला कर देते हैं और इस लड़ाई में बहुत सारे लोगों की जान चली जाती है। प्रस्तुत नाटक की कथा के माध्यम से हम देख सकते हैं कि राजनेता अपने स्वार्थ के लिए किस प्रकार लोगों की जान की परवाह भी नहीं करती।

प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए, हम कह सकते हैं कि आधुनिक राजनीति साम्प्रदायिकता से भरी पड़ी है और आम व्यक्ति को जहाँ जीने में मुश्किल हो रही है। पहले राजनीति लोक सेवा की भावना से की जाती थी, लेकिन आज राजनीति आर्थिक रूप से मजबूत होने के लिए की जाती है, आज की राजनीति के मुख्य सिक्के ही धर्म और जाति हैं जिन्हें फेंक कर राजनेता सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं। भारतीय साम्प्रदायिकता को रोकने के लिए भारतीय सरकार, सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं, राजनीतिक दलों एवं सामान्य नागरिक को एक होकर, इसकी ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। आज धर्म और जाति के पहले इंसानियत को महत्ता देनी चाहिए।

3.2.1.3 राजनीति सत्ता के दबदबे में भ्रष्टाचार का प्रफुल्लित रूप

प्राचीन काल से ही सार्वजनिक सेवा करने वालों के लिए आचरण की शुद्धि, ईमानदारी और सत्यनिष्ठा अति आवश्यक समझी जाती है। राजनीतिक एवं प्रशासनिक लोक सेवकों से सदैव, यह अपेक्षा रखी जाती रही है कि इनका आचरण शुद्ध, पवित्र एवं सभी प्रकार की कलंक कालिमा से मुक्त होगा। ये सत्यनिष्ठ, ईमानदार होंगे और अपने

कर्त्तव्यों का पालन बड़ी सच्चाई और निष्ठा से करेंगे। इसमें किसी प्रकार की कोई कमी या त्रुटि नहीं आने देंगे, परन्तु इस आदर्श का पालन बहुत कम होता है। विशेषकर भारत के प्राचीन और मध्यकालीन समाजों में यह रस्म स्वाभाविक समझी जाती थी कि राजे-महाराजों से कोई सेवा या कृपया प्राप्त करने के बदले में धनराशि या उपहार प्रदान किए जाएं, लेकिन लोकतांत्रिक सरकारों में ऐसा तो सोचा भी नहीं जा सकता था, परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार एक महत्त्वपूर्ण चुनौती के रूप में उभर रही है।

भारतीय राजनीतिक भ्रष्टाचार के लिए मुख्य रूप से भारतीय राजनेता ही जिम्मेदार हैं, ये भ्रष्टाचार के जरिए सत्ता हासिल करते हैं। चुनाव के पहले तथा बाद में भी यह धन का प्रयोग कर नतीजों में बदलाव करने में सफल होते हैं। इसलिए राजनेताओं की ओर आम भारतीयों का देखने का नजरिया बदल गया है। इस सम्बन्ध में डॉ. सुकुमार भंडारे *समकालीन हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चित्रण* में लिखते हैं-

> आज राजनीति शोषण पर केन्द्रित हो गयी है, इस कारण भ्रष्टाचार राजनीति से अधिक दूर नहीं रह पाया। राजनेताओं की जो मान्यताएं शोषण के माध्यम से दूर रही, उसकी पूर्ति की खोज भ्रष्टाचार में खोजी जाने लगी। भ्रष्टाचार की सीमा इतनी अधिक बढ़ी है कि आज आम आदमी नेताओं को भ्रष्टाचारी ही समझने लगे हैं। (76)

आधुनिक राजनीति में कानून और न्याय में राजनेताओं का दखल, उनकी लूट-पाट की नीति, आपराधिक प्रवृत्ति को संरक्षण देने का एक सुरक्षित उपकरण बना हुआ है। भ्रष्टाचार वर्तमान व्यवस्था की रग़-रग में बस गया है। पिछले सालों में कई ऐसे घुटाले हुए जिनका सम्बन्ध राजनीतिक दलों एवं नेताओं के साथ उजागर होने पर राजनीति शर्मसार हो गयी है।

आज हम देख रहे हैं कि प्रशासन में मंत्री से लेकर संतरी तक सभी भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। आज बिना सिफारश के कोई किसी की बात नहीं सुनता। देश की भीतरी सुरक्षा एवं शान्ति व्यवस्था में पुलिस विभाग की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। परन्तु आज पुलिस जनता के प्रति उचित व्यवहार नहीं करती, अपितु वह तानाशाही स्वेच्छाचारी हो गई है, पुलिस थाणे में कभी भी पूरी फ़ोर्स नहीं होती, ज्यादा

अधिकारी राजनेताओं की सुरक्षा में तैनात होते हैं और कुछ नेताओं की छत्रछाया में भ्रष्ट का माल इकठ्ठा करने में लगे होते हैं। किशोर कुमार सिन्हा के द्वारा रचित नाटक *धारा एक सौ चवालीस* में हम देखते हैं कि थानेदार गौतम वायरलैस पर बात करता हुआ कहता है-

> थानेदार गौतम: ..... जै हिंद सर ..... जी सर ..... क्या मेडिकल अफ़सर को खबर कर दूँ ..... एबुलेंस भेजने की ..... जी .....भेज दूँ .....लेकिन कैसे..... यहाँ थाणे पर तो फ़ोर्स है ही नहीं सर..... ड्यूटी पर गई है। छ: कांस्टेबल तो बीट पर गये हुए हैं। देहांत में .....बाकी कुछ ..... ड्यूटी पर लगे हैं..... अधिकारियों के यहाँ ..... चार आदमी ..... भेजे हैं..... वी.आई.पी. मूवमेंट हो रहा है..... मार्ग व्यव देखने ..... जी.....जी..... वो ट्रेफिक वाले ..... जी ..... इस समय बैरियर पर चैंकिग कर रहे हैं ..... ट्रकों की .. कुछ कमा रहे हैं...राजनीतिक चंदा भी देना है .....कारवाई भी बनावेंगे रात आठ बजे से ..... (16-17)

डॉ. मधु धवन के द्वारा रचित नाटक *आज की पुकार* की बात करें, तो इसमें भी राजनीतिक भ्रष्टाचार का रूप देखा जा सकता है। इस नाटक में गाँव के कुछ लोगों ने मिल कर एक होटल बनाया। जिससे उन्होंने गाँव के कई युवाओं को रोजगार भी दिया है, लेकिन हमारे नेताओं की कूटनीति है कि जिस फार्म का काम अच्छा है, उससे बड़ी रकम की वसूली चुनाव के लिए की जाए। नाटक की वार्तालाप-

> मंत्री जी: चुनाव, तुम जानते हो कि कितना टफ है, आजकल जीतना कितना कठिन हो गया है। बस पन्द्रह करोड़ का इन्तजाम हो जाए तो अच्छा है।
>
> दया: पन्द्रह करोड़.....
>
> मंत्री जी: अरे, फ़िक्र मत करों... एक बार चुनाव जीत गया, तो लक्ष्मी की ऐसी कृपया करवाऊँगा कि सोने का होटल बनवा सकोगें....
>
> दया: आप मुझे कम-से-कम एक सप्ताह तो दीजिए।
>
> मंत्री जी: ठीक है। ऐसा करना तुम फार्म हाऊस में आ जाना। मैंने एक पार्टी रखी है। पार्टी का मजा भी लेना और माल भी ले आना। और हाँ.... उस पार्टी का

> सारा प्रबंध तुम्हारे होटल की ओर से होना चाहिए। हर बार तुमने ही योगदान दिया है। इस बार भी तुम ही देना। (44-45)

इस प्रकार इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया कि किस प्रकार नेता लोग आम जनता का शोषण करते हैं। यह भ्रष्टाचार भारतीय विकास में बाधा साबित हो रहा है। इस सम्बन्ध में निर्मल कुमार सिंह *अपराध और भ्रष्टाचार की राजनीति* में लिखते हैं-

> सच में प्रजातांत्रिक संस्थानों का खात्मा, आपराधिक न्याय प्रणाली का तकरीबन समापन, ऊच्च पदों पर जबरदस्त भ्रष्टाचार और आज देश को जो चाटुकारिता की जिस स्थिति का सामना करना पड़ रहा है, उसकी जड़ें देश की आज़ादी से ही शुरू हो जाती हैं। (12)

मीरा कान्त ने नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में लिखा है कि हुमायूँ के शासन काल में दूर-दूर से व्यापारी अपना समान खरीदने और बेचने के लिए आते थे और उस समय इस प्रकार की भ्रष्ट व्यवस्था नहीं थी। मीरा कांत लिखती है कि उस समय बस्तर में त्यौहारिया हाट नामक आदिवासियों का मेला लगता था, जिसमें लोग दूर-दूर से आते थे- "दूर-दूर से व्यापारी माल बेचने आए थे। सारे लोग सज-धज कर त्यौहारिया हाट जा रहे थे। घोड़ागाड़ी, बैलगाड़ी और हाथियों पर सामान की होड़ लगी हुई थी।" (23) लेकिन आज प्रत्येक व्यापारी के मन में खोफ रहता है, वर्तमान की स्थिति को देखते हुए, *आज की पुकार* नाटक में मास्टर जी भ्रष्टाचार पर मौलिक चिंतन करता हुआ, अपने-आपसे तर्क करता है-

> अब समय आ गया है कि हम भारत में होने वाले भ्रष्टाचार का उन्मूलन करें। देश दिन-पर-दिन नैतिक मूल्यों को विसार चुका है। हमारे प्रगति के मील के पत्थर पर हमारे शहीदों ने कुर्बानी के खून से फतह की इबादत लिखी थी, तो इसी मील के पत्थर से हमने इंसानियत को शर्मसार करने वाली करतूतों की स्याह दास्तानें अंकित की हैं। चन्द नेताओं, लालची कम्पनियों के अनैतिक आचरण के कारण समाज पतन की ओर जा रहा है। (46)

वर्तमान की राजनीतिक व्यवस्था को देखकर यह लगता है कि नैतिकता का युग अब समाप्त हो गया है और भ्रष्टाचार राजनीति का सहज अंश बन गया है। अवसरवादिता, स्वार्थपरता, सत्ता-लोलुपता और अनैतिकता को बल मिलने लगा है।

आज़ादी के साथ देखा गया कि प्रजातंत्र का सपना धुंधला होता नजर आ रहा है। पीयूष मिश्रा के नाटक *गगन दमामा बाज्यो* में स्वतंत्रता सेनानियों ने आज़ाद भारत के लिए जो स्वप्न देखते थे, उसका वर्णन भगत सिंह करता है-

> हम हिंदुस्तान को महाभारत के बाद वाला आज़ाद भारत तो नहीं देना चाहेंगे। जहाँ भूख पनपे, जहाँ गरीबी फैले, जहाँ महामारी उमड़े, जहाँ भेड़िया का राज हो ....जहाँ कबूतरों का सहमापन हो। हम देना चाहते हैं ... वो देश ... जहाँ तरंगे हों .... जहाँ उमंगे हों ... जहाँ मुस्कानें हों ..... जहाँ खूबसूरती हो ... और भाईचारे का साम्राज्य रहे। (97)

लेकिन स्वतंत्रता सेनानियों का देखा यह स्वप्न अधूरा ही रह गया। आज भ्रष्टाचार हमारी शासन व्यवस्था और जनजीवन का व्यवहारिक अंग बन चुका है।

ऐसे ही यदि पंजाबी नाट्य-साहित्य में राजनीतिक सत्ता के नीचे भ्रष्टाचार के प्रफुल्लित रूप की बात करें, तो इस समस्या से सम्बंधित काफी पंजाबी नाटकों की रचना हुई है। भ्रष्टाचार केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि इसके सहारे अन्य क्षेत्रों में भी बड़े पैमाने पर फैल चुका है। किसी दफ्तर में जाने पर भ्रष्टाचार अपना मुँह खोले नज़र आता है। कोई भी फाइल बिना रिश्वत के आगे नहीं बढ़ती। पाली भूपिंदर सिंह के द्वारा रचित नाटक *चंदन दे ओहले* में हम देखते हैं कि बनी पात्र यह सोचता है कि इस देश में भ्रष्ट राजनीति और रिश्वतखोरी है और वह यहाँ अपने भविष्य को सुरक्षित नहीं समझता है। उसके खुद के शब्दों में-

> बनी: यदि जन्म लेना मेरे वश होता तो मैं कभी भी इस बेईमान लोगों की धरती पर जन्म न लेता .... यहाँ पर है ही क्या, रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार के अलावा .... खुद नेता लोग ही देश को लूट रहे हैं ... देश को खा रहे हैं ... बिना रिश्वत दिए आप यहाँ पर कुछ काम नहीं कर सकते .... यहाँ के नेताओं ने न बिजली का अच्छा सिस्टम बनाया और न ही यहाँ समय की कोई महत्ता है ..... ईमानदारी से एक नौकरी तक नहीं प्राप्त कर सकते ... इस भ्रष्ट नेताओं के देश में ..... (22)

गुरचरन सिंह जसूजा का नाटक *कंधा रेत दियां* में भी इस समस्या को स्पष्ट देखा जा सकता है। इस नाटक की कथा में राजनीति सत्ता के दबदबे में भ्रष्टाचार का प्रफुल्लित रूप का साफ दृश्य प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत नाटक में भंडारी नामक

एक पात्र जो उस क्षेत्र का कोई छोटा-सा नेता है और इस नेतागिरी से वहाँ के अफसरों पर दबाव बना कर काम करवाता है। जिसका अफ़सर चाह कर भी विरोध नहीं कर सकते, क्योंकि वह या तो अफसरों का तबादला करवा देता है या उन्हें किसी झूठे केस में फसवा कर नौकरी से निकलवा देता है। भंडारी खुद इस विषय में कह रहा है-

> भंडारी: यदि कोई अफ़सर चूं-चा करता तो हम लोग, मिल कर उसे ऐसा फंसा देते हैं कि नौकरी से भी हाथ धो बैठता है। हमने बाऊ जी जेलें काटी हैं, लाठियां खाई हैं, तभी तो मुल्क आज़ाद हुआ है। अब हमें कोटा भी न मिले .....? (23)

इस प्रकार देखा जा सकता है कि छोटे-से छोटा नेता भी प्रशासनिक अनुशासन को खराब करने की कोशिश करता है, तो बड़े की कितनी शक्ति होगी। प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम क्षेत्रवाद की बढ़ रही प्रवृत्ति को भी देखते हैं जो आधुनिक नेताओं के दिमाग में घर कर रही है। आज हम देख रहे हैं कि हर नेता किसी न किसी रूप में दोहरे व्यक्तित्व को प्रस्तुत कर रहा है। कई बार यह प्रक्रिया अत्यन्त गंभीर रूप धारण कर लेती है और इसका प्रभाव देश के हित में जाने की बजाए, देश के अहित में जाने लगता है।

अत: हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए; हम कह सकते हैं कि बदलती राजनीतिक प्रक्रिया के कारण परिवेश में बदलाव भी हो रहा है और राजनीति सत्ता के दबदबे में भ्रष्टाचार भयानक रूप से प्रफुल्लित होता जा रहा है। इस क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकना काफी जरूरी हो गया है, इसको समाप्त करने के लिए आम जनता का जागरूक होना अति आवश्यक हो गया है। आम जनता शिक्षित तथा समझदार होनी चाहिए, चूँकि भ्रष्टाचार नेताओं के खिलाफ सशक्त जनमत का निर्माण किया जा सके। भ्रष्ट राजनीतिज्ञों का जनता को सामाजिक बहिष्कार करना चाहिए और बेईमान राजनीतिज्ञों को वोट नहीं देना चाहिए।

3.2.1.4 बदलते परिवेश में राजनेताओं का न्याय एवं पुलिस प्रशासन में दखल

भारतीय राजनीति में प्रशासन की अत्यंत प्राचीन परम्परा रही है। भारतीय विचारधारा में राजा को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। राजा का मुख्य कार्य प्रजा को सुख देना तथा प्रजा का कल्याण करना होता है। राजतंत्र के भीतर भी नियमों, परम्पराओं और धर्मशास्त्रों के द्वारा दर्शाए गये नियमों अथवा मर्यादाओं के आधार पर प्रशासन कार्य चलाया जाता था। प्राचीनकाल से आज तक भारतीय प्रशासन में काफी बदलाव आए, जिसमें तानाशाही के जरिये जनता को सताया जाने लगा, उस पर अत्याचार और उसका शोषण भी होने लगा। उसके बाद भारतीय इतिहास में ईस्ट इंडिया कम्पनी के साम्राज्य में और भयानक स्वरूप देखने को मिलता है।

एक अनुशासन के रूप में प्रशासन व्यवस्था का अर्थ वह जनसेवा से है, जिसे 'सरकार' कहे जाने वाले व्यक्तियों के संगठन के द्वारा व्यवस्थित की जाती है। इसका प्रमुख उद्देश्य और अस्तित्व का आधार सेवा है, इस प्रकार की सेवा उठाने के लिए सरकार को जन का वित्तीय बोझ करों के रूप में वसूल कर संसाधन जुटाने पड़ते हैं। देश की आजादी प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं होता। हमें उसकी स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए सतत जागरूकता की आवश्यकता भी होनी चाहिए। देश की स्वतंत्रता और अखण्डता को कायम रखने के लिए, हमें अपने साधनों से सुरक्षा-व्यवस्था को गठित करना पड़ता है, चूँकि हम किसी संकट का सामना करने के लिए सदैय तैयार रहे। इस सुरक्षा-व्यवस्था को कंट्रोल करने के लिए एक सदस्य की जरूरत होती है, जिसे हम नेता के रूप से जानते हैं।

हमारा समाज जिस तेजी से बदल रहा है, उतनी तेजी से लोगों के विचारों में परिवर्तन आ रहा है। हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने भारत के विकास हेतु महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा भी की है। भारतीय राजनीति का आधार भारतीय संविधान है। भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप संविधान निर्माण कर, भारत के विकास को सही दिशा देने का कार्य किया है, लेकिन आधुनिक राजनीति में बहुत फेर बदल हो गया है। वर्तमान युग़ में हम न सिर्फ राजनीति के अपराधीकरण का सामना कर रहे हैं, बल्कि उससे भी हीन अपराध बदलते परिवेश में राजनेताओं का न्याय एवं पुलिस प्रशासन में दखल का सामना कर

रहे हैं। एक समय ऐसा आया जब अपराधियों को एहसास हुआ, कि राजनीतिज्ञों की मदद करने की बजाय वे स्वयं ही विधानसभा या संसद में क्यों न प्रवेश करें और मंत्री पद हासिल करें? ताकि भविष्य में उनकी आपराधिक गतिविधियों के लिए इसका इस्तेमाल भी हो सके। राजनीति के अपराधीकरण का पहला शिकार प्रशासन और पुलिस बने, इसके परिणामस्वरूप कानून की एक व्यवस्था तैयार हुई, जो ना तो ईमानदार थी और न ही निष्पक्ष। डॉ. विपिन गुप्ता *हिन्दी नाटक में समसामयिक परिवेश* में लिखते हैं-

> हम एक अँधेरी गली में प्रविष्ट हो चुके हैं, जहाँ फिसलन है और उजाला दिखायी नहीं देता। यदि राजनेता अपराधी, भ्रष्ट, स्वार्थी और सत्तालोलुप हों, तो वे जनकल्याण का साधन कैसे बन सकते हैं। (16)

हमारे देश में एक सामान्य नागरिक को न्याय के लिए बहुत तड़पना पड़ता है, हमारी न्याय-व्यवस्था गवाह और सबूतों के अर्धसत्य को पूर्ण सत्य मानकर न्याय देती है। एक तो गवाह सबूतों की लम्बी प्रक्रिया में न्याय पाने में इतना विलम्ब हो जाता है कि तदुपरांत प्राप्त न्याय; अन्याय प्रतीत होता है। दूसरे गवाह-सबूतों को जुटाने में और उसे अपने पक्ष में साबित करने की चलाकी में जो सफल होता है, न्याय उसके पक्ष में हो जाता है, इस प्रकार आम व्यक्ति को न्याय की आशा बहुत कम होती है। किसी भी देश में शांति बनाए रखने के लिए पुलिस विभाग अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन धीरे-धीरे पुलिस का रूप बदल रहा है, अब पुलिस जनता की मदद कम और उसे परेशान अधिक करती है। पुलिस अपनी शक्ति का प्रयोग अपने मनमाने ढंग से एवं नेताओं की कठपुतली बन कर करती है। निखिल कुमार श्रीवास्तव ने *श्रृंखला* नामक पत्रिका में अपने शोध आलेख *राजनीति का अपराधीकरण एवं पुलिस सुधार* में लिखा है-

> भारतीय पुलिस के लिए पिछला दशक अभूतपूर्व तनाव का था। संक्षेप में, वे पक्षतापूर्ण राजनीति में शामिल होने लगे हैं। मेरे ख्याल से उनके राजनीतिकरण ने कानून के राज को काफी नुकसान पहुँचाया है। पुलिस अफसर यह महसूस करने लगे हैं, कि भारत में न्याय की दोहरी प्रणाली का विकास होने लगा है- एक तो आपराधिक न्याय प्रक्रिया के औपचारिक माध्यम से और दूसरा राजनीतिक माध्यमों से। (36)

इक्कीसवीं शताब्दी में व्यक्ति अपने देश, समाज एवं परिवार से कटा हुआ महसूस करता है। सत्ता के पीछे लगे हुए व्यक्तियों में देश के अनुरूप नागरिकता के गुण दिखायी नहीं देते। हमारा प्रशासन भ्रष्ट हो चुका है। भ्रष्ट-प्रशासन से तात्पर्य ऐसे प्रशासन से जिसमें छोटे से बड़ा कार्य राजनीतिक सिफारिश और रिश्वत से होता हो। आज हम देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि दूसरा उसकी चापलूसी करे, उसके आगे हाथ जोड़े। ऐसे भ्रष्ट चरित्रहीन प्रशासन के हाथ में ही तो हमारे समाज और राज्य की शक्तियाँ होती हैं। जो जनता को झूठे आश्वासन देते हुए, उनकी सभी समस्याओं को संस्कार तक पहुँचाकर जल्द ही दूर कर दिया जाएगा का आश्वासन देते हैं। इस विषय में किशोर कुमार सिन्हा के नाटक *धारा एक सौ चवालीस* में पात्र वी.आई.पी. नेता प्रशासन की कमियों को बताते हुए कहते हैं-

> एक महिला: पानी नहीं है.... बिजली नहीं है..... दवा नहीं .....दारू नहीं....
>
> दूसरा वी.आई.पी.: मैं सब जानता हूँ। हमें मिनट-मिनट की खबर मिलती रहती है। प्रशासन नाम की कोई चीज ही नहीं रह गई। यहाँ पुलिस नकारा हो चुकी है, यहाँ के सरकारी कर्मचारियों ने काम करना बंद कर दिया है।
>
> कुछ लोग: अरे साहब इतने दिन से कर्फ्यू लगा है..... मुसीबत हो गई है.. ये देंगे।
>
> दूसरा वी.आई.पी.: मुझे सब पता मिनट-मिनट की खबर लेता रहता हूँ मैं। इस सरकार के वश का कुछ नहीं है। कोई नियन्त्रण नहीं है..... कोई नियन्त्रण नहीं नौकरशाही पर।.... गुंडे बदमाश ..... खुले आम घूम रहे हैं और आदमी परेशान हैं ..... बदहवास है। (82)

आधुनिक राजनीति में न्याय एवं पुलिस प्रशासन ही इनके प्रमुख हथियार हैं। स्वतंत्रता से पहले लोगों ने देश कल्याण, आज़ादी तथा लोगों के हित के लिए आदर्शपूर्ण तत्वों पर अपना पक्ष रखा और देश की सेवा एकनिष्ठ होकर की, परन्तु आज़ादी के बाद वातावरण दूषित हो गया। लोग जनसेवा, देशसेवा करने के लिए राजनीति में आते हैं, परन्तु उन्हें सत्ता का मोह तथा लालच चैन से नहीं बैठने देता। यदि कोई भी नेता सत्ता में है, तो वह आगामी चुनाव में अपनी पकड़ को मजबूत करने के लिए पुलिस एवं न्याय प्रशासन में दखल देकर अपने विरोधियों का दमन करता है। वर्तमान हिन्दी नाटकों में सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक

सिंहासन खाली है में इस विषय से सम्बन्धित पात्रों की कथा को प्रस्तुत किया गया है। जिसमें एक महिला और पुरुष, नेता के आगे न्याय की गुहार लगा रहें हैं, नेता पहले तो उन्हें खुश करने के लिए न्याय का भरोसा देता है और राज कोष से धन भी देता है। लेकिन इसके विपरीत उसका स्वार्थ भी नज़र आता है, जिससे वह अपनी सत्ता की शक्ति से उस महिला के साथ कुकर्म करता है, साथ ही उसके पति को मौत की सज़ा सुना दी जाती है। औरत और पुरुष के विरोध करने पर भी नेता नहीं रुकता और अपने सिपाहियों को हुक्म देता है कि इसे मार डालो। सिपाही उस औरत के पति को नदी में फेंक देते हैं और महिला के सामने नेता को आकर सारी कथा सुनाते हैं-

एक: राजा जी, उस नास्तक को हम नदी में फेंक आए।

महिला: नहीं....ई....ई ....ई..!

एक: लेकिन जितनी बार पानी के बाहर निकला, हर बार उसने यही कहा कि राजा झूठा है। मक्कार है। नास्तिक मैं नहीं, राजा है। राजा, राजा बनते ही लुटेरा हो गया है। ईश्वर के नाम पर उसने मेरी औरत को छीन लिया.....

(नेता क्रोधित हो जाता है)

नेता: बन्द करो यह बकवास।

महिला: किस-किसका मुँह बन्द करोगे तुम? सभी कह रहे हैं, राजा, राजा बनते ही लुटेरा हो गया.... डाकू हो गया। हमने एक लुटेरे को राजा बनाया ..... एक डाकू को सिंहासन दिया, ताकि, वह हमारा सब कुछ छीनकर ... हमें बेघर कर दे? हमारी इज्जत-आबरू लूटकर हमें नदी में फिकवा दे? .... कब मिलेगा छुटकारा इस पापी से.... इस अत्याचारी, दुराचारी से? हे भगवान् हमने इसे राजा क्यों बनाया... क्यों बनाया? (37)

प्रस्तुत नाटक के माध्यम से हम कल्पना कर सकते हैं कि बदलते परिवेश में राजनेताओं का न्याय एवं पुलिस प्रशासन में दखल किस तरह बढ़ रहा है। इस प्रकार मीरा कांत के द्वारा रचित नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में भी हम देखते हैं कि राजनेताओं के द्वारा पुलिस और सैनिकों का प्रयोग अपने मनमाने ढंग से किया जाता है, इस की उदाहरण एक फौजी देता हुआ कहता है कि "क्या जिन्दगी है साली फौज की, दिमाग का ढक्का बंद कर हुक्म की तालीम करो।" (50)

यदि पंजाबी नाटकों के माध्यम से वर्तमान राजनीति में नेताओं के बदलते तेवर एवं सुरक्षा व्यवस्था की तुलना हिन्दी नाटकों से करें, तो इसमें कोई ज्यादा अन्तराल नहीं देखा जा सकता। यदि हमारे देश के लोकतंत्र की बात करें, तो यहाँ पर लोकतंत्र सिर्फ नाम का है। यहाँ पर चारों और अंधेर नगरी के चौपट राजों वाली स्थिति बनी हुई है। पुरातन समय में राजा को भगवान का दर्जा दिया जाता था, परन्तु आज हमारे नेता लोगों का खून चूस रहें हैं। हमारे देश का राजसी ढांचा असफल होने की कगार पर है। हमारी राजसी पार्टियों ने न्याय एवं पुलिस प्रशासन की व्यवस्था को इस प्रकार बना दिया है कि यहाँ 'उल्टे वाड़ खेत को खाए' वाली कहावत है। युवा बेरोजगारी के कारण नशे का रास्ता पकड़े हुए हैं, प्रशासन उनकी मदद करने की अपेक्षा उनको पुलिस के द्वारा दबा रहा है। जो पुलिस कर्मचारी इस प्रकार का नीच कार्य करने से रोकता है, तो उस पर नेताओं एवं बड़े अफसरों के द्वारा दबाव बनाया जाता है।

वर्तमान स्थिति को जानने का प्रयास करें, तो निर्मल जोड़ा के द्वारा रचित नाटक *सौदागर* में इस समस्या का यथार्थ रूप देखा जा सकता है। इस नाटक का मुख्य पात्र सौदागर कुछ नेताओं और उच्च अफसरों के साथ मिल कर नशे का व्यापार करता है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार बदलते परिवेश में गुंडे और दोषी व्यक्ति राजनेताओं को पैसे देकर न्याय एवं पुलिस प्रशासन को प्रभावित करते हैं। जब सौदागर के गाँव के कुछ युवा नशों के विरुद्ध एक क्रांतिकारी लहर चलाते हैं, तो सौदागर उन्हें देखर भयभीत हो जाता है और उसकी प्रशासन के प्रति नीयत भी साफ़ हो जाती है-

> भलवान: सरदार साहब अब हमारा काम ज्यादा समय तक नहीं चलने वाला क्योंकि एस.एस.पी. ज्यादा सख्ती दिखा रहा है।
>
> सौदागर: नोटों की एक पेटी पुलिस की सख्ती कम करा देती है छोटे, बस उनके सामने नोट गिनने शुरू कर दो.. यदि फिर भी काम न बना तो हमारे नेता किस काम आएँगे।
>
> (दोनों तरफ देखते हुए)

> पुलिस से ज्यादा खतरनाक तो यह लोग हैं, जो गाँव में क्रांतिकारी विचारधारा को लाए हैं;...क्योंकि इनका खून कुछ ज्यादा ही ऊबाले खा रहा है। हर रोज तरकाला को इकठे हो जाते हैं। (82)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से देखें, तो इसमें कोई अतकथनी न होगी कि सत्ताधारी पार्टी न्याय एवं पुलिस में दखल दिए बिना नहीं रह सकती। वह सत्ता में आते ही लोकतंत्र को भूल कर तानाशाही फरमान जारी करने लग जाते हैं। वह अपनी पार्टी के अधिकारियों को भी इस प्रकार की शह देते हैं कि किसी भी प्रकार का कार्य करें, लेकिन हमारी सत्ता बरकरार रहनी चाहिए। उस पार्टी के नेता फिर आम जनता पर अत्याचार करते हैं।

गुरचरण सिंह जसूजा ने भी अपने नाटक *परियां* के माध्यम से इस विषय पर चिंता प्रकट की है। इस कथा में एक मनीषा नामक लड़की, किसी ऑफिस में काम करती है। उस ऑफिस का मालक ललित सेठ, जिसकी काफी राजनीतिक पहुँच है और उस क्षेत्र का छोटा-मोटा नेता भी है, उसने अपने दफ्तर में मनीषा के साथ कुकर्म करने का यत्न किया। जिसका वह विरोध करती हुई और न्याय पाने के लिए पुलिस स्टेशन पहुँच जाती है, लेकिन बदले में उसे क्या मिलता है? राजनीतिक शक्ति के साथ उसी मनीषा पर ही मानहानी का मुकदमा दर्ज़ कर लिया जाता है।

अत: हिन्दी और पंजाबी के नाटकों की तुलना करते हुए, हम कह सकते हैं कि वर्तमान में लोक प्रशासन की भूमिका अत्यधिक व्यापक एवं जटिल हो गयी है, क्योंकि बदलते परिवेश में राजनेताओं का न्याय एवं पुलिस प्रशासन में दखल के कारण नीति-निर्माण की प्रक्रिया में बाधा पड़ रही है, जिस कारण विभिन्न समस्याओं को सुलझाने में प्रशासन व्यवस्था असफल नज़र आ रही है। एक अच्छे समाज के निर्माण के लिए, एक अच्छी प्रशासनिक व्यवस्था का होना अनिवार्य है, जिससे आम आदमी शांतिपूर्ण अपना जीवन व्यतीत कर सकता है और अपराधों को भी रोका जा सकता है।

3.2.1.5 वर्तमान की राजनीति में जातिवाद एवं परिवारवाद को बढ़ावा

भारतीय राजनीति में जाति का प्राचीनकाल से ही महत्त्वपूर्ण तथा निर्णायक प्रभाव दिखायी देता है। आधुनिक युग में भले ही विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में

प्रगति हुई है, किन्तु उसका प्रभाव जातिवाद व्यवस्था पर उतना नहीं देता, जितना दिखायी देना चाहिए था। सामाजिक प्राणी के रूप में मानव की अनेक आवश्यकताएँ होती है। उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार के कार्यों को करना होता है। इन कार्यों के सन्दर्भ में ही, उसकी सामाजिक स्थिति का निर्धारण होता है और उसी के अनुसार, उसकी समाज में भूमिका भी निश्चित होती है। यह एक सर्वाधिक तथ्य है कि समाज में सभी व्यक्ति एक जैसा कार्य नहीं करते। जाति, व्यवसाय, प्रजाति, धन, धर्म आदि अनेक आधारों पर जो विभेद पाए जाते हैं, उनसे समाज में ऊँच-नीच का भेद-भाव भी पाया जाता है, जो कुछ समय के बाद भयंकर जटिल सामाजिक और राजनीतिक समस्या का रूप भी धारण कर लेता है।

राजनीति में जाति की क्या भूमिका होती है? यदि इस विषय का गहराई से अध्ययन किया जाए, तो जाति और राजनीति के बीच सिर्फ एकतरफ़ा सम्बन्ध होता है। नेता भी जातियों को राजनीति के अखाड़े में लाकर, जाति व्यवस्था से लाभ प्राप्त करते हैं। इस तरह सिर्फ राजनीति ही जातिग्रस्त नहीं होती, जाति भी राजनीतिग्रस्त हो जाती है। आज की राजनीति में स्वार्थों के कारण अवसरवाद बढ़ रहा है और आधुनिक राजनेताओं का सत्ता के प्रति व्यापारिक दृष्टिकोण बन रहा है। आज की व्यवस्था में नौकरशाह, नेता, सरपंच, पुलिस, ठेकेदार आदि स्वार्थों की पूर्ति में लगे हैं। जहाँ भी किसी नेता के साथ परिवारवादी साँझ है, वह अपना काम कर लेते हैं। आज के युग में यह सुनने को मिलता है कि नेता जितना बड़ा स्वार्थी होगा, सत्ता और राजनीति पर उसकी पकड़ उतनी ही मजबूत होती है। रविन्द्रनाथ मुकर्जी *भारतीय समाज: मुद्दे एवं समस्याएँ* में लिखते हैं-

> निश्चित अर्थ में भारत जाति-प्रथा का आगार है। मुसलमान और ईसाई तक भी इसके पंजे में फँस चुके हैं, चाहे उनके यहाँ उसका स्वरूप ठीक वैसा न हो, जैसा हिन्दुओं या हिंदुस्तान की राजनीति में है। दूसरी बात यह है कि प्रारम्भ में जाति-प्रथा इतनी जटिल न थी, जितनी कि बाद में हुई। समय के परिवर्तन के साथ इसका स्वरूप भी परिवर्तित होता गया और अंत में यह एक परिवार, धर्म और जाति पर केन्द्रित भी हो कर कुछ स्वार्थी नेताओं का स्वार्थ पूरा करने लगी। (16)

आज के युग में आम आदमी को छोटी-छोटी समस्याओं पर समाधान के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। आम आदमी एक तरफ सुख सुविधाओं से वंचित होकर

अत्यंत दयनीय जीवन बिता रहा है, तो दूसरी ओर बढ़ते जातिवाद, भेदभाव, अवसरवादिता एवं परिवारवाद आदि के कारण कुछ लोग एशोअराम कर रहे हैं। आज आम आदमी शांति से नीद नहीं ले पा रहा, क्योंकि प्रत्येक नेता अपनी जाति और परिवार को उत्साहित कर रहा है। लोकतंत्र के सिद्धान्त केवल संविधान के पृष्ठों में ही सिमटकर रह गये हैं। इस विषय में डॉ. लक्ष्मीसागर *द्वितीय महायुद्धोतर हिन्दी साहित्य का इतिहास* में लिखते हैं-

> आज का युग राजनीति प्रधान युग है। 'डेमोक्रेसी' के स्थान पर 'भावोंक्रेसी' का युग है और दुर्भाग्यवश स्वतंत्र भारत की राजनीति भ्रष्ट हो गयी। अब महात्मा गाँधी के राजनीतिक आदर्श तो नहीं रह गये। उनके स्थान पर बहती गंगा में हाथ धोने की प्रवृत्ति बढ़ गयी है। (45)

आज की राजनीति में हम परिवारवाद की बात करें, तो नेता लोग अपने बच्चों को आगे लाना चाहते हैं, लेकिन कई बार इसके विपरीत भी हो जाता है। आज की युवा पीढ़ी बेहद महत्वाकांक्षी तथा आक्रामक है कि उसके लिए घर-परिवार माता-पिता तथा अन्य सभी रिश्ते अप्रासंगिक लगते हैं। मीरा कांत का काल्पनिक और ऐतिहासिक नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में हम देखते हैं कि बचपन से ही हुमायूँ एकांत प्रेमी था और राजपाट में कोई शौंक न रखता था; किन्तु बाबर चाहते थे कि वह कच्ची उम्र में ही राजपाठ करना सीखे। नाटक में हुमायूँ कहता है-

> हमारे अब्बा हुज़ूर ने तो न जाने कब से ठान ही लिया था कि हमें ताज पहनाएँगे। होश सँभालते ही इन शाही जंजीरों में जकड़ दिया..... एक मामूली-सा खत लिखिए तो उस पर जावाब में नसीहतों की बौछार हो जाती थी। (46)

हुमायूँ को अपने परिवार अर्थात् अपने पिता से मिली गद्दी उधार की लगती है। वह इस दर्द को अपनी बेगम हमीदा बानो से ब्यान करता है-

> कैसे छोड़ दे बेगम, कैसे छोड़ दे..... अपनी जिन्दगी हमें तोहफे में दे गए अब्बा हुज़ूर .... ये जिन्दगी हमारी नहीं है ..... इस उधार की जिन्दगी का बोझ कभी-कभी बर्दाश्त नहीं होता.... यकीन मानो मुझे हुकुमत का नशा कभी न था। ये मेरी नहीं उन्हीं की ख्वाहिश थी... । (55-56)

इस नाटक के माध्यम से हम देख सकते हैं कि कई बार बच्चे राजनीति में नहीं आना चाहते; लेकिन उनके माता-पिता उन्हें जबरदस्ती राजनीति में धकेल देते हैं, जिसके कारण वह सत्ता में आने पर भी जनता के साथ न्याय नहीं कर पाते।

सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक *सिंहासन खाली है* में भी नेताओं का एक ऐसा रूप ही देखने को मिलता है। जो समकालीन युग की यथार्थवादी स्थिति को प्रस्तुत करता है। आधुनिक राजनेताओं को चारों ओर कुर्सी ही दिखायी देती है। नेताओं का कुर्सी से इतना लगाव हो गया है कि वह अपने परिवार, जाति क्षेत्रीयतावाद को छोड़ कर अन्य लोगों के हित, अहित की कोई चिंता नहीं करते, केवल अपनो का हित ही देखते हैं। सत्ता में कूटनीतिक ढंग से स्वार्थ प्रेरित, स्वार्थ केन्द्रित राजनीति हो रही है। देशहितकारी और जनकल्याणकारी मूल्यों का ह्रास हो गया, नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से राजनीति परिवारवाद को बड़ी समझदारी से व्यक्त किया है- "नेता: अरे-अरे क्या बक रहें हैं आप लोग? अगर धन वितरण से असन्तोष है, तो हम और धन वितरण करेंगे।" (47)

जब नेता की जाति के लोगों को इस बात का ज्ञान होता है कि नेता सब कुछ आप ही खा रहा है, तो वह इसका विरोध करते हैं, तो इस विषय में नेता कहता है-

> नेता: ओह.... लगता है किसी ने आप लोगों को मेरे खिलाफ भड़का दिया है। मेरे भाइयों ! मैं विश्वास दिलाता हूँ कि सिंहासन पर बैठते ही सर्वोच्च पद मैं तुम लोगों में ही वितरित करूँगा। आप लोगों को कोई भी शिकायत नहीं होगी और देश की सुख-सम्पदा हम सब मिल-बाँट कर खा सकेंगे। प्यारे भाइयों..... (48)

शासक बदले, शासन करने की पद्धतियां बदली, मगर शासक की मनोवृत्ति नहीं बदली। कबीलों की सरदारशाही से लेकर नेताओं की लोकशाही तक परिवारवाद नजर आता है। इस नाटक में परिवारवादी भावना प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो रही है। नाटक में नेता कह रहा है कि "भाई-भतीजा, रिश्तेदारों के लिए उद्योग़-धंधे..... ऊँचे-ऊँचे ओहदे..... मैंने आप लोगों को कुछ भी देने से इन्कार नहीं किया....." (48) इस संवाद के माध्यम से हम क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति को भी देख सकते हैं, कि किस प्रकार किसी क्षेत्र या समुदाय विशेष के लोग़ आर्थिक सुवधाएँ प्राप्त करने के लिए दबाव डालने हैं। इस नाटक की कथा में बदलते राजनीतिक परिवेश को प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। नेता लोग अपनी सत्ता प्राप्त करने के लिए, सबसे पहले अपनी जाति के

लोगों को खुश करते हैं, जिससे उनकी जाति के लोग उनसे जुड़े रहें। पीयूष मिश्रा के द्वारा रचित नाटक *गगन दमामा बाज्यो* में हम देखते हैं कि स्वतंत्रता सेनानी शिव वर्मा आज़ाद भारत के दृश्य को सामने रखता है कि जहाँ स्वतंत्र आज़ादी का स्वप्न हर सैनानी ने देखा था; पर आजाद भारत उसके विपरीत ही दिखायी पड़ता है-

> शिव वर्मा: आज वो एहसास मिट गया है क्योंकि कोड़े मारने वालो को ये सुविधा मिल गई है कि वो दूर से बैठ कर कोड़े फटकार सकें....। वो गोरों का राज जो उस समय समाप्त हुआ था आज धीरे-धीरे वापस आ रहा है। (111)

भारतवासी अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए स्वतंत्रता को एक आवश्यक शर्त मानते रहे हैं। प्रजातंत्र में जब उसकी स्वतंत्रता का हनन हुआ तो यह स्थिति उसके लिए असहनीय पीड़ा का कारण बन गई।

यदि पंजाबी नाट्य-साहित्य में राजनीति में जातिवाद के अंतर्गत बदलते परिवेश का तुलनात्मक अध्ययन करें, तो इस विषय से सम्बंधित काफी नाटक मिल जाएंगे, जिनकी कथा में नेता लोग अपनी जाति और धर्म के लोगों को सबसे पहले खुश करते नजर आएंगे हैं। जातिवाद परिवेश के विवेचन से कम-से-कम दो बातें स्पष्ट रूप से सामने आती हैं- एक तो यह है कि जाति-प्रथा जन्म पर आधारित ही एक व्यवस्था है, अर्थात् इस व्यवस्था में जाति की सदस्यता जन्म से ही निश्चित हो जाती है कि एक जाति का सदस्य जीवन के अंतिम साँस तक नहीं बदल सकता। जाति के सम्बन्ध में दूसरी प्रमुख बात यह है कि ये व्यवस्था एक जाति और दूसरी जाति में ऊँच-नीच का भेदभाव भी उत्पन्न करती है, इसी कारण विभिन्न जातियों में विभिन्न प्रकार के विभेद भी लागू हो जाते हैं। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि इन जातिवादी विभेदों में से अनेक की प्रकृति अब परम्परागत बनकर रह गयी है, चाहे वर्तमान और चाहे अतीत हो, जो व्यक्ति सत्ता में है; उसकी सोच होती है कि सारे देश में उसी धर्म के लोग हों, ओंकारप्रीत सिंह के द्वारा रचित नाटक *प्रगटिओ खालसा* में सत्ताधारी औरंगजेब अपने सैनिकों के बल पर यह चाहता है कि सारे देश में लोग इस्लाम धर्म को कबूल कर लें, जिसके कारण वह कश्मीरी पंडितों पर बहुत अत्याचार करता है और उन्हें धर्म परिवर्तन करने को कहता है, कश्मीरी पंडित गुरु तेग बहादर जी के पास आकर अपनी कथा सुनाते हैं, गुरु जी पंडितों से कहते हैं कि औरंगजेब को कह दो यदि आप गुरु तेग बहादर जी का धर्म परिवर्तन करवा लोगें, तो हम अपने-आप धर्म परिवर्तन कर लेंगे, इस कारण गुरु जी और उनके साथियों को गिरफ्तार कर

लिया जाता है। बाद में राज दरबार में ले जा कर गुरु जी के साथियों पर जालिम लोगों के द्वारा गर्म पानी डाला जाता है, और साथ ही भाई सतीदास को रुई में लपेट कर गुरु जी के सामने आग लगा दी जाती है। जिससे लोगों में खोफ बने और वे इस्लाम धर्म को कबूल कर लें, जैता जी की एक वार्तालाप- "जैता: तुझे मालूम है कि औरंगजेब हर रोज सवा मन जनेऊ उतार कर रोटी खाता है। वह चाहता है कि सभी लोक इस्लाम धर्म कबूल कर लें," (55)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देखते हैं कि सत्ताधारी लोग अपनी जाति और धर्म के लिए दूसरे लोगों पर कितना जुल्म करते आए हैं, आज की राजनीति में भी बढ़ता जातिवाद एवं परिवारवाद के परिवेश का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक राज्य में देखा जा सकता है। ज्यादातर नेता जाति के आधार पर ही वोट मांगते हैं। गुरचरन सिंह जसूजा के नाटक *कंधा रेत दियां* में भंडारी नामक एक पात्र है, जो उस क्षेत्र का कोई नेता है और उसका काम जाति के आधार पर ही वोट माँगना और अपने जाति के लोगों को बड़े सपने दिखाना है, इसी सोच के आधार पर ही वह अपने शहर में बड़े अफ़सर भी अपनी जाति के ही नियुक्त करवाता है और बाद में उनसे गैर-क़ानूनी काम भी करवाता है। नाटक में हम देखते हैं कि भंडारी के किसी नजदीकी राम सिंह ठेकेदार का माल भंडारी के ख़ास इंजीनियर अफ़सर कुंदन सिंह के द्वारा रिजेक्ट कर दिया जाता है। भंडारी पहले तो राम सिंह ठेकेदार से कमीशन निश्चित करता है और फिर इंजीनियर के पिता से बात कर, काम करवाने की कोशिश करता है। उस इंजीनियर के पिता भी भंडारी नेता का साथ देता है-

> भंडारी: देखो न, आदमी से थोड़ी मोटी गलती तो हो ही जाती है। बिजनेस में कुछ अनदेखा भी करना पड़ता है। दूसरा अपनी बिरादरी का आदमी है..... और अपने आदमी का क्या फायदा यदि उसके ऊपर पर्दा ही न डाले।
>
> बचन सिंह (इंजीनियर का पिता): सर कुंदन सिंह को यह पता नहीं था कि तुम्हारे जानकार है। नहीं तो ऐसा कभी न होता। (66)

इस प्रकार हम देखते हैं नेता लोग जाति और धर्म के आधार पर कितने गलत काम करवाते हैं। भंडारी जैसे कितने ही नेता भारत में मिल जाएंगे। भारतीय राजनीति में आदर्शों के न्याय की स्पष्टता और सेवाभाव की जो पुरानी नीति थी, आज वह तहस-नहस हो गयी है।

प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए, हम कह सकते हैं कि वर्तमान की राजनीति में जातिवाद एवं परिवारवाद को दिन प्रतिदिन बढ़ावा दिया जा रहा है, भारतीय राजनीति पर प्रभाव डालने वाली सामाजिक संस्थाओं में भी जाति का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है। भारतीय संविधान जाति-भेद को अस्वीकृत करके जाति विहीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। सुदीप्त कविराज *भारत की राजनीति* में लिखते हैं-

> स्वतंत्रता प्राप्ति के समय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं और संविधान-निर्माताओं को यह उम्मीद थी कि लोकतान्त्रिक शासन में जाति-पाति, धर्म और परिवारवाद को महत्ता नहीं दी जाएगी और उम्मीद यह भी थी कि सदैव आम लोगों की आवाज को ही प्रमुख रखा जाएगा, लेकिन अफसोस, हुआ सब विपरीत। (11)

3.2.1.6 आधुनिक राजनीति में बढ़ते स्वार्थ के कारण परिवर्तित परिवेश

आधुनिक युग में राजनीति मूल उद्देश्य से बिल्कुल भिन्न है, क्योंकि समाज में राजनीतिक वातावरण पहले जैसा नहीं रहा। नेताओं की स्वार्थ और आपराधिक प्रवृत्ति ने समाज में भय का माहौल बना दिया है। हमारे देश में अपराधों का ग्राफ अन्य देशों की अपेक्षा कहीं अधिक है। राज्य की शासन व्यवस्था लोगों की सुरक्षा के लिए होती है, परन्तु आज आपराधियों को कानून व्यवस्था का कोई डर नहीं, क्योंकि कोई भी बड़े से बड़ा जुर्म करने पर, उन्हें बड़े-बड़े नेताओं का सहयोग प्राप्त हो जाता है और नेता इन आपराधिक लोगों का चुनाव में सहारा लेते हैं, इस कारण समाज में लूटपाट, बैंक डकैती, हत्या, अपहरण, बलात्कार जैसी घटनाएँ बढ़ रही हैं।

यदि हम आधुनिक राजनीति का यथार्थ रूप देखें, तो स्वार्थ एवं अपराधों से भरी पड़ी है। आज का नेता राष्ट्रहित से अधिक सत्ता को महत्त्व देते हैं। सत्ता हथियाने के लिए विविध प्रकार के प्रयोग भारतीय राजनीति में किये जाते हैं। एक ही दल के विधायक एक-दूसरे से तब तक जुड़े रहते हैं, जब तक उनका स्वार्थ आपसी सम्बन्ध बनाए रखने में सहायक सिद्ध होता है। आए दिन सरकार में विधायकों के पार्टी बदलने का समाचार सुनने को मिलता है और दूसरी पार्टी को वह अपनी आपराधिक भावना से दबाना चाहते हैं। वो अपनी पार्टी को सहयोग तब तक देते हैं, जब तक

उनके निजी स्वार्थों की पूर्ति होती है। इस प्रकार राजनीतिक प्रक्रिया के कारण परिवेश बदल रहे हैं। राजनेताओं की प्रवृत्ति गिरगिट के समान होती है। जो अपने लाभ के कारण व्यक्तिगत रूप से अपने आदर्शों में भी परिवर्तन करते रहते हैं। डॉ. सुधीर वाघ *समकालीन हिन्दी नाटकों में राजनीतिक व्यंग्य* में आज की राजनीति के विषय में लिखते हैं-

> आज अराजकता एवं स्वार्थ का जोर है, शांति और सुव्यवस्था कमजोर है। राजनीति की छत्रछाया में भ्रष्टाचार अपनी जड़े फैला रहा है, सदाचार के पैर सिकुड़ रहे हैं। शासकीय कार्यलयों में फाइलों के ढेर बढ़ रहे हैं, काम के घंटे कम हो रहे हैं और सत्ता में फिर से आने के लिए नेता दिन-रात मेहनत कर रहे हैं। राजनीतिक दलों से भारत में रामराज्य की बात तो आज भी की जा रही है। परन्तु रामराज्य कहीं दिखता नहीं। (08)

हिन्दी नाटकों में नेताओं की आपराधिक एवं स्वार्थ की भावना को देखें, तो हम कह सकते हैं कि इतने युगों के बदलाव के पश्चात भी नेताओं का रूप वही है। उन्होंने अपने मुख पर मुखौटा पहन रखा है। इन बहुरूपियों को पहचानना बहुत कठिन हो गया है। अपराध एवं स्वार्थ इनके रोम-रोम में समाया हुआ है। उनकी करतूतों के कारण आम आदमी चीख भी नहीं सकता, चिल्ला भी नहीं सकता। आम आदमी शोषण की चक्की में पिस रहा है। नेता को जब सत्ता प्राप्त करनी होती है, तब तक जनहित की बात करते हैं, बाद में जब उनका स्वार्थ पूरा हो जाता है, तो जनहित तो क्या, वह जन को भी भूल जाते हैं। उनकी कथनी और करनी में बहुत अंतर होता है। जब किसी भी नेता को राजसी सत्ता प्राप्त हो जाती है, तो वह मनमानी करने से बाज़ नहीं आता, मुख में राम-राम और बगल में छुरी जैसी इनकी करनी होती है। ऐसे पाखंडी नेताओं को कौन-सी पदवी दें, जिससे उनका घिनौना चरित्र स्पष्ट हो सके। नेताओं के स्वार्थ को अजय शुक्ला के नाटक *ताजमहल का टेंडर* में साफ देखा जा सकता है। नाटक में गुप्ता जी जिसे ताजमहल बनाने का कर्ता-धर्ता निर्धारित किया जाता है और वह अपने स्वार्थ के लिए सरकारी पैसे को अपनी जेब में डाल रहा है-

> नेता-2: जो कुछ भी यहाँ हो रहा है, सब जानता हूँ। आखिर जनता की सेवा करता हूँ, कोई घास नहीं छीलता, कितने स्वार्थी हो, अकेले ही सब हजम कर रहे हो।

गुप्ता जी: पर क्या जानते हैं, आप?

नेता-2: अरे यही कि आपका भइया जी के साथ कितना उठना-बैठना है और ये कि आपने ताजमहल के लिए उनके चाचा जी की ज़मीन सरकार को खरीदवाई, वो ज़मीन जिसे कि कोई लेने को तैयार नहीं था और उसे भी दूने-चौगने दाम पर। बहुत चूना लगाया सरकार को आपने। बताइए ये है न सच, हम कोनो झूठवा तो नहीं न बोल रहें हैं। (41)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम नेताओं का स्वार्थी रूप देख सकते हैं कि किस प्रकार सरकारी पैसे को हड़प किया जाता है। इस प्रकार डॉ. मधु धवन का नाटक *आज की पुकार* में भी मिनी नामक पात्र तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति पर चिंता प्रकट करती है, क्योंकि एक नेता उनसे जबरदस्ती बड़ी रकम चुनाव के लिए माँगता है तो मिनी, केसरचन्द से इस बात पर चर्चा करती है-

केसरचन्द: अपनी निधि को बिना पहचाने तो राजा भी रंक ही होता है।

मिनी: आज के स्वार्थी नेताओं के कारण हमें अनेक प्रकार के भय सता रहे हैं- आपमान का भय, लूट जाने का भय, मृत्यु का भय, क़र्ज़ में डूब जाने का भय। क्या हम सारा जीवन यूँ ही रोते बिलखते खत्म कर देंगे .....भय भूखे भेड़िए की तरह मनुष्य की सेहत और ख़ुशी को खा जाता है। चिंता हमें पंगु बना देती है। अज्ञात भय हमारी जीवन शक्ति का ह्रास करते रहते हैं। (54)

राजनीति में हम देखते हैं कि नेता अपनी सत्ता बरकरार रखने के लिए स्वार्थ की सारी हदें पार कर देते हैं। देश का सच्चा हितैषी कोई नहीं होता। सभी देश को कुतर-कुतर कर खाने में लगे हुए हैं। नेता मुखौटे धारण कर जनता को फंसाते हैं। *सिंहासन खाली है* नाटक में नाटककार ने इन मुखौटेधारी नेताओं को बेनकाब कर दिया है। महिला कहती है "किस-किसका यकीन करूँ, सभी दलों के नेता एक ही थैली के चट्टे-बट्टे और स्वार्थी होते हैं।" (65) आज कोई भी नेता विश्वास करने लायक नहीं है। उन्हें देश या देशवासियों के प्रति प्रेम नहीं है। लेकिन सत्ता के प्रति बहुत प्रेम है। नेता कुर्सी के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं, एक नेता कहता है - "मैं इसे लेकर रहूँगा। मैंने इसके लिए अपनी नैतिकता को कुर्बान किया है। सच्चाई का गला घोंटा है। मैं इसे लेकर ही रहूँगा। मेरे रास्ते से हट जाओ।" (66)

मीरा कांत के द्वारा रचित नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में हम देखते हैं कि हुमायूँ की मौत हो जाती है और उसकी बीवी हमीदा बानो उसके शव को अपने कमरे के ऊपर पुस्तकालय में पड़ा रहने देती है और सत्ता न खोने के डर से वह सत्रह दिनों तक उसकी मृत्यु की खबर छुपाए रखती है। नाटककार बताती है-

> हुमायूँ की मृत्यु हो चुकी है। उधर हुमायूँ का वारिस अकबर पंजाब में उपद्रव दबाने के लिए सुदूर पश्चिम की ओर बढ़ चुका है। नीति-निपुणता के तहत उसे तत्काल वापस नहीं बुलाया जा सकता। इधर राजधानी दीनपनाह (आज की दिल्ली) में हिंदुस्तान के शाहजहां की मृत्यु की खबर एकदम नहीं दी जा सकती। उससे अराजकता फैलने का डर है। मुगलिया सल्तनत का यह दस्तूर भी रहा जो हुमायूँ से पहले और बाद तक जारी रहा। (16)

ऐसे ही यदि पंजाबी नाटकों में बदलते परिवेश की दृष्टि से आधुनिक राजनीति में बढ़ते आपराधिक और स्वार्थ के परिवेश की बात करें, तो ओंकारप्रीत सिंह के द्वारा रचित नाटक *प्रगटिओ खालसा* में हम देखते हैं कि इसमें जहांगीर की ऐसी नीति दिखायी देती है, एक बार गुरु अर्जन देव जी से जहांगीर के बेटे खुसरों ने शरण मांगी तो गुरु जी ने इंकार नहीं किया, क्योंकि गुरु जी तो अक्सर ही बेसहारों को शरण देते रहते थे, लेकिन जब बादशाह जहांगीर को इस बात का पता चला, तो उनके राज के प्रति स्वार्थ की आग भड़क उठी और वह गुरु जी को अपना दुश्मन मानने लगा एवं गुरु जी को गिरफ्तार कर लिया गया। जहांगीर ने गुरु जी पर रावी के किनारे जान-बूझकर इतना जुल्म किया गया कि उसके आगे और कोई व्यक्ति बोल न पाए और उसकी सत्ता की ढाक बरकरार रहे। इस बात का उस समय की प्रजा ने बहुत विरोध किया और राजा को एक स्वार्थी कहा-

> साईं जी: हे खुदा !! आज लाहौर शहर कहर ढाह रहा है, इनबिन कयामत है, आज लाहौर शहर। रावी किनारे अंगीठा जल रहा है, हमसे यह कहर इन आंखों से देखा नहीं गया। जिन्दगी में पहली बार हमारी चीखें निकल रही हैं।
>
> "याँ वली नदीमां .... हुक्म करें, तो लाहौर की ईट-से ईट वजा दी जाए.... ..... इस स्वार्थी राजे को सबक सिखा दिया जाए.. (26)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम स्वार्थी सत्ताधारियों के विरुद्ध आम लोगों की भावनाओं को देख सकते हैं। आधुनिक युग में राजनीति लोक-सेवा की भावना से नहीं

की जाती, बल्कि यह एक आमदनी का साधन बनता जा रहा है। आज राजनीति में प्रवेश वही व्यक्ति करता है, जिसको लोभ लालच हो या हम यह भी कह सकते हैं कि राजनीति में प्रवेश करने के बाद राजनेताओं का लोभ लालच बढ़ जाता है।

अजमेर सिंह औलख का नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* में नेताओं का स्वार्थ साफ़ झलक रहा है, नाटक की कथा में हम देखते हैं कि पंजाब के किसी गाँव में कोई विदेशी कम्पनी अपना प्रोजेक्ट बनाना चाहती है, जिसके लिए उन्हें काफी एकड़ जमीन चाहिए, लेकिन उस गाँव के किसान अपनी जमीन देने से इंकार कर देते हैं, बाद में कम्पनी के कर्मचारी किसी मंत्री से बात करते हैं और उसे कुछ हिस्सा देने का आश्वासन भी देते हैं, इसके बाद मंत्री अपना स्वार्थ देखकर विदेशी कम्पनी का साथ देता है और पुलिस के बल पर किसानों को वहाँ से खदेड़ने का काम भी करवाता है।

अत: प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी के नाटकों की तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि आधुनिक राजनीति के बदलते परिवेश में दिन प्रतिदिन राजनेताओं का स्वार्थ बढ़ता जा रहा है। राजनेता स्वार्थ के लिए अपने अधिकार का अव्यावहारिक प्रयोग कर रहें हैं। यह प्रवृत्ति अगर इसी प्रकार चलती रही, तो राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर बहुत नुकसानदायक सिद्ध हो सकती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त कथनों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि अगर समाज को संभालने वाली राजनीति सही दिशा की ओर नहीं जाएगी, तो उस समाज का वातावरण दूषित हो जाएगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की राजनीतिक परिस्थितियों ने हिन्दी और पंजाबी नाटककारों को सर्वाधिक प्रभावित किया है। आज राजनीतिक परिवेश बदल रहे हैं, जैसे पहले नेताओं में आत्मत्याग की भावना थी, वैसी आज के नेताओं में नहीं रही, आज राजनीति विसंगतियों से भरी पड़ी है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में काफी उतार-चढ़ाव दिखायी देते हैं। राजनीतिक विसंगतियां व्यंग्य के लिए असीम भूमि प्रदान करती हैं, आज समाज की हर हलचल देश की राजनीति से ही परिचालित होती है। राजनीतिक मौकापरस्ती, दलों के दाँव पेच, चुनाव की कुत्सित सरगर्मियां, सत्ता हथियाने के विभिन्न हथकंडे, नेताओं का

दोगलापन आदि ने, आम आदमी में राजनीति के प्रति रुचि नहीं अपितु, इसके विपरीत भय पैदा कर दिया है। सत्ता प्राप्ति के लिए जनता पर चुनाव थोप दिए जाते हैं। चुनाव के समय सभी नेता और उनके चमचे एक-दूसरे को नीचा दिखाने लग जाते हैं। जिससे जनता की महत्त्वपूर्ण समस्याएं किनारे रह जाती है। चयनित नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से इस तथ्य को विशेष रूप से प्रस्तुत किया है कि राजनीतिक संघर्ष में, संघर्ष तो केवल आम आदमी ही करता है और दबदबा तो उच्च वर्ग का ही रहता है। आम आदमी के नाम पर राजनीति तो कुछ गिने-चुने व्यक्तियों के पास ही रह जाती है। बदलते परिवेश से सबसे ज्यादा प्रभावित तो मध्य वर्ग ही हुआ है। उच्च वर्ग तो पहले भी अच्छा था और आज भी अच्छा है। देश की स्वतंत्रता को हमारे पूर्वजों ने जिस लगन उत्साह और वीरता से हासिल किया था, वास्तव में वह स्वतंत्रता अधिक सुखदाई प्रतीत नहीं हुई, हुआ यह कि शासक तो बदल गये, पर शासकीय मनोवृत्तियाँ नहीं बदल सकी।

दोनों भाषाओं के नाटकों के तुलनात्मक बिन्दुओं की बात करें, तो इक्कीसवीं शताब्दी में दोनों भाषाओं में राजनीतिक विषय से सम्बंधित नाटकों को लिखने में वृद्धि हुई है। हिन्दी नाटककारों ने पंजाबी नाटककारों की तुलना में अधिक यथार्थवादी राजनीतिक नाटकों की रचना की, जिसमें *धारा एक सौ चवालीस* और *ताजमहल का टेंडर* प्रमुख हैं, ऐसे ही इक्कीसवीं शताब्दी में पंजाब में राजनीति के विरुद्ध विविध आंदोलनों की लहर-सी चली है, जिसमें छात्र-आंदोलन, किसान-आंदोलन आदि प्रमुख हैं, इन आंदोलनों का वर्णन पंजाबी नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* में किया गया है, यदि हिन्दी नाटकों की बात करें तो इस प्रकार का वर्णन बहुत कम देखने को मिलता है। हिन्दी नाटकों में साम्प्रदायिक दंगों और शरणार्थियों की समस्याओं, जैसे समकालीन प्रश्नों को ज्यादा व्यक्त किया गया है, जिससे विषय में विविधता और राजनीतिक सरोकारों का व्यापक दायरा दिखाई देता है। *जिस लाहौर नइ देख्या औ जम्याइ नइ, सिंहासन खाली है*, आदि नाटक इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन पंजाबी में ऐसे नाटक कम देखने को मिलते हैं। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि राजनीतिक विषय में दोनों भाषाओं के नाटक विशिष्ट पहचान बना रहे हैं।

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: आर्थिक पक्ष

4.1.1 आर्थिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और आर्थिक परिवर्तन के कारण

आर्थिक परिवेश की कोई निश्चित सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है, क्योंकि विभिन्न लेखकों ने इसकी परिभाषा आर्थिक विकास के विभिन्न मापदण्डों के आधार पर दी है। सामान्य शब्दों में कहें, तो आर्थिक परिवेश वित्त, आमदनी का दायरा, संसाधनों की उपलब्धता के द्वारा प्राप्त हुआ उत्पादन से है। इसको प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पादन या रहन-सहन के वाहक के रूप में देखा जाता है। आर्थिकता से सम्बंधित क्रियाएँ और उन्हें नियंत्रण करने वाली परिस्थितियाँ सामूहिक रूप से आर्थिक परिवेश का निर्माण करती हैं। आर्थिक शब्द से भाव- 'अर्थ', अर्थ का साधारण तात्पर्य धन, सम्पत्ति से लिया जाता है अर्थात् 'अर्थ' के अंतर्गत समग्र भौतिक साधनों को सम्मिलित किया जाता है और इन्हीं भौतिक साधनों के उत्पादन से 'आर्थिक' परिवेश में बदलाव आता है। हरदेव बाहरी ने *हिन्दी शब्दकोश* में आर्थिक शब्द का अर्थ बताते हुआ लिखा है- "आर्थिक शब्द अर्थ सम्बन्धी, रुपए-पैसे का लेन देन (जैसे संकट, लाभ) आदि से है।" (90) सामान्य शब्दों में अर्थ को वह कमाई भी कह सकते हैं, जिससे हमारी प्रतिदिन की जरूरतें पूरी होती हैं।

आर्थिक परिवेश उस प्रकिया को भी सूचित करता है, जिसके द्वारा किसी देश अथवा प्रदेश के निवासी अपने उपलब्ध संसाधनों में नियमित वृद्धि के लिए कार्य करते हैं। बदलते आर्थिक परिवेश में बढ़ती एवं घटती हुई प्रति व्यक्ति वास्तविक आय से भी जोड़ सकते हैं। किसी भी समाज के लिए जितना सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेश महत्त्वपूर्ण है, उतना ही आर्थिक परिवेश भी है। निरोल आर्थिक साधनों पर अपना कब्जा करके कोई भी एक वर्ग स्थिर नहीं रह सकता। आर्थिक साधनों के असामान्य विभाजन को देखते हुए, ज्यादातर बुद्धिजीवी इस पक्ष में दलील देते हैं कि असामान्य विभाजन को खत्म किए बिना, एक आदर्श समाज की सिरजना नहीं हो

सकती, लेकिन इसके अलावा और भी कई प्रकार के नुक्ते हैं, जिसके साथ आर्थिक विभाजन को खत्म किया जा सकता है। गोपी कृष्ण प्रसाद *आर्थिक विकास का समाज शास्त्र* में इस विषय में लिखते हैं-

> व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था को खत्म किए बिना भी निम्न आर्थिक, सामाजिक समूहों और वर्गों की जीवन शैली को उच्च स्तर तक ले जाया जा सकता है। इसका एक केन्द्रीय तरीका यह है कि राज सरकार और केंद्र सरकार उच्च वर्ग के लोगों से टैक्स की वसूली करें और उस रकम को निम्न वर्ग के लिए पूर्ण सेहत सुरक्षा की व्यवस्था बनायी जाए। नगद रकम न देकर, उसके स्थान पर सुविधाओं को उपलब्ध कराया जाए। (28)

प्राचीनकाल में हमारा भारत पूर्ण रूप से संपन्न देश था, इसी वजह से इसको सोने की चिड़िया कहा जाता था, लेकिन कुछ जानी-अनजानी घटनाओं ने इसकी व्यवस्था को बिगाड़ दिया। बहुत सालों से इस समस्या को दूर करने के प्रयास किए जा रहें हैं, लेकिन अभी तक सफलता नहीं मिल पायी है। बदलते आर्थिक परिवेश की दृष्टि से हम कह सकते हैं, कि पहले हमारे रुपए की कीमत इतनी कम नहीं थी, जितनी आज है। एक वेबसाइट के अनुसार-

> सन 1913 ई में 1 रुपए के मुकाबले यू.एस.डी डॉलर की कीमत 0.09 थी, और 1925 में 0.1, 1947 में 4.16, 1970 में 7.50, 1985 में 12.37, 1994 में 31.37, 2007 में 41.35, 2015 में 62.97, 2018 में 70.09, 26 मार्च 2019 में 68.95 और अप्रैल 2020 को 76.35 हो गयी (www.bookmyforex.com)

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हमारे देश की आर्थिक दशा आज के मुकाबले से पहले मजबूत थी। वर्तमान युग की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या आर्थिक विकास की है, आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई महत्त्व नहीं है। आज के युग में संस्थापन वित का देश के आर्थिक परिवेश में सकारात्मक योगदान होता है। विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्था में जहाँ आर्थिक विकास एक सतत् प्रकिया के तहत दीर्धकालीन लक्ष्य निर्धारित होता है, वहाँ संस्थागत वित्त प्रदान करने वाली विभिन्न बैंकिंग संस्थाएँ, अब परम्परागत बैंकिग क्रियाओं तक सीमित न होकर केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा निर्मित विभिन्न जनकल्याण योजनाओं को बैंको

के अग्रिम और वित्त पोषण के माध्यम से सफल और प्रभावी रूप से निष्पादन करती हैं।

यदि किसी देश की अर्थव्यवस्था ही डगमगा जाए, तो उस देश की आर्थिक स्थिति गंभीर हो जाती है। यह स्थिति केवल एक व्यक्ति तक सीमित न रह कर, देश के सामाजिक, राजनीतिक और श्रैणिक व्यवस्था को भी प्रभावित करती है। आधुनिक युग का मानव सुविधा भोगी प्रवृत्ति के कारण पैसों का पुजारी और अधिक-से अधिक धन कमाने में लगा रहता है। जिसके कारण वह नैतिक-अनैतिक उचित-अनुचित तरीके से धन कमाने में संकोच नहीं करता, क्योंकि विकासवादी युग में मानव धन को ही शक्तिशाली मानता है। धन के कारण ही ऊच-नीच आदि की भावना प्रकट होती है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में आर्थिक विकास को वास्तविक क्रांतिकारी परिवर्तन कहा जा सकता है। ब्रिटिश शासन में आर्थिक विकास में ज्यादा बढ़ोतरी नहीं आई। विकास की यह दर इतनी कम थी, कि इन्होंने भारत को मात्र कच्चे माल की आपूर्ति करने वाला तथा पश्चिमी निर्यातों के लिए अच्छा बाज़ार बना कर रख दिया था। कृषि अर्थव्यवस्था में कृषक, साहूकार एवं जागीरदारों के चंगुल में फँसा हुआ था। बचत और निवेश भी कम थी। तकनीक निम्न स्तर पर थी। भारत के निर्माण के लिए विदेशी पूँजी भी उपलब्ध नहीं थी। कम आय से कम बचत होती है, जिससे निवेश भी कम होता है, कम वृद्धि और फिर वहीं कम आमदनी। स्वतंत्रता के पश्चात हमारी सरकार ने दोहरा कार्य किया, उपनिवेशी अर्थव्यवस्था को खत्म करते हुए, उसके स्थान पर आधुनिक, स्वाधीन और आत्मनिर्भर आर्थिक व्यवस्था का आधार खड़ा किया, जिसके कारण हमारे देश का आर्थिक परिवेश बदलने लगा।

1947 ई. को भारत आज़ाद हुआ और देशवासियों को राजनीतिक आज़ादी मिली, लेकिन यह राजनीतिक स्वतंत्रता तमाम देशवासियों के लिए अर्थहीन थी, क्योंकि इसकी प्राप्ति आर्थिक क्षेत्र में नहीं थी। राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्रता प्रजातंत्र का परिणाम है, तो सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से समानता प्रजातंत्र की अनुभूति है। ज्ञानचन्द्र खिसमेरा *डॉ. आंबेडकर का आर्थिक चिंतन* में लिखते हैं-

> समता की अनुभूति के अभाव में आर्थिक-सामाजिक क्षेत्र में प्रजातंत्र का कोई अस्तित्व नहीं है।..... आर्थिक एवं सामाजिक संस्थानों की समानता के लिए स्तरीयकरण जितना सदृढ़ होता है, प्रजातंत्र उतना ही मजबूत होता है।.....

आर्थिक, सामाजिक विषमताएँ राजनीतिक प्रजातंत्र की इमारत में दरारे विस्फोट और विध्वंस को आमंत्रित करती है। (20)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय नेताओं ने शानदार दूरदर्शिता को अपनाया लेकिन भूमंडलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण जैसे तत्वों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। भारत सरकार ने सर्वजनिक क्षेत्र को बड़ा करने और अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए निजी क्षेत्र की भूमिका में वृद्धि करने के लिए नीतियों का निर्माण किया। इस प्रकार यदि हम भूमंडलीकरण की बात करें तो इसका सीधा अर्थ बहुराष्ट्रीय कंपनियों को निर्बाध रूप से व्यापार की छुट मिलने से है। यह एक प्रकार की मुक्त अर्थव्यवस्था है, लेकिन इसका प्रभाव समाज, राजनीति, संस्कृति प्रौद्योगिकी आदि सभी क्षेत्रों पर पड़ा। यह खुलापन सिर्फ व्यापार, निवेश, और आर्थिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका क्षेत्र बहुत विशाल हो गया, यदि आधुनिक युग में हम इसे देखें तो यह प्रक्रिया आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन बन गया है। इस कारण ये जन-सामान्य को आशा और निराशा दोनों तरीकों से ही प्रभावित कर रही है।

आधुनिक युग की बात करें, तो बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि युवकों की आर्थिक समस्याएँ अन्य वर्गों की तुलना में ज्यादा बढ़ती जा रही हैं क्योंकि अन्य वर्गों की तुलना में इन्होंने ज्यादा खर्च करना होता है। आज हम देख रहे हैं कि पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षिक सभी क्षेत्रों में पैसों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। समाज में, जिसके पास अधिक पैसा है, उन्हीं को अधिक महत्ता मिलती है। जो पैसा नहीं कमा सकता है, उसे समाज में ही नहीं, परिवार में भी उचित सम्मान नहीं दिया जाता। पैसों की आवश्यकता जितनी बढ़ती जा रही है, प्रत्येक वर्ग के लिए उसे कमाना उतना ही मुश्किल हुआ जा रहा है। आज पैसे का महत्त्व बढ़ जाने के कारण ही युवा वर्ग पैसा कमाने के लिए, कुछ भी करने को तैयार है। समाज में इतना भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, काला बाज़ारी आदि के फैलने का मुख्य कारण पैसों का लोभ ही है।

आज आर्थिकता जीवन मूल्य बनकर उभरा है। व्यक्ति का मूल्याँकन और महत्त्व आर्थिक के आधार पर आँका जाने लगा है। पिछले कुछ दशकों से भारत में प्रगति के नाम पर आर्थिक विषमताएं और बेरोजगारी बढ़ती चली जा रही है। भारतीय अर्थतंत्र सुधरता रहा, परन्तु सामाजिक दुर्व्यवस्था और भ्रष्ट शासन तंत्र के परिणामस्वरूप आम आदमी की आर्थिक स्थिति में संतोषजनक संतुष्टि नहीं मिल

सकी। जिसके कारण निराशा, असन्तोष और आक्रोश की भावनाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ रही हैं। देश की आर्थिक योजनाओं की असफलता ने देश के बहुसंख्यक वर्ग को प्रभावित किया है। आज स्थिति यह है कि बीमा और बैंकों के राष्ट्रीयकरण से देश की जनता को आर्थिक दृष्टि से कोई राहत नहीं मिल पायी। जीवन उपयोगी वस्तुओं की कीमतें बढ़ रही हैं, जिसके फलस्वरूप जन-सामान्य का जीवन बहुत त्रास भरा हो गया है।

सामान्य शब्दों में कहें, तो हमारी सामाजिक व्यवस्था में बहुत ज्यादा परिवर्तन हुए हैं, उनके कारण शहरी और ग्रामीण दोनों ही समाजों में मध्यम वर्ग की आमदनी तो नहीं बड़ी, लेकिन इनका रहन-सहन बदला है। देश की जनसंख्या में पूँजीपति वर्ग से मध्य वर्ग का समुदाय बहुत ज्यादा बड़ा है और यहीं सबसे ज्यादा त्रास भरी स्थिति में हैं, देश का विकास तभी संभव है, जब इस वर्ग को बेहतर सुविधा मिल पाएगी।

इस प्रकार संरचनात्मक असमानता और अदृश्यता युक्त भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास ने न केवल दो भारत (अमीर-गरीब) का निर्माण किया है, बल्कि उन दोनों के बीच हमेशा के लिए एक खाई बना दी है। जिसकी वजह से अधिकांश जनता, गरीबी, भूख और असहनीय जीवन बिताती है, जिस कारण असुरक्षा का माहौल उत्पन्न हो रहा है। इस प्रकार वास्तव में समाज गंभीर नैतिक और सामाजिक संकट में फसता जा रहा है। सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भारत इतना विभाजित कभी नहीं रहा, जितना आज है। वास्तव में कुछ मामलों में आज की स्थिति 1947 से पूर्व की स्थिति से ज्यादा खराब है।

इस अध्याय में हमने दोनों भाषाओं के नाटकों की तुलना करते हुए, तुलनात्मक प्रविधि को अपनाया और तुलनात्मक अध्ययन के समय पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोणों का सहारा भी लिया गया और साथ ही नाटकों के माध्यम से विभिन्न आर्थिक कारकों के जनसमुदायों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन के लिए आलोचनात्मक और समाजशास्त्रीय प्रविधि को प्रमुख रूप से अपनाया है। इस अध्याय में प्रस्तुत शोध का उद्देश्य 'हिन्दी तथा पंजाबी के नाटकों में आर्थिक तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन' किया। जिसके अंतर्गत 'बदलते परिवेश में पूंजीवादी व्यवस्था एवं आर्थिक वर्ग का स्वरूप', 'बदलते परिवेश में बढ़ती हुई महँगाई के कारण जन-सामान्य की त्रासदी', 'बदलते आर्थिक परिवेश में दिन प्रतिदिन बढ़ रही बेरोजगारी', 'बदलते आर्थिक परिवेश में कृषक का आर्थिक संघर्ष', 'बदलते आर्थिक परिवेश में भ्रष्ट

व्यवस्था का स्वरूप' 'बदलते परिवेश में व्यावसायिक व्यापार की त्रासदी' और 'बदलते आर्थिक परिवेश में बढ़ती गरीबी दर', आदि का दोनों भाषाओं के नाटकों के पात्रों के माध्यम से अनुकूल प्रविधियों के द्वारा आर्थिक अध्ययन किया गया है।

4.2.1 2000 से 2018 के चयनित नाटकों में बदलते आर्थिक तत्त्व

4.2.1.1 बदलते परिवेश में पूंजीवादी व्यवस्था एवं आर्थिक वर्ग का स्वरूप

हिन्दी और पंजाबी नाटकों में बदलते आर्थिक परिवेश में, यदि हम पूंजीवादी व्यवस्था और आर्थिक वर्ग विभाजन की बात करें, तो यह हमारे आर्थिक विकास में असन्तुलन पैदा कर रहें हैं, क्योंकि इस आर्थिक प्रणाली और उत्पादन के साधनों पर निजी लोगों का अधिकार होने लगा है। इस निजीकरण और भूमंडलीकरण ने अकेले भारत को ही प्रभावित नहीं बल्कि पूरे विश्व पर इसका असर देखने को मिल रहा है। विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाओं ने दुनियाभर के देशों से इन पूंजीपतियों की कंपनियों के लिए द्वार खोलने संबंधी तरह-तरह के करार किए। इस करार के तहत विभिन्न कानूनों को लचीला बनाया गया और उद्योगों के निजीकरण को मंजूरी दे दी गई। यह एक ऐसी प्रक्रिया थी, जिसके कारण समाज में आर्थिक विभाजन पैदा हुआ। सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से औद्योगीकरण के कारण परिवेश के बदलाव को प्रस्तुत किया गया है, यदि इसके अनुकूल बदलाव देखें, तो अधिकांश व्यवसाय पूँजीपतियों के हाथ में रहने लगे हैं। जिससे अर्थव्यवस्था के प्रति अनेक प्रकार की विषमताएँ उत्पन्न होने लगी हैं। इसके कुछ कारणों में जन्मजात योग्यताओं में विषमता, विभिन्नता, व्यक्तिगत एवं सम्पत्ति आय के वितरण में असमानताओं को मुख्य कारण माना जाता है। सामान्य सर्वेक्षण में देखें, तो जो लोग दूसरों की तुलना में अधिक योग्य तथा बुद्धिमान होते हैं। उनके पास सम्पत्ति अधिक मात्रा में पायी जाती है और उनकी आर्थिक स्थिति दूसरों के मुकाबले अच्छी होती है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन अर्थव्यवस्था पर निर्भर करता है, क्योंकि पैसे की महत्ता आज के युग में बहुत

ज्यादा है। पैसे के बिना आदमी की जरूरतों की पूर्ति नहीं हो सकती। यदि किसी भी साहित्य में आर्थिक परिवेश की बात करें, तो साहित्य समाज की कुँजी होती है, वह वही रचता है; जो देखता है। डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी *हिन्दी नवलेखन* में लिखते हैं- "साहित्यकार मूलत: सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहते हुए, महसूस करता है कि अर्थ का प्रभाव आम आदमी पर कहाँ और कितना है।" (200)

यदि बदलते आर्थिक परिवेश में हम आर्थिक वर्ग के स्वरूप की बात करें, तो मानव समाज की कल्पना के साथ ही हमारे मन में वर्ग विभाजन का स्वरूप जाग्रत हो जाता है। यह वर्ग पहले सामाजिक होते हैं और फिर समय के बदलाव से यह आर्थिक रूप धारण कर लेते हैं। सामान्य शब्दों में हम इसे तीन भागों में विभाजित करते हैं:- उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग। उच्च वर्ग में पूँजीपति, जमींदार, उद्योगपति, नेता और उच्च श्रेणी के अफसर आते हैं। यह वर्ग समाज में ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करता है तथा दूसरों पर शासन करता है। जिसके परिणामस्वरूप उनकी मानसिकता शोषण की ओर परिवर्तित होने लगती है, इसके बाद मध्य वर्ग की बात करें, तो आज के युग में इनका प्रथम लक्ष्य रोजगार प्राप्ति करना है और शिक्षा का प्रसार सबसे अधिक मध्य वर्ग में ही हुआ है। मध्य वर्ग के पास स्वयं रोजगार के साधनों का अभाव है, जिसके कारण इसे बेरोजगारी की मार अधिक झेलनी पड़ती है। इस वर्ग का जीवन भी सादा होता है, इसके बाद यदि हम निम्न वर्ग की बात करें, तो इस वर्ग में वह समूह आता है, जो अपनी मूल जरूरतों को पूरा नहीं कर सकता। यह लोग कम बुद्धिमान होते हैं और इनका जीवन सदैव दूसरों पर आश्रित होता है। यह लोग उच्च वर्ग के लकीर के फकीर होते हैं। इस वर्ग के लोगों का कम शिक्षित होने कारण, प्रत्येक वर्ग के लोग इनका फायदा उठा लेते हैं। अनिरुद्ध प्रसाद *आरक्षण सामाजिक न्याय एवं राजनैतिक संतुलन* में लिखते हैं- "पूँजीपति वर्ग के पास 98 प्रतिशत आबादी की सम्पत्ति है और 98 प्रतिशत देश की जनता आज भी अपनी सामाजिक एवं आर्थिक आज़ादी के लिए संघर्ष कर रही है।" (53)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति की है, यहाँ हम विकास की ओर बढ़े हैं, वहीं इस औद्योगिक युग ने आम आदमी का शोषण करना शुरू कर दिया। आज हम देखते हैं कि पूंजीवादी लोगों ने अपने इतने बड़े-बड़े महल बना लिए, लेकिन एक गरीब को घर तक नसीब नहीं हुआ। नादिरा जाहिर बब्बर अपने नाटक *सकुबाई* में मुम्बई शहर में गरीबों की त्रासदी को प्रस्तुत करती है।

सकुबाई नाटक में सकुबाई गरीब परिवार से सम्बंधित है और वह किसी गाँव में रहती थी, रोजगार की तलाश में वह अपनी आई के साथ शहर आती हैं, गाँव से मुम्बई आई शकुंतला अर्थात् सकुबाई और उसकी आई को शहर आते ही रहने की चिंता होने लगती है। गाँव से आते वक्त उन्होंने सोचा था, हम बड़े शहर में जाएंगे और वहाँ काम भी मिलेगा और रहने के लिए अच्छा टिकाना भी, लेकिन यहाँ आकर सकुबाई और उसकी आई सोचती हैं कि इन पूंजीपतियों के शहर में गरीबों के लिए एक छत तक नसीब नहीं होने वाली। शकुंलता बताती है- "आई दिन भर खोली ढूंढती रही। मगर हमें खोली देंगा कौन? पैसे कहां थे हमारे पास? और बड़े लोग नफरत करते थे हमसे।" (32) नादिरा जाहिर बब्बर ने इस नाटक के माध्यम से राजस्थान और मुम्बई शहर की जनपदीय विशेषताओं को प्रकट करते हुए एक गरीब की त्रासदी को भी प्रस्तुत किया, सकुबाई कहती है-

> जब मेरी आई गाँव से आई तो वो नौवारी साड़ी पहनती थी। ऐसी गोल साड़ी उसे पहनने को नहीं आता था। लेकिन जिस सेठानी के यहाँ काम करती थी वो मारवाड़ी थी। एक बार उसने मेरी आई को बोला- 'ए बाई हमारे यहाँ तुम्हारी ये नौवारी साड़ी नहीं चलेगी भई। इसमें तुम्हारा पाँव दिखता है।' मेरी आई ने मारवाड़ी सेठानी से साफ कह दिया- 'मेम सब। हम यहाँ काम करने आए हैं। अपना रिवाज बेचने नहीं। मैं आज से गोलावाली नहीं, नौवारी साड़ी ही पहनूँगी। रखना है तो रखो नहीं तो राम-राम। (24)

पूंजीपति विषय से सम्बंधित ह्रषीकेश सुलभ के द्वारा रचित नाटक *अमली* भी है। इस नाटक की कथा में बिहार के किसी पिछड़े क्षेत्र के दृश्य को प्रस्तुत किया गया है। आज इक्कीसवीं शताब्दी आने के पश्चात भी बिहार राज्य में कुछ ऐसे क्षेत्र भी हैं, जो आधुनिकता से बहुत दूर हैं। वहाँ के लोगों की आर्थिक दशा इतनी तरसयोग है कि वह प्रत्येक दिन भोजन भी पेट भर नहीं कर सकते। उच्च श्रेणी के लोग, निम्न श्रेणी के लोगों का शोषण करते हैं और उनकी इज्जत के साथ खिलवाड़ भी करते हैं। इस नाटक में महादेव राय नामक पात्र है, जो उस गाँव की उच्च श्रेणी से सम्बन्ध रखता है और रुपए-पैसे की दृष्टि से बहुत धनाढ्य है। इस गाँव के ज्यादा लोग अपनी रोजी-रोटी के लिए, किसी अन्य राज्य में गये हैं और उनकी स्त्रियाँ घर पर हैं। इन स्त्रियों में एक अमली नामक पात्र भी है, जिसके साथ महादेव राय बतमीजी करता है-

> महादेव राय: कौड़ी के मोल भी न बिकेगी रे ! जहिया चाहेंगे, ससुरी तुम्हारा घर-दुआर उजाड़ के फूँक देंगे.....लाँगटिया के साथ बाहर कर देंगे।
>
> अमली: मलिकार ! का है हमरे पास? ई देह और एकरी इज्जत ! बस ! ओर का है हमरे पास? सास आज-बिहान भी है।..... मर्द डोली उतर के बीच मझधार में छोड़ गया। गाँव के मालिक-मलिकार रक्षा न करेंगे, तो कवन करेंगा? आप ही की नीयत .... (62)

इस नाटक में बिहार के लोगों की आर्थिक दुर्दशा का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है। नाटककार ने पात्रों के माध्यम से वार्तालाप को इस तरह प्रतीक कराया है कि जैसे वह खुद देख रहा हो। इस नाटक की मुख्य स्त्री पात्र अमली की आर्थिक दशा बहुत ज्यादा कमजोर है। अमली अपनी दशा को इस प्रकार बयान करती है- "मालिककार। हमारा कुछ रूपया-पइसा का दरकार है। एक पइसा हाथ में ना है। कपड़ा लता भी फाट रहा है ..... माई की खातिर भी" (55)

दुःख, अपमान और अभावग्रस्तता की मार से पस्त अमली की जीवन-त्रासदी यही समाप्त नहीं होती। उसी गाँव का दूसरा दबंग अबरार खां भी मुंशी की सहायता से सरकारी कार्यालय में कागजात का उलट-फेर करवाकर अमली की जमीन की नीलामी करवाता है और गाँव वालों के सामने ही, उसे गाँव से भाग जाने की हिदायतें देता है। इस प्रकार धनाढ्य एवं साहूकार लोगों के दबाव और पति के वियोग से दुखी, घर और ज़मीन से बेदखल तथा अपनी इज्ज़त गँवाकर अमली जीवन में कुछ भी हासिल नहीं कर पाती। लव कुमार *हिन्दी नाटक के बदलते तेवर* में इस नाटक के विषय में लिखते हैं-

> सामन्तों और ज़मीदारों के कर्ज़ के बोझ तले दबा हुआ, उसका गरीब पति रमेसर एकरस परतंत्र जीवन की चक्की में पिसते हुए ऊबरकर कलकत्ता जाने का फैसला करता है। अपनी माँ और नव-विवाहिता पत्नी के लाख समझाने पर भी, वह कमाने के बहाने सामन्तों और ज़मीदारों की बेड़ियों को तोड़ने के उद्देश्य से प्रदेश चला जाता है। पुत्र-वियोग और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में बूढ़ी माँ दम तोड़ देती है और विवश होकर अमली को बेमन से उन्हीं ज़मीदारों के दरवाजे पर जाना पड़ता है, जिससे बचने के लिए उसका पूरा परिवार ही टूटकर बिखर चुका है। (173)

पंजाबी नाटकों के विकास में हम पूंजीवादी व्यवस्था और आर्थिक वर्ग संघर्ष को प्रस्तुत करें, तो जबसे मानव सभ्यता ने अपना स्वरूप धारण किया है, तबसे आर्थिक अंतर के कारण जाति-धर्म आदि के वर्ग देखे जाते हैं। साहित्यकार का अपने राज्य एवं देश की राजसी और आर्थिक सत्ता के साथ प्राकृतिक रिश्ता होता है, इसके साथ ही साहित्यकार अपने देश की दमनकारी सत्ता को उखाड़ने का प्रयास सदैव करता रहता है। जतिंद्र बराड़ के द्वारा रचित नाटक *पायदान* पूंजीपति और गरीब वर्ग के अंतर को स्पष्ट करता है, इस नाटक की मुख्य पात्र एक डॉक्टर है जो इस भूमंडलीकरण और निजीकरण के कारण पैदा हुए आर्थिक अंतर को देखते हुए, भगवान को कोसती है-

> -(ऊपर देखते हुए और एक लम्बी साँस लेते हुए) हे ऊपर वाले, वाह ! तेरी दुनिया (कॉमपोडर की ओर देख कर) कोई मुसीबत के दिन काट रहा है। (गरीब नूर की और देखकर) कोई अपनी मेहनत का मूल्य भी नहीं लेता। कानून नाम की कोई चीज नहीं है, बड़ा व्यक्ति छोटे को खाने पर ही तुला है। (40)

पायदान नाटक में ही डॉक्टर अपने घर की नौकरानी बीरो की बेटी गुडी को भूख से तड़फते हुए बेवसी महसूस करती हुई कहती है-

> डॉक्टर: तू नहीं समझेगा बेटा (अपने-आपसे) हमारे देश में हजारों बच्चे अंधे हो जाते हैं, अपाहिज हो जाते हैं, सिर्फ इस लिए कि उन्हें सही भोजन नहीं मिलता। इनकी त्रासदी है कि यह अपने माता-पिता को भी नहीं पूछ सकते कि हमें पैदा क्यों किया है? किस तरह साहूकारों की ठोकरे खाने के लिए मजबूर हैं, (41)

इस विषय पर चिंता प्रकट करते हुए अजीतपाल सिंह एम.डी. अपनी संपादित रचना *वैश्वीकरण बेनकाब* में लिखते हैं-

> यह वरतारा समाज को खुशहाली और कंगाली के दो बड़े धुरों के बीच विभाजन कर रहा है। एक वर्ग के पास धन बहुत ज्यादा एकत्र होता जा रहा है और दूसरे वर्ग के पास अपूर्ण इच्छाएं एकत्र हो रही हैं। इस प्रकार समाज का श्रेणी विभाजन बढ़ता जा रहा है, जतिंद्र बराड़ ने इस वर्ग विभाजन पर गहरी चिंता प्रकट की। (11)

इस विषय से सम्बंधित गुरचरन सिंह जसूजा का नाटक *परियां* भी है, इसमें पूंजीवादी व्यवस्था और आर्थिक वर्ग का प्रत्यक्ष रूप देखने को मिलता है। इस नाटक

में ललित सेठ नामक एक साहूकार है और उसकी एक बड़ी कम्पनी है, जिसमें अनेक कर्मचारी नौकरी करते हैं। उसमें एक निम्न वर्ग की लड़की मनीषा भी है। ललित सेठ अपनी पूँजी के घमंड के कारण गरीब मनीषा का शोषण करता है और मनीषा अपना इस्तीफा देने के लिए, ललित सेठ के पास आती है। लेकिन ललित सेठ उसे ज्यादा तनखाह का लालच देता है, वार्तालाप के अनुसार-

> ललित सेठ: मैं तेरी तनखाह दोगुनी करने को तैयार हूँ, लेकिन शर्त यह है कि दफ्तर में तुझे पहले जितनी तनखाह मिलेगी, बाकी मैं अपनी जेब में से निकाल कर दूँगा क्योंकि बाकी स्टाफ को पता न चले। (मनीषा कोई उत्तर नहीं देती) (36)

इस प्रकार मनीषा ललित सेठ का कोई जवाब नहीं देती। जब ललित सेठ को इस बात का पता चल जाता है कि मनीषा उसके जाल में नहीं फसने वाली तो वह जबरदस्ती उसके साथ कुकर्म करने की कोशिश करता है, जिसका मनीषा जोरदार विरोध करती है-

> ललित सेठ: (बेवस होकर) आ जाओ, आ जाओ। मेरी बन जा, मैं और इंतजार नहीं कर सकता। मैं तुझे माला-माल कर दूँगा। पीछे मत हट, आज मैं तुझे अपनी बना कर छोड़ूंगा। (मनीषा पीछे हटती है और ऊँची आवाजों से मदद की गुहार लगाती है) (36)

इस प्रकार उच्च वर्ग अपनी पूँजीवादी व्यवस्था से किस प्रकार निम्न वर्ग की स्त्रियों के साथ बुरा व्यवहार करते हैं। मनीषा अपने इंसाफ के लिए पुलिस के पास एफ़.आई.आर दर्ज कराती है, लेकिन उसके दफ्तर के सारे कर्मचारी मनीषा के विपरीत गवाही देते हैं।

अत: प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए कह सकते हैं कि भारत का विकास केवल आर्थिक वृद्धि पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि मानव एवं सामाजिक विकास भी जरूरी है, लेकिन औद्योगीकरण के कारण जो पूंजीवादी व्यवस्था स्थापित हुई है, यह एक विघ्न का कार्य कर रही है। इससे कामकाजी महिला का भी शोषण हो रहा है। हम जानते हैं कि सामाजिक विकास मध्य और कमजोर वर्ग के विकास से सम्बंधित है, इनको प्रत्येक कार्य शक्ति से सुनिश्चित करना चाहिए,

जिससे वह गरीबी के दलदल से बाहर निकल सके और साथ ही उन्हें विकास की मुख्य धारा से भी जोड़ा जा सके, जिससे ये देश के विकास में भागीदार बन सकें।

4.2.1.2 बदलते परिवेश में बढ़ती हुई महँगाई के कारण जन-सामान्य की त्रासदी

भारत की बहुत-सी आर्थिक समस्याओं में बढ़ती हुई महँगाई भी अपना गंभीर रूप धारण कर रही है। महँगाई का अर्थ होता है, वस्तुओं की कीमत में वृद्धि होना। महँगाई एक ऐसा शब्द होता है, जिसकी वजह से देश की अर्थव्यवस्था में उतार चढ़ाव आता है। महँगाई मनुष्य की आजीविका को भी प्रभावित करती है। जब भी महँगाई बढ़ती है, तो जनता सरकार से बार-बार यह मांग करती है कि महँगाई को कम कर दिया जाए, लेकिन सरकार महँगाई कंट्रोल करने में सफल नहीं हो रही, जिससे सामान्य वर्ग की आर्थिकता में बदलाव आना शुरू हो जाता है।

यदि हम बढ़ती महँगाई के कारण को स्पष्ट करें, तो इसके एक नहीं, अनेक कारण होते हैं। महँगाई की समस्या हमारे देश की ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व की एक गंभीर समस्या है, जो लगातार बढ़ती जा रही है। आर्थिक परिवेश के प्रभाव के कारण बहुत-से देश महँगाई की समस्या से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। कालाधन, जमाखोरी, राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, गरीबी, बढ़ती जनसंख्या, राष्ट्रीयकृत उद्योगों में घाटा आदि ऐसे कारण हैं, जो निरंतर महँगाई को बढ़ाये जा रहे हैं। इसके कारण असन्तोष बढ़ रहा है और हर वर्ग के लोग त्रास भरा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किसी बुजुर्ग से बात करने पर इस बात की पुष्टि हो जाती है कि तीन-चार दशक पूर्व सहज दस-पन्द्रह रुपए में सब्जी सहित, दैनिक उपयोग की इतनी चीज़े मिल जाती थी कि एक आदमी के लिए बाज़ार से लाना मुश्किल हो जाता था, लेकिन यदि इसकी तुलना आज के युग से करें, तो बहुत ज्यादा अंतर महसूस होने लगेगा।

पहले महँगाई की समस्या तो थी, परन्तु वह अत्यंत सीमित थी। लेकिन इक्कीसवीं शताब्दी में हम देखते हैं कि इस वैश्विकरण के दौर में महँगाई बहुत ज्यादा बढ़ गई है। मशीनीकरण युग में मजदूरी लगभग खत्म होती जा रही है। जिस कारण आमदन कम और महँगाई ज्यादा के कारण खर्च बढ़ रहा है। लेकिन आज के लोग पश्चिमी देशों की तरह सूटड-बूटड रहना चाहते हैं, पैसे न मिलने या कम मिलने और

इनकी ख्वाशियें पूरी न होने के कारण ये चोरी, घोटाले और अनेक गैरकानूनी काम करने लग जाते हैं और व्यक्ति कर्त्तव्य विमूढ़ होकर घूमता रहता है। महँगाई के कारण अपराधों को बढ़ावा मिल रहा है।

सरकार के समक्ष धन प्राप्ति का सफल व सक्षम साधन टैक्स व पेट्रोल की दरों में वृद्धि करना है। जनता को आर्थिक विकास के भुलावे में रखकर भारी मात्रा में टैक्स वसूल करना होता है, सरकार की इस नीति के कारण ही महँगाई बढ़ती है और जनता में रोष की लहर फैलती है, क्योंकि इससे आर्थिक स्थिति दृढ़ होने की बजाय डावाडोल होती है। इस विषय में नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी *हिन्दी नाटक: बदलते आयाम* में लिखते हैं-

> आर्थिक स्थिति को सर्वाधिक धक्का पेट्रोल व डीज़ल के मूल्य में 25 से 50 प्रतिशत की वृद्धि से लगता है। भारतीय नागरिक आज जो भी अर्जित करता है, उसका दो तिहाई भाग सरकार और सरकारी कर्मचारियों की जेब में चला जाता है। केंद्र-राज्य सरकारें एवं स्थानीय निकाय प्रतिवर्ष 35 हजार करोड़ रुपए टैक्स के रूप में हड़प कर जाते हैं। हमारे नेता भारतीय जनता को झूठे वायदे, दावे करके खूब बेवकूफ बनाते हैं और महँगाई की ओर ध्यान नहीं जाने देते। नेताओं के मतानुसार, हमारा देश आर्थिक दृष्टि से विकसित हो रहा है। प्रति व्यक्ति आय बढ़ रही है, लेकिन विश्व बैंक की रिपोर्ट ने हमारे नेताओं की पोल खोल दी। (68)

यदि हिन्दी नाटक के माध्यम से आधुनिक युग में इस समस्या को देखें, तो डॉ. मधु धवन के द्वारा रचित नाटक *आज की पुकार* में इस समस्या को देखा जा सकता है। इस नाटक के माध्यम से आज के युग की सभी समस्याओं को किसी-न-किसी अंक के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक के तृतीय दृश्य में महँगाई की समस्या को प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। इसमें एक औरत की मकान मालिक के साथ वार्तालाप को प्रस्तुत किया गया है, जिस से महँगाई का अंदाजा लगाया जा सकता है-

> औरत: हम सही समय पर मकान का किराया देते हैं कि नहीं। इस बार थोड़ा लेट हो गया..
>
> मकान मालिक: तू कह अपने खसम को कि ...

औरत: महँगाई इतनी ज्यादा है कि पहने क्या और निचोड़े क्या? कुछ नहीं बचता..

मकान मालिक: (समान उठाकर बाहर फेंकता है)

(सामान बाहर फ़ेकने की आवाजें, रोने-चीखने की दर्दनाक डरावनी आवाजें उन आवाजों से यह स्वर निकल रहा है कि वह किसी को अपनी रक्षा के लिए पुकारें) (36)

इस नाटक से उन परिवारों की त्रासदी सामने आती है जो इतनी महँगाई में सख्त मेहनत करने के बाद भी अपना घर बनाने में सफल नहीं हो पाए और वह अपनी सारी उम्र किराए के मकानों में व्यतीत करते हैं। महँगाई ज्यादा होने के कारण किराए के मकान का किराया देना भी मुश्किल हुआ पड़ा है। इस महँगाई की उदाहरण हमें नादिरा जाहिर बब्बर के नाटक *सकुबाई* में भी मिलती है। सकुबाई के पति को एड्स हो जाती है और वह जानबूझकर शहर छोड़ कर गाँव आ जाता है कि उसने तो मरना ही है; लेकिन उसकी दवा-दारू की खातिर उसका परिवार कहीं गलत रास्ता न अपना ले। जब उसकी पत्नी उसे लेने आती है, तो वह आगे से महँगाई की मार को देखकर उसे इंकार कर देता है। सकुबाई की जुबानी-

तीसरे महीने जब हम गाँव गए...। तो उसकी हालत बहुत खराब थी।.... सूखकर एकदम ढाँचा हो गया था। बाल भी झड़ गये थे ... और खेतों में अकेला पड़ा रहता था। मैंने उसकी हालत देखी तो मैं ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी .... मैंने कहा- 'चलो उधर जे.जे. अस्पताल में भर्ती करा देंगे .....। तो बोला- नहीं। तू काय को मेरी मिट्टी खराब करती है। उधर अस्पताल में इतनी महँगाई और गंदगी ...। एक के ऊपर एक मरीज़ ....। तू इलाज के लिए डॉक्टरों के पाँव पड़ेगी ..... पैसे के लिए कोई गलत काम करेगी ...। और उससे भी क्या होगा ..? मैं यहीं ठीक हूँ ...मरना तो है ही। (60)

पंजाबी नाटकों में बढ़ती महँगाई को प्रस्तुत करें, तो हम कह सकते हैं, कि इस समस्या से प्रत्येक वर्ग का पात्र पीड़ित है। दविंदर दमन के द्वारा रचित नाटक *छां विहूणे* में महँगाई की बात करें, तो इस नाटक में इसका यथार्थ रूप देखा जा सकता है, इसमें ऐसे परिवार की कथा को प्रस्तुत किया गया है, जिस परिवार में सिर्फ एक सदस्य सुधीर ही कमाता है और ज्यादा महँगाई के कारण उनकी सैलरी आने से दो

दिन पहले ही राशन समाप्त हो जाता है और उन दिनों ही उनके घर एक मेहमान आ जाता है। वार्तालाप के अनुसार-

माँ: चाय के लिए चीनी कहा से लाए?

रमा: बिना चीनी से .....।

माँ: हे भगवान.... फिकी चाय?

रमा: माँ मेहमान ने खुद मनाह किया था कि वह चीनी नहीं पीता।

माँ: यदि पीता होता तो?

सुधीर: माँ आज तो लगता है जैसे भगवान की बहुत कृप्या हुई है, मेहमान भी वो था जो बिना चीनी के चाय पीता था और खाना भी नहीं खाने वाले था ..... माँ भगवान कहीं जरुर है लेकिन दिखायी नहीं देता..... (13)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम एक गरीब परिवार की त्रासदी को देख सकते हैं। इस प्रकार अजमेर सिंह औलख का नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* की कथा भी इस समस्या से जुड़ी हुई है। इस नाटक में मध्य वर्ग की त्रासदी को प्रस्तुत किया गया है, जो महँगाई के कारण कर्ज़ के बोझ से डूब रहें हैं। इसकी कथा एक निम्न कृषक के परिवार से सम्बंधित है, जिसमें घर के सभी सदस्य सख्त मेहनत करने के बावजूद भी कर्ज़ की मार झेल रहें हैं। इस नाटक के मुख्य पात्र चरने की मुख्य समस्या इतनी महँगाई में आमदनी से ज्यादा खर्च करने के कारण कर्ज़ की है-

बीजी: (जैसे कल्पना से बाहर हो) इतना....कैसे हो गया इतना कर्ज़?

चरना: इतनी महँगाई में, विवाह-शादी का !? बीमारी-शमारी का !? प्रतिदिन आजीविका का खर्च का !? ट्रैक्टर की किश्तें !?

बीजी: साड़े चार लाख लेकर उतारी थी किश्त....?

चरना: लिया तो तीन लाख था, लेकिन उसने ब्याज अपनी मन मर्ज़ी से लगाया है, क्योंकि उन्हें मालूम था कि मज़बूरी के कारण ले रहें हैं कर्ज़। (33)

चरने की सारी जमीन साहूकार ले लेता है और चरना शहर जाकर मजदूरी करने लग जाता है और उसका भाई गाँव में मजदूरी करता है। जमीन बिक जाने के

दुःख में चरने की माता की मौत हो जाती है। इस नाटक के माध्यम से हम छोटे किसानों की त्रासदी को देख सकते हैं। इस नाटक के विषय में डॉ. जगीर सिंह नूर *अजमेर सिंह औलख की नाट-रचना के प्रतिमान* में लिखते हैं-

> इतनी महँगाई में कम जमीन के छोटे किसान आर्थिक मजबूरियों के आलावा समाज में उचित आदरभाव भी प्राप्त नहीं कर पाते। गरीब किसानों का आर्थिक तंगी के कारण सारा परिवार भी बिखर जाता है। (37)

प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए, हम कह सकते हैं कि औद्योगीकरण के कारण छोटे काम खत्म हो रहे हैं और पूंजीपति अपनी मर्ज़ी की कीमतें निर्धारित कर रहे हैं, जिसके कारण महँगाई बढ़ रही है। बढ़ती हुई महँगाई के कारण जन-सामान्य का जीवन निर्वाह बहुत मुश्किल से चलता है। बदलते परिवेश की दृष्टि से यदि हम अतीत की बात करें, तो उस समय उत्पादन कम होने के बावजूद भी, इतनी महँगाई न थी, लेकिन आज प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन भी भारी मात्रा में बढ़ रहा है, लेकिन महँगाई रुकने का नाम नहीं ले रही। दूसरे शब्दों में कहें तो चारा, बिजली, डीज़ल और उर्वरकों की बढ़ती कीमतों के कारण अनाज का उत्पादन बहुत महँगा हो गया है। किसानों के उत्पादन को व्यापारी वर्ग बहुत कम भाव पर खरीदतें हैं और बाजार में ज्यादा मूल्य पर बेचते हैं, इन विचोलिओं की ओर सरकार को विशेष ध्यान देना चाहिए, दो दशक के सतत विकास के बावजूद भारत महँगाई के कारण, अब भी दुनिया के गरीब देशों में से एक है।

4.2.1.3 बदलते आर्थिक परिवेश में दिन प्रतिदिन बढ़ रही बेरोजगारी की समस्या

वर्तमान समय में बेरोजगारी की समस्या अत्यंत गंभीर रूप से सामने आ रही है, यह देश की उन्नति के रास्ते में बहुत बड़ी आर्थिक समस्या है, दूसरे शब्दों में कहें, तो बहुत-सी आर्थिक समस्याओं की जड़ ही बेरोजगारी है। बेरोजगारी का अर्थ होता है, 'काम करने की इच्छा करने वाले को काम न मिलना'। इसके आलावा हम यह भी कह सकते हैं कि जब देश में कार्य करने वाली जनशक्ति अधिक होती है किन्तु काम करने के लिए राजी होते हुए भी बहुतों को प्रचलित मजदूरी पर कार्य न मिले,

तो उस विशेष अवस्था को 'बेरोजगारी' की संज्ञा दी जाती है। *श्रम की दुनिया* नामक पत्रिका के अप्रैल 2009 के अंक में *उत्कृष्ट श्रम* नामक लेख में लिखा गया-

> सन 1919 ई. में अंतर्राष्ट्रीय श्रमसम्मेलन के वाशिंगटन अधिवेशन ने बेरोजगारी निश्चय सम्बन्धी एक प्रस्ताव स्वीकार किया था, जिसमें कहा गया कि केन्द्रीय सत्ता के नियंत्रण में प्रत्येक देश में सरकारी कामदिलाऊ अभिकरण स्थापित किया जाए। (06)

हमारे देश ने भी बहुत-सी आर्थिक योजनाएं बनायी हैं, लेकिन पूर्ण रूप से किसी भी आर्थिक योजना ने इस समस्या का निवारण नहीं किया। जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण, शिक्षा के साधनों में कमी होने लगी, जिससे लोगों को सही शिक्षा नहीं दी जा रही। हमारे देश के बहुत-से युवाओं को तकनीकी शिक्षा नहीं दी गयी है। जनसंख्या में वृद्धि के कारण देश का संतुलन बिगड़ रहा है। जनसंख्या में वृद्धि के अनुपात की वजह से रोजगारों में बहुत कम वृद्धि हो रही है, इसी वजह से बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। वर्तमान युग में बेरोजगारी एक प्रकार की नहीं हैं, बल्कि इसके भिन्न-भिन्न प्रकार हैं, जैसे संरचनात्मक बेरोजगारी, दृश्य एवं अदृश्य बेरोजगारी और मौसमी बेरोजगारी आदि। रमेश सिंह *भारतीय अर्थव्यवस्था* में लिखते हैं-

> 1 जनवरी 2012 को भारत में बेरोजगारों की संख्या 10.8 मिलियन थी। श्रम ब्यूरों शिमला द्वारा जारी, तृतीय वार्षिक रोजगार-बेरोजगारी सर्वेक्षण रिपोर्ट 2012-13 के अनुसार सामान्य प्रमुख परिस्थिति के आधार पर बेरोजगारी की दर 4.7 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्र में 4.4 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में 5.7 प्रतिशत है। बेरोजगारी का सर्वाधिक दर शहरी महिलाओं में (12.8 प्रतिशत) है। जब कि सबसे कम ग्रामीण पुरुषों में (4.0) है। (76)

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से तकनीकी शिक्षा की कमी और औद्योगीकरण एवं भूमंडलीकरण के कारण परिवेश के बदलाव प्रस्तुत किया गया है, इनके अनुकूल बदलाव देखें तो, उद्योग धंधों की बढ़ोतरी के कारण भी बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। प्राचीनकाल में बेरोजगारी की समस्या ही नहीं थी। उस समय हर व्यक्ति के पास काम था और उसकी आर्थिक दशा उनके खर्च के अनुकूल थी। कुछ लोग चरखा चलाते थे, कुछ गुड़ बनाते थे और कुछ लोग खिलौने बनाते थे। जब अंग्रेजी हुकूमत आयी तो, उन लोगों ने

अपना आर्थिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए इन कामों को नष्ट करना शुरू कर दिया और स्वतंत्रता के बाद के राजनेताओं ने भी इसकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इस विषय पर रविन्द्र सिंह रवि ने *विरसा और वर्तमान* में लिखा है-

> राजनीति समाज की आर्थिक नींव के मूल विरोधों और उनके साथ संघर्ष का ही सामाजिक प्रगटावा होती है। आर्थिकता पर कब्जे की लड़ाई में राजनीति को समझा ही नहीं गया। आम लोगों के लिए इसके अर्थ कुर्सी युग तक ही सीमित रह गये हैं। (69)

भारत में स्वतंत्रता के बाद रोजगारोन्मुख शिक्षा क्षेत्र पर जितना अधिक ध्यान देना चाहिए था, उतना नहीं दिया गया। जिस कारण बेरोजगारी बढ़ती गई। इसके साथ ही विरोधाभास भी देखा गया है कि उच्च शिक्षित युवकों को भी शिक्षा के अनुरूप भाई-भतीजावाद के चलते रोजगार न मिलने के कारण बेकारी बढ़ रही है। ये बेरोजगारी मानसिक दृष्टि से अधिक पीड़ादायक हो रही है। कृष्ण बलदेव वैद के द्वारा रचित नाटक *कहते हैं जिसको प्यार* में हम देखते हैं कि एक अखिल नामक पात्र पीएच.डी समाप्त करने पर नौकरी पाने के लिए अपनी प्रेमिका गीता की सहायता लेने को मजबूर है क्योंकि उसका पिता उसे नौकरी दिला सकता है। आगे से गीता उसकी सहायता इस शर्त पर करने को तैयार होती है कि वह पहले उससे शादी की तारीख निश्चित करे-

> गीता: मैंने बाबा से साफ कह दिया।
>
> अखिल: क्या कह दिया है।
>
> गीता: कि जब तक तुम तारीख तय नहीं करते वह तुम्हारी नौकरी के लिए किसी को नहीं कहेंगे।
>
> गीता: नौकरी चाहते हो तो ताखीर आज ही तय करनी होगी।
>
> अखिल: यह दबाव नहीं ब्लैकमेल है। (26)

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता उसकी बेरोजगारी का नाजायज फायदा उठाती है। आज विवाह भी सौदेबाजी हो गया, जिसमें अखिल जैसे बेरोजगार युवक के सपने टूट जाते हैं। इतनी बड़ी डिग्री प्राप्त करने के बाद दर-दर की ठोकरे खाने को मजबूर हैं।

ह्रषीकेश सुलभ का नाटक *अमली* में भी इस समस्या को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक युग में रोजगार की समस्या ही पारिवारिक विघटन को पैदा कर रही है। प्रत्येक परिवार में यदि कोई-न-कोई सदस्य कमा रहा है, तो उस परिवार में शांति बनी रहती है, लेकिन जब रोजगार नहीं मिलता तो घर का गुजारा चलाना बहुत मुश्किल हो जाता है, जिससे स्थिति बदलने लगती है। इस नाटक में निम्न परिवार की दयनीय स्थिति का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक की मुख्य पात्र अमली है और उस का पति रोजगार की तलाश में घर से बाहर किसी अन्य प्रदेश में चला जाता है। जिसके कारण लाचार अमली को गाँव के जमींदारों की बातें सुननी पड़ती हैं। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने अकेली अमली की दशा को ही प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि इसके द्वारा सम्पूर्ण समाज के बेरोजगार परिवारों की दशा को प्रस्तुत किया गया है। अमली का पति जाना नहीं चाहता था लेकिन आर्थिक मज़बूरी के कारण उन्हें जाना पड़ा, जाने से पहले वह अपनी मजबूरी अमली को बता कर जाता है, जिसको नाटककार ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

> रामसर: चार पाँच महीने की बात है। जल्दी ही लवटेगें। पहली चार अपना छार-दुआर और फिर ताहक छोड़ के जा रहें हैं। प्रदेश, सो हमारा मन भी तो न लगेगा। जइसे-तइसे रात-दिन काटेंगे। रोजी रोटी की बात न होती तो जाते भला? शौके न है हमरे मन में प्रदेश घुमे का। (38)

इस नाटक के माध्यम से आधुनिक युग की बेरोजगारी की समस्या को देखा जा सकता है। बेरोजगारी आर्थिक क्षेत्र में एक ऐसी स्थिति है जो अनेक समस्याओं को जन्म देती है, उदाहरण स्वरूप बेरोजगारी के कारण ही प्रवास की समस्या में बढ़ोतरी होती है, क्योंकि जिसको अपने क्षेत्र में रोजगार नहीं मिलता, वह अपने और अपने परिवार के जीवन निर्वाह के लिए विदेश जाता है। जैसे बिहार, यूपी के लोग पंजाब, हरियाणा में रोजगार के लिए आते हैं, तो यहाँ के लोग रोजगार के लिए विदेश जाते हैं। प्रवासी चाहे देशी हो, चाहे विदेशी, उसके जाने के बाद उसका परिवार घुटन महसूस करता है और बुरे लोग उनकी स्त्रियों से अपनी हवस मिटाने का यत्न करते हैं। इस प्रकार का दृश्य चयनित नाटक अमली में साफ देखा गया है।

नादिरा ज़हीर बब्बर का नाटक *सकुबाई* में भी छुपी बेरोजगारी की मार को देखा जा सकता है। इस नाटक की मुख्य पात्र सकुबाई है, जो पहले किसी गाँव में रहती थी और सकुबाई का परिवार काफी बड़ा था, लेकिन आमदनी के स्रोत बहुत

कम थे, बाद में सकुबाई किसी बड़े शहर में आ कर झाड़ू-पोचा (बाई) का काम करती है, जहाँ उनसे दिनभर काम लिया जाता है। सकुबाई अपनी और अपने परिवार की दशा को इस प्रकार प्रस्तुत करती है-

> सकुबाई: हम गाँव में रहते थे। तीन भाई-बहिन थे हम.... दो बहिनें और एक भाई। सबसे बड़ी मैं.... शकुंतला। शकुंतला नाम है मेरा। सकु तो यहाँ सब बुलाते हैं।..... गाँव में मेरे बाबा, चार भाई थे। मेरे बाबा का सीधा हाथ थोड़ा टेढ़ा था। फिर भी वो खेतों में दिन-रात मेहनत करते थे। उनके साथ हम सब भी काम करते थे, इतना काम करने के बावजूद भी पेट भरा खाना प्रति दिन नहीं मिलता था। (21)

इस नाटक के अंत तक हम देखते हैं कि सकुबाई को अपने जीवन में बहुत सारी कठनाईयों का सामना करना पड़ता है, लेकिन उसकी बहन गरीबी और बेरोजगारी की हालत में गलत रास्ता अपना लेती है। जयदेव तनेजा *आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श* में लिखते हैं-

> नाटककार सकुबाई की छोटी बहन बसन्ती के त्रासद को अंत तक ले जाता है। जो पैसा कमाने के झूठे सपनों के पीछे भागते-भागते वेश्यावृति तथा आत्महत्या तक जा पहुँचती है। गरीबी और बेरोजगारी निश्चित ही एक बड़ा अभिशाप है। (289)

पंजाबी नाटकों के विकास में यदि हम बेरोजगारी की समस्या को देखें, तो इस ओर सभी नाटककारों ने विशेष ध्यान नहीं दिया, क्योंकि पंजाबी नाटक के पहले दौर में नाटककारों का धार्मिक भावना की ओर ज्यादा झुकाव था, लेकिन दूसरी-तीसरी पीढ़ी तक आते-आते इसमें बदलाव आने लगा गुरशरण सिंह, अजमेर सिंह औलख और स्वराजबीर ने इस समस्या को विशेष रूप से प्रस्तुत किया। रोजगार किसी भी समाज को उसारने के लिए एक आधारशिला का निर्माण करता है। आर्थिक साधनों का विभाजन समाज के सभी वर्गों, जातियों और जन समूह के रुतबे की भागीदारी निर्धारित करता है।

यदि आधुनिक पंजाबी नाटकों में बेरोजगारी की समस्या को देखें, तो इस ओर पंजाबी नाटककारों का ध्यान अन्य नाटककारों से ज्यादा गया है, क्योंकि बेरोजगारी के कारण ही पंजाबी युवा विदेशों की ओर जा रहें हैं। यही प्रवास की समस्या

आधुनिक युग के पंजाबी नाटककारों ने मुख्य रूप से प्रस्तुत की। चयनित पंजाबी नाटकों में नाहर सिंह औजला *सुपर वीजा* और स्वराजबीर का *कल्लर* नाटक इस समस्या से जुड़े हैं। कल्लर नाटक में इस समस्या को प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है, इस नाटक का मुख्य पात्र दलबीर सिंह है। उसके पिता एक साधारण कृषक है और उनके पास ज़मीन भी है, लेकिन बहुत कम। दलबीर सिंह पढ़-लिख कर भी पंजाब में बेरोजगारी की समस्या से पीड़ित हैं। उसके दोस्त सुखदेव और संतोख इसी विषय पर बात करते हुए कहते हैं-

> संतोख: स्कूल समय तो नकल मार कर पास हो गये ...न अध्यापकों ने समझाया न हम समझें.....और कॉलेज की पढ़ाई दिमाग में नहीं पड़ने वाली.. यदि कोई साइंस एग्रीकल्चर पड़ते तो किसी नौकरी पे लग जाते।
>
> सुखदेव: कोई नहीं पूछता अब ... साइंस एग्रीकल्चर वालों को.....सब घूम रहें हैं, इधर ....
>
> संतोख: आपने सही कहा .... सरकारी नौकरी के लिए या तो सिफारिश चाहिए या पैसा ... या फिर दोनों ही...
>
> सुखदेव: सरकार के पास नौकरीयां हैं कहा? अब तो कम्पनियों का जमाना है। (17)

दलबीर जहाँ रोजगार न मिलने के कारण विदेश जाने की सोचता है। वह अपने घर से पाँच हजार रुपए चोरी कर, दोस्तों के साथ मिलकर पासपोर्ट अप्लाई करता है। घर से चोरी करने पर, उसके माता-पिता उसे डांटते हैं। दलबीर के चाचे का लड़का राजू, किसी प्रकार रिश्वत देकर सरकारी नौकरी लग जाता है, दलबीर के माता-पिता उसे राजू की उदाहरण देते हैं-

> गुरदयाल सिंह: (दलबीर सिंह का पिता) काका तुमने तो बिल्कुल शर्म उतार दी, पैसे की जरूरत थी तो बच्चे माँग लेते हैं न कि चोरी करते हैं?
>
> मंजीत कौर: बस बेटा अब यही बाकी था, राजू को देख कितनी अच्छी नौकरी मिली है !
>
> दलबीर: मिली नहीं.....उन्होंने पूरा सिफारिश लगा कर ली है, आप मुझे दिलवा दें .....मैंने कब इन्कार किया है ...नौकरी से (35)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम कह सकते हैं आज का बेरोजगार युवा यहाँ रोजगार न मिलने के कारण विदेश जाना चाहता है, बेरोजगारी की स्थिति में ही युवा गलत कदम उठा लेते हैं।

इस प्रकार हम हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए कह सकते हैं कि तकनीकी शिक्षा की कमी और औद्योगीकरण के कारण, यह समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। हमारे गाँवों में कृषक वर्ष में छ: मास तक बेकार रहते हैं। इन गाँवों में कुटीर एवं लघु उद्योगों का पतन होने के कारण बेकारी भी बढ़ गयी है। बदलते परिवेश की दृष्टि से देखें, तो प्राचीन समय में वर्ण व्यवस्था में पैतृक व्यवसाय को अपना लिया जाता था, जिससे बेकारी उत्पन्न ही नहीं होती थी, लेकिन अब शिक्षा के प्रसार तथा वर्ण-व्यवस्था के भंग हो जाने से पैतृक व्यवसाय को साधारणतया घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। पुत्र पिता के व्यवसाय को अपनाने के लिए तैयार नहीं होता।

4.2.1.4 बदलते परिवेश में कृषक का आर्थिक संघर्ष

भारत एक कृषि प्रधान देश है। आज भी भारत के बहुत-से लोग गाँव में ही रहते हैं। भारतीय लोगों का मूल आर्थिक स्रोत ही कृषि है और इसका विस्तार ग्रामीण-जीवन से ही मिलता है। खेती करने वाले कृषक कहलाते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि और कृषक है। कृषकों की उन्नति से ही देश की उन्नति संभव है। कृषक पूरे देश का अन्नदाता है। यदि हम भारत के कृषकों की आर्थिक दशा की बात करें, तो स्वतंत्रता पूर्व काल से ही भारतीय कृषक की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। आज बाज़ारवादी और निजीकरण के दौर में कृषकों का शोषण सबसे ज्यादा हो रहा। उसे अपनी फ़सल का उचित मूल्य नहीं मिल रहा। कृषकों को व्यापारी, पूँजीपति, साहूकार आदि सब लूट रहें हैं। कर्ज़ की समस्या से वह घिरा हुआ है। खाद, बिजली और पानी की समस्याएँ आदि उसे और परेशान कर रही हैं, ऊपर से भूमंडलीकरण ने किसानों कृषकों के बुनियादी स्वरूप को झटका दिया है, यह उनकी माँगों, इच्छाओं और अपेक्षाओं को पूरा करने का दावा करता है पर पूरा नहीं करता।

स्वतंत्रता-पूर्व काल में कृषक महाजनी सभ्यताओं से शोषित हो रहा था। ब्रिटिश शासन के अत्याचार, दमन, भेदभाव नीति के कारण आम किसानी खत्म हो

रही थी और ज्यादा लोग गरीबी का संताप भोग रहें थें। विनय मोहन शर्मा की रचना *हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास* में वाइस राय लार्ड लॉरेस के विचारों को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं- "भारत किसानी प्रधान बड़ा गरीब देश है। देश की बहु-संख्यक जनता कठिनाई से ही अपना पेट भर पाती है।" (17) अंग्रेजों ने लगान कानून तहत उन कृषकों को जो बारह वर्ष से जिस भूमि में खेती करते थे, उन्हें मालिकी अधिकार दे दिया गया और लगान वृद्धि की सीमा बांध दी गयी। इस कानून में कुछ दोष होने के बावजूद भी, ये कृषकों के हित में ही था, इस तरह कृषकों को कुछ लाभ हुआ, लेकिन इस आर्थिक लाभ को सरकार विभिन्न करों के बहाने ले जाती थी। डॉ. रामगोपाल सिंह *आधुनिक हिन्दी साहित्य* में लिखते हैं- "वास्तव में सरकार का कर-निर्धारित सही न होने के कारण किसान और अन्य वर्ग आर्थिक अत्याचार से पिसते रहते थे और आज भी पिस रहे हैं।" (72)

भारत के अनेक क्षेत्रों में स्वतंत्रता के दौरान फसल खराब रही, जिसकी वजह से खाद्य-भंडारों में गिरावट आई, इन्हीं दिनों में व्यापक आकाल का असर कृषक-जीवन पर पड़ा। स्वतंत्रता के बाद सरकार ने भूमि-सुधार के लिए सख्त कदम उठाए। इस भूमि-सुधार से कृषक कामगार को सबसे अधिक लाभ हुआ। गाँव के कृषकों में सुधार होने लगा और इसके कारण कृषक व्यापारी वर्ग से बचने लगे। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय नेताओं एवं कृषि-विशेषज्ञों ने कृषकों की ओर विशेष ध्यान दिया। कृषि उत्पादन को बढ़ाने तथा भावों को उचित रूप से स्थायी बनाने के सम्बन्ध में प्रयास किया गया। देश का बहुत-सा धन अन्न मँगवाने में विदेश चला जाता था। इस वजह से भूमि सुधार के लिए विशेष प्रयास किए गये। खेती करने के तरीके में कुछ सुधार हुआ और कृषि-क्षेत्र के विस्तार के अंजाम स्वरूप कुल उत्पादन में भी वृद्धि हुई।

हरित क्रांति, ट्रैक्टर, थ्रेसर, ट्यूबवेल, रासायनिक खाद्य, सिंचाई की सुविधा, ऊन्नत बीज़, कृषि में वैज्ञानिक पद्धति, कृषि-पैदावर की कीटनाशकों से रक्षा, कृषि पैदावर के अच्छे मूल्य आदि की वजह से कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी हुई, जिससे कृषकों की आर्थिक स्थिति में बदलाव तो आया, परन्तु आर्थिक विषमता बढ़ गयी। वर्ग संघर्ष बढ़ता गया और बाद में यूनियन बनने का आरंभ हुआ, लेकिन आर्थिक योजनाओं का लाभ धनवानों ने पाया है। अमीर और गरीब किसानों के बीच अंतर बढ़ गया। जिस का असर आज भी देखा जा रहा है।

आज गाँव के कृषक रोटी, कपड़ा, मकान अच्छी सड़क आदि समस्याओं से जूझ रहें हैं और सरकार किसानों की आमदन दोगनी करने के झूठे सपने दिखा कर, चन्द कॉरपोरेट घरानों को फायदा पहुँचाने का प्रयास कर रही है; जिस का किसान विरोध भी कर रहे हैं। इतिहास इस बात का गवाह है कि सत्ताधारी किसानों का शोषण पहले से ही करते आ रहे हैं। राम आहूजा और मुकेश आहूजा *समाजशास्त्र विवेचना एवं परिप्रेक्ष्य* में लिखते हैं-

> परम्परागत समाज मूल रूप से कृषि प्रधान समाज होता था, इसके सदस्य भाग्यवादी, अन्ध विश्वासी और अपने समुदाय के बाहर की दुनिया से अनभिज्ञ होते थे। ऐसे समाज में निष्ठा की इकाइयाँ परिवार, गाँव, जाति या धार्मिक समुदाय होती थी। परम्परागत समुदाय (कृषक) आत्मनिर्भर नहीं होते, परन्तु बाज़ार के लिए शहरों पर, धर्म के लिए दर्शन पर और जहाँ तक कि सरकारों पर निर्भर रहते थे, क्योंकि समुदाय के भीतर नेतृत्व का विकास कम रहता था। कृषकों के लिए कोई भी निर्णय सत्ताधारियों के द्वारा ही लिया जाता था। अक्सर वे यह भी नहीं जानते थे कि यह निर्णय कैसे और क्यों लिए गए। (422)

आधुनिक युग में कृषकों की आर्थिक स्थिति की बात करें, तो डॉ. मधु धवन के द्वारा रचित नाटक *आज की पुकार* में इसको देखा जा सकता है। इस नाटक में एक कृषक आधुनिक समाज के प्रति बहुत चिंतित है, उसकी चिंता का कारण आधुनिक वैज्ञानिक खेती है, जो खाद-स्प्रे खेतों में डाली जाती है, उससे कैंसर की भयानक बीमारी उत्पन्न होती है। यह प्रत्येक आधुनिक कृषक की समस्या है, जिससे वह खुद भी पीड़ित है। एक वार्तालाप के अनुसार-

> रामलाल: (हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है) क्या बताएँ, अच्छी खाद-पानी, बीज़ मिलता ही नहीं।
>
> दया: सरकार ने इतनी सुविधाएँ दे रखी हैं, उसका फायदा उठाए.....
>
> रामलाल: (निराशा-सा) क्या बताएँ (रुककर) टी.वी में अच्छी लहलहाती फसल, ट्रैक्टर, बीज, खाद, स्प्रे सब होते हैं पर....
>
> दया: पर क्या....?

रामलाल: (अत्यन्त दुखी होते हुए) ऐसी किसानी नहीं चाहिए.... नहीं चाहिए (ऊँची आवाज़ में रोता है)

रामलाल: ऐसा... (रुककर) अनर्थ हो रहा है.....आज जगह-जगह पर दवाखाने खुल रहें हैं। कभी इस ओर ध्यान दिया है....। विज्ञापनों में कई तरह के रोगों और दवाइयों की जानकारी दी जाती है। अच्छी फसल के लिए जो स्प्रे गुजरात में बनायी जाती थी, वह बढ़ी अच्छी थी। उसके बाहर इनग्रिडियंट भी लिखा होता है। वहाँ के वैज्ञानिकों ने बिक्री बढ़ाने के लिए उसमें मिलाये जाने वाली सामग्री ज्यादा कर दी हैं जिसके चलते लोग कैंसर के शिकार हो रहें हैं। कैंसर पीड़ितों के लिए बीकानेर में कैंसर अस्पताल खुला और पंजाब से स्पेशल कैंसर ट्रेन बीकानेर के लिए हफ्ते में दो बार चलती है। (रुककर) मैं नहीं चाहता कि मेरे खेत की फसल से लोगों का इतना नुकसान हो....मुझे ऐसी कमाई नहीं चाहिए....नहीं चाहिए..... (रोता है) (14)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम आज के किसान की मानसिकता को देख सकते हैं कि वह किस प्रकार दुखी है। ऐसे ही किसानी की बात करते हुए पीयूष मिश्रा अपने नाटक *गगन दमामा बाज्यो* में भी लिखते हैं कि एक निरीक्षण से पता चलता है कि बड़े साहूकार और पटवारी किसानों का शोषण किस प्रकार करते हैं वह लिखते हैं-

पहले मैं किसानों की बात करूँगा। उनकी हालत कितनी बुरी है। जमींदार, साहूकार और पटवारी उनका खून चूसते रहे हैं। किसान सभी जातियों से सम्बंधित हैं, उनको हम जातियों के आधार पर विभाजित नहीं कर सकते। लेकिन किसान इंसान हैं, भेड़िए नहीं। मैं अपनी आँखों से सबकी हालत देखकर आया हूँ। जमींदार और किसानों के बीच मुकादम और पटवारी लोमड़ी हैं। ये किसानों को लुटते हैं और जमींदारों को धोखा देते हैं। किसानों से लगान वसूल करते हैं, लेकिन उनकी हिफाजत करने का ख्याल नहीं रखते, यह कितनी शर्मनाक बात है। (43)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देख सकते हैं कि जमींदार, साहूकार और पटवारी किसानों का किस प्रकार शोषण करते हैं।

पंजाबी नाटकों के विकास में कृषकों के आर्थिक संघर्ष की बात करें, तो पंजाब एक कृषि प्रधान राज्य है। पंजाबी के बहुत सारे साहित्यकारों का सिरजना सरोकार

भी किसानी से सम्बंधित है, जिन्होंने किसानी की समस्या का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया। आर्थिकता मनुष्य के रिश्तों की जमीर होती है, जिस पर सभी रिश्ते टिके होते हैं। यह व्यक्ति की सामाजिक, संस्कृति आदि स्थिति को प्रभावित करता है। कृषक के लिए ज़मीन सिर्फ उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि उसके लिए इज्जत-आबरू की निशानी भी होती है। ज़मीन का खुस जाना कृषक की इज्जत-आबरू पर दाग लगने के समान होता है। पंजाबी नाटकों में किसानी समस्या के विषय में लगभग सभी नाटककारों ने कुछ-न-कुछ अवश्य ही लिखा, लेकिन इन नाटककारों में सबसे ज्यादा नाटक अजमेर सिंह औलख के द्वारा लिखे गये, इन्होंने अपने नाटकों में छोटी किसानी की समस्या को बड़ी गंभीरता के साथ लिया। इनके द्वारा ही रचित नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* में भी कृषकों की आर्थिक मंदाहाली को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक का मुख्य पात्र चरना किसान है, जो अपनी बेटी की शादी, माता की बीमारी, भाई के नशे, ज्यादा घरेलू खर्च, ट्रैक्टर की किश्ते और खेती से आमदन कम होने के कारण कर्ज़ में डूब जाता है और उसकी सारी ज़मीन का इकरारनामा साहूकार अपने नाम कर लेता है, जब वह तहसील से घर आकर सब बताता है, तो उस किसान की माँ जमीन बिकने के सदमे को सहन नहीं कर पाती। वह अपने दूसरे बेटे मेजर से पूछती है कि तहसील क्या करने गये थे, तो आगे से मेजर कहता है कि साहूकार को जमीन बेचने, जमीन बेचने की बात सुनकर वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है और उनसे कहती है -

> माँ: तहसील ! ..... जमीन बै ... पाँचों के पाँच एकड़ ही ! ... बै.. जमीन... तहसील.... जमीन... पाँच एकड़ ..... चार लाख कर्ज शाहुकारों का ..... ट्रैक्टर की किश्ते..... बेटी की शादी.... घरेलू खर्च .... बै.... जमीन... सारी की सारी .. पाँचों एकड़ ....
>
> माँ: नहीं !! मैं नहीं बेचने दूंगी जमीन !
>
> तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई इस जमीन को बेचने की ! यह जमीन तुमने नहीं खरीदी? तुम्हारे बाप ने खरीदी थी ! लहू पसीने की कमायी से ! शरीकों के साथ लड़-लड़ के .! और तुमने इतनी आसानी से बेच दी? तुझे मालूम है जमीन किसान की क्या होती है?
>
> मेजर: जमीन किसान की माँ होती है माँ ... !

माँ: (गुस्से से) फिर माँ को बेचने को तैयार हो गये ! लेकिन मैं माँ को बिकने नहीं दूंगी (39-40)

नाटक की कथा में हम देखते हैं कि चरने की माँ के विरोध करने पर भी उन्हें मजबूरन जमीन को बेचना पड़ता है, जमीन बेचने के सदमे के कारण चरने की माँ की मौत हो जाती है। डॉ. टी. आर. विनोद *औलख की विल्खनता* में लिखते हैं-

औलख मुख्य रूप से छोटे कृषकों के दुखांत का नाटककार है। पंजाब की बहुगिनती छोटे कृषकों की है, जो भिन्न-भिन्न परिवारों में विभाजत है। सांझी पारिवारिक मेहनत से गुजारा करती हुई कृषकों की आर्थिक स्थिति ज्यादा कर्ज, नशा और बीमारियों के कारण लगातार कमजोर होती जा रही है। (02)

बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि लगभग सभी आधुनिक नाटककारों ने किसी-न-किसी विषय के द्वारा कृषकों की त्रासदी को प्रस्तुत किया है। पंजाब की किसानी कभी भी इतने संकट में नहीं रही, जितनी आज है। आज सरकार द्वारा किसानों की आमदन दोगुनी कह कर नए-नए बिलों को प्रवानगी दी जा रही है। लेकिन किसान इन्हें अपने विरुद्ध मानते हुए विरोध भी कर रहे हैं। कुछ समय पहले हरित क्रांति ने पंजाब के कृषकों के लिए खुशहाली लायी थी, पर इसके कुछ विपरीत परिणाम भी सामने आये थे, लेकिन वर्तमान समय में कृषक फिर उसी समस्या में आ गये हैं।

स्वराजबीर के द्वारा रचित नाटक *कल्लर* में भी कृषकों के संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक का मुख्य पात्र दलबीर नौकरी न मिलने और ज़मीन कम होने के कारण, अपने बड़े सपनों की पूर्ति के लिए विदेश जाना चाहता है। उसका पिता गुरदयाल सिंह एक कृषक है और उन्होंने सख्त मेहनत करके अपनी ज़मीन को उपजाऊ बनाया था, साथ ही ज़मीन में कल्लर को भी खत्म किया था। प्रथम दृश्य में बताया गया है कि आज के युवा खेती नहीं करना चाहते-

"दलबीर: खेती ! नहीं यार ! तुम्हें सच्ची बात बताऊं...खेती को तो मेरा बिल्कुल मन नहीं करता .....पता नहीं क्या बात है? यह खेती हमारे वश का काम नहीं है..."(18)

इस नाटक के अगले दृश्य में देखते हैं कि कृषि पर खर्च ज्यादा और आमदनी कम होने के कारण भी निम्न वर्ग का युवा खेती नहीं करना चाहते, ऐसी मानसिकता का पात्र दलबीर भी है जो खेती न करके कनाडा जाना चाहता है-

> दलबीर: एक तो पिता जी हमारी बात ही नहीं सुनते... यहाँ पर रह कर करना भी क्या है? आदमी सारी उम्र खेती में हाथ-पांव तुड़वाता रहता है ..... और फिर हमारे पास है क्या.....न ट्रैक्टर, न मोटर साइकल, बस टांगे तुड़वाते रहो.... आज पानी भी लगाना है ....कल खेत स्प्रे करो.. परसों कटाई करनी है.... (38)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम कह सकते हैं कि आज भारतीय युवाओं की पहली पसंद कृषि नहीं है, क्योंकि बहुत सारे ऐसे कारण हैं जिनकी वजह से कृषि की आमदन दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। जिसकी ओर कोई भी सरकार विशेष ध्यान नहीं दे रही। कृषकों की आर्थिक हालात को बेहतर करने के मकसद से 18 नवंबर 2004 को केंद्र सरकार ने एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय कृषक आयोग का गठन किया था। इस आयोग ने पाँच रिपोर्ट सौंपी थी, इस रिपोर्ट पर आज तक हमारी संसद में चर्चा तक नहीं हुई। यह एकमात्र तथ्य बताता है कि हमारी सरकारें और हमारे प्रतिनिधि कृषकों को लेकर कितना सोचते हैं। आज भी कृषक स्वामीनाथन आयोग की सिफारशों को लागू करने की माँग कर रहें हैं; पिछले कुछ सालों के आत्महत्याएँ के आंकड़ों की बात करें तो आधे से ज्यादा किसान नजर आते हैं, भारत का किसान मजबूरन इस प्रकार का कदम उठा रहा है, लेकिन त्रासदी इस बात की है, किसी भी सरकार ने इनकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। अशोक भटिया ने *दैनिक सवेरा* के 12 मार्च 2020 के अखबार में अपने लेख *राजनीतिक मुद्दों में खो गया किसान आत्महत्या का मुद्दा* में लिखते हैं-

> केंद्र सरकार ने कृषकों की समस्या पर विचार करने के लिए कई जाँच समितियां बनाई। बाद के वर्षों में कृषि संकट के कारण महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, आंध्र प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और छतीसगढ़ में कृषकों ने आत्महत्याएँ की। सत्ता में कोई भी रहे, कृषकों के लिए कोई भी दल गंभीर नहीं है। (03)

प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए, हम कह सकते हैं कि वर्तमान में भारतीय कृषकों की दशा बहुत गभीर है। आज कृषकों के सामने तीन महत्त्वपूर्ण समस्याएं हैं, पहला उनके ऊपर कर्ज़ का भारी दबाव, दूसरा उनकी फसल लागत में कमी नहीं आ रही और तीसरा उनकी फसल का उन्हें वाजिब दाम नहीं मिल रहा है। ऐसी समस्याओं के निवारण का अश्वासन प्रत्येक सत्ताधारी पार्टी देती है

लेकिन जमीनी स्तर पर कुछ दिखाई नहीं देता। भारत की सरकार को अन्नदाता की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

4.2.1.5 बदलते आर्थिक परिवेश में भ्रष्ट व्यवस्था का स्वरूप

रिश्वतखोरी

आज की आर्थिक व्यवस्था को खोखला बना रही है। रिश्वतखोरी का अर्थ है, घूस लेना। भ्रष्टाचार के योग में दो शब्द हैं, भ्रष्ट और आचार। भ्रष्ट का अर्थ है बुरा या बिगड़ा हुआ और आचार का अर्थ है आचरण। भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ हुआ- वह आचरण जो किसी प्रकार से अनैतिक और अनुचित हो। दूसरे शब्दों में कहें तो यदि लोक सेवक अपनी शक्ति, सत्ता एवं स्थिति का उपयोग जन कल्याण एवं जनहित की अपेक्षा स्वाहित या स्व कल्याण में करता है, तो इसे भ्रष्ट आचरण या रिश्वतखोरी कहा जाता है। यदि हम इसका अर्थ तकनीक एवं लोक प्रशासन के सन्दर्भ में देखते हैं, तो यह कानून, विधान, अधिनियमों के आवरण में ढंका हुआ है। भारतीय दंड संहिता की धारा 161 में रिश्वतखोरी के अर्थ को कानूनी दृष्टि से परिभाषित करें, तो इस विषय में बी.एल. फडिया *भारत में लोक प्रशासन* में लिखते हैं-

> जो व्यक्ति शासनीय कर्मचारी होते हुए या होने की आशा में, अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए विधिक पारिश्रमिक से अधिक कोई घूस लेता है, या स्वीकार करता है, अथवा लेने के लिए तैयार हो जाता है, या लेने का प्रयत्न करता है, या किसी कार्य को करने के लिए उपहार स्वरूप, या अपने शासनीय कार्य को करने में किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या अपेक्षा किसी व्यक्ति की कोई सेवा या कुसेवा का प्रयास, केन्द्रीय या अन्य राज्य सरकार या संसद या विज्ञान मंडल या किसी लोक सेवक के सन्दर्भ में करता है, तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास का दंड या अर्थदंड या दोनों दिए जा सकेंगे। (432)

रिश्वतखोरी का अर्थ एवं क्षेत्र को लोक सेवा के क्षेत्र में काफी व्यापक बताया गया है, इसके अनुसार यदि कोई शासनीय कर्मचारी जो उसे वेतन मिलता है, उससे अधिक पैसा स्वयं के लिए या किसी अन्य के लिए घूस के रूप में प्राप्त करता है या प्राप्त करने को तैयार हो जाता है, वह या तो उपहार लेता है या पक्षपात करता है, तो रिश्वतखोरी की परिधि में आता है।

हमारे देश में भ्रष्टाचार दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। यह हमारे समाज और राष्ट्र के सभी अंगों को बहुत ही गंभीरतापूर्वक तरीके से प्रभावित किए जा रहा है। राजनीति, समाज, धर्म, संस्कृति, साहित्य, दर्शन, उद्योग, प्रशासन आदि में भ्रष्टाचार इतनी अधिक मात्रा में फैल चुका है, कि इससे मुक्ति मिलना बहुत कठिन है। सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों के अनुकूल देखें, तो भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था और कानूनी स्तम्भों में कमी के कारण, यह समस्या बढ़ रही है।

आज किसी भी दफ्तर में जाने पर भ्रष्टाचार अपना मुँह खोले नज़र आता है। कोई भी फाइल किसी मतलब के आगे नहीं बढ़ती। पूँजीपति किसी रूप से अपना कार्य कर लेते हैं, लेकिन गरीब तथा कमजोर लोग इसमें फँस जाते हैं। उनके कार्य को महीने तथा सालों तक का इंतजार करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में निर्मल कुमार सिंह *अपराध और भ्रष्टाचार की राजनीति* में लिखते हैं-

> सेवाओं में या फिर नौकरशाही में भ्रष्टाचार आज भी उतनी ही बड़ी चिंता का कारण है। थानों, बुकिंग सैंटरों, सरकारी दफ्तरों, आवश्यक वस्तुओं के विवरण में और सरकार की विभिन्न कल्याण व विकास योजनाओं में इनका दंश सबसे तीखा है। यह बुराई आम लोगों या समाज के सबसे गरीब तबकों को सबसे ज्यादा चोट पहुँचाती है। (12)

इनके द्वारा योग्य उम्मीदवार को नकार दिया जाता है और उसके स्थान पर एक अयोग्य व्यक्ति की नियुक्ती की जाती है। इस गलत नियुक्ती के कारण एक तो योग्य व्यक्ति का आत्म मनोबल टूटता है और दूसरा वह व्यक्ति समाज के प्रति अपने फर्जों को नहीं निभा पाता। आधुनिक मनुष्य सभ्यता के उस मोड़ पर खड़ा है, जहाँ जीवन के सारे सम्बन्ध यश, प्रतिष्ठा एवं सुख शांति पैसों से प्राप्त किए जा सकते हैं, आज भ्रष्टाचार के द्वारा जो काम होने की संभावना भी नहीं रखता वह भी आसानी से हो जाता है। पीयूष मिश्रा के द्वारा रचित नाटक *गगन दमामा बाज्यो* में इस समस्या को बड़ी गंभीरता से लिया गया है। इस नाटक में एक पात्र काला बाजारी पर चर्चा करता हुआ कहता है-

> देखो भाई व्यापार-कारोबार के मूल की मानसिकता ज्यादा है और सुनो व्यापार का जाति और समुदाय नहीं बल्कि उसका आधार होता है पैसा और

परिवार। और यह भ्रष्टाचार व्यापार से ही तो फैलता है। मुनाफाखोरी जब तक बंद नहीं होगी, तब तक रिश्वत खोरी भी बंद नहीं हो सकती। लालच अब लाभ की चादर ओढ़ कर आता है तो ठीक। पर लालच जब सरकार की आड़ में ललचता है तो गलत। क्या यह दोहरा माप दण्ड नहीं है? लाभ की मनोवृति कालान्तर में लूट की प्रवृत्ति बन जाती है। ऐसे ही सत्ता मानी पॉवर में भी होता है। 'पैसे की चमक सबकी इच्छा चमकाती है'। (83)

आज के युग को शिक्षकों का युग कहा जाता है, आज भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी के नये-नये तरीके आ गये हैं। किसी भी दफ्तर में कोई भी काम कराने के लिए कुछ न कुछ देना पड़ता है। इस प्रकार की समस्या को अजय शुक्ला के नाटक *ताजमहल का टेंडर* में प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। *ताजमहल का टेंडर* वैसे तो एक काल्पनिक नाटक है, परन्तु कल्पना के द्वारा आधुनिक समस्याओं को ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसमें ताजमहल बनाने के लिए जिस ज़मीन को खरीदा गया था, उसकी अदायिगी के लिए छोटे से बड़े अफसर तक को रिश्वत देनी पड़ती है-

भइया जी: आप ही देख लीजिए क्या हाल है? कभी जहाँ जाओ चढावा देने, कभी उधर जाओ। बीच में तो एक बाबू ने कहा कि फ़ाइल ही खो गयी है। पूरा केस फिर से शुरू करना पड़ेगा। ढाई महीने बिल क्लर्क दबाए बैठा रहा। क्या बताऊं गुप्ता जी, चपरासियों तक ने नहीं छोड़ा। सभी को पता था, करोड़ों का मामला है।

गुप्ता जी: क्या बताएँ, बड़ा करप्शन फैल गया हर जगह।

सुधीर: हाँ सर, हर जगह भ्रष्टाचार है। ईमानदार आदमी का तो आजकल जीना मुश्किल है। (32)

आज देश एवं व्यवस्था का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहाँ रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार न फैला हो, नौकर शाही में रिश्वतखोरी इतनी हो गयी है कि छोटे से लेकर बड़ा कर्मचारी रिश्वत लिए बिना काम नहीं करता। रिश्वतखोरी ने भारतीय व्यवस्था को खोखला कर दिया है, इसी नाटक में ही गुप्ता जी जिसके पास ताजमहल बनाने का टेंडर है, वह भी बहुत भ्रष्ट है, उन्होंने ताजमहल बनते-बनते इसमें घोटाला करके खुद के लिए महल बना लिया। एक वार्तालाप के अनुसार-

भइया जी: यानी ताजमहल ने बादशाह की खाट खड़ी कर दी है।

गुप्ता जी: हाँ। यही समझिए।

भइया जी: पर एक बात है गुप्ता साहब, ये ताजमहल खड़ा हो या न खड़ा हो, पर इसके चक्कर में आपकी कई बिल्डगें खड़ी हो गईं, है ना। (71)

समाज को रिश्वतखोरी से बचाने के लिए हर नागरिक को जागरूक होना बहुत अनिवार्य और यह जागरूकता ज्ञान के द्वारा भाव शिक्षा के द्वारा प्राप्त होगी। आधुनिक युग के नाटककारों का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार की समस्याओं को प्रस्तुत करके समाज को जागृत करना है।

यदि पंजाबी नाटकों में इस प्रकार की समस्या देखें, तो पंजाब का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं होगा, जहाँ पर रिश्वतखोरी और भ्रष्ट व्यवस्था का बोल न बोला हो। पूरे भारत के साथ पंजाब के लोगों की भी ये ही त्रासदी है कि जहाँ पर ज्यादा रिश्वत उच्च वर्ग के लोगों से नहीं बल्कि मध्य और निम्न वर्ग से ज्यादा ली जाती है। ओंकारप्रीत सिंह के द्वारा रचित नाटक *प्रगटिओ खालसा* में हम देखते हैं कि बड़े लोग रिश्वत के द्वारा किसी भी फैसले को अपनी ओर कर लेते हैं और गरीबों की कोई सुनवाई नहीं होती। इस नाटक में हम देखते हैं कि एक गरीब परिवार काजी के आगे फरियाद करते हैं कि साहूकार से जो उनका अधिकार बनता है; दिला दिया जाए, जिसके कारण काजी साहूकार को भी वही बुला लेता है। गरीब औरत अपने छोटे बच्चे की ओर संकेत कर न्याय की गुहार लगाती है, उसी समय साहूकार काजी को दूसरी ओर ले जाता है और वहाँ उसकी जेब में कुछ पैसे डाल देता है। रिश्वत मिलने के बाद काजी साहूकार का पक्ष लेते है और गरीब परिवार को वहाँ से चले जाने को कहता है। गरीब औरत और मर्द उस काजी के पैर पकड़ लेते हैं और न्याय की भीख मागते हैं, लेकिन काजी अपने आदमियों से कह कर, उन्हें बाहर निकालने को कहता है, उस समय गरीब औरत कहती है-

लूटे पूटे .....डिगे डठे ..

लोक आते हैं

मुनासिफ द्वार पर।

वह गिड़-गड़ाते इंसाफ के लिए..

लाचार खड़े ..... हाथ पसार।

लोटू तो रिश्वत लेकर .... मुनासिफ

किरती लोगों को देते दुरकार। (05)

गुरचरन सिंह जसूजा का नाटक *कंधा रेत दियां* भी इस समस्या से सम्बंधित है। इस नाटक में आधुनिक युग की भ्रष्ट व्यवस्था को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक का मुख्य पात्र कुंदन सिंह है जो एक ईमानदार अफसर है और मध्यवर्ग से सम्बंधित है। कुंदन सिंह के दफ्तर के सारे मुलाजम इस बात से बहुत दुखी हैं कि यह रिश्वत क्यों नहीं ले रहा। उसके दफ्तर की एक उर्मिला नामक लड़की दूसरे मुलाजमों के विषय में कहती है -

उर्मिला: उन्होंने चिल्लाना तो हुआ। छ: महीने हो चले हैं आपको यहाँ आए उन्हें खोटी कोड़ी भी खाने को नहीं मिली। पहले दो-दो हाथों से रिश्वत लेते थे।

कुंदन सिंह: हम सब सरकारी मुलाजम हैं। हमारे सिर पर लोक भलाई की जिम्मेदारी होती है। किसी भी तरह की हेरा-फेरी अथवा लापरवाही लोगों के साथ विश्वासघात करने वाली बात है। (37)

कुंदन सिंह को अपनी ईमानदारी के कारण बहुत सारी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है लेकिन कुंदन सिंह अपने विचारों पर दृढ़ रहता है, हमारे देश में आज भी कुंदन सिंह जैसे हजारों अधिकारी हैं, जो ईमानदारी से काम करते हैं। इस नाटक की भूमिका लिखते हुए पंजाबी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. हरचरन सिंह कहते हैं-

इस नाटक में हमारे वर्तमान समाज में जहर की तरह घुले भ्रष्टाचार की समस्या को प्रस्तुत किया है। इस धीमे रोग को प्रकट करके और एक आशावादी सुझाव देकर जसूजा ने बहुत बड़ी सेवा की है। (15)

अत: प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी के नाटकों की तुलना करते हुए कह सकते हैं कि भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था और कानूनी स्तम्भों में कमी के कारण, यह समस्या बढ़ रही है, लेकिन रिश्वतखोरी का सबसे प्रथम व सर्वप्रमुख कारण देखें, तो आधुनिक भौतिकतावादी सभ्यता इसका प्रमुख कारण है, जिसने लोगों को अत्यधिक स्वार्थी बना दिया है। बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थों की अधिकतम पूर्ति करता है, चाहे वह उचित ढंग से हो या अनुचित ढंग से। यह स्वार्थ-भावना दोनों तरफ रिश्वतखोरी को प्रोत्साहित करती है।

4.2.1.6 बदलते परिवेश में व्यावसायिक व्यापार की त्रासदी

वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है, इस युग में आधुनिक आविष्कार होने के कारण हमारे समाज को बहुत सरल बना दिया है। मनुष्य ने अपने सुख-प्राप्ति के उद्देश्य के लिए प्रकृति के साथ खिलवाड़ किया है, जिस कारण प्रकृति में विघटन उत्पन्न हो गया है और प्राकृतिक आपदा जैसे बाढ़, तूफान, भूकंप, सुनामी, हिमस्खलन, ज्वालामुखी और सूखा आदि पहले से अधिक होने लगे हैं। जिस कारण बहुत विनाश हो जाता है। वर्तमान समय में लागत लेखांकन भी बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया। प्रत्येक उत्पादनकर्ता चाहे वह कृषक हों, मजदूर हों या सामान्य मनुष्य। वह अपने लागत एवं खर्च का लेखा रखता है। लागतों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए वह हर संभव प्रयास करता है। लागत लेखा एवं लागत मूल्य का उपयोग सभी स्तरों पर एवं सभी विभागों द्वारा किया जाता है, वह चाहे कृषक हों, मजदूर हों, व्यापारी हों चाहे कारोबारी हों, लेकिन सभी वर्ग लागत कम और मुनाफा अधिक कमाना चाहते हैं, लेकिन हो सबके साथ विपरीत रहा है। भारत में उत्पादन के क्षेत्र में आधुनिक प्रोद्योगिकी का अभाव है, शोध एवं अनुसन्धान पर कम निवेश किया जाता है। निजी क्षेत्र में नवीन प्रोद्योगिकी पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। पुरानी तकनीक होने के कारण भारतीय उत्पादन अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार का सामना नहीं कर सका। योजनाबद्ध विकास के दौर में विश्व स्तर पर भारतीय विकास तीव्र गति नहीं पकड़ पाया। जिसके कारण प्रत्येक क्षेत्र में लागत अधिक और मूल्य कम का प्रभाव देखने को मिला है और व्यावसायिक व्यापार पतन की ओर जा रहा है।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से विज्ञान और तकनीक एवं बड़े औद्योगीकरण के कारण परिवेश का बदलाव देखा जा सकता है। आज के उपभोक्तावादी युग में हर वस्तु की कीमत दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। निम्न वर्ग के कारोबारियों को अपने काम चलाने में बहुत-सी मुश्किलें आ रही हैं। बड़े कारोबारियों के पास पूँजी, साधन एवं उच्च तकनीक होने के कारण, उन्हें किसी समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। वर्तमान में बड़े-बड़े शापिंग माँलस खुलने से सामान्य उद्योग पर गहरा प्रभाव देखने को मिला है, इससे छोटे उद्योग करने वालों को अपने जीवन निर्वाह में ही कमी महसूस होने लगी है।

बड़ी कंम्पनियों के आगमन से छोटा उत्पादक विनाश की ओर जा रहा है। अब लग रहा है कि भारत बड़ी कंम्पनियों की फिर से गुलामी की दिशा की ओर बढ़ रहा है।

हिन्दी नाटकों में डॉ. मधु धवन के द्वारा रचित नाटक *आज की पुकार* के पात्र भी भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण पर अपनी चिंता प्रकट करते हैं, सभी पात्र विदेशी वस्तुओं के प्रति अपनी निराशा व्यक्त करते हैं, क्योंकि उनके मुकाबले हमारे भारत की वस्तु नहीं बिक रही और हमारे देश का पैसा हमारे लोगों की अपेक्षा बाहर के लोग वसूल रहें हैं। इस विषय पर दया और रामदेई नामक पात्र चिंता जहर करते हैं-

दया: यह कहाँ से मिला?

रामदेई: यह चाइना बाज़ार से लाये हैं। यह बड़े काम की चीज है।

दया: (हाथ में लेकर देखते हैं) चीनी आज भी अपनी मजदूरी बेच रहें हैं। वे अपने उत्पादन बड़ी मात्रा में बना रहें हैं। विशाल भवन बना रहें हैं। दुनिया के किसी भी कोने में चले जाओं चीनी मिले या न मिले पर चीनी सामान खूब बिकता है। चीन के मुकाबले भारत आज भी गरीबी ढो रहा है। व्यापारी खात्मे की कगार पर है। भारत को महान बनाने के जो सपनें हमने कुछ वर्ष पहले देखने शुरू किये थे, वे आज चकनाचूर हैं। (18)

भारतीय बाज़ार में देखे तो आज छोटे दुकानदारों और व्यापारों को अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ता है। जब ये लोग अपनी पारिवारिक जरूरतों को भी पूरा नहीं कर पाते उसके भीतर हीन भावना बढ़ जाती है। व्यावसायिक व्यापार को बहुत सारे तथ्य प्राप्त करते हैं। इन कारणों में घरने, प्रदर्शन और दंगे भी हैं, जब दंगे-फसाद होते हैं तो आम लोगों के साथ-साथ यह वर्ग भी बहुत प्रभावित होता है। किशोर कुमार सिन्हा के नाटक *धारा एक सौ चवालीस* में हम देखते हैं कि दंगों के कारण हालात इतने बिगड़ जाते हैं कि कर्फ्यू लगाने की नोबत आ जाती है। हम देखते हैं कि धारा एक सौ चवालीस लगा दी जाती है, जिसके तहत एक स्थान पर पाँच से अधिक लोग इकठ्ठे नहीं हो सकते, जिसके कारण बाजार में मंदी का दौर आ जाता है-

सब्जी वाला: भइया ..... बच बचकर आया हूँ.... गलियन-गलियन ... बहुत सा समान तो पुलिस वाले ले गये हैं .... अब का करे कशु कहो तो डंडा परत है कमर पे...

मनोहर: आलू क्या भाव

सब्जी वाला: चार रूपिया किलो

मनोहर: महँगा है.... लूट है....

सब्जी वाला: मंडी खाली है..... का करें आवें ही नहीं फल सब्जी सारा, व्यावसायिक व्यापार खात्मे के कंगार पर है। (29)

दूसरे दृश्य में हम देखते हैं कि कुछ दुकानदार, व्यापारी और आम लोग बैठे हुए आपस में बातचीत कर रहे हैं-

विजय: सुना है..... बारह बजे से .... एक घण्टे के लिए खुलेगा बाजार आज....

विनोद: दूध नहीं मिला आज सुबह ..... डबल रोटी तो गायब हो गई पाँच दिनों से .....देश में कुछ भी हो, नुकसान तो हमारे व्यापारी वर्ग का होता है, एक काम बंद दूसरा खाने को कुछ नहीं। (30)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देखते हैं कि देश में कहीं भी दंगे-फसाद हों, इनका सबसे ज्यादा नुकसान आम दुकानदार और व्यापारी वर्ग को होता है,

यदि पंजाबी नाटकों से तुलना करें, तो इस भाषा के नाटककार प्रत्येक काल में ऐसी समस्याओं के प्रति चिंतित रहे हैं। आधुनिक युग की त्रासदी का नायक एक साधारण मनुष्य है और उसकी सादगी का यथार्थ रूप नाटककारों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। चयनित पंजाबी नाटकों में गुरचरन सिंह जसूजा का नाटक *परियां* और स्वराजबीर के नाटक *कल्लर* में इस समस्या को देखा जा सकता है। *परियां* नाटक में मिसिज मेहता एक निम्न वर्ग की स्त्री है और उसका पति बलवंत सिंह एक नशेड़ी व्यक्ति है। मिसिज मेहता एक प्राइवेट नौकरी करती है, जिससे वह अपना गुजारा मुश्किल से करती है और ऊपर से उसका पति बलवंत, उससे जबरदस्ती पैसे लेने आता है। मेहता अपनी त्रासदी को प्रकट करती हुई कह रही है- "मिसिज मेहता:

हर महीने अपनी तनखाह में से एक हजार रुपए तुझे दे देती हूँ। मैं इससे ज्यादा नहीं दे सकती। इतने खर्च में मेरे पास कुछ नहीं बचता।" (79)

इसके आलावा स्वराजबीर के नाटक *कल्लर* का मुख्य पात्र विदेश जाना चाहता है, उसका मानना है कि जहाँ आमदन कम और लागत अधिक है। एक आम व्यक्ति की दशा को प्रस्तुत करता हुआ कहता है-

> दलबीर: जहाँ की कोई ज़िन्दगी है? कभी खाद खत्म....कभी सुसाइटी वालों का झगड़ा....कभी बैंक की किश्त का और कभी कुलवंत शाह का ....! जहाँ तो कुछ भी करलो किसी भी काम में कोई मुनाफा नहीं। (78)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देख सकते हैं कि आज कोई भी वर्ग अपनी आमदनी से संतुष्ट नहीं है। बदलते परिवेश के अनुसार हम कह सकते हैं आज प्रत्येक वर्ग की यही आवाज है कि 'हमें कुछ नहीं बचता'।

प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए कह सकते हैं कि वर्तमान युग में जन-सामान्य के साथ आम कारोबारियों का भी बुरा हाल है। विज्ञान और तकनीक एवं बड़े औद्योगीकरण के कारण छोटा कारोबारी खत्म होता जा रहा है। प्रत्येक ईमानदार व्यक्ति की आज आमदनी कम और खर्च अधिक होता जा रहा है। बदलते परिवेश में व्यावसायिक व्यापार की त्रासदी और निराशा का यह प्रतीक है।

4.2.1.7 बदलते आर्थिक परिवेश में बढ़ती गरीबी दर

गरीबी आय के उस स्तर को कहते हैं, जिससे कम आमदनी होने पर इन्सान अपनी भौतिक जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ होता है। भारत में गरीबी एक विकराल आर्थिक समस्या ही नहीं, अपितु एक भयंकर सामाजिक रोग भी है। यह सच है कि गरीबी का स्वरूप आर्थिक होता है, परन्तु इसके फलस्वरूप जो सामाजिक दुष्परिणाम सामने आते हैं, उनसे स्वाभाविक सामाजिक सम्बन्धों का तानाबाना बहुत कुछ टूट-सा जाता है, इसी गरीबी का रूप भारत में दिखायी देता है, वैसे यह समस्या अकेले भारत तक सीमित नहीं रही, यह अंतर्राष्ट्रीय समस्या बनती जा रही है। डॉ. रविन्द्रनाथ मुकर्जी और डॉ. भारत अग्रवाल के द्वारा रचित *भारतीय समाज: मुद्दे एवं समस्याएँ* में लिखा है-

> वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में गरीबी एक तुलनात्मक शब्द है, यह शब्द एक देश की विशेष जनसंख्या के, विशेष वर्ग का बोध करता है। अनुमान है कि विश्व की सम्पूर्ण गरीब आबादी का तीसरा हिस्सा भारत में है। रंगराजन की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञ समूह के अनुसार भारत में वर्ष 2011-2012 में गरीबी का अनुपात 29.5 प्रतिशत था। जबकि तेंडुलकर समिति के अनुसार 29.5 प्रतिशत था। (05)

गरीबी उस समस्या को कहते हैं, जिसमें व्यक्ति अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ यथा रोटी, कपड़ा और मकान को पूरा करने में असमर्थ होता है। भारत में गरीबी एक मूलभूत आर्थिक एवं सामाजिक समस्या है। वैसे आर्थिक विकास की दृष्टि से भारत की गिनती विकासशील देशों में होती है। आर्थिक नियोजन की दीर्धावधि के वाबजूद भारत को गरीबी की समस्या से मुक्ति नहीं मिली है। देश की बहु-संख्यक जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन जीने के लिए मजबूर हैं और इनकी संख्या बदलते आर्थिक परिवेश में बढ़ती जा रही है।

हम देखते हैं कि हिन्दी नाटककारों ने गरीबी, भुखमरी की ओर विशेष ध्यान दिया है। परिवेशजनित परिस्थितियों से संघर्ष करता यह आम आदमी जीवन के हर क्षेत्र में किस प्रकार पीड़ित हो रहा है। इससे हिन्दी नाटककारों ने हमें रूबरू करवाया है। नादिरा जहीर बब्बर के द्वारा रचित नाटक *सकुबाई* में हम देखते हैं कि शंकुतला की बहन बसंती गरीबी के चलते घर से भाग गई। पैसे कमाने के लिए वह गलत रास्ते को अपना लेती है। जिसके चलते वह बाद में आत्महत्या भी कर लेती है। पुलिस वाले शंकुतला को सूचना देते हैं- "धन्धा करती थी। पंखे से लटककर मर गई।" (45) हम देखते हैं कि धन के अभाव में प्राय: लोग गलत कामों की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं, जिसका परिणाम उन्हें भारी कीमत चुकवा कर देना पड़ता है। शकुंतला लोगों के घरों में बाई का काम कर अपने परिवार का पेट भरती है क्योंकि उसका पति बीमार है। उसके पति के इलाज के लिए भी उसके पास पैसे नहीं हैं। वह पाठकों को अपनी बदहाली बताती हुई कहती है-

> सरकारी अस्पताल। ...सरकारी अस्पताल में न कोई किसी की सुनता है और न ही कुछ बताता है। मैं तो कहती हूँ कि गरीब के बीमार होने से अच्छा है उसका मर जाना। कितनी-कितनी महँगी दवाइयाँ, सुइयाँ, डॉक्टर की फ़ीस ...। तपासी

का खर्च। फिर फल-फ्रूट ...। ताकत की गोली जूस.....। रोज़-रोज़ आना-जाना ... बस का किराया ....। ऊपर से छुट्टी हम गरीब कहाँ से करेंगे बाबा ...। (57)

इस प्रकार उसकी बहन के बाद उसके पति की भी मौत हो जाती है। इस नाटक के विषय में जयदेव तनेजा *आधुनिक भारतीय नाट्य-विमर्श* में लिखते हैं-

गरीबी निश्चित ही एक बड़ा अभिशाप है। यह मानवीयता के उस स्तर तक गिरा देता है जहाँ से उसे अपनी छोटी बहन की मौत पर इसलिए खुशी होती है कि यदि शादी के बाद मरती तो कितना पैसा बर्बाद हो जाता। इसी तरह अपने एड्स पीड़ित पति को बचाने का हर सम्भव प्रयत्न करने के बावजूद सकूबाई को लगता है कि 'गरीब के बीमार होने से अच्छा है उसका मर जाना'। (289)

स्वदेश दीपक के द्वारा रचित नाटक *काल कोठरी* में भी छुपी गरीबी को देखा जा सकता है। इस नाटक का मुख्य पात्र रजत है, जो थिएटर का कर्मी है, लेकिन कुछ दिनों से काम न मिलने के कारण बेरोजगार है। उसकी पत्नी मीना, उसे हर रोज़ गरीबी का ताना मारती रहती है। रजत चाह कर भी कुछ नहीं कर सकता और गरीबी में एक त्रास भरा जीवन व्यतीत करने को मजबूर है-

मीना: मार दो भूखा हम सबको, कला के नाम पर। करते रहो थिएटर। और कुछ नहीं तो एक लम्बी रस्सी ला दो। चार लोगों को फांसी लगाने के लिए, लम्बी रस्सी। हर रोज़ की भूख से तो लम्बी रस्सी सस्ती भी है और सुखद भी।

रजत: मीना! थोड़ा धीरे बोलो। सब जाग जाएंगे।

मीना: जाग जाएंगे। सोया ही कौन है कि जाग जाएगा। सुना है कभी कि भूखे पेट नींद आती हो। (09)

इस प्रकार हम गरीबी को महसूस कर सकते हैं कि एक बेरोजगार और गरीब व्यक्ति के लिए अपना जीवन निर्वाह करना, कितना मुश्किल हुआ पड़ा है। चयनित नाटकों में ही डॉ. मधु धवन का नाटक *आज की पुकार* में पात्र मास्टर जी नाटक के अंत में सभी को संबोधन करते हुए आज की सभी समस्याओं पर चिंता प्रकट करते हैं-

आज हम इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में हैं किन्तु समस्याएँ दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही हैं। इन भोले-भाले ग्रामीणों को कैसे बताऊं कि आर्थिक उत्थान और नैतिक पतन होता जा रहा है। आज समय अतीत की गाथाओं को गाने का

> नहीं है, अपितु आज की सच्चाई से रुबरू होने का है। आज गरीबी, बेरोजगारी बढ़ती जा रही है और अपहरण, फिरौती की मोटी रकम माँगी जाती है। ऐसी स्थिति इन सबके लिए आ सकती है.... (39)

चयनित नाटककारों ने आर्थिक शोषण को अपने नाटकों का विषय बनाया है। पूंजीपति, सेठ, साहूकार और जमींदार आदि परम्परागत लीक पर शोषण करने में लगे हुए हैं। शासन की सत्ता में विद्यमान लोगों ने अनेक आर्थिक योजनाओं का ताना-बाना बुना जो वक्त बीतने के साथ-साथ स्वयं में भी बीत गया, परन्तु शासन तन्त्र के आश्वासनों का वैभवशाली पुल आज भी खड़ा है। पीयूष मिश्रा के द्वारा रचित नाटक *गगन दमामा बाज्यो* में स्वतंत्रता सेनानी शिवा वर्मा बताते हैं कि उनके साथी भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु इस देश के लिए शहीद हो गये और वह स्वतंत्र भारत में जीवित हैं-

> शिवा वर्मा: मैं आज भी जिंदा हूँ ....। इस आजाद भारत में जिसका सपना वे देखा करता था.....। उसका सपना ....। सुकून की सांसे होगी... भूख और गरीबी का नामोनिशान न होगा... अत्याचार न होगा ... चीख-पुकार नहीं होगी। लेकिन .. अफसोस ... (111)

हमारे देश में इतना विकास होने के बाद भी हम देखते हैं कि इसका बहुत बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहा है, जो अपनी रोटी, कपड़ा, मकान के आलावा कुछ और सोचने की क्षमता नहीं रखता।

पंजाबी नाटकों से तुलना करें, तो पंजाबी के ज्यादातर नाटककार मध्य वर्ग से जुड़े हुए हैं, उन्होंने जो समाज में देखा समझा उसको अपने नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत किया। आधुनिक युग में गरीबी दर बढ़ने के बहुत-से कारण हैं, इन कारणों में से एक कारण नशा भी है जो निर्मल जौड़ा के नाटक *सौदागर* में देखा गया है और दूसरा अपनी आमदनी से ज्यादा खर्च करना, यह अजमेर सिंह औलख के नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* में देखा गया। यदि हम सौदागर नाटक की बात करें, तो इसके जागर और जंटा नामक दो इस प्रकार के पात्र हैं, जिनके पास पहले ज़मीन-जायदाद सब कुछ था, लेकिन नशों के कारण उन्होंने सब कुछ बेच दिया, अब गरीबी का जीवन व्यतीत कर रहें हैं। जागर नशेड़ी की पत्नी मिन्दों जब जागर को ढूंढती हुई, जंटे के पास आती है तो वहाँ भी नशे करते हुए को देखकर बहुत दुखी होती है और उन्हें

छोड़ने का पक्का मन बना लेती है। नाटककार ने कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है कि उनकी गरीबी का कारण नशा है।

इस प्रकार अजमेर सिंह औलख का नाटक *निक्के सूरजां की लड़ाई* का मुख्य पात्र चरना एक अच्छा-खासा, किसान-जमींदार था, लेकिन अपने पूँजी के ज्यादा खर्च, समाज में बनावटी दिखावा, बीमारीयों पर खर्च और कोर्ट-कहचरी के चक्कर में उसकी सारी ज़मीन बिक जाती है और अब वह मिल में मजदूरी करने के लिए मजबूर हो जाता है। एक दिन उसके चाचे का बेटा दविंदर जानबूझ कर उसे छोटा दिखाने के लिए मिल में आ जाता है-

दविंदर: चरने भाई आप कहाँ...

चरना: (कुछ बोलने की हिम्मत न होने के कारण) ...असल में ...मैं ....

नछतर (कामा) असल में.. असल में क्या भाई ...! तू सीधा स्पष्ट बोल दे के मैं मजदूरी करता हूँ यहाँ ! लुकावा किस बात का ..... (47)

इस प्रकार यदि हम जतिंद्र बराड़ के नाटक *पायदान* की बात करें, तो इस नाटक में आज की गरीबी का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक के माध्यम से उन्होंने मानवी भावनाओं को हिला देनी की वास्तविकता को प्रस्तुत किया है। इस नाटक की मुख्य पात्र एक डॉक्टर है और उसके दो नौकर रामू और बीरो है, जिनकी त्रासदी को नाटककार ने प्रस्तुत किया है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने इस बात को स्पष्ट किया है कि गरीब के दुःख-दर्द को वही व्यक्ति समझ सकता है, जिसने खुद अनुभव किया हो-

"रामू: देखो गरीब बंदे के दुःख का अहसास उसी को ही महसूस होता है, जिसने इस दुःख को भोगा हो।" (59)

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉक्टर की नौकरानी बीरो की बेटी की मौत भूख से हो जाती है और मौत समय भी उसकी भूख मिटाने की इच्छा अधूरी रह जाती है। वह बेहोशी की हालत में उभरती है, जिसको देखकर चारों तरफ सनाटा छा जाता है-

(गुडी बेहोशी की हालत में एक बाजू ऊपर कर इशारा करती है। मंच के पीछे गुडी की आवाज आती है)

आवाज़: माँ ! ओ देखो रोटी ! देखो माँ .... इतनी रोटीयां ...वो भी एक साथ ....।

(बाजू एक दम गिर जाती है और साथ आवाज़ भी बंद हो जाती है, लेकिन उदास संगीत की धुन चलती रहती है) (69)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से नाटककार ने एक गरीब की बच्ची की मानसिकता को प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार वह सारा जीवन भूख में व्यतीत करती है और पेट भर भोजन के लिए तड़फती रहती है। आज के पंजाबी नाटककारों ने इस समस्या को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया है। इस विषय में रेशम सिंह *सत्ता सिद्धान्त और पंजाबी नाटक* में लिखते हैं कि "पंजाबी के इक्कीसवीं शताब्दी के नाटककार आर्थिक आधार पर गिर रहे मीनार और निम्न वर्ग की त्रासदी को विशेष रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं।" (93)

अत: प्रस्तुत दोनों भाषाओं के नाटकों की तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि बदलते आर्थिक परिवेश में बढ़ती गरीबी दर के प्रमुख कारण अशिक्षा, बेरोजगारी, और जनसंख्या का दबाव है, साथ ही औद्योगीकरण के कारण छोटे लोगों का काम बंद होने के कारण भी गरीबी बढ़ी है, इसके प्रभाव के कारण अनपढ़ता, कुपोषण बीमारियां, बाल-मजदूरी, बेरोजगारी, सामाजिक चिंता, घर की समस्या और अपराधों का बढ़ना आदि हैं, जिन्हें प्रस्तुत नाटकों के माध्यम से हम देख रहे हैं, इसके साथ ही यदि हम गरीबी और निर्धनता को दूर करने के उपायों के विषय में लिखें, तो इसके लिए हमें तकनीकी शिक्षा का प्रसार करना होगा, जनसंख्या पर नियंत्रण के उपाय, रोजगार के अवसर उत्पन्न करने पड़ेंगे, महँगाई पर नियन्त्रण करना पड़ेगा, कृषि क्षेत्र का विकास और गरीबों के लिए विशेष गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम पर विशेष ध्यान देना होगा।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से कहें, तो स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय आर्थिक व्यवस्था को एक पूर्ण संगठित नियोजन की आवश्यकता थी, इसलिए भारत ने योजना-आयोग की स्थापना की, जिसमें सम्पूर्ण विकास कार्य किया जा सके, लेकिन दुर्भाग्य से यह कहा जा सकता है कि हम किसी भी योजना के द्वारा अपनी सम्पूर्ण समस्याओं का निवारण नहीं निकाल सके। भारत के दिहाती क्षेत्रों में तकनीकी शिक्षा का प्रसार न होना, बड़े

औद्योगीकरण के कारण छोटे लोगों का काम बंद होना और विज्ञान और तकनीक के कारण ज्यादा मजदूरों के स्थान पर कम मजदूरों के आ जाने के कारण छोटे वर्ग के लोगों का जीवन निर्वाह बहुत मुश्किल से चलने लगा। भारत में योजना आयोग के सामने सबसे बड़ी समस्या आज की डावाडोल आर्थिकता है। वर्तमान समय में अलग-अलग नीतियां वित्तीय असंतुलन को कम करने के लिए बनायी जाती हैं और प्रत्येक योजना में घरेलू उत्पादन को बढ़ाने पर ज़ोर दिया जाता है, लेकिन प्रत्येक योजना अपने लक्ष्य को पूरा करने में सफल नहीं हो पा रही। वर्तमान में तो हमारे देश की जी.डी.पी बढ़ने की अपेक्षा घटते क्रम की ओर जा रही है, जिसके कारण हमारे देश की आर्थिक स्थिति दिन प्रतिदिन डावाडोल होती जा रही है। भारत सरकार और आर्थिक विशेषज्ञों को इसकी ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

दूसरे शब्दों में कहें तो यह सही है कि राष्ट्र-राज्य के कमजोर होने से बहुत-सी अपेक्षित अस्मिताओं के स्वर सामने आने लगते हैं। किसानों, दलितों, बेरोजगारों, भ्रष्टाचार और पीड़ित महिलाओं के मुद्दों का अंतर्राष्ट्रीयकरण भी हुआ है। परन्तु इस आवाज को उठाने का एक बड़ा कारण भूमंडलीकरण भी है। यह राष्ट्र निर्माण और राष्ट्र की प्रगति के हिमायती नहीं कहे जा सकते, हम देख रहे हैं कि इन पूंजीपतियों की दखल-अंदाजी तेजी से बढ़ रही है। पहले इन लोगों को राष्ट्र-राज्य से आरक्षण और विशेष कानून के माध्यम से थोड़ी सुरक्षा मिल जाती थी, लेकिन भूमंडलीकरण ने यह कवच भी छीन लिया। किसानों की आत्महत्या, मजदूरों का शोषण, पलायन, गरीबी और आर्थिक असमानता जैसी घटनाएँ इक्कीसवीं शताब्दी में तेजी से बड़ी हैं। यही कारण है कि वैश्वीकरण के इस दौर में पुराणी जीवन-शैलियों को बचाने की लड़ाई महत्त्वपूर्ण हो गई है।

दोनों भाषाओं के नाटकों के तुलनात्मक बिन्दुओं की बात करें, तो हम कह सकते हैं कि दोनों भाषाओं के नाटककारों ने समकालीन अर्थ सम्बंधित विसंगतियाँ, अर्थात् जन-सामान्य की समस्याओं को अपने नाटकों का विषय बनाया। हिन्दी नाटककारों में ग्रामीण तथा दूसरी ओर महानगरीय परिवेश की ज्वलंत समस्याओं जैसे गरीबी, भ्रष्टाचार, बेरोजगार और अर्थ आधारित बदलते मानवीय मूल्यों को पंजाबी नाटकों की तुलना में ज्यादा गहराई से प्रस्तुत किया है, जिसकी उदाहरण हम हृषिकेश सुलभ के नाटक *अमली* में देख सकते हैं। इक्कीसवीं शताब्दी का पंजाबी नाटककार हिन्दी की तुलना में कृषकों और प्रवासियों की आर्थिक दशा को ज्यादा

सजगता से प्रस्तुत कर रहा है, जिसकी उदाहरण स्वराजबीर के नाटक *कल्लर* में देखी जा सकती है। इस प्रकार कामकाजी नारी के शोषण के विविध पक्षों पर दोनों भाषाओं में नाटक लिखे गये हैं। भ्रष्टाचार के निवारण जैसे नये विषयों पर हिन्दी नाटककार डॉ. मधु धवन ने अपना नाटक *आज की पुकार* को प्रस्तुत किया है जो पंजाबी में नहीं मिलता।

पंचम अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: मनोवैज्ञानिक पक्ष

5.1.1.1 मनोवैज्ञानिक परिवेश का अर्थ, सामान्य मनुष्य के लिए इसकी महत्ता और मनोवैज्ञानिक परिवेश के परिवर्तन के कारण

मनोविज्ञान एक व्यक्तिगत इकाई है, जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया जा सकता है। मनुष्य के व्यवहार में हाथ पैर हिलाना, हँसना, बोलना आदि शारीरिक क्रियाएं होती हैं। मनोविज्ञान; व्यक्ति के इस व्यवहार के द्वारा अनुभव लगाने का प्रयत्न करता है। ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में अनेक शाखाओं का जन्म हुआ। उनमें मनोविज्ञान का स्थान सबसे ऊपर है। मनोविज्ञान ने मानव जीवन को बहुत गहराई से प्रभावित किया है। वैसे तो मानव ने जब से होश संभाला है, उसी दिन से वह अनजाने से ही मनोवैज्ञानिक का कार्य करने लगा है। हिन्दी में मनोविज्ञान शब्द अंग्रेजी के 'साइकोलॉजी' शब्द का सामनार्थक और रूपांतरित रूप है। 'साइकोलॉजी' अर्थात् मन का विज्ञान है और विज्ञान शब्द का अर्थ 'विशिष्ट ज्ञान' से है। इसका मूल अर्थ आत्मा का अध्ययन है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनोविज्ञान के अंतर्गत मानव मन का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है। डॉ. एस.एस. माथुर *सामान्य विज्ञान* में लिखते हैं-

> अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त 'psychology' शब्द का हिन्दी भाषा में रूपांतरण 'मनोविज्ञान' है। 'psychology' शब्द लैटिन भाषा के 'psyche' और 'Logs' के इन दो शब्दों के योग से बना है। 'psyche' शब्द का अर्थ है 'आत्मा', और 'Logs' का अर्थ है 'विज्ञान', आत्मा और उससे सम्बन्ध तथ्यों का अध्ययन दर्शनशात्र का विषय है। (03)

इस प्रकार यदि हरिकृष्ण रावत के *समाजशास्त्र विश्वकोश* के अनुसार देखें तो-

> मानव के मस्तिष्क अथवा मानसिक दशाओं तथा प्रक्रियाओं के अध्ययन करने वाले ज्ञान की शाखा को मनोविज्ञान कहा गया है। इसमें मानव प्रकृति का अध्ययन किया जाता है। (277)

मनुष्य का मन अदृश्य और अस्पष्ट है। उसकी स्थिति का पता मनुष्य के व्यवहार से लगता है। संसार में संपन्न होने वाले सभी कार्यों का मूल आधार मानव का हृदय और मस्तिष्क है। मानव के मन का आंतरिक पक्ष, उसके कार्य को दिशा प्रदान करता है, बहुत-सी शारीरिक क्रियाओं का कारण कोई-न-कोई मानसिक या भावनात्मक स्थिति होती है। डॉ. श्रीमती लक्ष्मी शुक्ला *भारतीय मनोविज्ञान* में लिखती हैं- "मानव के प्रति मानव चिंता को समझने, समझाने, देखने, बूझने के प्रयत्न को मनोवैज्ञानिक अध्ययन कहते हैं।" (40)

मनोविज्ञान का उद्देश्य मानव की चेतना का विश्लेषण और अध्ययन करना ही था, लेकिन फ्रायड ने मनोविश्लेषण सम्बन्धी कई नयी संकल्पनाओं का प्रतिपादन किया, जिस पर हमारा आधुनिक मनोविज्ञान टिका हुआ है। फ्रायड ऐसे प्रथम मनोवैज्ञानिक है, जिन्होंने मूल प्रवृत्तियों को मानव व्यवहार का निर्धारक तत्व माना है। फ्रायड, अर्नस्ट ब्रुकी से काफी प्रभावित थे और उन्हीं की प्रयोगशाला से कार्य प्रारम्भ किया था। फ्रायड ने अपने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों में काम चेतना को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया, उन्होंने अपनी रचना *ए जनरल इंट्रोडक्शन टू साइको एनालिसिस* (अनुवाद) में लिखा है-

> मानसिक शक्ति काम (Libido) से उत्पन्न होती है। यह काम समस्त जीवन सम्बन्धी मूल प्रवृत्तियों की शक्ति है तथा यही बालक के व्यवहार की प्राथमिक चालक शक्ति भी है। व्यक्तित्व की गत्यात्मकता इसी काम संतुष्टि की आवश्कता से शामिल होती है। (35)

जुंग और एडलर, फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद के कई बिन्दुओं से सहमत थे। परन्तु फ्रायड द्वारा सैक्स पर अत्यधिक बल दिए जाने को उन्होंने अस्वीकृत कर दिया। जुंग ने मनोविश्लेषण में सांस्कृतिक विरासत के दखल पर और एडलर ने सामाजिकता पर बल दिया।

मानव अपने अंतर्मन में एक जिज्ञासु प्रवृत्ति लेकर जन्म लेता है। मनुष्य अपने अस्तित्व का रहस्य खोजने के लिए, आत्मा की खोज करता है। आत्मा की खोज करते हुए भावों और मनोभावों का अध्ययन मनोविज्ञान परिवेश के अंतर्गत होता है। साहित्य में मानव के भावों और मनोविकारों को प्रथम स्थान दिया जाता है। विभिन्न मानवीय समस्याओं को सुलझाने में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता

है। मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनोविज्ञान का व्यावहारिक उपयोग, उसकी समस्याओं के समाधान करने एवं उसके कल्याण के लिए किया जाता है। आदिकाल के मानव की बात करें, तो उनका जीवन आज के मानव के जीवन की तुलना में स्वच्छंद और सरल था। आज के मानव का जीवन पश्चिमी भौतिकतावादी सभ्यता और औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप उलझनग्रस्त हो गया है। उसका मानसिक जगत अनेक द्वंद्वों और संघर्षों का स्थान बन गया है। इसलिए उसके मन की सम्पूर्ण गतिविधियों का अध्ययन करना मनोविज्ञान का लक्ष्य बन गया। मनोविश्लेषण एक विशेष युक्ति है, जिसके द्वारा अज्ञात मन के अंदर स्थित द्वन्द्व एवं भावना ग्रन्थियों की जानकारी प्राप्त की जाती है। सभी प्राणियों का समुचित व्यवहार उनकी मानसिक शक्ति के उद्गम और वितरण का अध्ययन करता है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक अध्ययन एक मानव-मानसिक उपचार विधि भी है। इसकी अपनी धारणाएं तथा मान्यताएं हैं। डॉ. लाभ सिंह *असामान्य मनोविज्ञान के मूल तत्त्व* में लिखते हैं-

> प्रेम, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, स्वार्थ आदि मनोभावों के घात-प्रतिघात के आधार पर किसी भी कलाकृति का स्थूल रूप से वर्णन मनोविज्ञान के द्वारा दिया जा सकता है। मन की अवस्थाएं भी नये दृष्टिकोण से विवेचित की जाने लगी हैं। उन्हें चेतन, अचेतन और अर्द्ध चेतन तीन भागों में विभाजित किया जा चुका है। इसका सर्वप्रथम विश्लेषण फ्रायड ने किया, उन्होंने वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर 'मन' को विश्लेषित किया था। (35)

मनोविज्ञान का उपयोग शैक्षिक, राजकीय, सामाजिक, औद्योगिक तथा धार्मिक आदि कई क्षेत्रों में होता है। मनुष्य के मानसिक व्यवहार के स्वरूप का अनुमान और नियंत्रण रखने के लिए मनोविज्ञान सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक युग में मनोविज्ञान नवीनतम विधा है। आधुनिक युग का प्रारम्भ हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग से माना जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान की खोज, चिकित्सा विज्ञान के विद्वानों की देन है, इन खोजों की शुरुआत फ्रायड के द्वारा की गयी। डॉ. सूर्यदेव शास्त्री *मनोविश्लेषण और भाषा* में लिखते हैं-

> मनोविश्लेषण का जन्मदाता सिगमण्ड फ्रायड थे, अत: प्रमुख रूप से मनोविश्लेषण से उन्हीं के सिद्धान्त का बोध होता है। कला और साहित्य पर भी उनके विचारों का बहुत ही प्रभाव पड़ा है। फ्रायड के सिद्धान्त को यौनवाद भी

कह सकते हैं। इनके अनुसार ही कला और धर्म, दोनों का उद्भव अचेतन मानस की संचित प्रेरणाओं और इच्छाओं में ही होता है। (14)

मनुष्य का मन अचेतन है, मन के इस भाग में मनुष्य की ऐसी इच्छाएँ और आवश्यकताएँ होती हैं, यह भाव व्यक्ति में संगठित हो जाते हैं और वह व्यक्ति के अचेतन मन को संगठित नहीं होने देते। इस भाव की ग्रन्थियों को मानसिक भाव कहते हैं। मानसिक रोगी के मन में ऐसी अनेक प्रबल ग्रन्थियों की स्थापना होती है। इस प्रकार के रोगी को स्वयं कोई ज्ञान नहीं रहता। ऐसी ही दमित ग्रन्थियाँ अनेक प्रकार के मानसिक तथा शारीरिक रोगों में होती हैं। जिनका समाधान भी मनोविज्ञान से किया जाता है। फ्रायड ने *इंटरप्रिटेशन ऑफ़ ड्रीम्स* (अखिलेश शर्मा के द्वारा अनुवादित *सपनों का मनोविज्ञान*) नामक ग्रन्थ में इन्होंने यह बताने की चेष्टा की है- "रोगियों द्वारा अनुभव किए गए कई लक्षण प्रच्छन्न थे और दमित विचारों और इच्छाओं के अप्रत्यक्ष प्रतिबिंब थे, इसलिए मनोविश्लेषण को प्रमुख लक्ष्य माना" (53)

आधुनिक युग बुद्धि प्रधान युग है। किसी भी बात को तर्क की कसौटी के द्वारा प्रस्तुत करना मानव की सहज प्रवृत्ति बनी हुई है। वैज्ञानिक प्रगति के कारण आज मानव आस्था और विश्वास के आधार पर कोई तथ्य स्वीकार नहीं करता। जीवन और जगत को देखने की एक पूर्ण वैज्ञानिक एवं बौद्धिक दृष्टि पाने के कारण नित नए-नए सत्यों का उद्घाटन होता जा रहा है। आधुनिक मनोविज्ञान दिन प्रतिदिन प्रगति की ओर बढ़ता हुआ मानव का सर्वव्यापी विकास कर रहा है। मनोविज्ञान का लक्ष्य विभिन्न दिशाओं में मानव की समस्याओं का समाधान करना है। यह व्यक्ति की मानसिक जटिलताओं का अध्ययन वैज्ञानिक रीति से करके, भविष्य में उसके जीवन को सरल तथा सरस बनाने के लिए प्रयत्नशील है। आधुनिक मनोविज्ञान, व्यक्ति की मानसिक शक्तियां जैसे चेतना, स्मृति, कल्पना आदि का वैज्ञानिक परिक्षण करके उनका समुचित विकास करता है, इनकी सीमाओं के अंतर्गत शिक्षा मनोविज्ञान, चिकित्सा, उद्योग, राजनीति, युद्ध और विश्वशांति जैसे परिवेश सम्मिलित हो चुके हैं।

आज के अशांति युग में आकांक्षापूर्ति का आनंद जब दुर्लभ हो रहा है, तब अन्य स्वप्नों की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। जब बीसवीं शताब्दी में मनुष्य का व्यक्तित्व संघर्ष की ओर बढ़ रहा था, तो उसी के अनुकूल मनोविज्ञान अपना स्वभाव बदल रहा है डॉ. श्रीमती लक्ष्मी शुक्ला *भारतीय मनोविज्ञान* में लिखती हैं- "उन्नीसवीं शताब्दी के

अंतिम वर्षों में और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में हमने अपनी समस्याओं की तरफ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखना शुरू किया।" (22) आज व्यक्ति की सभी क्रियाओं के मूल में काम करने वाली प्रवृत्तियों को पहचानना महत्त्वपूर्ण माना जाता है। किसी कृति को गलत घोषित करने की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक तथ्यों की सहायता से, उसके पीछे छिपी हुई रहस्य ग्रन्थि को सुलझाना उचित होता है। राजकीय नेताओं के सत्याग्रह, अनशन, मिल मजदूरों की हड़ताल आदि संघर्ष का मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के द्वारा निवारण किया जाता है। मनोविज्ञान वह मानवीय विज्ञान है, जिसमें चेतन प्राणियों विशेषत: मानव की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन होता है और जिसका प्रदर्शन शारीरिक व्यवहार से होता हैं तथा जिनका निरीक्षण प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा किया जाता है। मानव जो भी व्यवहार समाज में रहते हुए करता है, वह उसकी अपनी चेतना के द्वारा संचालित होता है। जो भी वह स्वयं सोचता है, उसका आचरण समाज में करता है। इलाचंद्र जोशी ने *दैनिक जीवन और मनोविज्ञान* में लिखा है-

> मनुष्य के भीतर कम-से-कम दो व्यक्तित्व सदा, सब समय वर्तमान रहते हैं। उसका एक व्यक्तित्व उसे अपनी स्वाभविक इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रेरित करता है और दूसरा व्यक्तित्व समाज के कई नियमों के पालन के लिए उत्कंठित रहता है। (88)

आज मनोविज्ञान सिर्फ महाविद्यालयों में अध्ययन का विषय ही नहीं रहा है, व्यवहार में भी, दिन प्रतिदिन इसका उपयोग बढ़ता जा रहा है। साहित्य ने मनोविज्ञान से काफी प्रेरणा प्राप्त की है। साहित्य और मनोविज्ञान का गहरा सम्बन्ध है। साहित्य को जीवन दर्शन कहा गया है, क्योंकि उसमें मानव और समाज के व्यक्तित्व और प्रवृत्तियों का प्रतिबिंब परिलक्षित होता है। मानव समाज की एक इकाई है। उसकी अन्तब्रह्म प्रवृत्तियां ही साहित्य में उतर जाती हैं। साहित्य का सच्चा सहायक मनोविज्ञान है। डॉ. नगेन्द्र ने अपने *श्रेष्ठ निबन्ध* नामक रचना में लिखा है- "संसार का अधिकांश साहित्य की अभिव्यक्ति ही तो है। उसकी तीव्रता और वैभव विकास का जन्म प्राय: कुंठाओं से ही होता है।" (101)

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनोविश्लेषण से तात्पर्य मानव के मन का विश्लेषण करना है। मानव के अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक पीड़ा, आंतरिक संघर्ष को परख कर उसे व्यक्त करता है। फ्रायड ने काम-भावना के साथ अचेतन एवं अवचेतन-मन और मनोग्रन्थियों को महत्त्वपूर्ण अवधारणा के रूप में स्वीकारा, तो एडलर ने मानव-

जीवन की प्रेरक शक्ति के रूप में आत्मचिंतन को स्वीकार किया तथा कार्ल युंग ने सामूहिक स्तर पर भाव-प्रतिभा को मानव-संस्कृति से जोड़ा। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस प्रकार दर्शन ने साहित्य-जगत को मनोविज्ञान दिया, उसी प्रकार मनोविज्ञान ने भी मनुष्य को मनोविश्लेषण की पद्धति प्रदान कर अपने लोकहितकारी दायित्य से जोड़ा। मनोविश्लेषण के विकसित सिद्धान्तों ने साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया। साहित्यकारों ने समाज की विषमता, यथार्थ एवं मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के मनोवैज्ञानिक रूप को स्वीकार किया है।

यदि हिन्दी और पंजाबी के नाट्य साहित्य में मनोवैज्ञानिक परिवेश की बात करें, तो साहित्य मानव-मन की अभिव्यक्ति है और उस अभिव्यक्ति का मन के स्तर पर किया गया विश्लेषण मनोवैज्ञानिक शोध कहलाता है। हम देखते हैं कि रचनाकार अपनी कृति में स्वयं ही विद्यमान रहता है, वह समाज की बात करते हुए भी अपने निजी भावों को स्थान देता है। इस प्रकार की रचनाओं में रचनाकार की भावाभिव्यक्ति का अध्ययन मनोवैज्ञानिक शोध के द्वारा ही संभव होता है। इस प्रकार चयनित नाटकों से जुड़े हुए, विविध पहलूओं को रेखांकित करते हुए, उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

इस अध्याय में दोनों भाषाओं के नाटकों की तुलना करते हुए, तुलनात्मक प्रविधि को अपनाया और तुलनात्मक अध्ययन के समय पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोणों का सहारा भी लिया गया, साथ ही नाटकों के माध्यम से विभिन्न मनोवैज्ञानिक कारकों के जनसमुदायों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक, आलोचनात्मक और समाजशास्त्रीय प्रविधियों को भी अपनाया गया। जिसके अंतर्गत 'बदलते परिवेश में नैतिक अवमूल्यन का मनोवैज्ञानिक पक्ष', 'वर्तमान युग में सामान्य जन में कुंठा और एकान्तप्रियता की भावना', 'बदलते परिवेश में अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित वर्ग की त्रासदी', 'आत्मविश्वास की कमी और अकेलापन की भावना', 'प्रेम वासना और प्राकृतिक काम से पीड़ित युवा', 'बदलते मनोवैज्ञानिक परिवेश में कल्पना और स्वप्न', 'नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' और 'पुरुष पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' आदि तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है।

5.2.1 2000 से 2018 के चयनित नाटकों में बदलते परिवेश के मनोवैज्ञानिक तत्त्व

5.2.1.1 बदलते परिवेश में नैतिक अवमूल्यन का मनोवैज्ञानिक पक्ष

नैतिक मूल्य से तात्पर्य एक इन्सान के ऐसे अच्छे गुणों से है, जिससे उसके परिवार एवं समाज का विकास शांति से होता है। नैतिक मूल्यों को हम मनोवैज्ञानिक के साथ मिला कर देख सकते हैं। नैतिकता कोई आधुनिक खोज नहीं है। शताब्दियों से दर्शनशास्त्री मानव व्यवहार को समझने के कर्म में इसके विभिन्न आयामों की पहचान करते रहे। हरदेव बाहरी ने *वृहत हिन्दी कोष* में नैतिकता के विषय में लिखा है- "नैतिकता- नीति सम्बन्धी, नैतिक कर्त्तव्य के बारे में अच्छा तथा बुरा काम, यह एक विशेष उद्देश्य, धर्म, समूह या पेशे के लिए सदाचरण की संहिता या पद्धति है।" (382)

फ्रायड ने अपनी रचना *ए जनरल इंट्रोडक्शन टू साइको एनालिसिस* (अनुवाद) में मानसिक रचना के तीन भाग मुख्यत: बताए हैं 1. इदं 2. अहम 3. पराअहम। यह तीनों भाग परस्पर अंतर सम्बंधित है। फ्रायड ने तीसरे भाग पराअहम (super-ego) को नैतिकता से जोड़ने का प्रयास किया है। उन्होंने लिखा है-

> मानसिक संरचना का तृतीय भाग पराअहम है। यह पूर्ण रूप से नैतिक अभिकरण है जो समाज द्वारा अधिकृत एवं स्वीकृत नैतिक सूत्रों के अनुसार कार्य करता है। जिस व्यक्ति का पराअहम जितना अधिक विकसित होगा वह व्यक्ति बुरे आचरणों हुए लोभों का संवरण करने में उतना ही अधिक सक्षम होता है। (93)

नैतिक मूल्यों को समझदार लोग अच्छे रास्तें पर चलने का मार्ग और ईमानदारी से जीवन व्यतीत करने का सिद्धान्त बताते हैं, साथ ही नैतिक मूल्यों की पालना करने वाले बड़ों की इज्ज़त करते हैं और सत्यभाषी होते हैं। वे कभी भी झूठ नहीं बोलते, लेकिन बदलते परिवेश से आधुनिक युग में इनमें बहुत बदलाव आ गया है। अब लोग सबसे ज्यादा झूठ का सहारा लेते हैं, जो हमारे नैतिक मूल्यों के खिलाफ

है। हमारे जीवन और समाज में नैतिक मूल्यों का बहुत महत्त्व रहा है, आधुनिक युग में भले ही हम पढ़ाई पर ज्यादा ज़ोर दे रहें हैं, लेकिन फिर भी लोग नैतिक मूल्यों को नहीं समझ पाते, वह अपने जीवन में भले ही कितने बड़े अफसर बन जाएं और कितना पैसा कमा लें, लेकिन नैतिक मूल्य जिसके पास नहीं हैं, वह किसी के प्रति भी सहृदय की भावना नहीं रख सकता। जो नैतिक मूल्यों को नहीं समझ पाते, उनके पास सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं होता। आज हमारे समाज में अनेक तरह की विकृतियों ने जन्म ले लिया है, जिसमें झूठ, फरेब, बड़े बुजुर्गों की इज्जत न करना, भ्रष्टाचार आदि यह सब एक तरह से नैतिक मूल्यों का ह्रास ही है। आज हम सब को चाहिए कि हम प्रेम पूर्वक अपने समाज में रहें और नैतिक मूल्यों को समझें।

बदलते परिवेश में नैतिक अवमूल्यन की बात करें, तो भारतीय समाज में आदिकाल से लेकर वर्तमान युग तक, परम्पराओं एवं नैतिक मूल्यों के परिवेश में बदलाव सदैव आता रहा है। सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में नैतिक अवमूल्यन देखें, तो भारतीय परम्पराओं का त्याग और ग्रामीण एवं शहरी विकास के कारण परिवेश में बदलाव को मुख्य मान सकते हैं, क्योंकि ग्रामीण सभ्यता पर शहरी सभ्यता का प्रभाव दिखने लगा और शहरी सभ्यता पर महानगरीय और पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव साफ़ दिखने लगा है। जिसके कारण यह बदलाव नज़र आ रहा है। विशेष रूप से हमारे देश के सामाजिक क्षेत्र में नैतिक परम्परा का अधिक प्रभाव रहा है। आज भी गाँवों एवं नगरों में नैतिक परम्पराएँ जीवित हैं, लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय समाज में परम्परागत मूल्यों, विश्वासों और रूढ़ियों का विघटन कुछ ज्यादा ही हुआ है। इन परम्परागत मूल्यों के विघटन के स्थान पर नये मूल्यों और विश्वासों का निर्माण हुआ है। जो युगीन परिस्थितियों में बदलाव ला रही है। इन नैतिक मूल्यों में परिवर्तन के साथ ही आधुनिक शिक्षा पद्धति के प्रसार से सामाजिक क्षेत्र में क्रांति आयी है। इस समाज में बने विधान में जन्म लेते ही व्यक्ति के सम्पूर्ण विचारों और भावनाओं का निर्माण हो जाता था। जन्म के साथ ही जाति, धर्म, समाज आदि परम्पराएँ प्राप्त हो जाती हैं। किन्तु आधुनिक जीवन पद्धति में सामाजिक बन्धन कमजोर हुए हैं और व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास में बाधाएँ आने लगी। *भाषा* पत्रिका के जुलाई-अगस्त 2019 अंक 285, में छपे डॉ. संदीप रंभिरकर के आलेख *नैतिकता में बदलाव* में लिखा है-

> नयी चेतना के संस्पर्श और नए विचारों की सुगबुगाहट से जब आस्थाएँ ढहने लगती हैं, तब सारी नैतिक मान्यताओं पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया जाता है।

> परिणामस्वरूप अजनबीपन की समस्या धीरे-धीरे उसके मानस में गहराने लगती है। इस प्रकार मशीनी सभ्यता ने आज मनुष्य और जगत के बीच अलगाव की स्थिति उत्पन्न कर दी। इससे उबरने के लिए मनुष्य छटपटा रहा है। (19)

हिन्दी नाटकों में बदलते परिवेश में नैतिक अवमूल्यन की बात करें, तो आज सभी वर्गों में यह समस्या देखने को मिल रही है, लेकिन शिक्षित वर्ग नैतिकता को ज्यादा नकार रहा है। डॉ. मधु धवन के नाटक *आज की पुकार* में हम देखते हैं कि एक दयानिधि नामक व्यक्ति इस बात पर चिंता प्रकट करता है कि मजदूर तो इसलिए ठगा जाता है क्योंकि वह अनपढ़ है, लेकिन ठगने वाला ठेकेदार तो पढ़ा-लिखा होता है, दयानिधि सवाल करता है कि पढ़ने-लिखने से जो नैतिकता आनी चाहिए थी, वह आज खत्म हो रही है, तो आगे से मास्टर जी कहता है कि पढ़ा-लिखा होने के साथ-साथ आदमी को संस्कारी होना भी जरूरी है, इस प्रकार बदले नैतिक मूल्यों पर वे सब बातचीत करते हैं-

> गंगाधर: आप ठीक कहते हैं मैं कितनी बार घंटों सोचता रहता हूँ कि इतना पढ़ लिखकर आदमी बदल क्यों जाता है।..... कपट और चालबाजियों में महिर हो जाता है .....क्यों?
>
> मास्टर: संस्कारी भी होना जरूरी है।
>
> रामलाल: दया भइया, मैं तो आप से जानना चाहूँगा कि पढ़ लिखकर आदमी इतना बदल क्यों जाता है?
>
> (दयानिधि मास्टर जी की ओर देखता है।)
>
> मास्टर जी: क्योंकि वह पढ़ लिखकर चतुर लोभी बन जाता है। आत्म सिमित और मतलबी हो जाता है। (16-17)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देख सकते हैं कि फ्रायड के सिद्धान्त अहम और पराअहम के अनुसार आज हमारे समाज में किस प्रकार नैतिकता खत्म होती जा रही है, एक समय हुआ करता था। जब सभी लोग प्रेम, स्नेह, सद्भावना के साथ जीवन यापन करते थे। एक दूसरे के सम्मान तथा बढ़ोत्तरी के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार रहते थे, परन्तु वर्तमान समय बिल्कुल विपरीत हो चुका है। आज तो एक

पति-पत्नी के बीच भी नैतिकता खत्म होते जा रही है, उसकी जगह छल-कपट तथा स्वार्थ ने ले ली है और नैतिक मूल्यों एवं मर्यादाओं का ह्रास होता हुआ नजर आ रहा है। इस विषय से सम्बंधित स्वदेश दीपक का नाटक *काल कोठरी* है। इस नाटक का मुख्य पात्र रजत है और वह बेरोजगार है, जिसके कारण उसकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं है। आर्थिक दशा अच्छी न होने के कारण उसकी पत्नी मीना उसके साथ हमेशा झगड़ा करती रहती है, झगड़े के दौरान वह सारी नैतिक मर्यादाओं को पार कर जाती है और अपने ही पति से कहती है- "दस सालों में जितनी बार तुम्हारे साथ सोई हूँ, अगर दूसरे मर्दों के साथ लेटती तो अपनी कोठी होती, अपनी कार होती। जानते हो अर्थ एक आदमी से प्रेम का।" (11) इस नाटक के माध्यम से हम कह सकते हैं कि स्वार्थ एवं पाखंड के कारण मानव जीवन मूल्यहीन हो चुका है। फलस्वरूप समाज में विश्रृंखलता उत्पन्न हो रही है।

यदि पंजाबी नाटकों के विकास में नैतिक अवमूल्यन की बात करें, तो आज के पंजाबी नाट्य साहित्य में बहुत सारे नाटक इस विषय से सम्बंधित मिल जाएंगे, उन नाटकों में पाली भूपिंदर सिंह का नाटक *चंदन दे ओहले* भी है, जुंग के मनोविश्लेषण सिद्धान्त सांस्कृतिक विरासत में दखल के अनुसार हम इस नाटक की कथा में देखते हैं कि परिवार के सारे सदस्य अपने विदेश जाने के स्वार्थ पर अपनी बेटी की शादी एक बुजुर्ग से करने को तैयार हो जाते हैं, जिस का विरोध उस बेटी के द्वारा किया जाता है, लेकिन उसकी एक नहीं सुनी जाती। इस नाटक का ही एक शर्मा नामक पात्र, इस स्थिति को देखते हुए कहता है-

> शर्मा: इतिहास की किताब के उस पृष्ठ पर, जिस पृष्ठ पर काले रंग के अक्षरों में कमीनापन लिखा हुआ था। वह कमीनापन की रंगत मिल रही है, एक मासूम बेटी की इच्छाओं का खून। इस शब्द में ही खत्म हो रहे रिश्तों का अर्थ भी दफन हो गया। इनसे अच्छा था नीम का पत्ता खा कर रिश्ता तोड़ लेते। (62)

नाहर सिंह औजला के द्वारा रचित नाटक *सुपर वीज़ा* में भी इस समस्या का यथार्थ रूप देखा जा सकता है। इस नाटक का मुख्य पात्र मनप्रीत (मनू) है जो पंजाब के मध्य वर्ग से सम्बंधित करतार सिंह का पुत्र है। कुछ समय पहले मनप्रीत अपने पिता करतार सिंह और माता धर्म कौर को अपने पास विदेश में बुला लेता है। मनप्रीत स्वयं तो माता-पिता के साथ रह कर बहुत खुश होता है, लेकिन उसकी पत्नी हरमन के लिए यह सब सहन करना बहुत कठिन हो जाता है। हरमन सब नैतिक

विचारों को भूल कर अपने सास-ससुर के साथ बुरा व्यवहार करती है। मनप्रीत की माता एक दिन मनप्रीत की बेटी ज्योति को स्कूल वैन से उतारने में लेट हो जाती है, तभी हरमन उसको बहुत बोलती, जिसका विरोध उसका पति मनप्रीत करता है। जिस कारण दोनों पति-पत्नी में झगड़ा रहने लगता है। आज हमारे समाज के लोग अपनी नैतिक दिशा को भूल रहें हैं। इस स्थिति में मनप्रीत मानसिक रूप से पीड़ित हो जाता है, क्योंकि वह अपने माता-पिता को भी नहीं छोड़ सकता और अपनी पत्नी हरमन को भी समझाने में असफल रहा। यह सब देखकर करतार सिंह और उसकी पत्नी वापस लौटने का फैसला कर लेते हैं, क्योंकि वह नहीं चाहते कि उनकी वजह से इनका रिश्ता खत्म हो जाए-

> करतार सिंह: हरमन पुत्र तुम अपनी अपने ढंग से जिओं, हमने वापस जाने का फैसला कर लिया। हमें नहीं मालूम था कि यह सुपर वीज़ा हमारे लिए इतनी मुश्किल खड़ी करेगा। हम तो बड़े ख़ुशी से तुम्हारे पास आए थे, लेकिन यहाँ तो रिश्तों को डॉलरों से तोला जाता है। अब हम यहाँ नहीं रह सकते। (30)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देखते हैं कि हरमन के माता-पिता अपने साथ अनैतिक व्यवहार को देखकर बहुत दुखी होते हैं और अपने बेटे बहु के रिश्ते में कोई टकराव न आए इस कारण भारत वापस आ जाते हैं। एडलर के मनोविश्लेषण सिद्धान्त के अनुसार सामाजिकता में बदलाव देख सकते हैं।

अत: प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि बदलते परिवेश में भारत की पुरानी परम्परा अलोप होती जा रही है, आज पुराने संस्कार बहुत कम देखने को मिलते हैं। नैतिक अवमूल्यन के मनोवैज्ञानिक पक्ष को देखते हुए हम यह भी कह सकते हैं, कि नैतिकता हमें बुरे-भले में अंतर सिखाती है एवं जीवन को अनुशासित और मर्यादित करती है। हम इसे किसी पुस्तक से पढ़कर नहीं सीख सकते, अच्छे सांस्कृतिक वातावरण में रहने, कलुषित भावना को त्यागने आदि से प्राप्त की जा सकती है। बदलते परिवेश में हम जहाँ एक पक्ष नहीं ले सकते कि हमारे समाज में सम्पूर्ण बदलाव आ गया है। हाँ, लेकिन इतना कह सकते हैं, मानवीय रिश्तों में जो मेल-मिलाप बढ़ना था, उसके विपरीत बदलाव हो रहा है। वैज्ञानिक युग आ जाने के कारण हमारी बाहरी दूरी तो कम हो गयी, लेकिन रिश्तों के भीतर की दूरी बढ़ती जा रही है।

5.2.1.2 वर्तमान युग में सामान्य जन में कुंठा और एकान्तप्रियता की भावना

इसमें कोई संदेह नहीं है कि आज के विचार-जगत में फ्रायड ने भारी क्रांति की है और हमारे युग की जीवन दृष्टि पर जाने-अनजाने उनका गहरा प्रभाव है। बदलते मनोवैज्ञानिक परिवेश को प्रस्तुत करें, तो आज हम कुंठा (निराशाजन्य) और एकान्तप्रियता की भावना को बढ़ते हुए देखा जा सकता है। हरदेव बाहरी ने *वृहत हिन्दी कोष* में कुंठा के विषय में लिखा है- "कुंद या भोथरा किया हुआ, सकुचाया हुआ, लज्जित, अयोग्य, निराश अथवा ऐसी लज्जा या संकोच जो आगे बढ़ने में बाधक हो।" (140)

वर्तमान युग में यह स्पष्ट हो चुका है कि कुंठा और एकान्तप्रियता की भावना से व्यक्ति का मानसिक तनाव बढ़ जाता है और उसके भीतर की दमित इच्छाएं, चाहे वे चेतन धरातल पर हों या अचेतन धरातल पर हों, व्यक्ति का मन गुप्त या उसकी जागृतावस्था दोनों में सक्रिय रहता है। जब उन इच्छाओं को अभिव्यक्त होने अथवा बाहर निकालने का कोई मार्ग नहीं मिलता तो, उस क्रिया के कारण जो तनाव होता है, उससे ही अनेक प्रकार की कुंठाएं जन्म लेती हैं। इस प्रकार विफलता से जो कुंठा और एकान्त की भावना उत्पन्न होती है, वह उसकी असंतुष्ट प्रेरणाओं तथा उसकी मानसिक अवस्थाओं का लक्ष्ण होते हैं। डॉ. लाभ सिंह *असामान्य मनोविज्ञान के मूल तत्त्व* में कुंठा और एकान्तप्रियता के विषय में लिखते हैं-

> निराशा या नैराश्य प्रेरणा में कुंठित होने से उत्पन्न आघात के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होती है, प्रथम- निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति की प्रगति में बाधाएँ आ जाने से। द्वितीय- निश्चित एवं उचित वस्तु के उद्देश्य का न होने से। (58)

कुंठा और एकान्तप्रियता एक ऐसा मनोविकार है, जिससे व्यक्ति वांछित वस्तु की पूर्ति न होने पर ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है, जहाँ उसमें व्याकुलता पैदा हो जाती है। इस मनोविकार के कारण व्यक्ति सही निर्णय नहीं ले पाता है, वह किसी-न-किसी कारण से कुण्ठित रहता है। यह विकार जब बढ़ता चला जाता है, तो व्यक्ति क्रोध भी अधिक करने लगता है। जीवन जीते हुए व्यक्ति को इच्छाओं की पूर्ति सहज रूप में संभव नहीं हो पाती। इससे उसके अहम को ठेस लगती है। हम देखें, तो मानसिक स्तर पर व्यक्ति के सामने द्वंद की स्थिति आ जाती है। व्यक्ति के भीतरी ही

एक संघर्ष चलता रहता है, जिसे अन्तर्द्वन्द्व कहा जाता है, इसके कारण व्यक्ति अनिर्णय की स्थिति में पहुँच जाता है।

मानव जीवन विभिन्न विपदाओं, भिन्न मानसिक स्थितियों एवं मनोवृत्तियों का मिश्रण है। मन वायु से अधिक गतिमान होता है। इसलिए व्यक्ति की इच्छाओं और लक्ष्य में समानता संभव नहीं। परिस्थितिवश प्रत्येक मनुष्य का कार्य समान हो सकता है, लेकिन जीवन दर्शन एक जैसा नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का जीवन के प्रति दृष्टिकोण उसके निजी लाभ-हानि और स्वार्थ के अनुरूप ही निर्धारित होता है। उन परिस्थितियों में जो घटना और हताशा की स्थिति उसे किसी सीमा तक विवश कर देती है, उसी स्थिति को विद्वानों ने कुंठा और एकान्तप्रियता की संज्ञा दी है। सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से कुंठा और एकान्तप्रियता की संज्ञा देखें, तो भारतीय परम्परा का त्याग, सभ्यता और संस्कृति के विकास और शिक्षा के प्रसार के कारण इस समस्या ने अपना विशाल रूप धारण कर लिया है।

आज हम देख रहें हैं कि पुरुष के साथ नारी भी अपने परिवार का संचालन करने के लिए आगे बढ़ रही है। पुरुष की भांति आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के बावजूद नारी से यह अपेक्षाएँ की जाती है, वह घर परिवार को पूरी तरह से संभाले और आर्थिक रूप से भी परिवार को सुदृढ़ रखे। लेकिन वर्तमान युग में कुछ स्थितियाँ इस प्रकार की बन जाती है, जिसमें अकेली औरत को ही कुंठा का शिकार होना पड़ता है। विभा रानी के द्वारा रचित नाटक *आओ ! तनिक प्रेम करें* में हम देखते हैं कि एक नारी नौकरी पेशा से सम्बंधित है और घर बाहर दोनों को संभालती है। नौकरी से थक कर जब घर आती है, तो घर का काम भी करती। वह सास-सासुर, बच्चों और पति की सेवा में कोई कमी नहीं रखती। यहाँ तक घर की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए वह सारा हिसाब-किताब पति को देती रही, लेकिन उसका पति उसकी कमाई को नशे में उड़ा रहा होता है। सब जानते हुए भी वह घर न टूटने के डर से कुंठा का शिकार हो जाती है और उन्हें कुछ चाह कर भी कुछ नहीं कह सकती। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि इच्छाएँ पूरी नहीं हो पातीं, तो वे अचेतन मन में आ जाती हैं। फ्रायड का मानना है कि अचेतन मन एक प्रकार का निष्क्रिय मन है। इस प्रकार इस नाटक के माध्यम से हम एक कामकाजी महिला के अचेतन मन में कुंठा को देख सकते हैं कि किस प्रकार वह घर का भी सारा काम करती है, कमाती भी है और

अपनी इच्छाओं को मार कर पैसा भी जोड़ने का प्रयास करती है, लेकिन उसका पति सब कुछ खत्म कर रहा है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज अकेली औरत ही कुंठा का शिकार नहीं हो रही बल्कि पुरुष भी इसका शिकार हो रहा है, ऐसी भावनाओं से सम्बंधित सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक *चार यारों की यार* भी है। इस नाटक की मुख्य पात्र बिंदिया है, जिसकी पहले शादी एक शराबी के साथ हुई थी और बाद में उसे छोड़ कर, उन्होंने मास्टर सीताराम से शादी कर ली। सीताराम बहुत अच्छा व्यक्ति था और बिन्दिया को खुश भी रखता था, लेकिन बचपन की गलतियों के कारण वह नपुसंकता का संताप भोग रहा था। इस का इलाज करवाने के लिए वह कुछ दिनों के बाद दिल्ली भी जाता था, लेकिन बिन्दिया अपने-आपको कंट्रोल में नहीं रख सकी और वह मास्टर सीताराम के दोस्त जीवन के सम्पर्क में आती है और जीवन अपने साथ और तीन व्यक्तियों को लेकर आता है, जिनके साथ वह कुकर्म करती है। मास्टर सीताराम को अपनी पत्नी के विषय में सब पता चल जाता है, वह आत्मचिंतन करते हुए अपनी कुंठा को प्रकट करता है-

> मुझसे सचमुच बहुत भूल हो गयी ... गलती हो गयी.....मुझे ऐसी हालत में शादी नहीं करनी चाहिए थी.... सोचा था, शादी करने के बाद शायद... नहीं तो इलाज कराकर ठीक हो ही जाऊँगा ...(26)

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त में जिस आत्मचिंतन को निर्धारित किया था, उसकी उदाहरण हम इस पात्र के माध्यम से देख सकते हैं। प्रस्तुत नाटक के माध्यम से हम कह सकते हैं कुछ समय पहले मोहन राकेश द्वारा रचित नाटक *आधे अधूरे* में सावित्री आर्थिक रूप से परेशान होकर अपने परिवार से भागना चाहती थी तो आज के नाटककार की पात्र बिन्दिया मानसिक और काम चेतना के कारण अपने पति को छोड़ना चाहती है। प्रस्तुत शोध के उद्देश्यों में ऐसे पात्रों की मनोदशा को जाँचते हुए आधुनिक परिवेश को प्रस्तुत करने का निर्णय लिया था। बिन्दिया की मनोदशा को जानते हुए हम कह सकते हैं कि समय, स्थिति, स्थान और परिवेश प्रत्येक व्यक्ति को बदलने के लिए मजबूर कर देते हैं।

पंजाबी नाटकों के साथ तुलना करें, तो हिन्दी नाट्य-साहित्य की तरह पंजाबी नाटकों में भी इस प्रकार का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण देखने को मिला है। पंजाबी में नौरा रिचर्ड, आई.सी. नंदा और बलवंत गार्गी ने सामान्य जन की समस्याओं को

समझते हुए, उसे अपने नाटकों की कथाओं में पात्रों की मनोदशा के द्वारा प्रस्तुत किया था। उनके बाद यदि हम समकालीन पंजाबी नाट्य साहित्य में मनोवैज्ञानिक नाटककार देखें, तो गुरचरण सिंह जसूजा का नाम भी आता है, इनके द्वारा रचित नाटक *परियां* की बात करें तो यह एक काल्पनिक-मनोवैज्ञानिक नाटक है। इस नाटक में एक मिसिज मेहता नामक पात्र जिसके सामने उसके अफ़सर ने मनीषा के साथ दुष्कर्म किया, लेकिन जब न्यायालय में उसे गवाही देनी पड़ी, तो वह नौकरी के डर से सच न बोल पायी, जिसके कारण उन्हें आज भी घुटन महसूस होती है, वह आत्मचिंतन करती हुई कह रही है कि मेरी आत्मा ने उस समय मेरा साथ नहीं दिया, उनके खुद के शब्दों में-

> जगदीश मुझे तो रात को नीद भी सही तरीके से नहीं आती। हर समय यहीं ख्याल आता है कि मैंने मनीषा के केस में गलत गवाही क्यों दी ...? मुझे इस बात का बहुत दुःख है कि मेरी आत्मा इतनी भी गिर सकती है। मैंने एक अमीर दोषी व्यक्ति की मदद की और एक गरीब लड़की को इंसाफ न दिलवा सकी। (रोते हुए) मेरी आत्मा से इसका ओर बोझ नहीं उठाया जाता। (फिर रोने लग जाती है) (80)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम मिसिज मेहता के अंदर इस भावना को देख सकते हैं कि किस प्रकार वह पहले नौकरी खो जाने के डर से सच न बोल सकी और आज वहीं सच उसकी आत्मा को चैन से रहने नहीं दे रहा। मनोवैज्ञानिकों ने इसे स्मृति से भी परिभाषित किया है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत व्यक्ति सूचनाओं को संरक्षित रखता, ऐसी सूचनाओं को हम चाह कर भी नहीं भूल सकते।

निर्मल जोड़ा के द्वारा रचित नाटक *सौदागर* में भी इस प्रकार की भावना को देखा गया है, इसके मुख्य पात्र जिसका नाम भी सौदागर है; में इस भावना को देखा गया है। फ्रायड के अनुसार मानसिक संरचना में इदं अहम और पराअहम तीनों मुख्य भाग हैं जो अनवरत रूप से संघर्षशील रहते हैं। इदम् और पराअहम में विरोध रहता है क्योंकि इदम् का कार्य सुख को खोजना है, तनाव कम करने की दृष्टि से यह दुःख से दूर रहता है, इससे व्यक्ति और समाज के मध्य संघर्ष रहता है, ऐसी दशा इस नाटक में देखी गई है। नाटक की कथा के अनुसार सौदागर पंजाब के किसी गाँव का सरपंच है। उसकी अपने क्षेत्र के थाने-कहचरी में भी अच्छी जान पहचान है, जिसका उसने

लाभ उठाते हुए नशे का कारोबार कर लिया। सौदागर ने अपने नशे के कारोबार में कमाई करने के लिए अपने और आस-पास के कई गाँव के युवाओं को नशे पर ला दिया था। सौदागर ने एक कूटनीति का प्रयोग करते हुए, पहले पहल युवाओं को फ्री में नशा दिया और जब वह आदी हो जाते हैं, तो उन्हें फ्री में देने को इन्कार कर देता है। सौदागर का अपना एक बेटा है, जिसका नाम दीपा है, उसने अभी-अभी बारहवीं कक्षा प्रथम दर्जे में पास की है। सौदागर अपने बेटे को लेकर तो बहुत चिन्तित, है कि यदि इसी गाँव में रह कर पढ़ने के लिए शहर जाएगा, तो उसे नशे की लत न लग जाए। इसलिए सौदागर उसे चंडीगढ़ पढ़ने के लिए भेज देता है और अपने गाँव में चिंता मुक्त हो कर नशे का धन्धा करता है। उसके गाँव में एक नशा विरोधी गोष्ठी हो रही, सौदागर उसका विरोध करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सौदागर ने नशे के कारोबार में बहुत कमाई कर ली है और बहुत सारे युवाओं की ज़िन्दगी बर्बाद कर दी, लेकिन नाटक के अंत हम देखते हैं कि जो सौदागर गाँव के युवाओं को नशे की लत लगा कर अपने बेटे के लिए पैसे कमा रहा था, उसका खुद का बेटा जो चंडीगढ़ में नशे का शिकार हो जाता है। सौदागर को जब चंडीगढ़ का पुलिस अफ़सर सारी कहानी बताता है तो सौदागर पत्थर बन जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस सौदागर ने अपने गाँव में कितने घर बर्बाद किए, आज वह अपने घर को बचाने के लिए मानसिक द्वंद और कुंठा में समय गुजार रहा है। सौदागर की स्थिति इस प्रकार बन गयी, कि वह अपनी विपदा किसी को बता भी नहीं सकता। सौदागर से नशा खरीदने वाले उसको पिछला बकाया पकड़ा कर चले जाते हैं और वह मौन खड़ा रास्ते की ओर देख रहा होता है, तभी उनके घर चंडीगढ़ पुलिस का इंस्पैक्टर आता है-

> इंस्पैक्टर: सौदागर सिंह दीपे का एक्सीडेंट हो गया पुलिस के डर के कारण उसने अपनी गाडी को तेज़ भजाकर नाका तोड़ा..... नशे के कारण कराली स्थान के नजदीक गाड़ी खड्डे में गिर गयी.....दीपे की उसी समय मौत..... हो गयी।
>
> वैसे सौदागर जी काफी समय से नशा कर रहा था .... (दो सिपाही लाश को उठाकर रख देते हैं और पुलिस चली जाती है)
>
> {सौदागर की आँखें पत्थर हो जाती हैं और उसके हाथों में पकड़े हुए पैसे दीपे पर गिर जाते हैं} (100)

इस प्रकार इस नाटक के माध्यम से हम देखते हैं कि सौदागर अपने ही बनाए हुए जाल में आप ही फंस जाता है और अपने इकलौते बेटे को खो लेता है। सौदागर के चरित्र के माध्यम से वर्तमान युग में काला धंधा करने वाले लोगों में कुंठा और एकान्तप्रियता की भावना प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हम देख सकते हैं और साथ में यह भी कह सकते हैं कि किस प्रकार हमारा आधुनिक समाज मानव का ही नाश करने पर तुला है।

अत: प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि पैसा कमाने की इच्छा का आदमी को इतना भी गुलाम नहीं होना चाहिए कि उन्हें अच्छे बूरे का पता भी न चले। ऐसे ही शिक्षा के प्रसार के कारण भी यह बदलाव देख रहे हैं, यदि माँ-बाप समय निकाल कर अपने बच्चों की भावनाओं को समझने का प्रयास करेंगा तो इस प्रकार की समस्याएँ कम हो सकती हैं। वर्तमान युग में अकेले बच्चे ही नहीं बल्कि पूरे जन में कुंठा और एकान्तप्रियता की भावना ज्यादा बढ़ती जा रही है। आज परिवार के सभी सदस्यों को चाहिए कि एक दूसरे की भावनाओं की कदर करें और उनके जज्बातों को समझने का प्रयास करें। सरकार और समाजसेवी संस्थाओं को इसकी ओर भी ध्यान देना चाहिए।

5.2.1.3 बदलते परिवेश में अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित वर्ग की त्रासदी

अन्तर्द्वन्द्व एक ऐसा संघर्ष है, जिससे आधुनिक युग में बच्चे से लेकर बुजुर्ग तक सभी पीड़ित हैं। अशोक सरीन *सुगम हिन्दी शब्दकोश* में अन्तर्द्वन्द्व के विषय में लिखते हैं- "अपने आप से लड़ना, यानी किसी समस्या को ले कर अपने मन और सोच से लड़ना" (06) ऐसे गुणों के व्यक्ति संभवतः अधिक तनावग्रस्त होते हैं, जो किसी भी बात को बहुत गहराई से सोचते हैं और उसके अंतर्मन में निरंतर एक संघर्ष चलता रहता है कि क्या करें और क्या न करें, क्या सही है और क्या गलत है? इन्हीं में फंसा हुआ, वह किसी-न-किसी तरह जिंदा रहता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक परिवेश की समीक्षा करें, तो इसमें अन्तर्द्वन्द्व एक मुख्य समस्या के रूप में दिखायी दे रही है।

मनोविज्ञान ने अन्तर्द्वन्द्व के तीन रूप प्रस्तुत किए हैं। प्रथम प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व यह होता है कि जिससे व्यक्ति के समक्ष दो लक्ष्य होते हैं और उसमें से किसी एक का चयन करना होता है, इसी चयन के लिए उसे बहुत सोचना पड़ता है। द्वितीय

वह, जिसमें वह व्यक्ति एक ऐसे लक्ष्य के लिए प्रयत्नशील हो जाने के लिए विवश हो जाता है, जिसकी पूर्ति के लिए उसका मन प्रेरणा न देता हो, तीसरे प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व में व्यक्ति अपने लक्ष्य को पाना चाहता है, किन्तु किसी कारण, उससे दूर भी जाना चाहता है। डॉ. देवराज उपाध्याय *आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य का मनोविज्ञान* में लिखते हैं

> अन्तर्द्वन्द्व की अवस्था में दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के बीच संघर्ष उत्पन्न होने की स्थिति में व्यक्ति के मन में एक प्रतिबल उत्पन्न होता है और प्रतिबल व्यक्ति के मन में रचनाओं को जन्म देता है। ये मनोरचनाएँ, उसके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के स्थान पर सृजनात्मक रूप प्रदान करती है। (35)

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से अन्तर्द्वन्द्व देखें, तो पुरानी परम्पराओं का त्याग भी इसका कारण बनता है कि पहले किसी भी प्रकार की समस्या होती थी, उसको सभी सदस्यों को बता दिया जाता था और उस पर खूब चर्चा होने के बाद कोई निवारण की आशा ज्यादा रहती थी, दूसरा शिक्षा के प्रसार, इस प्रसार के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने-आपको ज्यादा समझदार समझता है, जिसके कारण वह कई बार गलत निर्णय ले लेता है, जिसकी वजय से यह समस्या उत्पन्न होती है। तीसरा ग्रामीण और शहरी सभ्यता का विकास है, इससे प्रत्येक व्यक्ति अपने-आपको, दूसरे से ज्यादा समझदार, अमीर और मॉडर्न दिखने का प्रयास करता है, जिसके कारण वह कई बार गलती कर बैठता है, जिससे इस अन्तर्द्वन्द्व का शिकार हो जाता है।

समकालीन युग में हम देखते हैं कि प्रेम और मानवीय मूल्यों के अभाव में जीवन कितना जटिल हो सकता है, इसका ब्यौरा वही व्यक्ति दे सकता है, जिसने सब ऊंचाइयां प्राप्त की हों, किन्तु जीवन के अंतिम क्षण तक सुकून को तड़पे। ऐसा दुविधाग्रस्त, विडम्बनापूर्ण और जटिल चरित्र मीरा कांत ने अपने नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में केन्द्रीय पात्र हुमायूँ को बनाया है। उसके अन्तर्द्वन्द्व का यह रूप दृष्टव्य है-

> इस जिस्म को लोग हुमायूँ कहते हैं। हुमायूँ ...कभी-कभी क्यों लगता है कि ये सिर्फ एक खेल है खेल। इस खेल में न जाने, कितनी बेगानी आरजुएँ .... जाने कितनी हसरते ठूँस-ठूँस कर भर दी गई हैं, जिन्हें पूरा करते-करते एक जान थी जो झटपटाती रही। जैसे किसी ऊपरी असर में कोई कदम बढ़ाया चला जाता हो। वो इरादे .... वो फैसले कभी अपने भी लगे पर ज्यादातर पराए। बादशाह

बाबर के। कौन हूँ मैं? हुमायूँ कि बाबर? या बाबर की अधूरी ख्वाहिशों को पूरा करने वाला एक बेरूह पुतला? सिर्फ पुतला बेरूह पुतला। (81)

पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक दायित्वों एवं महत्वकांक्षाओं के चलते आदमी कभी इतनी दूर निकल जाता है कि प्यार, आत्मीयता, संवेदनशील और आत्मा की जरूरतें-व्यक्ति की नितांत अपनी ख्वाहिशें अकेले वीराने में छटपटाते हुए दम तोड़ने लगती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो इन दोनों उपेक्षाओं का लगातार द्वंद व्यक्ति को भीतर-बाहर से तोड़ देता है। पार्थिव-अपार्थिव, लौकिक-अलौकिक, दैहिक, आत्मिक आदि मूल्यों के संघर्ष में फंसा आज का व्यक्ति हुमायूँ से अलग नहीं है।

नादिरा ज़हीर बब्बर का नाटक *सकुबाई* भी इस विषय से सम्बंधित है। सकुबाई इसकी मुख्य पात्र है, वैसे तो उसका नाम शकुंतला है, लेकिन है वह शहर में बाई का काम करती है, इसीलिए उसका नाम सकुबाई पड़ा। इस नाटक में सकुबाई अपनी ज़िन्दगी के उन पन्नों को भी खोल देती है, जिन्हें कभी उसे छिपाकर रखना पड़ा था। कम उम्र में काम पर लगने वाली सकुबाई गाँव की रहने वाली है। माता-पिता, बहन (बसंती), भाई (नितिन) आदि उसका परिवार है। आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण उसे और उसकी बहन बसन्ती को स्कूल से वंचित रहना पड़ा। सकुबाई बचपन से लेकर अब तक सख्त मेहनत करती आयी है। सकुबाई के शब्दों में उसके अन्तर्द्वन्द्व को साफ देखा जा सकता है, सकु स्वयं अपना मनोविश्लेषण प्रस्तुत करती है- "कभी दो घंटे पहले छुट्टी माँगों तो छुट्टी नहीं। सात साल की थी तब से काम पर लग गयी। बचपन से लेकर आज तक कभी भी मानसिक सकून प्राप्त नहीं हुआ।" (21) सकुबाई की शादी भी एक गरीब घर में होती हैं, वहाँ पर भी सकुबाई को बहुत ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। वह सदैव अपनी गरीबी को कोसती रहती है, इसी गरीबी के कारण ही उसकी बहन गलत धन्धे में पड़ने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। कुछ समय के बाद उसके पति को एड्स की बीमारी लग जाती है। सकुबाई ने बहुत यत्न किया, लेकिन उसे बचा न पायी।

इस प्रकार हम सकुबाई के द्वारा आज के जन-सामान्य की अन्तर्द्वन्द्व की भावना को देख सकते हैं। किस प्रकार एक मध्य वर्ग का आदमी अपनी सारी ज़िन्दगी में इतना संघर्ष करने के पश्चात् भी सुख के दो पल नहीं जी सकता। डॉ. राधामणि. सी *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दी रिसर्च* नामक पत्रिका के अंक जनवरी 2020 में अपने आलेख *सकुबाई नाटक में अस्मिता* में लिखते हैं-

> नादिरा जी ने इस नाटक में नारी शिक्षा, अमीरों के खोखलेपन, आर्थिक कमजोरी, यौन शोषण और अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण के द्वारा स्त्री-समाज में अस्मिता बोध पैदा करने का प्रयास किया है। (64)

यदि पंजाबी नाटकों में अन्तर्द्वन्द्व की बात करें, पंजाबी के बहुत-से नाटककारों ने इस प्रकार के नाटकों की रचना की। इन नाटककारों में अनीता शबदीश का नाम भी आता है। इनके द्वारा रचित नाटक *कथा रिड़दे परिंदे दी* में नाटककार ने एक ऐसे लेखक (बलवंत सिंह) के अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत किया है, जिसके खुद के उपन्यास सामाजिक समस्याओं के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं, लेकिन वह खुद की बेटी के साथ इंसाफ न कर सका। खुद की बेटी किसी गैर-जाति के लड़के के साथ शादी करना चाहती थी। जिसका विरोध करते हुए, बलवंत सिंह ने अपने पुत्रों के साथ मिल कर उसकी हत्या कर देता है। बलवंत सिंह नहीं चाहता था कि उसकी बेटी किसी और जाति के लड़के के साथ शादी करे। लेकिन अपनी ही बेटी के कत्ल के बाद; वह मानसिक रूप से बीमार हो जाता है। नाटककार ने प्रस्तुत किया है कि बलवंत सिंह के खुद के बनाए पात्र ही उनसे बहुत सारे सवाल पूछने लग जाते हैं। उसकी सबसे ज्यादा त्रासदी उस समय होती है, जब उसकी खुद की बेटी रानो ही उनसे सवाल करती है कि उसकी असली रचना तो रानो थी, जिसका उन्होंने कत्ल कर दिया-

> रानो: तेरी असल रचना तो मैं ही हूँ ..... तेरा ही खून ..... अब इसको अपना मानते हुए भी तुझे शर्म आती है न ...
>
> बलवंत सिंह: ..न ... ऐसी .... बातें न बोल मेरी बच्ची ...।
>
> रानो: मैं तो इतनी दूर जा चुकी हूँ कि तुझे कुछ भी नहीं कह सकती...।
>
> बलवंत सिंह: तुम मुझे माफ़ नहीं कर सकती ....? माफ़ कर दे मेरी बच्ची.. मैंने तो तेरा मुकलावा अच्छे घर ही तोरना था.. मुझसे गलती हो गई।(26)

इस प्रकार बलवंत सिंह ऐसे द्वंद में फंस जाता है जो उसे चैन से जीने नहीं देता। ऐसे ही पाली भूपिंदर सिंह के द्वारा रचित नाटक *चंदन दे ओहले* में भी इस तथ्य को देखा जा सकता है। इस नाटक की कथा के अनुसार एक बनी नामक पात्र जो विदेश जाना चाहता है, लेकिन उसकी त्रासदी यह है कि वह न तो अपनी पढ़ाई की योग्यता से यहाँ काम कर सकता है और न ही विदेश जा सकता है। इस कथा की जो समस्या है वह आज के समाज की मुख्य समस्या है कि युवा जहाँ काम करने की उपेक्षा विदेश

जाकर काम करना चाहते हैं, लेकिन विदेश के लिए जो सही रास्ता है, उसमें सफलता नहीं मिलती, जिसके कारण वे अन्तर्द्वन्द्व का शिकार हो जाते हैं। इस नाटक में भी हम देखते हैं कि बनी का पिता किसी भी तरीके से उन्हें विदेश भेजना चाहता है, इसके लिए वह किसी एजेंट से बात करता है, जो किसी एन.आर.आई. के विषय में बताता है। उस एन.आर.आई. लड़की का नाम प्रेटी था। उसका पिता लालची और शराबी है जो अपनी लड़की के लिए पहले पैसे लेने को कहता है और बाद में उसे विदेश ले जाने का विश्वास भी दिलाता है, लेकिन जब शादी करने वाली लड़की जान जाती है कि उसका पिता और लड़के वाले उसके साथ धोखा कर रहें हैं और उन्हें सिर्फ विदेश जाने का सहारा बनाया जा रहा है तो वह बनी को साफ इन्कार कर देती है। लड़की के इन्कार करने पर बनी बहुत चिंता में डूब जाता है। नाटककार ने उसके अन्तर्द्वन्द्व को इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

> ... इस आधी-अधूरी पढ़ाई ने हमें कहीं का नहीं छोड़ा। मैं न तो इतना पढ़ा लिखा हूँ कि अफसर लग सकूं, और न ही इतना अनपढ़ कि खेतों में हल चला सकूं...। मैं बाहर सैटल होना चाहता हूँ और इस के लिए मैं कुछ भी कर सकता हूँ। कुछ भी। (62)

इस नाटक की कथा के माध्यम हम बनी पात्र की मानसकिता को देख सकते हैं, वह किस प्रकार अन्तर्द्वन्द्व में जीवन व्यतीत कर रहा है। आज के भारतीय युवाओं की स्थिति बनी जैसी हो गयी है, जिसके कारण वह अन्तर्द्वन्द्व का शिकार हो रहे हैं। इस अन्तर्द्वन्द्व के कारण ही आपसी रिश्तों में मोह-प्यार की कमी आने लगी है; जिससे समाज दिशाहीन होता जा रहा है। आज की सदी के अन्तर्द्वन्द्व के विषय में डॉ. वीणा गौतम *हिन्दी नाटक रंगानुशासन एवं प्रयोगिक नवोम्मेष* में लिखती है-

> द्वन्द्व और संघर्ष की इस त्रासदी में सभी पूरी तरह नंगे हैं, निचुड़े हुए, आज विष को पीते हुए। भावना का द्वन्द्व, विदेश का द्वन्द्व, नौकरी का द्वन्द्व, तर्क का द्वन्द्व, प्रेमी को पाने का द्वन्द्व, प्यास लालसाओं का द्वन्द्व, दाम्पत्य सम्बन्धों का द्वन्द्व, भावनात्मक स्तर पर एक दूसरे से सब उतने ही दूर हैं। (292)

अत: प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि अन्तर्द्वन्द्व निर्णय करने की क्षमता है, सही-गलत, अच्छा-बुरा, छोटा-बड़ा; हर निर्णय एक अन्तर्द्वन्द्व से होकर गुजरता है और ये अन्तर्द्वन्द्व किसी दंड से कम नहीं होता क्योंकि इसमें जीत किसी भी पक्ष की हो, लेकिन हारता अंदर का ही कोई

सिद्धान्त या भावना है। लोगों से लड़ना आसान है लेकिन अपने अंदर के इंसान से लड़ना बहुत मुश्किल है। इस अन्तर्द्वन्द्व के कारण ही आत्महत्या की दर दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। बदलते परिवेश की दृष्टि से देखें, तो पहले इस प्रकार की समस्या न थी, क्योंकि आज की तुलना में उस समय लोग अपनी भावनाओं को दबा कर नहीं रखते थे। इस प्रकार हम कह सकते हैं इस अन्तर्द्वन्द्व को अपनी सफलता तक ही सीमित रखा जाए और इसके निवारण के लिए ज्यादा से ज्यादा भाईचारिक साँझ को बढ़ावा देना चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपना मन हल्का कर सके।

5.2.1.4 आत्मविश्वास की कमी और अकेलेपन की भावना

बदलते मनोवैज्ञानिक परिवेश में यदि हम आत्मविश्वास की कमी की बात करें, तो यह तथ्य भी मनोविज्ञान से जुड़ा हुआ है। आत्म विश्वास सेहत और सफलता का आधार होता है। डॉ. पी.बी. शर्मा *समीक्षा और मनोविश्लेषण* में लिखते हैं-

> मानव व्यवहार सम्बन्धी नियमों की खोज को जब मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य मान लिया गया, तब सिद्धान्तों और प्रयोगों की सहायता से विश्लेषण करने वाले मनोवैज्ञानिकों की कई समस्याएं विकसित हुई, जिनमे आत्मविश्वास की कमी भी एक है। (15)

कमजोर आत्मविश्वास से बहुत सारी शारीरिक और मानसिक दुर्बलताएँ जन्म ले लेती हैं। आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए शारीरिक और मानसिक स्वस्थ होना अति जरूरी है। समकलीन व्यक्ति अंतर्विरोधों में आधी-अधूरी ज़िन्दगी जीने के लिए विवश है। आज की भाग-दौड़ की ज़िन्दगी में वह अपने-आपको असफल अनुभव करता है, तो उसमें आत्मविश्वास की कमी आ जाती है। वह समझता है कि यह कार्य को करने की क्षमता उसके अंदर नहीं है, अत: वह दबाव की स्थिति का सामना करता है। अपने अंदर की शक्ति को वह समझ नहीं पाता, फलस्वरूप उसका अपने ऊपर से विश्वास कम होता चला जाता है और यही मनोविकार के रूप में प्रकट होता है। डॉ. गिरिधर प्रसाद शर्मा *हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणत्मक अध्ययन* में लिखते हैं- "नौकरी, पढ़ाई या अन्य किसी काम में असफलता, किसी नजदीक के द्वारा ठुकराया जाना या किसी करीबी की मौत के कारण आत्मविश्वास कम होने लगता है।" (15)

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बदलाव आ रहा है, विशेष रूप से भौतिक और सांस्कृतिक जगत में दिन प्रतिदिन तनाव देखने को मिलता है। परम्परागत मूल्य भी बिखराव की स्थिति में हैं, मान्यताएँ बदल रही हैं, धारणाएं टूट रही हैं और मापदण्डों में टकराव है, यह काल विशेष रूप से सांस्कृतिक बदलाव का काल है, यहाँ पुराने मूल्यों का स्थान युगानुकूल नवीन मूल्यों ने ग्रहण कर लिया है। वर्तमान समाज में हम कई बार देखते हैं कि व्यक्ति की सुविधाओं की अभिलाषा उसे उस ऊँचाई तक ले जाती है, जहाँ पहुँच कर भ्रष्ट व्यक्ति की आत्मा भी उसे धिक्कारती है। मीरा कांत के द्वारा रचित नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में हुमायूँ सत्ता को सुदृढ़ करने के लिए प्रजा पर अत्याचार करता है। हम देखते हैं कि कोई भी सत्ताधारी जैसे-जैसे अत्याचार बढ़ाता है तो अपनी सुरक्षा के लिए अशांकित और भयभीत भी होता जाता है। हुमायूँ की भी यही बनती जा रही है, वह अंदर से टुटने लगता है और उसमें आत्मविश्वास की भी कमी आने लगती है। हालाँकि उसके अबू ने 11-12 वर्ष की आयु में निशाने को साधने के लिए जबरन उसके हाथों से बतख का खून करवाया था, जिसके चलते उसके मन में किसी की भी जान लेने का भय खत्म हो जाए, लेकिन वर्षों बाद सत्ता प्राप्त कर लेने के बाद जब वह बीते समय को याद करता है तो डर कर अपने-आपको अकेला महसूस करता है-

> हम उन सबसे कहीं अलग थे। हमें सिर्फ उस मासूम बखत की अधमुँदी आँखें दिखायी दे रही थी जो हमसे कुछ पूछ रही थी कि मुझ नाची ने तेरा क्या बिगाड़ा था शाहजादे, हमारा दिल दहल गया। तभी मिट्टी और खून में लथपथ उस बखत की जगह तीर से बिंधा छटपटाता वो शख्स दिखायी दिया जिसे कुछ रोज पहले अब्बा हुजूर के एक वफादार सिपाही ने इस शुबह पर मार दिया था कि वो उनके खिलाफ साजिश कर रहा है। हमारा दिल ये सोच कर डूबा जा रहा था कि मरते हुए वो शख्स भी शायद इतना ही मजबूर, लाचार और अकेला रहा होगा। शायद सभी होते हों। यदि बच जाएं तो बदला भी जरुर लेते हैं। (36-37)

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस नाटक की वास्तविक उपलब्धि बाहरी संघर्ष में न होकर व्यक्ति के आंतरिक उद्वेलन में है, जो अपने कार्य के पश्चाताप में लिप्त है। दुनिया के महान मनोविश्लेषण फ्रायड के सिद्धान्त के अनुसार देखें तो उनका मानना ज्यादातर लोग संघर्ष करने से डरते हैं, जिस के कारण वह मानसिक रूप से कमजोर हो जाते हैं।

असग़र वजाहत का नाटक *जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ* भी इस विषय से सम्बंधित है, इस नाटक की कथा भारत और पाकिस्तान के विभाजन से सम्बंधित है। इस नाटक की मुख्य पात्र एक हिन्दू बुजुर्ग स्त्री है, जो रतन लाल जौहरी की माता है। रतन लाल जौहरी की हवेली लाहौर में है, लेकिन दंगे-फसाद के समय उसकी और उसके बीवी-बच्चों की हत्या कर दी जाती है। तब से अकेली उसकी माता रह रही होती है। बंटवारे के बाद उनकी हवेली लखनऊ के सिकंदर मिर्जा को अलाट हो जाती है। जब सिकंदर मिर्ज़ा का परिवार उस हवेली में आता है तो वह रतन जौहरी की माँ को देख कर परेशान हो जाते हैं कि हमें जो मकान मिले उसमें पहले से कोई रह रहा है। मिर्जा रतन की माता को भारत जाने के लिए कहता है, लेकिन उसकी माँ भारत जाने की लिए मनाह कर देती है और वहाँ रह कर अपने पुत्र की प्रतीक्षा करना चाहती है। रतन की माँ को अकेलेपन का संताप खा रहा है और वह इस बात को स्वीकार भी नहीं करती कि उसके बेटे की मृत्यु हो चुकी है। रतन की माँ पाकिस्तान के पंजाब में रहने के कारण उसकी भाषा को भी नाटककार ने पंजाबी में ही प्रस्तुत किया गया है। उनके शब्दों में-

> रतन की माँ: फसाद शुरू होण तो पहले किसी हिन्दू ड्राइवर दी तलाश विच घरौं निकल्या सी... साडी गड्डी दा ड्राइवर मुसलमान सी न, ओ लाहौर तो बाहर जाण नूँ तैयार ही नयी सी होन्दा..... (रुआंसी आवाज़ में) तद दा गया रतन अज तक ..... (रोने लगती है) मै इकल्ली नहीं मेरा पुत्र आवेगा। (42)

इस नाटक के माध्यम से असग़र वजाहत ने रतन की माँ की अंतर्भावना को प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार अपने-आप को अकेला महसूस कर रही है। इस नाटक की आलोचना करते हुए डॉ. करन सिंह ऊटवाल की संपादित रचना *हिन्दी और उर्दू की सांझी विरासत* में डॉ. रेविता बलभीम काबठे ने अपने आलेख *हिन्दू-मुस्लिम एकता के परिप्रेक्ष्य में असग़र वजाहत का योगदान* में लिखती है-

> 'जिस लाहौर नइ देखा ओ जन्माई नई' नाटक में लेखक ने हिन्दू-मुस्लिमों के बीच का भाईचारा और अपनत्व का भाव स्पष्ट किया है। दिवाली के त्योहार में मुस्लिम भाईयों का सहयोग और हिन्दू विधवा वृद्ध स्त्री के अकेलेपन को दूर करने और उसके साथ आदर भाव तथा अपनत्व के भाव को केंद्र में रखकर नाटक की रचना की है। साथ ही जाति और धर्म के नाम पर दंगा-फसाद

निर्माण करके सामान्य मानव की होने वाली लूट और हत्या का भी मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। (205-208)

यदि पंजाबी नाटकों में हम आत्मविश्वास की कमी और अकेलेपन की भावना से सम्बंधित मनोवैज्ञानिक पक्ष देखें, तो पाली भूपिंदर सिंह का नाटक *चंदन दे ओहले* ऐसी कथा से जुड़ा हुआ है। इस नाटक में माणा पात्र, इस प्रकार की समस्या का शिकार होती है। वह पूरे परिवार में होने के बावजूद भी अकेलेपन का संताप भोग रही है। माणा आधुनिक समाज की एक पढ़ी-लिखी लड़की है। उसको विदेश जाने की कोई लालसा नहीं, और वह यहाँ पंजाब में किसी और जाति के लड़के को पसंद करती है एवं उससे शादी करना चाहती है, लड़का भी पढ़ा-लिखा है, लेकिन और जाति का होने के कारण उसके पिता और भाई शादी के लिए नहीं मान रहे, माणा को अपने ही घर में बहुत-सी बाधाओं का शिकार होना पड़ता है। उसे घर से बाहर जाने और घर का फोन उठाने तक की मनाही है। माणा का परिवार अपनी इज्जत के लिए सब कुछ कर रहा है, लेकिन नाटक के अंत में सब इसके विपरीत होता है। कथा के अनुसार माणा के भाई बनी ने विदेश जाने के लिए किसी लड़की के पिता के साथ पैसों का समझौता किया था, जब उस लड़की को अपने पिता और बनी की करतूत का पता चलता है, तो वह शादी करने से साफ इंकार कर देती है और वापस विदेश चली जाती है। उसके शादी से इंकार करने पर बनी और उसके परिवार के लिए विपदा खड़ी हो जाती है। बाद में इस विपदा के निवारण और बनी की विदेश जाने की जिद्द को पूरा करने के लिए माणा को बलि का बकरा बनाया जाता है और जिस लड़की ने बनी के साथ शादी करने को न की थी उसके पिता के साथ माणा की शादी की तैयारी शुरू कर दी जाती है क्योंकि माणा विदेश जाकर अपने भाई बुला सके।

माणा इस शादी का बहुत विरोध करती है। लेकिन उसकी कोई नहीं सुनता, इस स्थिति में माणा अपने-आपको लाचार महसूस करती है, क्योंकि यदि माणा चाहती तो अपनी इच्छा के अनुसार शादी कर सकती थी, लेकिन इतना उसमें दृढ़-विश्वास न था, दूसरा वह अपने परिवार में रहते हुए भी अकेली रह जाती है, क्योंकि कोई भी उसका साथ देने के लिए तैयार नहीं।

इस प्रकार आत्मजीत के द्वारा रचित नाटक *मैं ता एक सारंगी हाँ* में भी एक नारी पात्र की दशा को प्रस्तुत किया गया है; जो थिएटर में काम करना चाहती है,

लेकिन इस काम में प्रवेश करने से पहले ही उन्हें ऐसी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है जिससे उन्हें खुद पर भी विश्वास नहीं रहता, वह अपनी कथा सुनाती है-

> मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं कहीं भी, कभी भी, कुछ नहीं कर सकती, क्योंकि सभी मर्द एक जैसे ही होते हैं। मेरे पिता जी का एक दोस्त था कपूर। हमारे घर में सब गलत हो सकते हैं; लेकिन कपूर नहीं। इतना विश्वास था उसके ऊपर। मुझे कपूर एक डिपार्टमेंट के निर्देशक के पास लेकर गया। निर्देशक साला बुढ़ा, दाड़ी को रंग किया हुआ, और मूँछों पर ऐसे हाथ फेर रहा था जैसे अनिल कपूर हो। हरामजादा मुझसे तो ऐसे बात कर रहा था; जैसे सालों से जानता हो। चाय-ठंडा सब ऐसे दे रहा था जैसे सारा थिएटर ही मेरे सिर पर खड़ा हो। फिर निर्देशक ने मुझे अकेली को अगले दिन आने को कहा, उस दिन से मेरा तो विश्वास ही खत्म हो गया। (66)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देख सकते हैं कि आज के समाज में एक नारी की मजबूरी का किस प्रकार फायदा उठाया जाता है। इस पात्र के माध्यम से हम देख सकते हैं कि नारी अपनों में होकर भी अपने-आपको अकेला महसूस करती है। हमारे समाज में ऐसी अनेक जाने-अनजाने घटनाएँ घट जाती हैं, जिसको देखकर अकेली नारी कुछ भी करने का साहस नहीं करती, उसमें आगे बढ़ने का आत्मविश्वास ही समाप्त हो जाता है। वर्तमान की इस सच्चाई को प्रस्तुत नाटकों के माध्यम से देखा जा सकता है। कुसुम खेमानी *हिन्दी नाटक के पाँच दशक* में लिखते हैं-

> हम यह स्पष्ट देख चुके हैं, कि अधिकांश नाट्य-कृतियों में परिवार, दाम्पत्य-जीवन और कामेषणा के अतिरिक्त घात-प्रतिघात, द्वन्द्व, अकेलापन, घुटन, संत्रास आदि को ही मनोवैज्ञानिक आधारभूमि पर प्रस्तुत किया गया है। इस तरह एक भावना यह भी बनती है कि ये नाटक व्यक्तिगत यथार्थ को लेकर रचे गये हैं और भोगी हुई अनुभूतियाँ केवल व्यक्ति-सापेक्ष है। (203)

इस प्रकार प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए कह सकते हैं कि आज प्रत्येक वर्ग किसी-न-किसी रूप से मानसिक संताप भोग रहा है, जिसको न तो परिवार के लोग समझ रहें हैं और न ही समाज। परिवार में बेटी की उपेक्षा बेटे को ज्यादा महत्ता दी जाती है, जिसके कारण बेटियाँ अपने-आपको ज्यादा अकेला महसूस कर रही हैं, न तो वे अपने परिवार को छोड़ सकती हैं और न ही उनके द्वारा

दिए गये आदेशों की पालना कर सकती है, जिस कारण हमारे समाज में एक अजीब-सी स्थिति बन गयी है, इसके निवारण की ओर भी ध्यान देने के जरूरत है।

5.2.1.5 प्रेम वासना और प्राकृतिक काम से पीड़ित युवा

परमात्मा ने शरीर में जहाँ अनेक ऐसे यंत्र लगाये हैं, जो इस जीवन को सुख प्राप्ति में मदद देते हैं, वहाँ उन ग्रन्थियों की रचना भी की है, जिससे सृष्टि का क्रम न रुके और निरंतर गति में जीवन बना रहे। किन्तु उसकी भी अपनी मर्यादा है, उसे तोड़ना का साहस करना अपने और अपने समाज के प्रति विश्वासघात करने वाली बात है, सिगमण्ड फ्रायड ने काम चेतना को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया है उन्होंने अपनी रचना *ए जनरल इंट्रोडक्शन टू साइको एनालिसिस* (अनुवाद) में लिखा है- "काम सेवन' से ही मनुष्य का जन्म होता है मानव शुरुआत से सेक्सुअल है और शरीर का हर अंग आनंद देता है" (37) काम वासना और जीवन एक दूसरे के अभिन्न अंग हैं। वासना से ही जीवन का गति-चक्र आगे बढ़ता है। जीव सृष्टि के आरंभ से ही मनुष्य की इस प्रवृत्ति का जन्म माना जाता है। भूख और जिजीविषा की तरह, यह मूल रूप में विद्यमान रहती है। पश्चात्य विद्वानों ने भी इस वासना को मनोवैज्ञानिक धरातल पर विवेचित करने का प्रयास किया है।

प्रकृति अपने आप में सुंदर है और मानव; स्वभाव से ही सौंदर्य प्रेमी माना गया है। इस कारण प्रकृति और मानव का सम्बन्ध उतना ही पुराना है, जितना कि इस सृष्टि के आरंभ का इतिहास। मानव व्यवहार की प्रक्रिया में सक्रियता और निष्क्रियता नामक दो परस्पर-विरोधी शक्तियों का सहयोग रहता है। डॉ. गुरदयाल सिंह बजाज ने *साहित्य मनोविज्ञान और हिन्दी एकांकी* में लिखा है- "प्रत्येक पुरुष में स्त्रीत्व भावना और प्रत्येक स्त्री में पुरुषत्व भावना होती है। व्यक्ति के स्वभाव में पायी जाने वाली पुरुषत्व या स्त्रीत्व भावना प्रबलता के आधार पर उस व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक लिंग निर्धारित करती है। (35)

यौन शोषण या प्राकृतिक काम को मानसिक मनोवैज्ञानिक विकार के रूप में भी परिभाषित किया जाता है। इस प्रकार के मनोविकारों का मूल स्रोत मानव की काम चेतना है, जिस पर मनुष्य के मन का वश भी नहीं चलता। मनुष्य दमन का शिकार हो जाता है। काम वासना अस्वस्थ मानसिक प्रवृत्ति के लिए उत्तरदायी है,

इसी काम वासना के कारण ही मनुष्य कई बार कठिन परिस्थितियों का सामना करते हैं। स्त्री-पुरुष की चर्चा मनोविज्ञान के विभिन्न ग्रन्थों में मिलती है। मानव-जाति से सम्बंधित जितनी भी समस्याएं हैं, उनमें काम वासना की समस्या कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

हिन्दी नाटकों के विकास में बदलते मनोवैज्ञानिक परिवेश में यदि हम प्रेम वासना और प्राकृतिक प्रेम की बात करें, तो यहाँ काम वासना स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस मनोविकार के कारण मनुष्य शारीरिक पतन के साथ-साथ मानसिक पतन की ओर भी बढ़ने लगता है। आज के बदलते परिवेश में हम प्रेम वासना का ऐसा रूप देख रहे हैं कि युवक-युवती विवाह करना ही पसन्द नहीं करते, कृष्ण बलदेव वैद के नाटक *कहते हैं जिसको प्यार* में हम देखते हैं कि आखिल और सुजाता एक दूसरे से प्रेम करते हैं, किन्तु सुजाता मानती है कि आवश्यक नहीं कि जिससे प्रेम करें, उससे ही शादी की जाए। सुजाता अखिल से कहती है- "क्योंकि मैं शादी को चाहते रहने के लिए जरूरी नहीं समझती- आपको चाहते रहने के लिए मानती हूँ। हो सकता है शादी मेरे लिए घातक हो।" (19)

इस प्रकार नादिरा जाहिर बब्बर के नाटक *सकुबाई* में हम देखते हैं कि सकुबाई जिस पूजा मेम के घर काम करती है। उसके विषय में बताती है कि पूजा मेम के पति का; ऑफिस की किसी औरत के साथ अफेयर है। पूजा मेम को जिस दिन से पता चला है, उस दिन से पति द्वारा उसकी पिटाई शुरू हो गई। पहले वह माँ-बाप के घर जाने की सोचती है, किन्तु आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी पूजा अपने पार्लर का काम कर बच्चों की जिम्मेदारी खुद उठा लेती है। साथ ही निर्णय लेती है कि ऐसे व्यक्ति के साथ जीवन व्यतीत नहीं करेगी जो उसके तथा बच्चों के प्रति वफादार नहीं है। सकुबाई मुम्बई की जनपदीय भाषा में बताती है-

> .....फिर तो ऊपर वाले का चमत्कार हो गया। उसको हमारे साहब से बड़ा कोई लवली साहब मिल गया। .....और हमारे साहब को ...। क्रिकेट में वो ऐसे बॉल मारते है न .... खटा$$$क। ...वैसे ही .... मैं उस दिन बहुत खुश थी। (26)

हम देखते हैं कि पूजा अपने पति से प्रेम चाहती थी किन्तु जब पति उसके साथ दुर्व्यवहार करता है और अपने प्रेम की लीला किसी ओर से चलाता है तो पूजा अपने पति का परित्याग करने में जरा संकोच नहीं करती।

सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक *चार चारों की यार* में भी काम वासना की समस्या को प्रस्तुत किया गया है, इसकी मुख्य पात्र बिन्दिया है, उसका दूसरा पति मा. सीताराम नपुंसक होने के कारण वह अन्य पुरुषों से शारीरिक सम्बन्ध बनाती है। मा. सीताराम अपनी इस कमजोरी को अपनी पत्नी बिन्दिया को इस प्रकार बताता है-

> ... दरअसल, जब मैं छोटा था तभी से कुछ ऐसी बुरी आदतों के संस्कार जन्म से ही मिले थे। मेरे पिता बहुत ही कामी व्यक्ति थे ... माँ के साथ खुले आम...यहाँ तक कि उन्हें उचित और अनुचित का भी ध्यान नहीं रहता था।....उन्होंने कभी न सोचा कि नासमझ बच्चे पर इसका क्या असर पड़ेगा। मैं नहाती, पेशाब करती, और पखाने जाती औरतों को देखने की जोड़-तोड़ में रहने लगा। कामना न बुझती तो जहाँ एकांत अकेला पाता, जुट जाता। पखाने में, कोठरी में, रात को बिस्तर में... दिन में दो बार, चार बार, छह बार.... लेकिन कामेच्छा शान्त न होती, दिन पर दिन बढ़ती ही जाती। एक आध बार रण्डियों के कोठे पर भी गया, लेकिन उन्हें देने लिए रोज-रोज पैसे जुटाने बहुत मुश्किल थे ... हालाँकि वे बहुत सस्ती थी।.... अंत मेरा एक ही रास्ता था... अँधेरे कोनों में दिल की भड़ास निकालना...धीरे-धीरे मैं खाली होता गया...खोखला होता गया .... और आज इस हालात में हूँ। (27)

इस प्रकार हम देखतें हैं कि प्रेम वासना और प्राकृतिक काम की भावना किस प्रकार बच्चों को विनाश की ओर ले जा रही है। हमारे समाज की सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम इस विषय के बारे में बच्चों से खुलकर बात नहीं कर सकते, जिसके कारण यह समस्या अपना विशाल रूप धारण कर रही है, आज इस विषय पर माता-पिता को अपने बच्चों से बातचीत करनी चाहिए, जिससे वह गलत संगत में जाने से बच सकें। प्रसिद्ध मनोविश्लेषक जुंग का मानना है कि अनकहे भाव कभी नहीं मरते, वे मन में जिंदा दफन हो जाते हैं और बाद में एक खतरनाक तरीके से सामने आते हैं।

पंजाबी नाटकों में यदि हम प्रेम वासना और प्राकृतिक काम की बात करें, तो इस प्रकार की मानसिक गतिविधियों से प्रभावित नाटकों का आरंभ बलवंत गार्गी ने किया था; लेकिन उसके बाद बहुत सारे नाटककारों ने इस मानसिकता के नाटकों का निर्माण किया। निर्मल जोड़ा के द्वारा रचित नाटक *सौदागर* में एक ऐसे अमली की कथा को प्रस्तुत किया गया है जिसने अपनी सारी जमीन-जायदाद नशे और काम

वासना की पूर्ति के लिए उड़ा दी और अब सौदागर के घर काम करता है। सौदागर का दोस्त सतनाम उसे मजाक करता हुआ कहता है "नाजर सियां यदि तुमने बाप-दादे की जायदाद को संभाला होता तो यह दिन न देखने पड़ते, तुमने तो सब कुछ नशे और रंडियों के कोठे में ही उड़ा दिए। (32) इस नाटक के माध्यम से हम कह सकते हैं हमारे समाज में बहुत सारे ऐसे इंसान हैं, जिन्होंने इस काम वासना में अपने-आप को बर्बाद कर लिया।

गुरचरण सिंह जसूजा के द्वारा रचित नाटक *परियां* की बात करें तो यह एक मनोवैज्ञानिक नाटक है। इस नाटक की कथा में हम देखते हैं कि किसी प्राइवेट कम्पनी का मालक जिसे ललित सेठ नाम से प्रस्तुत किया गया है, उसके सिर ऊपर काम-वासना का भूत सवार है। वह अपने दफ़्तर में काम करने वाली लड़कियों को जबरन शारीरिक सम्बन्ध बनाने को मजबूर करता है, कुछ लड़कियाँ तो अपने नौकरी के डर से सब सहन कर जाती हैं और कुछ अस्तीफा दे देती हैं, एक दिन उसके दफ़्तर में ही काम करने वाली मनीषा नामक लड़की के साथ भी वह वैसा ही करना चाहता है, जब मनीषा इसका विरोध करती है तो ललित सेठ उसकी तनखाह दोगुनी करने का प्रस्ताव भी देता है- ललित सेठ: मैं तेरी तनखाह दोगुनी करने को तैयार हूँ, अब तो खुश है ?.... बोलती क्यों नहीं ..? कुछ तो बोलो.. (35) जब मनीषा इंकार कर देती है और गुस्से में अपना अस्तीफा देने का प्रयास करती है तो ललित सेठ उसके साथ कुकर्म करता है- "ललित सेठ: (लाचार होकर) आ जाओ.. आ जाओ.. एक बार मेरे सीने से लग जाओ (मनीषा बहुत ऊची आवाज में बचने की गुहार लगाती है) (36) इस नाटक के माध्यम से हम देखते हैं कि बड़े लोगों की काम-वासना का शिकार छोटे वर्ग की कामकाजी महिला बनती है।

अत: प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि आज काम वासना ही नारी-पुरुष का केंद्र बनती जा रही है और यह भी देखने को मिलता है कि जब किसी स्त्री की शारीरिक भूख अपने पति से पूरी नहीं होती, तो वह दूसरे पुरुष की ओर आकर्षित होती है। यह उसका आकर्षण जिसे वह प्रेम कहती है, वह प्रेम न होकर सिर्फ काम वासना होती है, जिसको फ्रायड ने बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया है, बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि इस काम वासना के कारण ही बहुत सारे परिवार टूट रहे हैं, क्योंकि भारतीय परिवेश में इसको अनैतिक माना जाता है।

5.2.1.6 बदलते मनोवैज्ञानिक परिवेश में कल्पना और स्वप्न

कल्पना वह मानसिक अनुभव है जिस के आधार पर नवीनता का निर्माण किया जाता है। कल्पना का सम्बन्ध किसी काल-विशेष से नहीं होता। कल्पना का सम्बन्ध अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों से होता है। कल्पना पुराने अनुभवों को नवीनता के साथ प्रस्तुत करती है। अपनी लालसा की पूर्ति के लिए मनुष्य ने जिस मानसिक व्यापार का विकास किया है, उसे कल्पना कहते हैं। ऐसे ही यदि हम स्वप्न की बात करें, तो स्वप्न पिछले दिनों के अनुभवों की प्रतिक्रिया है। फ्रायड ने *इंटरप्रिटेशन ऑफ़ ड्रीम्स* (अखिलेश शर्मा के द्वारा अनुवादित *सपनों का मनोविज्ञान*) नामक ग्रन्थ में इन्होंने यह बताने की चेष्टा की है- "स्वप्न हमारी इच्छा का ही परिणाम हैं, अधिकांश स्वप्न हमारी इच्छा का ही सृजन होते हैं, जिन स्वप्नों को निरर्थक समझते हैं, उनके विशेष अर्थ होते हैं।" (66)

दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि कल्पना और स्वप्न इंसान की यादों, भावनाओं, सोच, विचारों और इच्छाओं का मिला एक प्रारूप है। पी.बी शर्मा *समीक्षा और मनोविश्लेषण* में लिखते हैं- "भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार स्वप्न चेतना की चार अवस्थाओं में से एक विशेष अवस्था है। बाकी अवस्थाएँ जाग्रतावस्था, सुषुप्ति अवस्था और तुरीय अवस्था हैं।" (63)

यदि आधुनिक युग के मानव में इस प्रकार की प्रवृत्तियों को देखें, तो मानव अनेक आशाओं एवं कुछ पूरे-अधूरे स्वप्नों का पुंज मात्र है। जीवन की विभिन्न स्थितियों और परिस्थितियों में हृदय नवीन कल्पनाएँ, उन्माद, भावनाएँ और स्वप्नों की जन्मस्थली रहा है। कभी वह आकाश में विचरते पक्षी के समान इस संसार में अपने लिए सुखों से निर्मित घोंसला खोजता है, तो कभी अपने मन की भांति, इस संसार के सात्विक ज्ञान की मीमांसा करना चाहता है। कभी सामाजिक बन्धनों को अपने मार्ग की बाधा मानकर, उनको तोड़ डालने का प्रयत्न करता है और कभी-कभी इसको जरूरी भी मानता है, सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से देखें, तो शिक्षा और विज्ञान ऐसा साधन है, जिसके कारण सामान्य व्यक्ति का मानसिक विकास ज्यादा होता है और वह ज्यादा कल्पनाएँ और स्वप्न देखने लग जाता है। वास्तव में स्वप्न एक मानसिक क्रिया है। मनुष्य अपने जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं को कल्पना के आधार पर भी

सुलझाने की कोशिश करता है। स्वप्न का सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन से ही होता है। डॉ. धनराज मानधाने *हिन्दी के मनोवैज्ञानिक नाटक* में लिखते हैं-

> स्वप्न की कार्य पद्धतियों का मुख्य काम इच्छाओं का स्वप्नों में रूप बदल देना है। यह कार्य तीन प्रकार से होता है। एक है विस्थापन, दूसरा है संक्षेपण और तीसरा है प्रतीकीकरण। (69)

प्रतीकों द्वारा व्यक्ति की निश्चित धारणाओं और निश्चित विचारों का पता चलता है। प्रतीक व्यक्ति की व्यक्तिगत परिस्थितियों से सम्बन्ध रखते हैं।

हिन्दी नाटकों में इस विषय का वर्णन करें, तो नादिरा ज़हीर बब्बर के द्वारा रचित नाटक *जी, जैसी आपकी मर्ज़ी..* में इस कथा को देखा जा सकता है। इस नाटक की कथा के अनुसार एक लड़की की मनोदशा को प्रस्तुत किया गया है कि किस प्रकार एक लड़की कल्पना और स्वप्न के माध्यम से अपने आदर्श पति की कामना करती है, लेकिन यह स्वप्न सारी औरतों के पूरे नहीं होते। इस कथा की मुख्य पात्र बबली है जो पंजाब के लुधियाना शहर की रहने वाली है। बबली के अनुसार वह अपने माता-पिता की लाड़ली बेटी थी। बबली और उसकी बड़ी बहन पिंकी ने लुधियाना यूनिवर्सिटी से स्नातक की। बबली की पढ़ाई खत्म होने पर ही उसके पिता द्वारा बबली के लिए अच्छे रिश्ते की तलाश शुरू कर दी गई। काफी रिश्तों की देखा-देखी के बाद बबली का रिश्ता दिल्ली के किसी एम.बी.ए. पास लड़के के साथ कर दिया जाता है, जिसका परिवार तो चंडीगढ़ में रहता है, लेकिन खुद वह दिल्ली की किसी कम्पनी में अफ़सर है। बबली शादी के पहले बहुत-से अरमानों को देखती है, बबली का पिता बबली की शादी पर भी बहुत खर्च करता है, लेकिन बबली की शादी के दिन ही सारे अरमान खत्म हो गये क्योंकि बबली का पति नशेड़ी होता है वह अपने शब्दों में बताती है- "इतने दिनों का इन्तजार excitement मुझे रोना आने लगा। ख्याब क्या देखे थे और मिला क्या।" (39) इस प्रकार बबली अंदर से टूट जाती है। इस नाटक के माध्यम से हम बबली की त्रासदी को देख सकते कि किस प्रकार एक लड़की अपने स्वप्नों का महल बनाती है, लेकिन शादी के कुछ समय बाद ही वह कल्पना का महल उसे नर्क के समान प्रतीत होने लग जाता है।

ऐसे ही कृष्ण बलदेव वैद के नाटक *कहते हैं जिसको प्यार* में भी हम देखते हैं कि अखिल पीएच.डी करने के पहले बहुत बड़े-बड़े सपने देखता है, लेकिन पीएच.डी

करने के बाद भी नौकरी न मिलने के कारण वह निराश हो जाता है और वह जिस लड़की से प्रेम करता है, उससे शादी भी नहीं कर पाता। अखिल कहता है "क्या-क्या सोचा था, कितने ख्याब देखे थे लेकिन वो तो सपनों की दुनिया थी, क्या कर सकते हैं।" (55) इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने आज के युवाओं की काल्पनिक मनोदशा को प्रस्तुत किया है कि आज के युवा पहले तो बहुत बड़े सपने देखते हैं, लेकिन जब कुछ सपने पूरे नहीं होते तो वे और मेहनत करने की बजाय बिलकुल निराश हो जाते हैं।

पंजाबी नाटकों से तुलना करें, स्वराजबीर के द्वारा रचित नाटक *कल्लर* में दलबीर की माँ की मानसिकता को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है। दलबीर जब विदेश जाता है तो उन्हें और उसके साथियों को गलत ऐजटों के द्वारा रोमानिया भेज दिया जाता है। वहाँ उन्हें बहुत सारी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है और जेल में भी रहना पड़ता है, लेकिन पीछे उसकी माँ, उसकी शादी के बड़े-बड़े सपने देख रही होती है कि उसका बेटा विदेश गया है और बहुत सारे पैसे कमा कर लायेगा और उन्हें लड़की वालो से दहेज़ भी काफी मिलेगा, इस प्रकार की मानसिकता में डूबी मंजीत कौर की दशा को नाटककार ने पंजाब के माझे की जनपदीय विशेषताओं जैसे घोड़ीयाँ (जो गीत पंजाब में लड़के की शादी पर गाये जाते हैं), शरीक, मड़क भननी आदि वाक्यों के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

> मंजीत कौर: मैं भी कितनी पागल हूँ ! दिन में ही अपने बेटे की शादी की घोड़ीयाँ गाने के सपने देखने लग गई ! क्यों न देखूं ..... दलबीर सिंह मेरा पुत्र लाखों में से एक है..... कितना सुंदर जवान है ... दूसरा विदेश में रहता है ..... इतना कमाता है.....शादी तो मैं पूरी धूम-धाम से करूंगी .... आ मेरी शरीकनी, मेरी जेठानी का बेटा जब से नौकरी लगा है, उस समय से यह बदली हुई है..... फिर इन्हें शादी पर मोटरसाइकिल मिली तो इसका अंहकार ओर बढ़ गया..... लेकिन मैं तो मोटरसाइकिल नहीं कार लूंगी .. और शरीकों की मड़क भनूँगी... और इनकी बहनों को सोने के गहने भी पहनाऊँगी .. (100)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम दलबीर की माँ की मानसिकता को देख सकते हैं कि किस प्रकार पुत्र मोह में वह बड़े-बड़े सपने देख रही होती है, लेकिन उसी समय दलबीर आ कर सारी बात बताता है कि वे सब तो अपनी जान बड़ी मुश्किल से बचा कर पंजाब आए हैं, तब मंजीत कौर की सारी कल्पना मिट्टी हो जाती है। इस प्रकार

हम मंजीत कौर के अचेतन मन को देख सकते हैं। फ्रायड ने *इंटरप्रिटेशन ऑफ़ ड्रीम्स* (अखिलेश शर्मा के द्वारा अनुवादित *सपनों का मनोविज्ञान*) में लिखा है- "सपने हमारे मन के भीतर छिपी किसी दबी आशा, निराशा और अभिलाषा की तरफ इशारा करते हैं।" (65)

निर्मल जोड़ा के द्वारा रचित नाटक *सौदागर* की कथा में हम देखते हैं कि एक सौदागर नामक ब्लैकिया, नशे का व्यापार कर मोटी कमाई करता है और सारे गाँव की जमीन खरीद लेना चाहता है। उसका सपना है उसके गाँव में सबसे ज्यादा अमीर उसका बेटा हो, इस कामना की पूर्ति के लिए वह छोटे किसानों को पैसा ब्याज पर देकर उनकी जमीन हड़प करने की कोशिश भी करता रहता है, सौदागर की इन काली करतूतों को उसका दोस्त सतनाम बहुत अच्छे-से जानता है और सतनाम उसे समझाता हुआ कहता है-

> सतनाम: कौन-से सपने देखते रहते हो सौदागर साहब, यह सब कुछ यहाँ ही रह जाना है, हमारे साथ तो कुछ भी नहीं जाना। (61)

अत: प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए, हम कह सकते हैं कि स्वप्न और कल्पना व्यक्ति की कई जैविक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो जीवन में एक स्वप्न, कल्पना या कोई लक्ष्य रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जब आप अपने जीवन में इसे हासिल करने के लिए कड़ी मेहनत करेंगे; तभी आप इसे प्राप्त कर पाएंगे। लेकिन अफसोस आधुनिक परिवेश में लोग सच्ची मेहनत की ओर अपना ध्यान कम देते हैं और इसके विपरीत, वे धन कमाने के लिए बुरे मार्ग को अपना लेते हैं, जिसका प्रणाम हम सब जानते हैं।

5.2.1.7 बदलते परिवेश में नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

नारी पात्रों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की बात करें, तो आज की नारी सभ्यता, संस्कृति, कला, विज्ञान, धर्म, राजनीति, अर्थनीति, कानून, साहित्य आदि क्षेत्रों में अपनी अलग पहचान बना रही है। पुरातन काल से नारी को शारीरिक रूप से ही अबल मानकर; उसे अबला कहा गया है, क्योंकि उसमें पुरुष जैसा बल नहीं होता। हाँ, नारी की

मानसिक उडान का लौहा तो वैदिक ऋषि भी मानते थे। भारतीय नारी किसी भी परिवार का मेरुदंड अर्थात् रीढ़ होती है। गृहणी-रूपी धुरी पर ही परिवार-रूपी चक्र, समय की परवाह किये बगैर आगे बढ़ता जा रहा है। इसलिए हमारे यहाँ कहा गया है कि घर का नाम नारी नहीं है, लेकिन नारी का नाम घर है। गृहणी बिना घर वन के समान होता है। महादेवी वर्मा *श्रृंखला की कड़ियाँ* की भूमिका में लिखती है-

> पुरुष को यदि ऐसे वृक्ष की संज्ञा दी जाए जो अपने चारों ओर से छोटे-छोटे पौधों का जीवन रस चूसकर आकाश की ओर बढ़ता जाता है, तो नारी को ऐसी लता कहना होगा कि जो पृथ्वी से बहुत थोड़ा-सा स्थान लेकर सघनता में ही बहुत-से अंकुरों को पनपाती हुई उस वृक्ष की विशालता को चारों ओर से ढक लेती है। प्रकृति ने केवल उसके शरीर को सुकुमार नहीं बनाया, उसे मनुष्य की जननी का पद देकर उसके हृदय में अधिक संवेदना, आँखों में आर्द्रता तथा स्वभाव में अधिक कोमलता भर दी। (03)

भारतीय समाज में अब तक पुरुषों की ऐसी पारम्परिक छवि बसी हुई थी, जिसमें पुरुषों के रौबदार, रफ-टफ, दबंग और गंभीर व्यक्तित्व की प्रधानता थी, लेकिन आज समाज का ऊँच, मध्य और निम्न वर्ग बहुत तेजी से बदल रहा है। समकालीन पीढ़ी की नारी पुरुषों की गुलामी नहीं करती। आज की शिक्षित नारी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो गयी है, वह जागरूक है और ज़िन्दगी के प्रति उसका नजरिया बदल गया है, यह अपने आप में बहुत बड़ा सामाजिक बदलाव है। यही वजह है कि आज तलाक की घटनाएँ बढ़ रही हैं।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन में देखें, तो आज नारी को ऐसे पुरुष आकर्षित करते हैं, जो स्वयं शारीरिक और मानसिक रूप से इतने मजबूत और सक्षम हों कि वह उन्हें सामाजिक, भावनात्मक और आर्थिक तीनों स्तरों पर सुरक्षा दे सकें और उनकी जरूरतों का ख्याल रख सके। साथ ही वे दोस्ताना व्यवहार करने वाले खुशमिजाज़ इन्सान हों, पारम्परिक भारतीय समाज में सदैव पत्नी से ही उम्मीद की जाती थी कि वह अपने पति की हर छोटी-छोटी जरूरतों का ख्याल रखे, लेकिन अब वह बात नहीं रही। आज की नारी ने अपने अनुभवों के द्वारा सीख लिया है कि प्यार से अधिक महत्त्वपूर्ण करियर और जीवन का उद्देश्य है। प्रत्येक रिश्ते में नारी का आत्मसम्मान बेहद महत्त्वपूर्ण होता है। आज के दौर में रिश्ते उस समय टूटते-बिखरते हैं, जब उसके आत्मसम्मान को बार-बार ठेस पहुँचती है। गुजरे जमाने में नारी सिर्फ

आत्मसमर्पण जानती थी। पुराने समय में रिश्ते इसलिए बने रहते थे क्योंकि नारी अपने जीवनसाथी के अत्याचारों को चुपचाप सहती रहती थी। लेकिन आज बदलाव दिख रहा है, आज के बदलाव को हम नारी का मनोवैज्ञानिक विकास कह सकते हैं, अलग-अलग आलोचकों ने स्त्रीवादी मनोविज्ञान विकास को अपनी-अपनी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में संजीव चंदन की ऑनलाइन शोध पत्रिका *स्त्रीकाल, स्त्री का समय और सच* के 31वें अंक में डॉ. अनीता शुक्ल के प्रकाशित आलेख *वर्तमान नारीवाद: भारतीय ऐतिहासिक परिदृश्य* में लिखा है-

> स्त्रीवादी मनोविज्ञान के विकास से सम्बंधित तीन स्वर रहे हैं- पहले चरण में यह सूत्र वाक्य रहा कि प्रत्येक स्त्री के माध्यम से सभी स्त्रियों का सशक्तिकरण हो सकता है। दूसरे चरण में नारीवाद को मनोविज्ञान से जोड़ते हुए प्रबल बनाने का प्रयास किया गया। इसमें लिंगगत भेदों को सर्वथा दूर करने का प्रयास किया गया। तीसरा चरण महिलाओं के सामान्य जीवन की समस्याओं से सम्बंधित है, जिनसे वह छुटकारा कैसे पा सकती है। सरल शब्दों में कहें तो आज की नारी किसी भी समस्या का समाधान मनोवैज्ञानिक दृष्टि से निकाल सकती है। (02)

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से देखें, तो शिक्षा और कानूनी स्तम्भों के कारण आज नारी की दशा में बदलाव देखा जा सकता है। अतीत के मुकाबले आज की नारी अधिक शिक्षित है और वह सभी कानूनों को जानती है, जिसके कारण वह अपने अधिकारों को प्राप्त कर लेती है।

हिन्दी और पंजाबी नाटकों में बदलते मनोवैज्ञानिक परिवेश में जब हम नारी पात्रों की बात करें, तो नारी अब अपने विकास तथा भविष्य को लेकर अपने ही तरीके को अपनाने लगी है और वह उसके लिए मेहनत करती है तथा तकनीकी शिक्षा आदि में वह पुरुषों की ही भांति सम्मिलित रहती है। हिन्दी साहित्य के स्वतन्त्रतापूर्व कथा-साहित्य पर पश्चिमी शिक्षा के प्रचार-प्रसार से उत्पन्न चिन्तन का प्रभाव समुचित रूप से देखा जा सकता है। बीसवीं और इक्कीसवीं शताब्दी के साहित्य के विभिन्न अंग मनोविज्ञान के तथ्यों से प्रभावित रहे। आज मानसिक असंतुलन की ओर जाने वाली सामाजिक व्यवस्था में नारी अपना संतुलन कैसे रखती है, यह अध्ययन का विषय होना अनुचित नहीं है क्योंकि मानसिक विद्रोह के साथ संतुलन बनाए

रखना कठिन है। नारी में सामंजस्य कहाँ तक संभव है? अहम तथा आत्मसंयम की प्रवृत्ति नारी में कहाँ तक है? नारी के मानसिक संतुलन की प्रक्रिया उनसे कहाँ तक प्रभावित है? आदि प्रश्नों के संदर्भ में नाटकों का परिशीलन लाभदायक हो सकेगा।

आज हम देखते हैं कि नारी के शोषण का मुख्य कारण कमजोर आर्थिकता है। अमीर लोग समाज में ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करते हैं और यह अपने-आपको सम्पूर्ण समाज का ठेकेदार समझते हैं, जिसके कारण उसकी एकाधिकारी मानसिकता से शोषण प्रवृत्ति की ओर बढ़ता है। आम देखा गया है, यह लोग निम्न और मध्य वर्गीय औरतों का शारीरिक और मानसिक शोषण ज्यादा करते हैं। हृषिकेश सुलभ के द्वारा रचित नाटक *अमली* की कथा बिहार की जनपदीय समस्याओं और पीड़ित समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें सत्ता, सम्पति और षड्यंत्र ने सदा पीड़ित नारी को लूटा है। इस नाटक की मुख्य पात्र भी अमली नामक औरत है; जो निम्न वर्ग से सम्बंधित है, जो निम्न यातनाओं को सहते हुए जीवन भर संघर्ष करती है, इस नाटक के माध्यम से हम देखते हैं; एक स्त्री अपनी आजीविका के निर्वाह के लिए कैसी-कैसी मानसिक स्थितियों का सामना करती है। महादेव राय जब अमली को गलत उद्देश्य के लिए बुलाता है तो अमली कहती है- "मलिकार ! का है हमरे पास ? ई देह और एकरी इज्जत! बस! और का है हमरे पास? सास आज-बिहान भई है।.... मरद डोली उतार के बीच मझधार में छोड़ गया।" (62)

सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक *चार यारों की यार* में भी ऐसी मानसिक दशा को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक की मुख्य पात्र बिन्दिया है, उसका पहला पति उसे शराब पीकर पीटता था, इसलिए बिन्दिया ने उसे तलाक दे दिया और मा. सीताराम के साथ शादी कर ली, लेकिन मास्टर सीताराम नपुंसक था। इस कारण बिन्दिया विपदा में पड़ जाती है, वह अपनी मनोवैज्ञानिक दशा को इस प्रकार प्रस्तुत करती है-

> बिन्दिया: (अपने आपसे) क्या फायदा।.....मैं पूछती हूँ आखिर क्या फायदा....? इस निगोड़ी माँग को भरने का ..... खाली नुमाइश ही तो हो जाती है... कि मैं खसम वाली हूँ..... आग लगे ऐसे खसम को .... निगोड़ा किसी काम का नहीं मेरी भी मत मारी गयी थी जो अच्छे-खासे आदमी को छोड़कर इस मरगिल्ले से ब्याह रचाया.. बदनामी हुई सो अलग ... सब यही कहते होंगे जैसी माँ वैसी बेटी.... बेचारा दारू पीता था, क्या बुरा करता था? मर्द दारू नहीं पियेगे तो

> क्या आँगूठा चूसेंगे .....दारू पीकर अगर वह दो-चार जमा दिया करता था तो क्या आफत आ गयी थी.... इतना पीटता था... लेकिन जान थोड़े ही जा रही थी। नशे में मर्द बहक ही जाता है .....अच्छे-अच्छे बहक जाते हैं....पर मुझे भी पता नहीं क्या सूझी थी जो उसे छोड़कर भाग आयी....वह भी तो मुझे लेने नहीं आया .....
>
> आ जाता तो उसकी मूँछ नीचे हो जाती ..... क्यों पड़ती इस ससुरे मास्टर के चक्कर में .... बस जुबान का ही मीठा है और है क्या इसमें- न शक्ल, न सूरत, न मर्दानगी..... अब क्यों रोती है बिन्दिया ! जैसा किया वैसे भुगत.... (29-30)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम आज के समाज में बिंधिया जैसी औरत की मानसिक दशा को देख सकते हैं कि जिस शारीरिक और मानसिक सुख के लिए वह अपने पहले पति को छोड़ कर दूसरी शादी करती है, लेकिन उसे दूसरे पति में भी, उस सुख की प्राप्ति नहीं होती।

स्वदेश दीपक के नाटक *काल कोठरी* में एक ऐसी नारी की मनोदशा को प्रस्तुत किया गया है जो पहले किसी थियेटर कर्मी की बनावटी दिखावट देखकर, उनसे प्रेम करने लगती है और शादी भी कर लेती है, लेकिन बाद में जब उनकी आर्थिक दशा कमजोर हो जाती तो अपने पति और किस्मत को कोसती है-

> मीना: मत बोलो यह शब्द प्रेम। गाली है, गलीज गाली। सिनेमा हाल के अँधेरे में हाथ पकड़कर बैठना मेरे लिए प्रेम था। पार्कों में मिलना मेरे लिए प्रेम था। आई हेट इट, हेट इट। दस सालों में जितनी बार तुम्हारे साथ सोई अगर दूसरे मर्दों के साथ लेटती तो अपनी कोठी होती कार होती। जानते हो अर्थ एक आदमी से प्रेम का। किराये का मकान और बदबू भरी जिन्दगी। लव इज ए बल्डी मिसअंडरस्टेडिंग बिटवीन टू फूल्स। (11)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से नाटककार ने ऐसी महिलाओं की मानसिक दशा को प्रस्तुत किया है, जो मर्दों की बाहरी दिख पर आकर्षित होकर शादी तो कर लेती हैं, लेकिन जब थोड़ी-सी आर्थिक तंगी आती है तो घुटन महसूस करने लग जाती हैं।

पंजाबी नाटकों के विकास के द्वारा यदि हम नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करें, तो गार्गी के मनोवैज्ञानिक नाटकों के बाद बहुत सारे नाटककारों ने स्त्री पात्रों के मानसिक भावों को प्रस्तुत किया। आधुनिक युग में गुरचरन सिंह जसूजा और

आत्मजीत के द्वारा काफी नाटक इस दृष्टि से लिखे गये हैं। गुरचरन सिंह जसूजा के नाटक *परियां* की बात करें तो इस नाटक के पाँचवें अंक में सरोज नामक एक ऐसी नारी की मनोदशा को प्रस्तुत किया है जिसका पति रमेश तो बहुत अच्छा इंसान है लेकिन उसकी सास बहुत ही लोभी किस्म की थी। वह सरोज से कहती है-

> सास: मेरी बात सुन ले ध्यान से, अपने पिता से जायदाद का आधा हिस्सा बांट कर ला; नहीं तो अपनी शक्ल न दिखाना। कौन उसके मरने तक का इंतजार करता रहेगा। (83)

इस प्रकार सरोज उस घर में मानसिक घुटन महसूस करती थी और बहुत दुखी रहती थी, सरोज अक्सर ही अपने पति रमेश को अलग रहने के लिए कहती थी, लेकिन रमेश अपने बुजुर्ग माता-पिता को भी नहीं छोड़ सकता था, इस कारण सरोज उस घर को छोड़कर अपने माता-पिता के साथ रहने के लिए चली जाती है। कुछ समय बाद सरोज को पता चला के उसके सास-ससुर की मौत हो गई और रमेश बहुत ज्यादा बीमार है, सरोज से रमेश का यह दुःख देखा नहीं जाता और वह उसके पास आ जाती है और उसकी देखभाल करनी शुरू कर देती है। जिससे रमेश भी बहुत खुश होता है और उससे कहता है-

> रमेश: बीमार पड़ा सोच रहा किसे बुलाऊ, डॉक्टर ने तो आराम करने को कहा था। सोचा एक तू ही है जिसको सच्चे दिल से प्रेम किया था, लेकिन सुना कि तू तलाक देना चाहती थी।
>
> सरोज: (रोते हुए) कुछ फालतू बातें मुँह से निकल जाती हैं। मैंने तलाक लेने के लिए कोई पत्र तो नहीं दिया। हाँ, सिलाई का काम जरूर सीख रही थी, ताकि अपनी रोटी के लिए कुछ कमा सकूं। (84)

प्रस्तुत संवाद की नारी पात्र को यदि हम मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें, तो कहा जा सकती है नारी का दिल बहुत जल्दी पिघल जाता है उनसे किसी का दुःख देखा नहीं जाता।

समकालीन नारी मनोविज्ञान से सम्बंधित आत्मजीत के द्वारा रचित नाटक *मैं ता एक सारंगी हाँ* भी है। इस नाटक की कुछ विशेषताएँ हैं; एक तो इसका निर्माण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हुआ है और दूसरा इस नाटक की प्रमुख तीन पात्र हैं और वह तीनों की तीनों ही नारी पात्र हैं। इन तीनों (पाल, गीता, मीना) ने अपनी जिन्दगी में

बहुत संताप भोगा है और इन तीनों का संताप आज की नारी से भी सम्बंधित है। इन तीनों के संताप को नाटककार ने बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है और साथ ही एक ऐसा संदेश भी दिया कि हालात जैसे भी हों, नारी मानसिक रूप से टूटती नहीं, बल्कि कठिनाईयों का सामना करते हुए अच्छे भविष्य की कामना करती है।

सबसे पहले हम पाल की बात करते हैं, पाल एक मध्य वर्ग की लड़की है, पाल की मुश्किलों की जड़ उसकी अपनी सगी बुआ है, जो गाँव के किसी आदमी को चोरी-छिपे मिलती है, जिसकी वजह से पाल के पिता के द्वारा पाल पर पाबंदी लगाने के कारण वह घर से बाहर न निकल सकी और घर में ही उसके चाचे के द्वारा उसका बलात्कार किया जाता है। इस नाटक की दूसरी पात्र मीना बचपन में दरिंदों का शिकार हो जाती है। जिसकी वजह से वह पुरुषों की संगत में रहना पसंद नहीं करती, लेकिन आजीविका की मजबूरी से रहना पड़ता है और लेकिन उनसे नफ़रत भी बहुत करती है।

इस प्रकार इस नाटक की तीसरी पात्र गीता की मानसिकता का अंदाजा भी लगा सकते हैं कि एक टीचर के द्वारा उसके साथ बुरा व्यवहार किया गया, जिसकी वजह से वह सभी पुरुषों को नफरत की दृष्टि से देखने लग जाती है। नाटक के अंत में गीता को संबोधित करती हुई पाल जीवन की सच्चाई को प्रकट कर रही है-

> पाल: तुम्हारा बलात्कार किया तेरे एक टीचर ने जो पहले एक स्कूल में से निकाला गया था। जो तेरे शरीर की ओर हमेशा देखता रहता था। जिसके साथ तुमने कभी आँख भी नहीं मिलाई थी। तू उससे बदला भी नहीं ले सकती और भूल भी नहीं सकती, लेकिन मुझे शिकार बनाया मेरे सगे चाचे ने, जिसको मेरी माँ ने अपने हाथों से पाला था। मैं तो उसके विषय में यह भी नहीं सोच सकती कि वह मेरी ओर बुरी नज़र से देखता होगा। मुझसे सात साल बड़ा मेरा चाचा न तो मैं उसे भूल सकती हूँ और न उनसे बदला ले सकती हूँ, लेकिन गीता प्लीज तू रो मत, रोने से हम और कमज़ोर हो जाती हैं। (80)

आत्मजीत पंजाबी नाट्य-क्षेत्र में नवीन प्रयोग करने वाले नाटककार के रूप में जाने जाते हैं। विषय और रंगमंच की दृष्टि से उनकी अलग पहचान है। उमा सेठी *आत्मजीत की नाट-संवेदना* में लिखती है- "विषयवस्तु का चुनाव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से करने में उन्हें समकालीन नाटककारों से अलग धरातल पर खड़ा किया गया है।" (30)

इस प्रकार हम हिन्दी और पंजाबी नाटकों की विषयवस्तु को देखते हुए कह सकते हैं कि हमारे समाज की आधुनिक नारी एक अजीब मानसिकता की शिकार हो रही है। शिक्षा प्रसार तथा पश्चिमी प्रभाव ने नारी को जाग्रत बनाने में योगदान तो दिया है, लेकिन प्राचीन और आधुनिकता के तीव्र द्वंद में नारी उलझी हुई दिखायी देती है। इस स्थिति को नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। डॉ. दशरथ ओझा ने *हिन्दी नाटक का उदय और विकास* में लिखा है-

> यदि हम आधुनिक काल की बात करें, तो इस काल में उन्मुक्त प्रेम और दाम्पत्य की होड़ में विशेषकर नारी के लिए नयी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ खड़ी हो गयी हैं। समस्या मूलक नाटक लिखने के लिए नाटककारों का ध्यान इसी ओर गया। (428)

प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों की तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि बदलते परिवेश में स्त्री, अतीत की स्त्री के मुकाबले ज्यादा मानसिक संताप भोग रही है। आज इक्कीसवीं शताब्दी में हम चाँद तक जाने की बातें करते हैं, लेकिन एक स्त्री अपने घर की चोखट पार करने से डर रही है। वर्तमान समाज की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि आज की स्त्री अपने घर के सदस्यों में भी सुरक्षित नहीं। स्त्री की दशा को सुधारने के लिए स्त्रियों को बहुत-से अधिकार दिए जा रहे हैं, लेकिन यह सब बाहरी दिखावे के लिए हैं, जो नारी नहीं चाहती। यदि हमारा समाज इन्हें कुछ देना चाहता है तो इज्जत और सम्मान दे। इनके प्रति जो दिल में बुरी नज़र लिए घूम रहें हैं, उसको खत्म करें। बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि शिक्षा और कानूनी स्तम्भों के कारण ही आज की नारी अपने-आपको कुछ सुरक्षित महसूस कर रही है। आज के साहित्यकार इसकी ओर विशेष ध्यान देते हुए नारी की भावना को प्रकट कर रहें हैं। इस विषय में *मधुमती* के अंक-2 फरवरी, 2020 में प्रकाशित सुप्रिया पाठक का लेख *हिन्दी कथा संसार की अदृश्य स्त्रियाँ* में लिखते हैं-

> विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक अवरोधों को पार करती, कई दरारों को पाटती, अपनी पहचान तलाशती, मानसिक पीड़ा को सहती, समाज में स्थान निर्धारित के लिए संघर्ष करती, स्त्री पर साहित्यकारों ने पूरी संवेदनाशीलता के साथ लिखा। उन्होंने परिवर्तित सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में पति-पत्नी के बीच सम्बन्धों में टूटन और अलगाव, प्रेम और सैक्स का नवीन भाव-बोध, विवाहेतर सम्बन्ध, अहम के टकराव, पराक्षयता से मुक्ति, आर्थिक संरचना में हुए

परिवर्तन के कारण उपभोक्तावादी संस्कृति के जीवन में प्रवेश आए परिवर्तनों का सामाजिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक पक्ष की कसौटी पर तटस्थ होकर अपने साहित्य को रेखांकित किया है। (84)

5.2.1.8 बदलते परिवेश में पुरुष पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

सभ्यता के विकासक्रम में पुरुषों ने ऐसी संस्कृति की नींव डाली, जहाँ स्त्रियों को आगे बढ़ने का अवसर बहुत कम मिला। भोग-उपभोग के अर्थशास्त्रीय द्वन्द्व ने स्त्री-पुरुष के जीवन को इस तरह बना दिया कि एक-दूसरे के पूरक होने की बजाय एक-दूसरे के आमने-सामने हो गये। परम्परा के नाम पर स्त्री इतना शोषित होती चली गयी कि उसका अस्तित्व खतरे में पड़ने लगा। अन्य कुरीतियों की तरह सुधारवादी आंदोलन चलाये गये। सुधारवादी आंदोलन भी पूरी तरह से सफल न हो सके। यही कारण है कि धीरे-धीरे स्वयं महिलाओं द्वारा स्त्री-मुद्दों को उठाया गया और स्त्रियों के रचना-संसार में उस स्त्री की उपस्थिति कई ढंगों से दर्ज़ हुई, जो अपनी नियति के सामाजिक ढाँचे से जुड़े होने की समझ पैदा होने के साथ ही सामाजिक सरोकारों से लैस होने की दिशा में भी आगे कदम बढ़ाती है, लेकिन आज भारतीय समाज में केवल स्त्री ही नहीं बल्कि पुरुष भी प्रताड़ित है। स्त्री पर शोषण हो तो मीडिया, सामाजिक संस्थाएं और ऑफिसर उसकी मदद करने के लिए आ जाते हैं, लेकिन जब पुरुष पर यह स्थिति बनती है तो पहले वह किसी को बताता ही नहीं, यदि बता भी दे, तो समाज के लोग उसका मजाक उड़ाते है, इस स्थिति में उसे आत्महत्या के आलावा ओर कोई रास्ता नज़र नहीं आता।

समाज स्त्री व पुरुष दोनों से मिलकर बना होता है। इस प्रकार मानव समाज की एक प्रमुख इकाई पुरुष है। वास्तव में व्यक्तियों के समूह से जिस समाज की रचना होती है, उसमें राजनीतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक इत्यादि स्तरों पर कोई पुरुष विशेष सामूहिक चेतना का प्रतिनिधत्व करता है। सामाजिक प्राणी होते हुए भी पुरुष का एक नितान्त व्यक्तिगत जीवन होता है। उसके जीवन में उसके सुख-दुःख, आशाएँ-निराशाएँ, स्वार्थ-परमार्थ, निजी रागात्मकता, उतार-चढ़ाव, संघर्ष, वाद-विवाद, हीनता-श्रेष्ठता होती है, इसके आलावा उसकी अपनी एक चेतना होती है, यह सही है कि इस चेतना के संघटन में परिस्थितियों, परिवेश और व्यापक सामाजिकता ही

भूमिका निभाते हैं। इसलिए हम किसी पुरुष को क्षुद्र तो किसी को अन्य नाम देते हैं। इसी प्रकार स्वार्थी-परमार्थी, आत्म-सीमित, रोगी, अंहकारी इत्यादि संज्ञाओं से इसे जानते-पहचानते हैं, अत: आधुनिक हिन्दी और पंजाबी के नाटककारों ने अपने नाटकों में पुरुष मनोविश्लेषण के प्रत्येक पक्ष को छुआ है।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में बदलते परिवेश के जिन कारणों को निर्धारित किया था, उन कारणों में से पुरुष की मानसिक दशा देखें, तो सामाजिक संघर्ष और भारतीय परम्पराओं में बदलाव ही प्रमुख हैं, क्योंकि वर्तमान के युग में हर व्यक्ति की सामाजिक जिम्मेदारी बढ़ती जा रही हैं, अतीत में हम सब एक साथ रहते थे, जिसके कारण आज जैसी समस्या न थी। नाटककार मनोविज्ञान द्वारा ही मनुष्य की रहस्यमयी भावनाओं की सूचना पाठक को देता है। पाठक पात्र की मानसिक उधेड़बुन की प्रत्यक्ष अनुभूति पाकर, उसके साथ अपना तालमेल स्थापित करता है। वह पात्र में स्वयं को देखता है और इसी से उसे रसानुभूति होती है। डॉ. रणवीर रांघ्र ने *साहित्य साधनों और संघर्ष* में लिखा है-

> प्रत्येक साहित्य मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व से परिचित रहा है और अपने ढंग से उनका चित्रण भी करता है किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान ने इस अन्तर्द्वन्द्व को एक नया अर्थ और आशय दिया है। मनुष्य का अन्तर्द्वन्द्व अचेतन होता है। अगर कोई मनुष्य अपनी समस्याओं और कठिनाइयों के प्रति चेतन भी हो जाए, उनको जानने भी लग जाए, तो भी उसकी चेतन कठिनाइयाँ, उसके मन की गहराई में होने वाली किसी अन्य अचेतन संघर्ष की प्रतिनिधि होती है, जिसको वह कभी नहीं जान पाता और केवल एक विशेष प्रकार की मनोव्यथा का अनुभव करके टूटता सा रहता है। (154-155)

मनुष्य के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिए उनके चरित्र को समझना आवश्यक है। मानव चरित्र जल में पड़े हुए हिमखंड की भाँति है, जिसके नौ हिस्से जल में डूबे होते हैं और मात्र दसवाँ अंश ही हमें दिखायी देता है। जब तक जल में डूबे अधिकाँश भाग का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो जाता, तब तक जल उस हिमवर्ग के रूप, आकार आदि के विषय में कोई निश्चित धारणा नहीं बनायी जा सकती। बर्फ का टुकड़ा तो जड़ वस्तु है लेकिन मानव चरित्र तो नित्य चेतन एवं परिवर्तनशील है। अत्यधिक सूक्ष्म होने के कारण इसको समझना कितना कठिन है। इस कठिन कार्य को सरल और

सहज बनाने का दायित्व नाट्य-साहित्य मनोविज्ञान निभाता है। डॉ. रेखा शर्मा *कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान* में लिखते हैं-

> मानव मस्तिष्क के तीन स्तर होते है, अचेतन, अर्द्धचेतन और चेतना मानव मस्तिष्क का तीन चौथाई भाग इसी अचेतन की परिधि के अंदर है और मनुष्य के विचार, उसके व्यवहार तथा रहन-सहन के ढंग की स्वाभाविकता या अस्वाभाविकता का मूल प्रेरक यही है। (57)

इस प्रकार व्यक्ति का चेतन मन उसके अचेतन मन द्वारा परिचालित होता है तथा उसके समस्त व्यवहार इसी अचेतन पर निर्भर करते हैं।

आज हम देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ अपेक्षाएँ होती हैं। जब उन अपेक्षाओं की पूर्ति का कोई मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता, तब व्यक्ति मानसिक रूप से पीड़ित होने लगता है। मीरा कांत के द्वारा रचित नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में हम देखते हैं कि हुमायूँ सत्ता में नहीं जाना चाहता था, लेकिन बाबर के दबाव में वह राजनीति में आ जाता है। शासन के लिए हत्या, झूठ-फरेब आदि का सहारा लेता है किन्तु जीवन के अंतिम पड़ाव में मौत उसे भयभीत कर देती है। अपने किए कुकर्म उसे अंदर ही अंदर कचोटते हैं-

> हुमायूँ: सब नसीब करवाता है.... हम किस्मत ही ऐसी लेकर आए थे..... इसमें किसी का क्या कसूर ... कोई अपना न हो सका ... जिस पर यकीन किया उसी ने पीठ में खंजर भोंका .... क्या अपने .... क्या पराए... वरना क्या बिगाड़ा था हमारा मांडू की मासूम रिआया ने.... तीन रोज... कत्लेआम (कत्लेआम की चीख-पुकार जिसे सुनकर हुमायूँ कान बंद कर लेता है) एक जनून सा सवार हो गया था.... जनून... जिसमें सैकड़ों-हजारों बेगुनाह मारे गए !
>
> हमीदा बानो: अब छोड़िए वो सब ...
>
> हुमायूँ: वो मंगल का रोज कैसे भूल सकते हैं हम ... (दूर कहीं खोते हुए) उस रोज हमने खून के रंग के कपड़े पहने .... लाल कपड़े और कत्लेआम का हुक्म दिया... तो रोज तलक मुगल फ़ौज मांडू की गलियों में खून की नदियाँ बहाती रही... खून की नदियाँ... (रोता है) (80)

इस प्रकार हम देखते हैं कि हुमायूँ अपने किए कर्मों पर पश्चाताप कर रहा है, उसके आसपास का कटु वातावरण उसे निराशा में उलझाता चला जाता है। ऐसे ही पुरुष पात्र की त्रासदी को प्रस्तुत नाटक *चार यारों की यार* भी है जो सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक है। इस नाटक का मुख्य पुरुष पात्र मास्टर सीताराम है। सीताराम अपने गाँव से दूर किसी शहर में मास्टर की नौकरी करता है। सीताराम की उम्र काफी हो गयी है और उसने अब बिन्दिया नामक औरत से शादी की। बिन्दिया की पहले शादी हुई थी, लेकिन उसका पहला पति शराबी था, इसलिए उसको बिन्दिया ने तलाक दे दिया। बिन्दिया किसी छोटी जाति से सम्बंधित थी। मास्टर सीताराम ने उस पे तरस किया और बिना सोचे उसके साथ शादी कर ली। वह अपनी शादी के बाद ख़ुश रहने लगा।

लेकिन मास्टर सीताराम की जिन्दगी में ज्यादा समय के लिए ख़ुशी टिक न सकी। सीताराम को किसी काम के लिए मासिक दिल्ली जाना पड़ता था और वहाँ उन्हें तीन-चार दिन लग जाते थे। पीछे उसकी पत्नी ने उसके दोस्त जीवन के साथ अनैतिक सम्बन्ध बना लिए। सीताराम जब दिल्ली जाता तो जीवन अपने तीन दोस्तों को साथ सीताराम के घर आता और वह चारों दोस्त शराब, सिगरट पीते हैं और साथ ही बिन्दिया को पिलाकर उसके साथ अनैतिक सम्बन्ध बनाते। मास्टर सीताराम को मुहल्ले वालों ने खबर दे दी कि उसकी पत्नी बिन्दिया सही नहीं है। उसके जाने के बाद उसके घर नंगा नाँच होता है। मास्टर बहुत ज्यादा चिंता में रहने लगा। मास्टर को किसी ने सलाह दी कि वह अपनी पत्नी को दिल्ली जाने को कहे और रात को अपने घर छापा मार के सारी सच्चाई जान ले। मास्टर सीताराम ऐसा ही करता है। नाटक की वार्तालाप के अनुसार-

> मा. सीताराम: बहुत खूब चार यार... चारों के तोहफे, शाराब और बढ़िया खाना..... बहुत रड़क रहा होगा अचानक मेरा आना? क्यों?
>
> (बिन्दिया नजरें झुका लेती है।) (90)

मा. सीताराम अंदर से टूट जाता है और बहुत ज्यादा निराश होकर बैठ जाता है और बिन्दिया से कहता है-

> मुझे तो अभी भी विश्वास नहीं हो रहा है! लगता है आँखें धोखा दे रही हैं। कहाँ वह आँसुओं में डूबा निर्दोष और पवित्र चेहरा और कहाँ ये रंगीन महफिल की

अकेली रौनक .... गलत नहीं कहा था लोगों ने। मुझे तो विश्वास नहीं आ रहा था ...बेवकूफ हूँ.. (90)

इस नाटक के माध्मम से हम मा. सीताराम की मानसिकता को देख सकते हैं कि किस प्रकार उसने एक दुहाजू औरत पर तरस खाकर उनसे शादी की लेकिन उस औरत ने मा. सीताराम की भावनाओं को ठेस पहुँचा दी। अत: हम कह सकते हैं आज की कुछ नारियाँ तो अपने अधिकारों की प्राप्ति के चक्कर में कर्त्तव्यों को भूल गई। इस नाटक के विषय में देवेन्द्र शुक्ला *हिन्दी नाटकों में बिम्ब-विधान* में लिखते हैं- "चार यारों का यार' नाटक में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध का अन्वेषण, विशुद्ध शारीरिक, यौन-भावना के धरातल पर किया गया है, इस में स्त्री विमर्श नहीं, बल्कि पुरुष विमर्श है।" (47)

पंजाबी नाटकों के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करें, तो पंजाबी में स्त्री विमर्श के साथ-साथ पुरुष विमर्श पर भी कई कथाओं का वर्णन हुआ है, लेकिन पुरुष के मानसिक द्वन्द्व को उतनी गहराई के साथ प्रस्तुत नहीं किया, जितना प्रत्येक साहित्यकार स्त्री के विषय में करता है। स्वराजबीर के द्वारा रचित नाटक *कल्लर* में गुरदयाल सिंह; जिसने सारी जिन्दगी बहुत सख्त मेहनत की, अपनी जमीन में कल्लर को खत्म किया, इतनी मेहनत करने के बावजूद भी उन्होंने सारी जिन्दगी कर्ज़ में ही व्यतीत की, कर्ज़ होने पर भी उन्होंने अपनी बेटियों की धूमधाम से शादी की, उनके बच्चों के जन्म समय भी खर्च किया, बेटे को जमीन बेचकर विदेश भेजा, जिस कारण उनकी जमीन भी आधी रह गई, लेकिन फिर भी उसका उत्साह बरकरार है। वह खुद कहता है-

गुरदयाल: अब तो गाड़ी लाइन पर आ गई है ..... लेकिन हिसाब लगाकर देखें, तो पहले बैंक के कर्जे का सबको पता ही है ... फिर छोटी बेटी की शादी... फिर शूषक.. सब साहूकार से पैसे उठाकर किया ..... उनका कर्ज़ अभी बाकी था .. कि दूसरी बेटी आकर पच्चीस हजार ले गई .... फिर साहूकार से ब्याज़ पर लेने पड़े... दो एकड़ जमीन बेटे को विदेश भेजने में बिक गई ... और अब साहूकार कह रहा है कि एक एकड़ उसके नाम करवा दो.. फिर कर्ज साफ़ होगा.. अब तुम हिसाब लगाऊ यदि उसने एक एकड़ जमीन अपने नाम पर लिखवा ली तो मेरी जमीन आधी रह जाएगी... तुम लोग तो अच्छी तरह जानते हो कि इस

> जमीन को मैंने कैसे अपने-आपको खत्म कर; बनाया था ..... कितनी ही हल पंजालीयां को खत्म कर दिया था इसमें.. चलो परिवार के लिए ... (79)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम एक आम पुरुष की मानसिकता को देख सकते हैं कि वह अपने परिवार के लिए किसी भी प्रकार का संताप भोगने को तैयार है। इस संवाद के माध्यम से नाटककार ने पंजाब की जनपदीय विशेषताएँ जैसे शूषक (पंजाब की एक ऐसी रस्म है जो लड़का पैदा होने के बाद कपड़े और गहनों के रूप में नाना-नानी के द्वारा दिया जाता है), ऐसे ही हल पंजालीयां जो पहले समय में खेती के औजार के रूप में काम आते थे, इनका विशेष वर्णन किया गया है।

इस प्रकार अजमेर सिंह औलख के द्वारा रचित नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* की बात करें, तो यह एक किसानी समस्या से सम्बंधित नाटक है। इस नाटक में नाटककार ने आज के युग के आम आदमी की त्रासदी को प्रस्तुत किया है। इस नाटक का मुख्य पात्र चरना है, जो एक कृषक का बेटा है और अपने भाइयों के साथ मिल कर खेती करता है, लेकिन बढ़ती महँगाई में फालतू खर्च और साहूकारों के ज्यादा ब्याज के कारण चरने का परिवार बहुत कठनाई में फंस जाता है। चरना और उसका भाई बहुत मेहनती है और वह दिन-रात खेतों में काम करते हैं, लेकिन कर्जे का बोझ उनसे उतर नहीं रहा। चरने के मानसिक द्वन्द्व का प्रगटावा उस समय होता है, जब वह साहूकारों के साथ हिसाब-किताब करके अपनी माता को बताता है-

> चरना: बीजी बात यह है कि हम लोग सिर से पावों तक कर्जे में डूब चुके हैं। साहूकार ने जो स्टाम्प भरा था उसका समय आ गया है। अब वह ज़मीन लेना चाहता है। (32)

इस प्रकार हम इस नाटक में देखते हैं कि चरने की सारी ज़मीन साहूकार खरीद लेता है और चरने के परिवार की आमदनी का साधन भी खत्म हो जाता है। ज़मीन बिक जाने के सदमे से चरने की माँ भी मर जाती है। अब चरना बहुत उदास रहने लग जाता है; घर का खर्च, बच्चों की पढ़ाई आदि को किस तरह पूरा किया जाए। चरना अपने गाँव में शर्म के कारण मजदूरी भी नहीं कर सकता जिस कारण वह शहर चला जाता है और वहाँ किसी कारखाने में मजदूरी करने लग जाता है। चरना उस कारखाने में मजदूरी भी पूरी मेहनत से करता है, लेकिन एक दिन उसके चाचे का लड़का उस कारखाने में आ जाता है और उसे मजदूरी करते देख कर अंदर से खुश

होता है और ऊपर से दिलासा देता है। जिसके कारण चरना अपना ध्यान मशीन की ओर नहीं दे पाता और उसका एक हाथ मशीन में आकर कट जाता है।

हाथ कटने के बाद उनके परिवार का एक मात्र आय का साधन चरना भी घर बैठ जाता है, लेकिन बाद में जब उसका जख्म पूरी तरह से सही भरा भी नहीं होता, उससे पहले ही, चरना अपने काम की तलाश करने लग जाता है और उसका मानना है कि मैं अपने परिवार को भूखा नहीं मरने दूँगा। चरने के माध्यम से हम देख सकते हैं कि पुरुष किसी भी स्थिति में क्यों न हो अपने परिवार की सदैव भलाई चाहता है।

अत: प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी के नाटकों की तुलना के माध्यम से हम कह सकते हैं कि आज पुरुष वर्ग पहले की तुलना में ज्यादा पीड़ित है, आज भले ही सामाजिक मानदंड पुरुषों के पक्ष में हों, लेकिन पुरुष मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं से मुक्त नहीं है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि अक्सर वे पितृसत्ता की ऊंची उम्मीदों को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रहे होते हैं और उस प्रक्रिया में, स्वयं की विशिष्टता के लिए सच साबित नहीं हो पाते। बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि पुरुषों के लिए निरंतर पूर्णता की उम्मीद और प्रशंसा की निरंतर आवश्यकता, उनके लिए मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं की परिस्थिति बना देती है। वह कभी किसी की मदद तलाशे बिना अपने निजी मानसिक दायरे में पड़े रहते हैं और पीड़ित होते रहते हैं।

निष्कर्ष:

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि वर्तमान शताब्दी में वैज्ञानिक प्रगति एवं तकनीक के विकास ने, जहाँ एक ओर आर्थिक प्रगति के पर्याप्त साधन सुलभ करवाएं हैं, वहीं दूसरी ओर मनुष्य की व्यक्तिगत जिन्दगी में तमाम मनोवैज्ञानिक जटिलताएं भी पैदा की हैं। आज सामाजिक संघर्ष, भारतीय परम्पराओं का त्याग, शिक्षा का प्रसार, विज्ञान और तकनीक, औद्योगीकरण, ग्रामीण और शहरी विकास के कारण मनोवैज्ञानिक समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। आर्थिक प्रगति के परिणामस्वरूप सामाजिक एवं व्यक्तिगत क्षेत्रों में बड़ी तीव्र गति से परिर्वतन हो रहें हैं, जिसके कारण सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं व्यवसायिक मूल्य बदल रहें हैं। आज प्रत्येक समाज में दो व्यक्तियों के भीतर की दूरी तो कम हो गयी; लेकिन सहृदय के प्रति दूरी बहुत बढ़ गयी है, आज व्यक्ति भीड़ में होने के बावजूद भी अपने-आपको

अकेला महसूस करता है। आज के मानव के दुःख का कारण भी यह है कि वह अपने सगे रिश्तों को निभाने वाले कर्तव्यों से दूर भाग रहा है और अनजान व्यक्तियों पर विश्वास करके, उनसे अच्छाई की आशा करता है। जब अनजान व्यक्ति उसकी आशाओं पर खरा नहीं उतरता, वह उदास होता है। साथ ही इस प्रकार की मानसिक उदासी को वह लज्जा के मारे अपने सगे रिश्तेदारों को भी नहीं बताता। अत: यही कह सकते हैं कि हमें बनावटी दुनिया से बाहर आना चाहिए, अपने परिवार को ज्यादा से ज्यादा समय देना चाहिए। अपने जीवन की हर समस्या को अपने माता-पिता, पति-पत्नी और बच्चों के साथ साँझा करना चाहिए। इससे हम मानसिक रूप से स्वस्थ रह सकेंगे और हमारा मनोवैज्ञानिक विकास भी हो।

दोनों भाषाओं के नाटकों के तुलनात्मक बिन्दुओं की बात करें, तो हम कह सकते हैं कि दोनों भाषाओं में मनोवैज्ञानिक नाट्य लेखन और प्रस्तुतीकरण की कड़ी पाश्चात्य साहित्य से जुडती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से दोनों भाषाओं के नाटकों का उद्देश्य मानव-जीवन की विभिन्न समस्याओं, कठिनाइयों एवं संघर्षों की व्यंग्यपूर्ण झाँकी को दिखाना और उनका मनोवैज्ञानिक ढंग से समाधान प्रस्तुत करना है। हिन्दी नाटककारों में सुशील कुमार सिंह, हृषिकेश सुलभ और मीरा कांत के चयनित नाटक मनोवैज्ञानिक आदर्शों की झलक के साथ सही जीवन की प्रस्तुति करते हैं, इनके नाटकों का उद्देश्य कोई मनोरंजन करना नहीं है। ऐसे ही पंजाबी नाटककारों में अजमेर सिंह औलख, स्वराजबीर, नाहर सिंह औजला के चयनित नाटकों की दृष्टि समाज की बजाय व्यक्ति की ओर अधिक जुड़ी है, इसलिए मनोवैज्ञानिक उलझनों के साथ ही पारिवारिक, आर्थिक और सामाजिक त्रुटियों का यथातथ्य चित्रण हिन्दी नाटकों की तुलना से अधिक मिलता है। हिन्दी नाटककार डॉ. अजय शर्मा का नाटक *मोहम्मद जलालुद्दीन* एक मनोवैज्ञानिक नाटक है, नाटककार ने इसकी कथा को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि इसकी कथा मात्र आदर्शवादित न होकर वस्तुस्थिति का स्पष्ट दर्शन करवाती है, जो पंजाबी के नाटकों से भिन्न है। हिन्दी महिला नाटककार नादिरा जाहिर बब्बर के नाटक *जी, जैसी आपकी मर्ज़ी* और पंजाबी की महिला नाटककार अनीता शबदीश के नाटक *कथा रिड़दे परिंदे* की तुलना करें, तो दोनों में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से काफी सामानता है। इन दोनों नाटककारों ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के विविध आयाम, लोकजीवन, लोकभावनाओं के सजीव चित्र, वर्तमान परिवेश एवं प्रश्नों और मनुष्य के अंतर्मन में छिपे सत्यों को प्रस्तुत किया है।

अंत दोनों भाषाओं के नाटककार मनोवैज्ञानिक चित्रण के माध्यम से आम लोगों की समस्याओं को प्रस्तुत कर रहे हैं।

षष्ठम अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: भाषा एवं शिल्प पक्ष

6.2.1.1 नाट्य-भाषा का अर्थ एवं इसके विविध आयाम

नाटक या नाट्य में प्रयुक्त भाषा को नाट्यभाषा कहते हैं। भाषा वह साधन है जिसके द्वारा हम अपने विचारों को व्यक्त कर सकते हैं, दूसरे शब्दों में कहें तो भाषा का अर्थ है- 'बोलना या कहना' अर्थात् मनोगत भावों का प्रकाशन भाषा के माध्यम से होता है, इसीलिए भाषा को अभिव्यक्ति का प्रबलतम साधन माना जाता है। पुष्पपाल सिंह वृहत् *हिन्दी शब्दकोश* में भाषा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-

> भाषा मुँह से निकलने वाली व्यक्त ध्वनियों या सार्थक शब्दों और वाक्यों का वह समूह, जिसके द्वारा मन के भावों को व्यक्त किया जाता है; वाणी; किसी देश या आंचल में प्रचलित बातचीत का ढंग या बोली है। (620)

भाषा भावाभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है। अन्य काव्य रूपों जैसे कविता, उपन्यास, कहानी आदि साहित्यिक विधाओं की भाषा की संरचना की तुलना में नाटक की भाषा यानी नाट्यभाषा नाटकीय परिवेश के कारण अलग रहती है। नाट्यभाषा का स्वरूप, संरचना, आकार तथा उसका महत्त्व अन्य विधाओं की भाषिक संरचना पद्धति से बहुत भिन्न है। नाटक को छोड़कर अन्य सभी साहित्यिक विधाएं केवल पढ़ने के लिए रची जाती हैं। अत: उनकी वाचन शैली सीधी और सरल होती है। लेकिन नाटक नट और नटी द्वारा मंच पर जीवंत कार्यव्यापार के रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से संरचित वाचन शैली अभिनयोन्मुख है और उसका महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ता रहा है। साधारणतया नाट्यभाषा के प्रमुख दो रूप माने जाते हैं। ये दो रूप हैं- हमारे जीवन-व्यवहार की ध्वन्याश्रित शाब्दिक भाषा और अंगाश्रित शरीर भाषा। इनके अलावा रंग-प्रकाश ध्वनि, चित्र, रंगमंचीय वस्तुयें आदि नाट्यभाषा रूपी विशिष्ट भाषा की इकाइयाँ हैं। इन इकाइयों को मंचीय भाषा कह सकते हैं।

इस प्रकार नाटक की भाषा को लेकर एक बात और भी है कि इसकी भाषा पात्रों को ही ध्यान में रखकर नहीं रची जाती बल्कि दर्शक और श्रोता वर्ग को बराबर ध्यान में रखना पड़ता है क्योंकि नाटक की भाषा वाच्य, श्रव्य और दृश्य तीनों होती है। डॉ. देवेन्द्र स्वामी *आधुनिक नाटक: दृष्टि एवं शिल्प* में लिखते हैं-

> भाषा की पूर्णता यदि कहीं दिखायी देती है, तो वह केवल नाट्यभाषा में। कोष के शब्द निष्प्राण होते हैं, लेखक उनमें प्राण फूंकता है- लेकिन उन्हें क्रियाशीलता नाटक में आकर ही प्राप्त होती है। शब्दों के अर्थ की संगति जब आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य अभिनय के साथ होती है, तब वाक्य जैसे साकार हो जाता है। (211)

कलात्मकता के संदर्भ में भाषा और शैली का अपना अलग महत्त्व होता है। भावों को अभिव्यक्त करने का साधन भाषा होती है। परन्तु संरचना की भी एक विशेषता है; जिसके कारण नाटक में रोचक स्थितियाँ निर्माण होती हैं। नाटककार अपनी प्रतिभा के अनुसार नाट्य-विडंबना, फ्लैशबैक, स्वप्नदृश्य, तुकांत प्रयोग, जुमलेबाजी, गेयता, काव्यात्मकता आदि का प्रयोग कर नाटक को रोचक बनाता है। चयनित हिन्दी और पंजाबी के नाटककारों ने भाषा शैली का विशेष ध्यान रखा है। अवसर के अनुकूल, प्रांतीय-भाषाओं और बोलियों का प्रयोग किया है।

नाटक लिखना और नाटक के क्षेत्र में कलात्मक दे पाना, दो भिन्न बातें हैं। अधिकांश नाटककार अपनी अलग-सी पहचान नहीं बना पाए। परन्तु कई ऐसे नाटककार हैं, जिहोंने कई अच्छे नाटक लिखे और अपनी सार्थक पहचान भी बनाई। इस प्रकार चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटककारों की बात करें, तो लगभग सभी नाटककारों के कृतित्व में ही नहीं, भाषिक और संवादीय संरचना में भी अलग-से वैशिष्ट्य झलकता है। चयनित नाटकों की महत्त्वपूर्ण विशेषता; उनमें प्रयुक्त भाषा व संवादों का प्रयोग है। इनके नाटकों में प्रयुक्त भाषा ने नाटक का मूल संवेदना का और घनीभूत तथा सूक्ष्म बनाया है। साथ ही वह भाषा की ताकत से पूर्वतः परिचित है। डॉ. गिरीश रस्तोगी ने *रंगभाषा* में लिखा है-

> रंगभाषा एक बनी-बनाई भाषा नहीं है, वह एक ताज़गी भरी संश्लिष्ट भाषा है, उसे हम उसकी समग्रता में ही अनुभव कर सकते हैं, एक ऐसी समग्रता और संश्लिष्टता जो पूर्व-निर्धारित नहीं है। उसमें अनेक सर्जक तत्व, अनेक कला रूप,

> सूक्ष्म सौंदर्यनुभव आकर जुड़ते जाते हैं- उसमें एकात्मक भी हो जाते हैं और अपनी स्वतंत्र अनुभूति भी कराते रहते हैं। (105)

शब्द और अभिनय के द्वारा नाटक की भाषा उभरती है और नाटककार के भावों को दर्शकों तक पहुँचाती है। समाज के विविध भाव दिशाएँ एवं अनुभूतियाँ प्रत्येक मनुष्य के मन में अलग-अलग रूप में आकार ग्रहण करती हैं। इसलिए हर एक की अभिव्यंजना शैली में विविधता दिखायी देती है। भाषा भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। नाटक में भाषा ही नाटककार के उद्देश्य या विचार को पात्रों द्वारा पाठकों तक संप्रेषित करने का कार्य करती है। नाटक की सफलता और सशक्तता भाषा पर ही आधारित है। डॉ. देवेन्द्र स्वामी *आधुनिक नाटक: दृष्टि एवं शिल्प* में लिखते हैं-

> नाटककार की भाषा अभिनेता के माध्यम से दर्शक और श्रोता तक पहुँचती है। इसलिए यह भी आवश्यक हो जाता है कि न केवल पात्र-स्थिति कालावधि को बल्कि दर्शक वर्ग को ही ध्यान में रखकर नाटक को भाषा की जांच-परख की जानी चाहिए। (211)

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में लोकजीवन और जनपदीय भाषाओं की उदाहरणों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। ध्वन्याश्रित शाब्दिक भाषा, अंगाश्रित शरीर भाषा तथा उपकरणाश्रित मंचीय भाषा मिलकर नाट्यभाषा बनती है। नाटक की भाषा का सहज, संप्रेषणीय होना अनिवार्य है। यह संवाद के रूप में अभिनेताओं के लिए लिखी जाती है। यह एकाधिक अभिनेताओं के बीच या एक ही अभिनेता के आत्मालाप के रूप में हो सकती है।

नाटक की विषयवस्तु, चरित्र, स्थिति, भाव क्रिया आदि तत्वों के साथ सम्बन्ध होने के कारण नाट्यभाषा को कभी भावात्मक होना पड़ता है और कभी संकेतात्मक होना पड़ता है। नाट्य भाषा का संप्रेषण केवल वाक्य और संवादों पर निर्भर नहीं होता। परम्परा विरोधी संवाद भी कभी-कभी व्यंग्यार्थ को उभारने की क्षमता रखते हैं।

नाट्यभाषा का विवेचन कई बिन्दुओं को आधार बनाकर विश्लेषित किया जा सकता है, जिसमें पात्रानुकुल एवं प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग, चयनित नाटकों में

सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग, चयनित नाटकों में व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग और विभिन्न भाषाओं के शब्दों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग आदि हैं।

6.1 .2 2000 से 2018 के चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में भाषा तत्त्व

6.1.2.1 पात्रानुकुल एवं प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग

पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग नाट्य-रचना को सार्थक एवं सफल बनाता है। आज के नाटकों में पात्रों द्वारा भाषा के स्वाभाविक रूप का प्रयोग हुआ है। इक्कीसवीं शताब्दी के नाटककारों ने भाषा के प्रति अधिक सजगता दर्शायी है, जिससे नाटकों की भाषा, दृश्य-विधान, अभिनय, गति तथा अन्य रंगीन तत्त्वों से जुड़कर सत्याभास कराने में समर्थ हुई है। चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के पात्र अपने-अपने वर्ग, स्तर और व्यवसाय के आधार पर बोलते दिखायी देते हैं। उनके द्वारा शब्दावली अपने आप ही उनका स्तर बता देती है।

सबसे पहले हम कुछ हिन्दी नाटकों की बात करें, तो रंगमंच पर नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में भाषा की औचित्य पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है, रंगमंच पर पात्रानुकूल भाषा की दृष्टि से लेखिका ने इस नाटक की रचना की। यह केवल ऐतिहासिक नाटक नहीं बल्कि इतिहास के बेहतरीन तिनके को बटोर कर काल्पनिक पक्षी हुमा की भांति बनाया गया एक काल्पनिक नाटक है। नाटक की भाषा दर्शकों को प्रभावित करने वाली है-

> हमीद बानो: (घायल स्वर में) लेकिन हमारे आने के बाद भी फर्क नहीं पड़ा ! हम भी आपको सकून नहीं दे सके।
>
> हुमायूँ: (अपनेपन से) आइंदा कभी इससे (प्याले की और इशारा करते) अपना मुकाबला मत कीजिएगा। आप नहीं जानती आप हमारे लिए क्या हैं। आपसे हम दिल और दुनिया दोनों की बातें करते हैं। (30)

इस नाटक की भाषा मंचीय गुणों से युक्त है। पात्रों द्वारा रंगमंच पर दर्शकों के सामने प्रभावपूर्ण शब्दावली का प्रयोग इस नाटक में दर्शाया गया है। नाटक की भाषा नाटकीय गुणों से युक्त; अभिनय के हाव-भाव तथा नाटकीय मनोरंजकता के लिए है।

सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक *चार यारों की यार* भी रंगमंच और भाषा की दृष्टि से अनुकूल है। नाटक में छ: पात्र अपनी स्पष्ट भाषा द्वारा किसी एक व्यक्ति की बजाय एक समूची परिस्थिति, एक समूचे वातावरण और एक समूची सम्भावना के रूप में अपने-आपको प्रस्तुत करते हैं। यह नाटक परम्परागत नाटकों से भिन्न है और प्रतीक शैली में उस अँधेरे के शोर की व्यंग्यपूर्ण त्रासदी जीवंत दस्तावेज़ तथा दर्शकों को एक जगह बांध देती है। उदाहरण-

> दोष मैं किसे दूँ, सब भाग्य का ही खेल है। यदि मैं अपने पहले पति को छोड़कर दूसरा ब्याह न रचाती.... चौंकिए मत, कोई नयी बात नहीं कर रही हूँ ..... दूसरा ब्याह करना कोई गुनाह तो नहीं है और वह भी तब जबकि किसी स्त्री का पति हर रोज नशे में धुत होकर लौटे और अपनी पत्नी को बेजुबान जानवर समझ बेरहमी से पीटना शुरू कर दे.... लात, घूंसे, थप्पड़ या जो कुछ भी हाथ में आ जाये... जलती हुई लकड़ी, जूते या लोहे की राड़.. कब तक सहती.... आखिर कब तक... एक दिन जब यह नाटकीय यात्रा असही हो गई, तो मैं। चुपचाप अपने पति को हमेशा के लिए छोड़कर अपनी माँ के यहाँ चली आई....। (11)

इस नाटक की भाषा सहज, सरल तथा रंगमंच के अनुकूल एवं जनपदीय है। इसमें पात्रोनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है, इस नाटक की कथावस्तु को मंच पर प्रस्तुत करने में कोई कठिनाई नहीं आई। इक्कीसवीं शताब्दी के नाटककार ने इस सामर्थ्य का परिचय दिया है कि नाटक में जिस भाव को व्यक्त करना चाहता है, उसी के अनुकूल भाषा का चयन किया है। जिससे नाटककार की भाषा यथार्थवाद को स्पष्ट करती है। नाटककार की भाषा मंचीय-गति में नाट्य और दृश्य की विलक्षणता, रंग-प्रस्तुति में सर्वत्र दर्शनीय है। इस नाटक की भाषा में सहजता, सरलता एवं रोचकता के गुण पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलते हैं।

इस प्रकार अजय शर्मा के द्वारा यथार्थवादी शैली में रचित नाटक *मोहम्मद जलालुद्दीन* की बात करें, तो इस नाटक की भाषा का सर्वाधिक प्रमुख गुण यह है, कि

हिन्दी भाषी एवं निम्न-मध्यवर्गीय परिवारों में जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जाता है, ठीक उसी प्रकार की भाषा यहाँ प्रयुक्त की गई है। नाटक का विषय एक मध्यवर्गीय परिवार से है, अत: उसी की भाषा यहाँ प्रयुक्त करने की दिशा में नाटककार विशेष सजग रहे हैं। इस नाटक की विशेषता यह है कि इसमें सजगता और जागरूकता तो है, पर प्रयत्न-साध्यता कहीं भी नहीं है। कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि कोई पात्र उधार लिया हुआ है अथवा कुत्रिम एवं वर्ग से बाहर की भाषा बोल रहा है। इन पंक्तियों में स्पष्ट दिखायी देता है-

> बशीर: तू फ़िक्र न कर सलमा ! हम सब लोग इस नेक काम में तुम्हारे साथ हैं। अजनबी जिस दिन आया था उस दिन भी साथ थे और आज भी साथ हैं।
>
> आलम: खुदा का बंदा था और कितनी देर हम लोग उसे पनाह दे सकते थे? वैसे हम लोगों ने उसे पनाह देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। (60)

इस प्रकार यदि पंजाबी नाटकों की बात करें, तो हम देखते हैं कि भाषा व संवाद का प्रमुख गुण पात्रानुकुल एवं प्रसंगानुकूल होता है जो पात्र की स्थिति एवं द्वन्द्व को उजागर करने एवं पात्र के चरित्र को समझने के लिए आवश्यक है। हम देखते हैं कि दविंदर दमन के नाटक *छां विहूणे* में प्रसंग व पात्र के अनुकूल भाषा अपनाई है। अत: जिस प्रकार का पात्र और प्रसंग है भाषा भी उसी के अनुरूप है। *छां विहूणे* नाटक में प्रयुक्त प्रसंग और पात्र के अनुकूल भाषा का उदाहरण है-

> -माँ: सुधीर ... ओ सुधीर.... उठ जा पुत्र। देख कितना समय हो गया है ।
>
> सुधीर: माँ सोने भी दे... आज संडे है।
>
> माँ: पुत्र तेरी चाय ठंडी हो जाएगी। आज मुझे मंदिर जाने में भी देरी हो गई है।
>
> सुधीर: (चाय का कप पकड़) माँ, तू मन्दिर जाना बंद क्यों नहीं कर देती? जितना तू भगवान से सुख-शांति मांगती है, उतनी ही वो गायब होती जा रही है। माँ तू ऐसे कर भगवान से दुःख और गरीबी मांगनी शुरू कर दे। (26)

प्रस्तुत संवाद में सुधीर अपनी पारिवारिक और जनपदीय भाषा का प्रयोग करता है जो प्रसंग व उसके अनुकूल है। सुधीर तथा उसकी माँ दोनों की आर्थिक दशा बहुत कमजोर है, इनकी त्रासदी इनके शब्दों से साफ झलक रही है। इसी प्रकार

कुलदीप सिंह दीप के द्वारा रचित नाटक *तूं मेरा की लग्गदै* में भी पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग का उदाहरण दृष्टव्य है-

> प्रदुमन: बैठ बेटी यहाँ ... बेटे आज से शाम का खाना तू बनाया कर ... और सुबह का खाना तेरी भाभी बना लिया करेगी।
>
> मीत: पापा मैं ! ! ! !
>
> प्रदुमन: हाँ बेटा तू....
>
> मीत: पापा मुझे पढ़ना भी होता है...
>
> प्रदुमन: देख बेटे, तुम्हारी माँ अब बुजुर्ग हो गई है ... अब उसमें इतनी शक्ति नहीं है कि घर का सारा काम कर ले .... तू है, तेरी भाभी है.... तीनों मिलकर किया करो.... तू सुबह जल्दी उठ के पढ़ लिया कर। (31)

प्रस्तुत संवाद में प्रदुमन तथा उसकी बेटी मीत हैं, जिस में प्रदुमन अपनी ममता और प्यार की भाषा से अपनी बेटी को शिक्षा दे रहा है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भाषा का जो प्रयोग हुआ है वह पात्रानुकुल एवं प्रसंगानुकूल है।

6.1.2.2 चयनित नाटकों में सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग

नाटक चाहे पाठ्य हो या दृश्य, सामान्य बोलचाल की भाषा का उसके लिए अत्यंत महत्त्व होता है। भाषा पर लेखक का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। उसका प्रत्येक शब्द एवं वाक्य पात्र और परिस्थिति का साक्षात चित्र-सा प्रस्तुत कर दें, यही उसकी सबसे बड़ी सफलता है। जो पात्रों द्वारा रंगमंच पर दर्शकों के सामने प्रभावपूर्ण शब्दावली का प्रयोग होता है; वह प्रशंसनीय योग्य होता है। दोनों भाषाओं के चयनित नाटकों में पात्रों के बोलते समय यह आभास नहीं होता कि पात्र रटाई हुई भाषा बोल रहे हैं। पात्रों की भाषा व्यावहारिक और प्रवाहपूर्ण है, जिससे पात्रों का अभिनय रंगमंच पर सफल है। डॉ. मधु धवन के द्वारा रचित हिन्दी नाटक *आज की पुकार* में हम देखते हैं कि सुबह का समय होता है और दुकानदार अपनी दुकानें खोल चुके हैं। कुछ लोग मन्दिर जा रहे हैं, जाते वक्त जो-जो मिलते हैं, उसे राम-राम करते जाते हैं, जिसे हम अपने जीवन में स्वाभाविक भी देखते हैं। नाटक की वार्तालाप-

गंगाधर: राम-राम दया भइया ...

दयानिधि: राम-राम..... गंगाधर, दूध में पानी मत मिलाना, पानी मिलेगा तो लक्ष्मी जी नाराज हो जाएँगी।

गंगाधर: न... न.... भइया, मैं तो बर्तन धो रहा हूँ ...। (थोड़ा रूककर) पहले कभी ऐसा हुआ है ....?

परमानन्द: राम-राम दया भइया, कल हलवा कैसा लगा?

दयानिधि: जो भी हो, तुम्हारी दुकान से शुद्ध घी की खुशबू ही में लार टपकाने का दम है .... भगवान के मुँह में भी ....!!!

परमानन्द: आज जलेबी बाँध दूँ ....?

दयानिधि: रोज-रोज भगवान को नये-नये पकवान खिलाएँगे तो भगवान को भी मजा आयेगा, है न ...?

पवनप्रकाश: दया भइया, राम-राम ..... (12)

नाटककार जब अपने नाटक में सामान्य जनपद और बोलचाल की भाषा का प्रयोग करता है, तब पाठक को मिलने वाला आनंद और भी अधिक बढ़ जाता है क्योंकि भाषा जितनी सामान्य होगी पाठक उतनी ही आसानी से उस नाटक में भाव, संदेश एवं उद्देश्य को समझ पायेगा और दूसरी बात वह लेखक की मन के काफी निकट पहुँच जाएगा, जिससे कि नाटक की तरफ आकर्षण बढ़ता चला जाएगा। जितना अधिक आकर्षण पाठकों का नाटक की तरफ होगा नाटककार और नाटक को उतना ही यश और गौरव मिलेगा। इस प्रकार अजय शुक्ला के द्वारा रचित नाटक *ताजमहल का टेंडर* में हम देखते हैं कि सरकारी दफ्तर में अफ़सर और क्लर्क लोग कैसे भ्रष्टाचार के तरीके बनाते हैं। नाटककार ने उस दफ्तर के कर्मचारी और अधिकारी की भाषा का ही प्रयोग किया है-

सुधीर: कारण तो इसने बता ही दिया। विस्थापितों का पुनर्वास। इवैकुईस के रिसैटेलमेंट के लिए एक एल.आई.जी. कॉलोनी का प्रपोजल बनवा देते हैं। इधर जमीन के लिए नेता जी और कॉलोनी का कांट्रेक्ट भइया जी को। दोनों तरह से सर.....

गुप्ता जी: हाँ। आइडिया तो बहुत अच्छा है। पर ये अकाउन्ट्स वाले ऑब्जेक्शन करेंगे। मैं उस चोपड़ा के बच्चे को अच्छी तरह जानता हूँ। कहेगा ये प्रोजेक्ट के स्कोप ऑफ वर्क के बाहर है। देखो अभी तक ताजमहल का प्रपोजल भी दबाए बैठा है। (42)

प्रस्तुत संवाद में प्रयुक्त भाषा सामान्य बोलचाल की भाषा है। जो रंगकर्ताओं को प्रेक्षक समुदाय से अलग नहीं करती। इस नाटक के माध्यम से एक दफ्तर की सामान्य भाषा को प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी नाटकों के बाद यदि हम पंजाबी नाटकों की बात करें, तो हिन्दी नाटकों की तरह पंजाबी नाटकों में भी सारे पात्र अपने-अपने वर्ग, स्तर और व्यवसाय के आधार पर बोलते दिखायी देते हैं। उनके द्वारा शब्दावली अपने आप ही उनका स्तर बता देती है। पंजाबी नाटककार अजमेर सिंह औलख के द्वारा रचित नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* में एक निम्न किसान की त्रासदी को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में बचन सिंह अपने नशेड़ी बेटे से परेशान है। वह सामान्य भाषा में अपने परिवार के सदस्यों से बातचीत करता है। बचन का स्तर बुद्धिमता और विवेक से सर्वत्र परिपूर्ण दिखायी देता है। उनमें सहजता और गम्भीरता है। उपदेशात्मक का स्वर प्रधान है-

बचना: गगन कहाँ गया है? मेरे पास भेजो उसे।

अमन: गगन का तो पता नहीं पिता जी, कहाँ गया है? शायद रोटी खाकर बाहर चला गया है।

बचना: (गुस्से में) गया होगा किसी नशेडी यार के पास ! और उन्हें कहा जाना है... सारे संसार का कोहडी है।

अमन: पापा ! आप इतनी चिंता न करें, गगन के नशे की। यह अपने-आप छोड़ देगा, प्यार-से, समझाने से।

बचना: बहुते प्यार ने ही तो बिगाड़ा है, उसकी दादी और माँ के प्यार ने, उसे गलत रास्ते पर भेज दिया है। (18)

पंजाबी नाटकों के पात्रों में आपसी संवादों में सामान्य भाषा का प्रयोग सर्वत्र देखा जा सकता है। पाली भूपिंदर के द्वारा रचित नाटक *चंदन दे ओहले* में हम देखते

हैं कि उसके परिवार के सदस्य उसकी शादी जानबूझकर एक बूढ़े व्यक्ति से करना चाहते हैं, जो विदेश से आया है और बाद में उनके परिवार को भी विदेश ले जा सकें। लेकिन माणा इंकार कर देती है, माणा के इंकार करने पर सारा परिवार उसे अपने-अपने फायदे के अनुसार सामान्य भाषा में मनाने का प्रयास कर रहा है-

माणा: मैं यह शादी नहीं करूँगी।

माँ: तू एक अच्छी बेटी है, और एक अच्छी बहन भी, तू अपने परिवार के सदस्यों के जज्बातों की कदर भी करती है।

प्रधान: तू अपने बाप को प्यार करती है और उसकी इच्छाओं की भी कदर करती है।

बनी: तुझे अपने छोटे भाई के कैरियर की बहुत चिंता है।

तीनों एक साथ: तुझे इस शादी के लिए हाँ करनी ही पड़ेगी। (64)

उपर्युक्त संवादों में प्रयुक्त भाषा सामान्य बोलचाल की भाषा है। जो रंगकर्ताओं को प्रेक्षक समुदाय से अलग नहीं करती। पंजाबी नाट्य कर्मियों की रंगमंच सम्बन्धी गहन अनुभूति इस बोलचाल के लहजे में साकार हो उठी है।

इस दृष्टि से समकालीन हिन्दी और पंजाबी नाटक सार्थक सिद्ध होते हैं, क्योंकि उनके नाटकों की भाषा बोलचाल की है और उसमें अन्य भाषाओं के शब्दों की भरमार भी है, जो इसे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देने में मदद करते हैं। नाटककारों ने प्रयत्नपूर्वक बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर वास्तविक जीवन की समस्या को प्रस्तुत किया है। नाटक के संवादों की भाषा की संरचना इतनी सरल है कि नाटक की विषयवस्तु को सरलता से समझ सकता है।

6.1.2.3 चयनित नाटकों में व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग

चयनित हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में व्यंग्यात्मक भाषा का भी प्रयोग किया गया है। किसी भी रचना की अर्थवत्ता को बहुआयाम प्रदान करने का एक माध्यम है व्यंग्य। व्यंग्यात्मक भाषा के माध्यम से समसामयिक समस्याएँ सरलता से सम्प्रेषित हो जाती है। सामान्य जीवन की विविध दशाएँ एवं अनुभूतियों प्रत्येक मनुष्य के मन में अलग-अलग रूप में आकर ग्रहण करती हैं। इसलिए हर एक की

अभिव्यंजना शैली में व्यंग्यात्मक भाषा दिखायी देती है। सामाजिक जीवन की इन अनुभूतियों को अनेक तत्वों के आधार पर एकता के सूत्र में बाँधा जा सकता है। जिसमें से एक महत्त्वपूर्ण सूत्र व्यंग्यात्मक भाषा का उपकरण भी है।

चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में छोटे-छोटे मुहावरों और प्रतीकों का समयानुकूल सार्थक प्रयोग करके नाटककारों ने भाषा की अभिनेयता को बनाया है। लम्बे वैचारिक संवादों की अवहेलना करते हुए समसामयिक तथा मानवीय दोनों स्तरों से दर्शकों को स्पर्श करते हैं। इन नाटकों की भाषा पात्रों की मर्यादा और योग्यता के अनुकूल है। जिससे नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने में कोई कठिनाई नहीं होती है। चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों की भाषा अपने रंग, ध्वनि स्पर्श और संकेतों तथा सम्पूर्ण मंचीय विशेषताओं से युक्त संवादों के शिल्प में नाटक को आकार प्रदान कर नाट्यनुभूति के एकदम करीब लाती है। नाटक की भाषा को मानव-जीवन की भाषा माना जाता है, क्योंकि इसके साथ मानव-मन की अनुभूतियाँ, मुद्राएँ और स्थितियाँ सदा खड़ी रहती हैं।

पहले हिन्दी नाटकों की बात करें, तो इन नाटककारों ने अपने नाटकों में आधुनिक जीवन के व्यंग्य को उभारा है, ये नाटकीय व्यंग्य संवाद योजना के रूप में कार्य करते हैं और वास्तविक अर्थ पीछे छिपे रहने पर भी मुखर होता है। साथ ही बोध का वैषम्य व्यंग्य में नजर आता है। सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक *सिंहासन खाली है* में हम देखते हैं कि व्यंग्य परिस्थिति और प्रसंग के अनुकूल है और संवाद योजना दर्शक पर अपना प्रभाव बनाए रखती हैं। संवाद छोटे-छोटे हैं लेकिन फिर भी वह अपनी असरकारकता सिद्ध करते हैं। संवाद व्यंग्यपूर्ण होने के साथ-साथ हास्यपूर्ण और मनोरंजक भी हैं। पात्रों का दर्शकों से बातचीत करना एक व्यंग्य प्रतिष्ठापन है-

महिला: यह बेहूदगी है? कौन हैं आप लोग?

एक: यह बताने के लिए हम बाध्य नहीं हैं।

दो: हम किसी को कुछ भी कह सकते हैं।

तीन: क्योंकि हम लोकतंत्र के प्राणी हैं।

एक: लोकतंत्र यानी प्रजातंत्र।

दो: प्रजातंत्र अर्थात् डेमोक्रेसी।

तीन: और डेमोक्रेसी में हम किसी को कुछ भी कह सकते हैं। (19)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से समकालीन संदर्भ को उभारा है। इन पात्रों के संवादों के माध्यम से आज की राजनीति का चित्रण देखने को मिलता है कि आज के नेता कैसे आम लोगों को कष्ट और जुल्म भरी जिन्दगी जीने को मजबूर करते हैं। इस प्रकार महिला और अन्य पात्रों के माध्यम से इन संवादों में व्यंग्यात्मकता के दर्शन होते हैं। पीयूष मिश्रा के द्वारा रचित नाटक *गगन दमामा बाज्यो* की भाषा-शैली में व्यंग्यात्मक प्रमुख रूप से परिलक्षित होती है। हम कह सकते हैं कि इस नाटक के रचना विधान का महत्त्वपूर्ण पक्ष व्यंग्य है। इसके माध्यम से नाटककार ने सियासत कैसी आई? इन प्रश्नों के माध्यम से नाटककार ने मूल में जाकर हमारी कथित सभ्यता पर चोट की है। उदाहरणार्थ-

पहला आदमी: सियासत की तासीर ही यह है कि इसे बुलाओ, उसे बुलाओं और दोनों को लड़ाओ। बड़े-बड़े राजे महाराजे, मंत्री-महामंत्री, हजारों-लाखों को मौत के घाट उतार देते हैं, इससे क्या उन्हें पागल करार देंगे, बोलो?

दूसरा आदमी: नहीं, उन्हें कौन पागल कह सकता है? पागल तो मैं हूँ, भजन है, अली है, मास्टर है, और बिशना-जो एक कीड़ा भी मसल नहीं सकते, एक चिड़िया भी मार नहीं सकते, एक..। (36)

प्रस्तुत संवाद में सियासत अर्थात् राजनीति पर गहरा व्यंग्य किया है कि कैसे बड़े-बड़े राजे महाराजे, मंत्री-महामंत्री हजारों लाखों को मौत के घाट उतार देते हैं तो कोई उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाता और जो लोग एक कीड़ा भी मसल नहीं सकते, उन्हें पागल करार कर दिया जाता है अर्थात् हमारे समाज की यही विडम्बना है कि हमेशा बेकसूर लोगों को ही यह सब सहना पड़ता है, व्यंजना से भरभूर होने के बावजूद भी भाषा आम आदमी के समीप है। कृष्ण बलदेव वैद के द्वारा रचित नाटक *कहते हैं जिसकों प्यार* में अखिल और सुजाता एक-दूसरे से प्रेम करते हैं किन्तु सुजाता मानती है कि आवश्यक नहीं कि जिससे प्रेम करे उससे ही शादी की जाए। सुजाता व्यंग्य करती हुई कहती है- "क्योंकि मैं शादी को चाहते रहने के लिए जरूरी नहीं समझती- आपको चाहते रहने के लिए हो सकता है मैं शादी को उसके लिए घातक मानती हूँ।" (19)

पंजाबी नाटकों की बात करें, तो नाटककार ओंकारप्रीत सिंह के द्वारा रचित नाटक *प्रगटिओ खालसा* में एक व्यंग्यात्मक संवाद को प्रस्तुत किया गया है, इस नाटक में सुजान एक अन्धविश्वासी पंडित है और वह दिखावे के सारे नियमों की पालना करता है। गुरु नानक देव जी की कथा जो इतिहास में भी मिलती है, उसे इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है कि गुरु नानक देव जी सूर्य को पानी देने की बजाय उसके विपरीत पानी दे रहे होते हैं। जब किसी व्यक्ति के द्वारा पूछने पर गुरु जी उसे बताते हैं कि यदि आपका पानी इतनी दूर सूर्य तक पहुँच सकता है तो हमारा पानी इस पंजाब में मेरे खेतों तक क्यों नहीं पहुँच सकता? नाटककार इस संवाद को व्यंग्यात्मक तरीके से प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं-

> सुजान देव: जब सभी लोग पितरों को अर्ग देने के लिए सूर्य देव को पानी दे रहे थे, उस समय वहाँ पर एक अजीब व्यक्ति आ गया।
>
> सत्यपाल: अजीब व्यक्ति?
>
> सुजान देव: वो हमारे बीच आकर खड़ा और सूर्य देव को पानी देने की अपेक्षा उसके विपरीत, पीछे की तरफ पानी देना शुरू कर दिया। जब हमने पूछा भलेमानस यह आप क्या कर रहे हो ... तो पता है उसने क्या उत्तर दिया?
>
> सत्यपाल: क्या?
>
> सुजान: कि मैं पंजाब में अपने खेतों को पानी दे रहा हूँ। हम सब ने कहा कि तुम्हारे द्वारा दिया गया पानी इतनी दूर कैसे जा सकता है तो उसने कहा कि जैसे आपके द्वारा दिया गया पानी अगली दुनिया में !! (10-11)

प्रस्तुत संवाद में सुजान पात्र के माध्यम से ऐतिहासिक संदर्भ को उभारा है तथा सुजान के इन संवादों में आज के अन्धविश्वासी चित्रण को प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार सुजान और सत्यपाल के इन संवादों में व्यंग्यात्मक के दर्शन होते हैं।

पंजाबी नाटककार अनीता शबदीश के द्वारा रचित नाटक *कथा रिड़दे परिंदे दी* की भाषा-शैली में भी व्यंग्यात्मक दृष्टिगोचर होता है। इसके माध्यम से नाटककार ने एक रचनाकार की पीड़ा, दुःख तथा अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट किया है। एक ऐसा रचनाकार जिसने अपनी ही बेटी की हत्या इसलिए कर दी क्योंकि वह किसी और जाति के

लड़के के साथ शादी करना चाहती थी। इस नाटक में जटिल विरोधी, व्यवहारों के आघातों को व्यंग्य विधान को कलात्मक संयम के साथ प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ-

> उसे बहादरी नहीं, कह सकते रोणकी !! कायरता थी ... जो हो गई ...
>
> अब मैं क्या कर सकता हूँ? जो हुआ, जो बीत गया, वह कभी वापस नहीं आता ...। (35)

उपर्युक्त उदाहरण के माध्यम अनीता शबदीश ने एक रचनाकार के हृदय की मनोदशा को व्यक्त किया है। यह कथन वर्तमान समाज के आईने को हमारे सामने लाकर खड़ा कर देता है और समकालीन सामाजिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करता है।

6.1.2.4 नाटकों के बदलते परिवेश में भाषा-शैली

बदलते भाषिक परिवेश में शैली पक्ष की बात करें, तो 'शैली' शब्द अंग्रेजी के 'स्टाइल' शब्द का पर्यायवाची शब्द है। नाटक का विषय चाहे सामाजिक हो, आर्थिक हो, मनोवैज्ञानिक हो या राजनीतिक हो, विशिष्ट कथ्य को साकार करने के लिए नाटककार विशेष शैली को स्वीकार करता है। यह शैली साहित्यकृति को विशेष रूप प्रदान करती है। कुछ आलोचक संरचना और शैली का घनिष्ट सम्बन्ध जोड़कर इन दोनों को एक ही अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। शैली के सम्बन्ध में डॉ. गोबिन्द चातक *नाटक की साहित्यिक संरचना* में लिखते हैं-

> वास्तव में शैली सबको निर्धारित करती है। उसी से विषयवस्तु की योजना, संरचना और संचयन की कलात्मक संकल्पना रूपायित होती है। इस दृष्टि से शैली संरचना को निर्देशित करती है और वह एक ऐसा केन्द्रीय तत्व बन जाती है जो कृति के सभी अवयवों को एक सुनिर्धारित रचनात्मक प्रक्रिया में नियोजित करती है। (23)

दूसरे शब्दों में कहें तो सामान्यत: अपनी जीवनानुभूतियों को प्रभावात्मकता के साथ संप्रेषित करने के लिए साहित्यकार जिस पद्धति को अपनाता है; उसे शैली कहा जाता है। जैसे अन्य विधाओं के लेखक अपनी रचना के लिए अलग-अलग शैलियों को अपनाते हैं। उसी प्रकार हर नाटककार की भी अपनी विशिष्ट शैली होती है। कुछ

सामान्य शैली का प्रयोग करते हैं, कुछ लोक शैली को अपनाते हैं, कुछ डायरी शैली से कृति को साकार करते हैं, तो कुछ फ्लैश बैक शैली से काम चलाते हैं। कुछ लोग फंतासी एवं स्वप्न दृश्यों के माध्यम से नाट्यलेखन करते हैं।

भाषा, भावों और विचारों की वाहिनी है। किसी भी रचनाकार को अपने संवेदनात्मक लक्ष्य को स्पष्ट करने के लिए भाषा का सहारा लेना पड़ता है। समकालीन हिन्दी और पंजाबी के नाटककार भाषा के प्रयोग और महत्त्व को लेकर बहुत सजग हैं। समकालीन हिन्दी नाटकों में लोककथा शैलियों का भी भरपूर प्रयोग किया गया है। सबसे पहले हिन्दी नाटकों की बात करें, तो सुशील कुमार सिंह के नाटक *सिंहासन खाली है* में एक कथानक रुढी है कि एक राजा के न रहने पर दूसरे राजा की तलाश। नाटक के प्रारंभ में सूत्रधार घोषणा करता है कि सिंहासन खाली है क्योंकि इस पर बैठने वाला राजा सत्य, अहिंसा और न्याय की हत्या करके भाग गया है। लोककथा शैली में अजय शुक्ला का नाटक *ताजमहल का टेंडर* है और स्वदेश दीपक का नाटक *काल कोठरी* लोक नाट्य शैली में लिखा गया है। हिन्दी नाटककार अजय शर्मा के द्वारा रचित नाटक *मोहम्मद जलालुद्दीन* की बात करें, तो यह नाटक यथार्थवादी शैली से लिखा गया। इस नाटक की भाषा अत्यंत सरल व आम बोलचाल की भाषा है तथा साहित्यिक भी। भाषा के रूप में उनके इस नाटक से दर्शक किसी प्रकार की दुरुहता का अनुभव नहीं करता। नाटक न तो यहाँ दार्शनिक गहराइयों के कारण किसी विशेष प्रकार के शब्दों के जाल में उलझकर रह गया है और न ही उन्होंने विशिष्ट वैज्ञानिक और नैतिक शब्दावली का प्रयोग ही किया है। इस कारण बदलते परिवेश में हम कह सकते कि इस नाटक की भाषा अधिक स्थिर एवं प्रभावी है। इसलिए इनके भाषा-शैली भी यथार्थपरक है।

डॉ. मधु धवन के द्वारा रचित नाटक *आज की पुकार* की भाषा भी पूर्णता भावानुकूल एवं प्रवाहमयता के गुणों से ओत-प्रोत है। प्रसंगनुकूल गंभीर भावों की अभिव्यक्ति में गंभीर भाषा का प्रयोग हुआ है और हल्के-फुल्के प्रसंगों पर हल्की-फुल्की भाषा का प्रयोग हुआ है। इसके साथ-साथ सभी प्रसंगों में चाहे हल्के हो या गहन भावों से युक्त, भाषा में सहज गति प्रवाहमयता बनी रहती है। उदाहरण इन पंक्तियों के रूप में देख सकते हैं-

दयानिधि: आप यदि शहर जाकर किशनु के बेटे रामप्रकाश को नहीं छुड़ाते तो ....

> मास्टर जी: इसलिए तो कहता हूँ तुम सब पढ़ना-लिखना सीख लो। सब अनर्थों का मूल, अशिक्षा और लोभ है। रामप्रकाश फँसा कैसे ...? लोभ और अशिक्षा के कारण।
>
> रामलाल: पढ़-लिख, लिख-पढ़ के अच्छा-सा राजा बेटा बन... जाता है ..... नहीं तो मेरी तरह जी तोड़ मेहनत करते रहोगे फिर भी पैसा नहीं होगा मैं चिंता में रहता हूँ। (15)

इस नाटक के माध्यम से हम देखते हैं कि जो मध्यवर्ग एवं निम्नमध्यवर्गीय हिन्दी भाषी परिवारों में अपने रोजमर्रा के व्यवहार में बोली जाती है। साधारण, सरल और बोलचाल की, फिर भी अभिव्यक्ति एवं संप्रेषण में सक्षम है। नादिरा जाहिर बब्बर के द्वारा रचित नाटक *सकुबाई* और *जी जैसे आपकी मर्जी* में एकल नाटी प्रस्तुतियाँ इस शैली में महत्त्वपूर्ण हैं। हम देखते हैं कि मध्यवर्गीय, शिक्षित लोगों के घर में काम करनेवाली सकुबाई अपने जीवनानुभवों को स्वयं प्रस्तुत करती है। उसके जीवनानुभवों के दायरे में उच्चवर्गीय समाज की विसंगतियाँ उभरती हैं। डॉ. शांति मलिक शैली एवं शिल्प शब्द को समानार्थी मानते हुए अपनी रचना *हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास* में लिखते हैं-

> शैली, शिल्प विधि, शिल्प विधान एवं शिल्प तंत्र आदि पर्यायवाची हैं, इनके अर्थ में तनिक भी भिन्नता नहीं है। शैली को रीति व विशिष्ट पद रचना कहकर परिभाषित किया जाता रहा है किन्तु मेरी समझ में इसे गुण मानते हुए भी व्यापक अर्थों में इसकी परिभाषा होनी चाहिए कि, 'शैली अनुभव विषयवस्तु को सजीव एवं सुंदर अभिव्यक्ति प्रदान करनेवाली विधानत्मक प्रक्रिया है। (06)

ऐसे ही हम देखते हैं, नाट्यानुभूति की अभिव्यक्ति के प्रयास में किसी विशेष जनपद या प्रदेश के लोकनाट्य-रूप को पूरी तरह नाट्य-विधान में समायोजित करते हुए नाटक की लचीली संरचना का निर्माण किया जाना अब एक प्रवृत्ति बन गयी है जिसकी रचना परम्परा में हृषिकेश सुलभ ने वर्णात्मक शैली में अमली नाटक लिखकर हिन्दी रंगमंच पर लोकजीवन की एक नयी विडम्बना प्रस्तुत की है। इसमें साधारण कथ्य के साथ ही लोक-शिल्प से सीधा जुड़ाव इसकी नाट्य-शक्ति बनी है। इस नाटक की कहानी बिदेसिया की तरह ही गाँव की एक नव-विवाहिता के पति के धनोपार्जन के लिए प्रदेश चले जाने से जुड़ी है। नाटककार ने गाँव के कमजोर वर्ग पर

जमीन्दारों के अत्याचार तथा धर्म के नाम पर गरीबों को भला-फुसला कर बहु-सामंतो और नव-धनाढ्यों द्वारा अपने हित साधन में उनके निरंतर इस्तेमाल किए जाने की घिनौनी मानसिकता और गर्हित राजनीति को गहराई और पूरी समझ के साथ प्रस्तुत किया गया है। अमली पात्र का साहूकार महादेव राय के साथ संवाद-

> अमली: झूठ बात है सरकार। देह किरिया, साफ झूठ है। गए तब से एक पइसा की आवग घर में ना हुई। हमको तो उनकी जिन्दगी की फिकर लगी है। का जाने कइसे हैं ! कहँवा रहते हैं ! बड़का मुलुक है कलकाता। जाने कवन हाल में होवेंगे ! हियाँ भी जिनगी दूभर हो गई है। महिना लगा, सास खटिया पर पड़ी है। खेतीबाड़ी भी तो कुछो ना है। मेहनत-मजदूरी और मालिक लोग का भरोसा है सिर्फ।
>
> महादेव राय: मालिक का भरोसा बेकार है।
>
> अमली: देह से खटके दू जून की रोटी का जुगाड़ तो कवनो तरह हो जाए, पर दवा-दारु खातिर कवन जुगाड़ करें मलिकार? एक तो प्रदेश में आदमी की फिकर और दूसरे हियाँ..... (54)

इस नाटक की शैली के विषय में डॉ. लव कुमार *हिन्दी नाटक के बदलते तेवर* में लिखते हैं-

> अपनी वस्तु और शिल्प में यह नाटक आधुनिक भी है, प्रयोगधर्मी भी और अपनी लोकरंग-परम्परा से आन्तरिक रूप से जुड़ा हुआ भी है। बिदेसिया शैली में पारम्परिक गीतों और नृत्यों का समन्वय इसकी विशिष्टता है और कथ्य एवं शैली के अभिन्न अंग होने के कारण अमली में इसका सुनियोजित विधान किया गया है। (172)

यदि पंजाबी नाटककारों के नाटकों में शैली की बात करें, तो इन्होंने भी हिन्दी नाटकों की तरह पात्रों के आधार पर भाषा का प्रयोग किया है। भाषा की सरलता और सरसता के कारण ही सभी पात्रों के चरित्र अपेक्षाकृत सरलता से प्रकट हो सके हैं। कथा विभाजन के लिए पंजाबी के नाटककारों ने लगभग सभी नाटकों में अंक और दृश्य विभाजन की परंपरागत पद्धति का अनुसरण किया हुआ दिखायी देता है। एक अंक से सात अंक और दो या इससे ज्यादा दृश्यों की संख्या कुछ नाटकों में दिखायी देती है।

पंजाबी नाटकों में शैली की दृष्टि से सर्वोतोपरी नया प्रयोग कुलदीप सिंह दीप के द्वारा रचित नाटक *तूं मेरा की लग्गदै* में किया गया है। एक रिटायर व्यक्ति के जीवन पर आधारित इसमें बहुत सारे उदास गीतों को प्रस्तुत किया गया है। एक रिटायर व्यक्ति के जीवन की कला उसका दुःख-दर्द, उसकी भावनाएँ एक गीत द्वारा प्रस्तुत करना न केवल नया प्रयोग है, बल्कि सर्वथा सार्थक प्रयोग भी है। जब प्रदुमन सिंह रिटायर होकर घर आता है तो अपने ही घर के लोग उन्हें अपना मानने का सिर्फ दिखावा करते हैं। उस समय का गीत-

खिलता खिलता फूल क्यों उदास हुआ

समझ न आए यह मेरे साथ क्या हुआ

खुद से पूछे साईंयां तेरा

की लग्गदैं तूं बता दो मेरा (25)

डायरी शैली में लिखा गया नाटक *कल्लर* जो कि स्वराजबीर के द्वारा रचित है। इस नाटक में नाटककार ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों, सोच और भावनाओं को लिखित रूप में अंकित किया है। इस नाटक में नाटककार आत्म साक्षात्कार करता अनुभव किया गया है। स्वराजबीर इस नाटक के विषय में लिखता है-

> कल्लर की यादें मेरे पिता, दादा और रावी से पार हमारे पुराने जद्दी गाँव धर्मावाद (रामदास के नजदीक, जिला गुरदासपुर) से जुड़ी हुई हैं। यह अलग बात है कि मैंने अपना बचपन धर्मावाद में नहीं, गुरदासपुर के एक छोटे से गाँव मल्होंवाली (नवा गाँव) में बताया। (07)

आधुनिक समाज की नशे जैसी समस्याओं तथा मन की भावनाओं के विचारों को यथार्थवादी शैली में प्रकट करते हुए *सौदागर* नाटक की रचना की गई, इसके रचनाकार रंगमंच से जुड़े निर्मल जोड़ा है। आज हम देखते हैं कि पंजाब में नशे ने कितनी तबाही मचाई हुई है। इस नाटक में एक सौदागर नामक व्यक्ति नशे का व्यापार करता है। लेकिन नाटक के अंत में जब उसके खुद के बेटे की नशे के कारण मौत हो जाती है तो उस सौदागर से इस सदमे को सहन करना बहुत कठिन हो जाता है। संवाद के माध्यम से नाटककार ने परिस्थितियों को स्पष्ट किया है-

इंस्पैक्टर: सौदागर सिंह बहुत दुःख की बात है। .... दीपे का एक्सीडेंट हो गया है पुलिस के डर के कारण गाड़ी को तेज रफ़्तार में नाके तोड़ कर लगाई.... नशे में था .... कराली के पास... गाड़ी गिर गई ... और दीपे की मौत हो गई ... (103)

उसके बाद एक उदास संगीत-

सौदा गर, सौदा गर

जिन्दगी के सौदागरो सुन लो

किसी समय इस आग ने अपना रंग दिखाना ऐ

इसने अपने घर भी आना ऐ

किसी के आंसू, किसी की आह ने

महल अंहकार का भी डाना ऐ (104)

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पंजाबी नाटककारों ने नाटकीय वस्तु को उभारने, पात्रों की वृत्ति-प्रवृत्तियों को साकार करने तथा मन की कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के लिए गीतों का सार्थक प्रयोग किया गया है।

कुल मिलकर देखा जाय तो चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों का बदलते भाषिक परिवेश में शैली पक्ष आधुनिक संवेदनाओं की स्थिति के अनुरूप सहज और स्वाभाविक है।

6.1.2.5 विभिन्न भाषाओं के शब्दों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग

अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटकों की भाषा ख़ास किस्म की रहती है। उसमें प्रांतीय एवं देशी भाषाओं के प्रयोग के लिए विशेष आग्रह रहता है। भाषा में ग्राम्यता, उच्चारण एवं लहजे की विशेषता उसे विशेष महत्ता देती है। नाट्य भाषा के सम्बन्ध में यह भी विचारधारा है कि संरचनात्मक विशेषताओं के साथ-साथ आंगिक, सात्विक आदि अभिनय को सूचित करने के लिए रचनाकारों की ओर से स्वीकृत प्रयुक्त भाषिक पद्धतियों पर भी ध्यान दिया जाता है। नाट्य रूपों में कृतिकार के मानसिक व्यापारों,

उद्देश्यों एवं विचारों तक पहुँचाने का श्लाघनीय कार्य प्रमुख रूप से नाट्यभाषा के माध्यम से किया जाता है।

शब्द चयन- चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में हम देखते हैं कि शब्द-चयन बहुत विस्तृत और समृद्ध ज्ञान परिचायक है। उन्होंने व्यवहारिक लोकभाषा का प्रयोग करने के लिए ठेठ सामान्य जन की भाषा का प्रयोग करने के साथ ही ऐतिहासिक पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग भी किया है, जिसकी कुछ उदाहरण-

देशज शब्द- साहित्य अपने आस-पास के परिवेश से प्रभावित होता है। उसके साहित्य में स्थानीय बोलचाल के शब्दों का समावेश सहज रूप से हो जाता है। ऐसे शब्दों का प्रयोग अभिव्यकि एवं सम्प्रेषण की स्पष्टता के लिए होना आवश्यक भी है।

चयनित नाटकों में नाटककारों ने लोकजीवन की भाषा के उदाहरणों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। इन नाटकों में प्रयुक्त कुछ देशज शब्द इस प्रकार हैं-

अरबी-फारसी और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग- चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों की भाषा संतुलित है। इनके नाटकों में अरबी-फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है परन्तु इन शब्दों के प्रयोग के कारण इनकी भाषा अहिन्दी और अपंजाबी सी प्रतीत नहीं होती है। इनके नाटकों में यद्यपि इन शब्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु वह केवल पात्रों के चरित्रांकन में, घटना-स्थिति को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए तथा नाटकों में स्वाभाविकता लाने एवं वातावरण की सृष्टि हेतु किया गया है। यह शब्द जन-सामान्य की भाषा में घुल-मिल गए हैं और लोगों के जीवन का प्रमुख अंग बन गए हैं।

यदि पहले हिन्दी नाटकों में अरबी-फारसी शब्द देखे तो *मोहम्मद जलालुद्दीन* में "खुदा" "फ़िक्र" (60) "मज़हब" "हकीकत" (46) *जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ* में "हिफाज़त" "साजिश" (40) "कातिल" "कुदरत" (45) *कहते हैं जिसको प्यार* में "इश्क" "वक्फा" (14) आदि हैं।

पंजाबी नाटकों में अरबी-फारसी शब्द देखें, तो *छां विहूणे* में "जिन्दगी" (35) "जरूरतें-फरमाइशें" (32) *कथा रिड़दे परिदे दी* में "कमबख्त" (09) "कारिंदा" "खिलाफ" (35) *कल्लर* में "खुशबू" (15) "इलाका" (23) *मैं ता एक सारंगी हाँ* में "फराद" "कमीज" (44) आदि हैं।

चयनित सभी नाटकों के नाटककार समकालीन हैं। इन्होंने अपने नाटकों में पात्रों के द्वारा संवाद कहलवाये हैं, उनमें अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है क्योंकि समकालीन युग में अंग्रेजी भाषा के शब्दों का भी प्रचलन है। चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में नाटककारों ने अपनी भाषा का ध्यान रखा और नाटकों की भाषा को प्रभावोत्पादक बनाने हेतु अपने नाटकों में अग्रेजी शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग किया है। हिन्दी नाटकों की बात करें, तो *काल कोठरी* नामक नाटक में स्वदेश दीपक ने आई.ए.एस शर्मा के चरित्र को उभारने के लिए आवश्यक रूप में अंग्रेजी के शब्दों का भरभूर प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ-

> शर्मा: इट श्योरलो इज। जान डन्न सेज-नो मैन इज एन आईलैंड इन हिमसेल्फ.....
>
> वसुन्धरा: सर। आपको तो इंगलिश पोयट्री की इतनी नालेज है। फंटासटिक।
>
> शर्मा: (एकदम खुश) आई डिड माई मास्टर्ज इन english फ्रॉम हारवर्ड। आई.ए.एस में टाप किया। लेकिन फैसला किया, कला और कल्चर के लिये काम करना है। हिन्दी में तो सब लिखते हैं। मैं अंग्रेजी में पोयट्री लिखता हूँ ताकि वर्ल्ड वालों को पता चले कि इंडिया के लोग भी इंगलिश में लिख सकते हैं। (27)

प्रस्तुत संवाद में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग उसी सहजता के साथ हुआ है, जितनी सहजता से क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग होता है। ऐसे ही यदि पंजाबी नाटकों की बात करें, तो लगभग सारे नाटकों में अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के रूप में पाली भूपिंदर सिंह के द्वारा रचित नाटक *चंदन दे ओहले* की बात करें, तो इसमें एक एन.आर.आई. पात्र है, जिसके द्वारा खूब अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया गया है-

> गिल: नो प्रोब्लम बट मिस्टर शर्मा नाट गिल.....गे...ल...यू नो वी पीपल बिलांग टू....
>
> शर्मा: ए रायिल ब्रिटिश फैमली... एण्ड युअर मदर वाज ए वैरी रिच रायिल ब्रिटिश लेडी..... बेसीकली यू आर एंग्लो-इंडियन यानी कि मिक्सब्राइड आई नो, आई नो, यू प्लीज़ कम इन दी चुबारा नाउ (प्रेटी को) ओ के गुडी यू सिट कम्फरटेबली, बॉयज इज जस्ट कमिंग, (41, 42)

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि चयनित नाटकों के नाटककारों ने पात्र एवं वातावरण के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है।

मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग- मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा को प्रभावशाली और चुटीली बनाता है। मुहावरा और लोकोक्तियों वाक्यांश होते हैं। इनके प्रयोग से नाटकों की भाषा तो प्रभावशाली होती ही है; साथ ही लेखक के विचारों को भी बल मिलता है और श्रोता को भी एकदम प्रभावित करती है। चयनित नाटकों में नाटककारों ने भाषा को सहज, बोधगम्य और प्रभावशाली बनाने के लिए जनमानस में व्याप्त मुहावरों का प्रयोग अपने नाटकों में स्तिथि के अनुकूल बहुत सुंदर ढंग से किया है।

यदि पहले हिन्दी नाटकों की बात करें, तो *चार यारों की यार* में "दूध का दूध पानी का पानी" (33) "पत्थर की लकीर सी बात" (24) "घुटनों में मुँह छुपाना" (25) *सकुबाई* में "मुम्बई तुमची भाँडी घिसो आमची" (29) "लाखों के वारे-न्यारे करना" (30) *सिंहासन खाली है* में "साजिश की बू आना" (18) "ताश के पत्तों की तरह ढेर होना" (60) *मोहम्मद जलालुद्दीन* में "दावत का न्यौता देना" (54) "मच्छी पत्थर चट्ट के वापस आती है" (27) "बाल की खाल उतारने पर उतारू होना" (21) *ताजमहल का टेंडर* में "जंग लगा हुआ सिस्टम" (17) "चारो खाने चित्त हो जाना" (25) *आज की पुकार* में "आटे दाल का भाव मालूम होना" (20) "सुकृतसेन हारत जितई है" (45) *काल कोठरी* में "अपनी आत्मा का गला घोटना" (17) "शक्कर चढ़ी हुई निमोली" (38) आदि हैं।

पंजाबी नाटकों की बात करें, तो *सौदागर* में "ईश्क बुरा नागनी दा" (86) "स्वाँग रचाना" (70) *कल्लर* में "बलि का बकरा होना" (38) "लाखों के वारे-न्यारे करना" (84) *तूं मेरा की लग्गदैं* में "आपे फडिए तुझे कौन छुड़ाएं" (19) "चिड़िया भी पंख नहीं फड़फड़ा सकती" (35) *चंदन दे ओहले* में "सांप सूघ जाना" (39) "विवाह एक शतरंज का खेल" (52) *परियां* में "कच्चा चबा जाना" (23) "झमेले में न फंस जाएँ" (77) *मैं ता एक सारंगी हाँ* में "करतूत से पर्दा उठाना" (13) "मिर्च लगना" (15) आदि हैं।

6.2.1.1 शिल्प का अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

नाटक दृश्य काव्य होने के नाते, इसमें शिल्प एवं भाषा पर विशेष बल दिया जाता है। शिल्प विधान के द्वारा नाटककार अपने नाटक को रंगमंच और समय के अनुरूप बनाकर पाठकों तथा प्रेक्षकों पर अपेक्षित प्रभाव डालने के योग्य बना पाते हैं। सामान्य प्रचिलित अर्थ में शिल्प शब्द का अर्थ- प्रयोग कारीगरी, रचना-विधान, रचना कौशल, निर्माण कौशल और किसी वस्तु के निर्माण का ढंग अथवा विधान या क्रिया आदि से लिया जाता है, प्रत्येक कलाकार या रचनाकार अपनी अनुभूति और अपनी चिंतनधारा को व्यक्त करने का एक साधन या माध्यम चुनता है और यही साधन और माध्यम शिल्प विधान या रचना विधान कहलाता है।

रामचन्द्र वर्मा ने *मानक हिन्दी कोश* में शिल्प का अर्थ- "(शिल+पक) हाथ से काम करने का हुनर दस्तकारी हस्तकला है।" (1356)

श्यामसुंदर दास ने *हिन्दी शब्द सागर* में शिल्प के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है- "1. हाथ से कोई चीज बनाकर तैयार करने का काम, दस्तकारी हुनर 2. काम सम्बन्धी व्यवसाय।" (321)

हरदेव बाहरी ने *वृहत हिन्दी कोष* में शिल्प के विषय में लिखा है- "शिल्पकला- कौशल, निपुणता चातुर्य, कारीगरी, कार्यक्षमता, कलात्मक रचना एवं क्रिया कौशल और व्यवहार ललित कलाएँ, जिनमें भावना और कल्पना का विशिष्ट स्थान होता है।" (310)

नाट्य रचना में शिल्प का मूल आधार यह है कि नाट्य रचना में सम्पूर्ण प्रक्रिया को इस ढंग से नियोजित किया जाता है कि नाटक का हर तत्त्व दृष्यत्त्य हो सके। डॉ. नारायण राय *नया नाटक उद्भव और विकास* में लिखते हैं-

> कच्चे माल को नाटक की भाषा में वस्तु कहते हैं, जिसका सर्व विदित रूप कथानक है और संवाद, भाषा-शैली, अभिनय की निर्दिष्ट गतियाँ, ध्वनि एवं प्रकाश विषयक विशिष्ट निर्देश वेशभूषा निरूपण आदि वे साधन हैं, जिन साधनों से वह वस्तु को नये रूप से इस प्रकार गढ़ता है कि उसमें नये सौंदर्य की सृष्टि हो सके। (236)

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिल्प अभिव्यक्ति का कौशल है। अपनी बात को अधिक-से अधिक प्रभावशाली रूप से संप्रेषित करने के लिए जो विधियां अपनायी जाती हैं, वहीं टेकनीक या शिल्प विधान है। शिल्प में वह सभी तत्त्व आते हैं, जो किसी भी प्रकार रचना करने से पहले रचनाकार के मन में आते हैं और उनको प्रस्तुत करने के लिए जो अन्य उपकरण जैसे- भाषा-शैली, शब्द-चेतना, अलंकार आदि इन सभी का सुव्यवस्थित वर्णन ही शिल्प है। आज हम देखते हैं कि विचार, घटनाएँ, प्रसंग, स्थितियाँ, प्रतीक और संवाद योजना शिल्प के तत्त्व हैं, साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक में शिल्प पक्ष पर विशेष बल दिया जाता है क्योंकि यह दृश्य काव्य है। शिल्प विधान के द्वारा ही कोई नाटककार अपने नाटक को रंगमंच और समय के अनुरूप बनाकर पाठकों तथा प्रेक्षकों पर अपेक्षित प्रभाव डालने योग्य बन पाता है। शिल्प एवं भाषा पक्ष नाटक के समस्त उपकरणों की विधि है। डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा *समकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार* में लिखते हैं-

> शिल्प विधान के द्वारा ही कोई नाटककार अपने नाटक को रंगमंच और समय के अनुरूप बनाकर पाठकों तथा प्रेक्षकों पर अपेक्षित प्रभाव डालने योग्य बना पाता है। (39)

हम देखते हैं कि ऐसा प्रभाव डालने में हिन्दी और पंजाबी के नाटककार सफल रहे हैं। इन नाटकों में संवेदना और अनुभूति, भाव और स्थिति की गहराई में उतरते हुए शिल्प की बुनावट और शैली पर ध्यान दिया है। उनके कार्य संयोजन में गतिशीलता, पात्रों में विविधता है और परस्पर विरोधी चरित्र नाट्यात्मक स्थितियों और रोचक घटना-प्रसंगों में शिल्प की संरचना और व्यूह रचना के बीच बड़ी सफलता से उभारे गये हैं। उनकी प्रासंगिकता और वस्तुगत सार्थकता इस तथ्य में भी अंतर्निहित है कि ये विधियाँ हमारी परंपरागत नाट्यशैलियों की संभावनाओं को समझने और उसके आधुनिक प्रयोग करने में कितनी सहायक होती है। इनमें अनेक रंग रूढ़ियों और मंचीय उत्पादनों का प्रयोग नाट प्रस्तुति को आकर्षक बनाने तथा दर्शकों को आकृष्ट करने के लिए ही नहीं बल्कि उनकी मानसिकता और सामाजिक चेतना को जगाने के लिए भी किया गया है। विकल गौतम *हिन्दी नाटक रंग शिल्प दर्शन* में लिखते हैं-

> आधुनिक नाटकों में विस्तृत रंग-संकेतों का प्रयोग अति आवश्यक माना जाने लगा। प्रत्येक अंक तथा प्रत्येक दृश्य के आरम्भ में दृश्य विधान, स्थान, उद्यान,

भवन वातावरण आदि का विशद संकेत होता ही है, साथ ही पात्रों की स्थिति, रंग, आयु, वेशभूषा, उनकी मुद्रा तथा अन्य रंगमंच सम्बंधी विशिष्ट बातों का विस्तृत चित्र दे दिया जाता है। (26)

6.2.2 2000 से 2018 के चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में शिल्प तत्त्व

6.2.2.1 बदलते परिवेश में नाट्य शिल्प

बदलते परिवेश की दृष्टि से देखें, तो वर्तमान के हिन्दी और पंजाबी नाटकों का शिल्प जहाँ एक ओर अपने पूर्ववर्ति नाटकों की तुलना में एक दम भिन्न, बहुआयामी, प्रयोगशील और दृश्यत्व गुण प्रधान है, वहीं दूसरी ओर इस पर पाश्चात्य नाट्य-शिल्प और भारतीय स्तर पर फैले रंग आंदोलन का भी प्रभाव देखा जा सकता है। चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के शिल्प विधान की सबसे बड़ी विशेषता है, प्रयोगात्मक होना। नाटकों में प्रयोगों के अधिकाधिक होने के कारण तत्कालीन नाटक सामान्य मनुष्य के जीवन की व्याख्या करने लगा है। हम देख रहे हैं कि नाटकों के अंदर समय-समय पर परिवर्तन आता रहा है। प्रयोग विकास का स्वभाव है और यह नव-सृजन का धर्म होता है, इसलिए इसे प्रयोग-धर्मिता भी कहते हैं। आज वैज्ञानिकता होने के कारण हिन्दी और पंजाबी नाटक-लेखन और रंगमंच सापेक्ष रुढ़ियों की नव प्रयोगशील प्रवृत्तियों के दौर से गुजर रहा है। हम देखते हैं कि प्रयोग के अनेक स्तरों से गुजर रहे हिन्दी और पंजाबी नाटक के क्षेत्र में बदलाव आया है। कुसुम खेमानी *हिन्दी नाटक के पाँच दशक* में लिखती हैं-

> इक्कीसवीं शताब्दी में नाटक के लिए न स्थूल कथ्य चाहिए न काव्यात्मक भावुकता। अब तो नाटक यथार्थ की भूमि पर विचरने वाला आम आदमी है, जिसे अपनी भाषा में अपनी बात पूरी ईमानदारी से कहनी है। (25)

हम देखते हैं कि स्वतंत्रता के बाद हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में नवयुग प्रारम्भ हुआ है। नाटक विषय और शिल्प दोनों दृष्टि से और अधिक समृद्ध हुए हैं। चारों ओर के वातावरण, परिस्थितियों और नवीन प्रभावों ने इन नाटककारों को

नयी दृष्टि दी है। इस युग तक आते-आते रामलीला, नौटकी आदि का प्रचार अपेक्षाकृत कम हो गया। सिनेमा के प्रभाव के परिणामस्वरूप पारसी रंगमंचीय नाटकों की लोकप्रियता कम हो गई थी। कई नाटककार भी सिनेमा के व्यापक नाट्य क्षेत्र से प्रभावित हुए बिना न रह सके।

जहाँ तक भाषा, संवाद, संरचना और शिल्प का प्रश्न है, आज के नाट्य-रचना परिदृश्य में समकालीन हिन्दी और पंजाबी नाटकों को लगभग एक उपलब्धि कहा जा सकता है। आधुनिक नाटककारों के ज्यादा नाटक तो पात्र-परिवेश के दृश्य में मंच के केंद्र में हैं और साथ ही अतीत के परिवेश और चरित्र केंद्र भी है। जैसे हम जानते ही हैं कि नाटक की अपनी विशिष्ट रचना पद्धति होती है, जिसके माध्यम से नाटककार अपने विचार-बिन्दुओं को कलात्मकता से एक सूत्र में पिरोता है। कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, रंगमंचीयता, देशकाल एवं वातावरण और भाषा-शैली आदि पर नाटक की नीव खड़ी होती है। इसे ही नाट्य-शिल्प के रूप में संबोधित किया जाता है। इस विषय में डॉ. गोबिन्द चातक *नाटक की साहित्यिक संरचना* में लिखते हैं-

> वस्तुतः हम नाटक की संरचना की बात करते हैं तो उसको निर्मित करने वाली विभिन्न उपसंरचनाओं, बुनावटों, गठत आदि को भुलाया नहीं जा सकता। नाटक के कथानक, चरित्र-चित्रण, स्थिति, भाषा-संदर्भ, विषयवस्तु, भावतंतु, वैचारिक और रंगतत्व आदि सभी की अपनी संरचना होती है और संरचना की भी छोटी-छोटी संरचनाएँ। इनका परस्पर सम्बन्ध और फिर सम्बन्धों का सामज्यस्य और अन्विति नाट्यकृति को साकल्य प्रदान करता है। (31)

आज हम देखते हैं कि व्यक्ति के बीच भ्रामक अवधारणाओं जागृत होती हैं, जिसकी अभिव्यक्ति भाषा और अनुमान के माध्यम से नाटककार करते हैं। चयनित हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में विसंगत हास्यपरक संवादीय भाषिक संरचना भी मिलती है। कथोपकथन की आवृत्ति असंबद्धता आदि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जो संवादीय भाषिक संरचना की उपलब्धियाँ हैं। इस कोटि के संवादों में प्रभाव उत्पन्न करने की आकांक्ष की प्रवृत्ति ही प्रमुख रूप से कार्य करती प्रतीत होती है। चयनित काल की विषमताओं का प्रत्यक्ष प्रभाव संवादीय भाषा की संरचना में स्पष्ट दृष्टिगोचर है।

मनुष्य के पारस्परिक टूटते हुए सम्बन्धों के कारण जीवन में जो निस्संगता आदि हैं, वहीं विशेष रूप में उभरकर आई है। संवाद की भाषा में तुकांतता, पुनरावृत्ति, विषमता आदि सभी स्थितियों को लय के माध्यम से व्यक्त करने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। छोटे-छोटे संवाद अपने भाषिक संदर्भ में नाटक के प्रभाव को कलात्मक रूप देते हैं। 2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में इस प्रकार की भाषिक अनुचेतना के प्रति विशेष आकर्षण दिखायी पड़ रहा है। कुसुम खेमानी *हिन्दी नाटक के पाँच दशक* में लिखते हैं-

> आधुनिक नाटकों की भाषिक और संवादीय संरचना में रंगचेतना का विशेष योगदान है। इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज का नाटककार इस सत्य से परिचित लगता है कि शब्द की अर्थवत्ता से ही रंगीय संभावनाएँ उजागर होती हैं। भाषिक व संवाद रचना में गतिमय, दृश्यत्व आदि भाषेतर माध्यमों का भी प्रयोग हिन्दी और रंगमंच की कलात्मक क्षमता प्रदान करते हैं। (271)

नाटक अभिव्यक्ति की एक ऐसी विधा है; जो सिर्फ साहित्य नहीं बल्कि इससे भी बढ़कर कुछ और है, क्योंकि नाटक की प्रक्रिया केवल लिखे जाने तक ही समाप्त नहीं होती, उसका व्यापक स्वरूप और संप्रेक्षण मंच पर जाकर पूरा होता है। इसके व्यापक स्वरूप के अंतर्गत नाटककार, निर्देशक अभिनेता, भाषा और रंग शिल्पियों के साथ सहृदय दर्शक भी समाहित है। यह एक ऐसी प्रदर्शनकारी विधा है जो केवल दर्शकों को मनोरंजन ही नहीं अपितु जीवन के अनेक पक्षों और अनुभवों का साक्षात्कार कराते हुए, दर्शकों के मस्तिष्क को झकझोरते हुए, उन्हें सोचने पर मजबूर करती है। यह एक जीवंत एवं सजीव कला है; जो सिनेमा या टी.वी की तरह मशीन द्वारा नहीं बल्कि अभिनेताओं की गतिशील क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत होती है। इस लिए इसके नाट्य-शिल्प की ओर विशेष ध्यान देना लाजमी हो जाता है।

आज इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में हिन्दी और पंजाबी नाटक के विकास की ओर दृष्टि डालें तो पाएँगे कि सृजनात्मक के स्तर पर इन्होंने बहुत कुछ प्राप्त कर लिया है और यह विश्व स्तर पर भी बेहतर साबित होने की सामर्थ्य रखते हैं, परन्तु अपनी विशिष्टताओं तथा उपलब्धियों के बावजूद आज हिन्दी और पंजाबी के नाटक कई चुनौतियों, मजबूरियों तथा कठिनाइयों से संघर्षरत हैं, जो उसके अस्तित्व के लिए खतरा बनी हुई है, जिनके कारण इन नाटकों में एक गतिरोध की स्थिति आ गई

है। आधुनिक हिन्दी और पंजाबी नाटककारों ने शिल्पगत प्रयोग में अंक दृश्य विभाजन में बड़े परिवर्तन किये हैं। समकालीन प्रयोगशील नाटककारों ने शिल्पगत प्रयोग के बारे में वीणा गौतम अपनी रचना *हिन्दी नाटक आज तक* में लिखती है-

> संस्कृत-नाट्य-शिल्प, अधुनातन पश्चिमी नाटी-शिल्प के सार्थक-उपयोगी नाटी-तत्त्वों के साथ युगीन सत्य से उपजे मानवीय संघर्ष का सानुपातिक समन्वय करके नाटककार ने व्यक्ति-पहचान को सुरक्षित करने के लिए नयी भूमि तलाश की है। (435)

चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में हम देखते हैं कि अंक-दृश्य विभाजन की नयी तकनीक उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक नाटक में अंक-दृश्य विभाजन की तकनीक भिन्न-भिन्न है। यथार्थवादी शैली में लिखित स्वदेश दीपक का नाटक *काल कोठरी* को तीन दृश्यों में विभाजित करने के बावजूद भी एक ही दृश्यबंध की योजना की गयी है, जिससे मंच सज्जा में आसानी होती है। नाट्य-शिल्प और रंग-शिल्प की कुशलता के कारण नाटक की बाहरी संरचना आंतरिक रंगमंच की जटिलता से जुड़ी हुई है। उदाहरण के रूप में एक दृश्य-

> कांता: बीच वाला सीन कर लें। कौल साहब तो आज देर से आयेंगे।
>
> महेंद्र: एक्सपर्ट हैं। रजत को डैपुटी डायरेक्टर बनाकर ही लौटेगें।
>
> बलवंत: मैंने फिर से पढ़ा नवीन जी का नाटक। वैल्यूज़ और आदर्श की बातें इतनी बुरी तो नहीं।
>
> राजीव: प्यारे, नया-नया आया है इस महानगर में। थोड़े दिन और ठहर। फिर बताना कहाँ गई तेरी और नवीन जी की वैल्यूज़। कट थ्रोट कॉम्पीटिशन है जिंदा रहने के लिए। आज के जमाने में जीवन मूल्यों की बात या तो कोई आदर्शवादी कर सकता है या कोई बेवकूफ। देयर इज़ मच ऑफ ए डिफ़रेंस दीज़ डेज़ बीटवीन एन आईडीयेलिस्ट एंड ए फूल। (38)

लोककथाओं पर आधारित अपने नाटक में स्वदेश दीपक ने शिल्पगत विशेष प्रयोग किए हैं और नाटी संरचना तथा मंचीयता की दृष्टि से नाटकों को रोचक बनाया है। नादिरा जहीर बब्बर के द्वारा रचित नाटक *सकुबाई* को अंकों तथा उपक्रम और उपसंहार में विभक्त किया है। इसमें सूत्रधार की भी योजना की गई है। सूत्रधार का

प्रयोग परम्परागत न होकर नवीन है। नाटक में सूत्रधार कथानक को आगे बढ़ाने, टिप्पणी करने और दर्शकों से संवाद स्थापित करने का काम एक साथ करता है। इस प्रकार नाटककार ने सूत्रधार का प्रयोग कर नाटक और रंगमंच को मध्ययुगीन भारतीय रंग परंपरा के आत्मीय सूत्र से जोड़ा है। इस नाटक में बिना किसी पात्र की वार्तालाप के कथा को बड़े नवीन ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में से एक उदाहरण-

> मेरे आदमी का नाम यशवंत घाघ। वो थाने की चुँगी पर काम करता था। महीने में दो-ढाई हजार कमा लेता था। .... शादी की पहली रात को ही यशवन्त मेरे को बोला- 'देखो सकय मैं ऊपर की कमाई से घर चलाने वाला नहीं। तुझे इसी से ही घर का खर्च चलाना होगा।' मैंने कहा काय को तू चिंता करता है। मेरे हाथ हैं न काम करने के लिए?.... मेरा आदमी देखने में भी बहुत अच्छा था। अच्छा यानी बहुत अच्छा। (33)

पंजाबी नाटकों में बदलते परिवेश में नाट्य शिल्प की बात करें, तो हम देखते हैं कि कथानक में घटित होनेवाली सारी घटनाओं का मुख्य भाग चरित्र और शिल्प होता है। चरित्र और शिल्प अपने क्रियाव्यापार, कथ्य, भाव, विचार और संवादों के माध्यम से नाटककारों की भावानुभूतियों को दर्शकों के सम्मुख रखता है। निर्मल जोड़ा के द्वारा रचित नाटक *सौदागर* में इस प्रकार का संवाद देखते हैं-

> नवजोत: जी मेरा नाम नवजोत है और हम गाँव में नशियों के खिलाफ एक लहर चला रहे ताकि लोगों को नशियों की बुराइयाँ पता चल सके।
>
> जंटा: (उसे पानी पकड़ाते हुए) यह तो बहुत भलाई का काम है, जरुर करो ..... एक बार जो इसका आदी हो गया... फिर उससे नशे के बगैर नहीं रहा जाता..... नशा तो घर के बर्तन तक बिका देता है और अर्शों से फर्श पर ला देता है। (76)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम देखते हैं कि नाटककार केवल चरित्र और शिल्प का निर्माण नहीं करता बल्कि उसे जीवंत बनाता है और मंच पर प्रस्तुत करता है। चरित्र जब सक्रिय बनता है तो वह संवादों की स्थितियों में आ जाता है और भावविचारों को स्वर देता है। इसके कारण नाटक में नाटकीयता, कुतुहल, संयोग विलक्षणता निर्माण हो जाती है और नाटक कलारूप धारण करता है। इतिवृत्त को

कलात्मक रूप में परिवर्तित करने के लिए पात्र की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। कलात्मकता के संदर्भ में भाषा और शैली का अपना अलग महत्त्व होता है। जैसे जतिंद्र बराड़ के द्वारा रचित नाटक *पायदान* में एक काव्य शैली में संगीत संचार के माध्यम से मनुष्य की त्रासदी के भावों को प्रकट किया गया है। इस नाटक के आरम्भिक दृश्य में बीरों अपने बच्चों को रोटी देने में भी अपने-आपको असमर्थ दिखती है और उसकी त्रासदी को नाटककार ने एक गंभीर शैली के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया-

हमारे दरवाजे क्यों नहीं दसकत देते सुख कभी

हमसे मिटती क्यों नहीं पेट की भूख कभी

कई लोगों के पीछे फिरती जिन्दगी पकवान लिए

हाय हमारी जिन्दगी

हाय हमारी जिन्दगी

क्यों पायदान रही

क्यों पायदान रही

क्यों ..... । (12)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम कह सकते हैं कि भावों को अभिव्यक्त करने का साधन भाषा होती है, परन्तु संरचना की भी एक विशेषता होती है, जिसके कारण नाटक में रोचक स्थितियाँ निर्माण होती हैं। नाटककार अपनी प्रतिभा के अनुसार नाट्य-विडंबना, फ्लैशबैक, स्वप्नदृश्य, तुकांत प्रयोग, जुमलेबाजी, गेयता, काव्यात्मकता आदि का प्रयोग कर नाटक को रोचक बनाता है। शिल्प के भीतर विषयवस्तु, वस्तु संरचना, पात्र या चरित्र-चित्रण, भाषा अथवा संवाद शैली आदि का समावेश हो जाता है।

6.2.2.2 बदलते परिवेश में चरित्र सृष्टि शिल्प

चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में हम देखते हैं कि इनमें विडम्बनापूर्ण स्थितियों और नाट्य सम्बन्धी जटिल चरित्रों को खोजने और उनके इर्द-गिर्द एक

पूरा-भरा परिवेश बनाने की प्रखर कल्पना शक्ति की गई है। रंग-शिल्प, नाट्य-भाषा और व्यंजनापूर्ण प्रभावी संवाद लेखन पर इन्हें पर्याप्त अधिकार हैं। अभिनय कला होने के कारण नाटक में चरित्र-चित्रण का अपना महत्त्व रहता है। सामान्यत: नट जिसका रूप धारण करता है; उसे पात्र कहा जाता है। इस संदर्भ में डॉ. गोबिन्द चातक *नाटक की साहित्यिक संरचना* में लिखते हैं-

> पात्र चरित्र तब बन जाता है जब वह बाहरी और अंतरंग दोनों स्तरों पर औरों से भिन्नता ग्रहण कर प्रकृति, आचार व्यवहार तथा कार्य की निजता आर्जित कर लेता है। (89)

दूसरे शब्दों में कहें तो नाटक की घटनाओं को सजीव साकार बनाना, नाटक के आंतरिक यथार्थ को उभारना, लिखित शब्दों को जीवंत बनाना आदि काम पात्र या चरित्र करता है। कथानक में घटित होनेवाली सारी घटनाओं का मुख्य भाग चरित्र होता है। चरित्र अपने कथ्य, भाव, विचार और संवादों के माध्यम से नाटककारों की भावानुभूतियों को दर्शकों के सम्मुख रखता है। इसलिए नाटककार केवल चरित्र निर्माण नहीं करता बल्कि उसे जीवंत बनाता है और मंच पर प्रस्तुत करता है। चरित्र जब सक्रिय बनता है, तो वह संवादों की स्तिथियों में आ जाता है और भाव विचारों को स्वर देता है। इसके कारण नाटक में नाटकीयता कुतूहल, दृश्यता, संयोग विलक्षणता निर्माण हो जाती है और नाटक कलारूप धारण करता है। इतिवृत्त को कलात्मक रूप में परिवर्तन करने के लिए पात्र की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

बदलते परिवेश में चरित्र सृष्टि की बात करें, तो सबसे पहले हम हिन्दी नाटकों की बात करेंगे। आधुनिक हिन्दी नाटककारों के नाटकों का अवलोकन करने पर ध्यान में आ जाता है कि आज नारी के चरित्र को सहनशीलता, दया, करुणा, ममता की मूर्ति के रूप में संबोधित किया जाता है, परन्तु जब उसकी सहनशीलता समाप्त हो जाती है तो वह रणचंडी का रूप धारण कर लेती है, हिन्दी महिला नाटककारों ने अपने कुछ नाटकों में ऐसे चरित्रों का चित्रण किया है। नादिरा जाहिर बब्बर के द्वारा रचित नाटक *जी, जैसी आपकी मर्ज़ी* में सुल्ताना अपनी बेटी से बलात्कार करने की कोशिश करने वाले हकीम को जान से मार डालने का साहस प्रकट करती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि नारी अपनी या बेटी की रक्षा के लिए किसी भी स्तर पर उतर सकती है। जेल जाते समय अपनी बेटी को समाज से बचते रहने की सलाह देते हुए समाज की भयानक स्थितियों पर संकेत करती है। जैसे-

> मेरे सिर पे खून सवार हो गया। मैंने कोने में रखा कपड़े धोनेवाला धोका उठाया और अपनी पूरी ताकत के साथ उस हकीम के सर पर पीछे से मारा। हकीम मेरे वार से एक तरफ गिर गया। मेरे सर पे खून सवार था। मैं गुस्से से पागल हो रही थी। जहाँ पे हकीम को चोट लगी थी, उसी जख्म पे मारती चली गई .... और वह मर गया। (33)

नाटककारों ने इन पात्रों से नारी के सबल चरित्र होने का संकेत दिया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में बहुत सारे परिवर्तन आये हैं। बदलते परिवेश में चरित्र सृष्टि में पारिवारिक सम्बन्धों की विसंगतियों एवं विडंबनाओं का सूक्ष्म गहन विश्लेषण समकालीन नाटककारों का प्रिया रहा है। सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक *चार यारो की यार* में लोकनाट्य के तत्त्वों का अच्छा निर्वाह हुआ है। नाटक के संवादों में प्रेषणीयता मौजूद है। नाटक के कुछ संवाद छोटे-छोटे तो कुछ लम्बे-लम्बे भी हैं। लम्बे-लम्बे संवादों में पात्र सीधा दर्शकों से बातचीत करता नज़र आता है। नाटककार ने कहीं-कहीं अश्लील शब्दों का प्रयोग कर पात्रों की भावनाओं को प्रस्तुत किया गया है। लेकिन वह भी चरित्र, परिस्थिति और दृश्यों को लेकर उचित साबित होते हैं।

> मा. सीताराम: तुम मुझे गलत समझ रही हो, शारीरिक सम्बन्ध क्या मानये रखते हैं?
>
> बिन्दिया: तो फिर क्यों लाये थे विवाह कर ! यह दिखाने के लिए कि एक नामर्द आदमी कैसा होता है?
>
> मा: सीताराम: समझने की कोशिश करो .... असली बात तो आत्माओं के मिलन में है।
>
> बिन्दिया: प्रेम करने वाले मन में मैल छुपाकर नहीं रखते। (20)

आधुनिक हिन्दी नाटककारों के चरित्रांकन की क्षमता उनके नारी चरित्रों में प्रभावी रूप से प्रकट हुई है। उनके अधिकतर नारी चरित्र परम्परागत पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था और सामाजिक बंधनों को ठुकराकर अपने अधिकारों के लिए जूझते दिखायी देते हैं।

आधुनिक जीवन की पीड़ा, संत्रास, स्वार्थी प्रवृत्तियाँ एवं मानसिकता अन्तर्द्वन्द्व का उदघाटन करने के लिए आधुनिक पंजाबी और हिन्दी नाटककारों ने अपनी चरित्र सृष्टि में प्रतिनिधिक और प्रतीकात्मक पात्रों का चित्रण किया हुआ है। ये पात्र समसामयिक युग जीवन की यथार्थ पृष्ठभूमि की व्याख्या करते हुए दिखायी देते हैं। वे केवल पात्र ही नहीं बल्कि आधुनिक जीवन के यथार्थ पर प्रकाश डालनेवाले संदेश भी बनते हुए दिखायी देते हैं। परिणामत: चरित्र संरचना की मान्यताएँ टूट गई और नये सन्दर्भों की स्थापना हुई। हिन्दी में इस प्रकार की उदाहरण ह्रषीकेश सुलभ के द्वारा रचित नाटक *अमली* में देखने को मिलती है-

> अमली: मलिकार ! का है हमरे पास? ई देह और एकरी इज्जत ! बस ! और का है हमरे पास? सास आज-बिहान भई है।.... मर्द डोली उतार के बीच मझधार में छोड़ गया। गाँव के मालिक-मलिकार रच्छा ना करेंगे, तो कवन करेगा? आप ही की नीयत .....
>
> महादेव राय: चोप्प हरामजादी ! जबान पसारती है? जाके सास से पूछ हमरे बाप-चाचा के ठेहुना पर नाक रगड़-रगड़ के जवानी बीती है ओकरी। (62)

नाटकीय प्रसंग एवं वातावरण निर्माण करने के लिए पंजाबी के नाटककारों ने भी बड़ी कलात्मकता के साथ चरित्र सृष्टि प्रस्तुत की है। पंजाब के सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलनों का इतिहास अन्य राज्यों की तुलना में अत्यंत प्रभावी एवं प्रगतिशील रहा है। नाटक जैसी समाज सापेक्ष विधा में लेखन करने के लिए पंजाबी नाटककार अग्रस्थान पर दिखायी देते हैं। बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप नाटक की विषयवस्तु और चरित्र सृष्टि में परिवर्तन आया। जहाँ इतिहास एवं पुराण कथाओं के चरित्रों का चित्रण किया जाता था, वहाँ सामाजिक जीवन के चरित्रों का चित्रण किया जाने लगा। वर्तमान के पंजाबी नाटककारों के नाटकों की विषयवस्तु अधिकतर पारिवारिक एवं किसानी केन्द्रित ही रही है। इसलिए इनके नाटकों में पात्रों के चित्रण में उनकी मानसिक कुंठाएँ, अपने अधिकारों के लिए संघर्ष एवं विद्रोह उभरता है। अजमेर सिंह औलख के द्वारा रचित नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* में हम देखते हैं कि चरने की ज्यादा कर्ज़ के कारण सारी जमीन बिक जाती है, जमीन बिक जाने के बाद परिवार में तनावपूर्ण के वातावरण का निर्माण होता है। इसमें पुलिस अधिकारी, मजदूर, साहूकार तथा स्थानीय लोगों की भीड़ जिसमें मेजर, अजैब, कीतू, सुखदेव कौर, दविंदर, कुलतार जगबीर नरिंदर, यादव, डी.एस.पी आदि पात्रों की भीड़

दिखायी देती है। इन पात्रों के चित्रण के माध्यम से नाटकीय प्रसंगों को बड़ी सशक्तता के साथ उभारा गया है। मेजर इनके चरित्र को स्पष्ट करता हुआ कहता है-

> मेजर: चरण सिंह? चरण सिंह का क्या बनेगा? चरण सिंह का वही होगा जो अन्य छोटे किसानों का हुआ है। जैसे पहले छोटे किसान, किसानों से मजदूर बन रहे हैं, वैसे ही चरण सिंह बन जाएगा। मजदूर बन कर अपने और मजदूर साथियों के साथ काम करेगा। (60)

भले ही इन पात्रों की संख्या अत्यधिक है, परन्तु वातावरण निर्मित की दृष्टि से वे निरर्थक नहीं बल्कि सार्थक हैं। हम देखते हैं कि पंजाबी नाटककारों ने अपने कुछ नाटकों में शाश्वत जीवन मूल्यों का उपदेश देने वाले चरित्रों का चित्रण किया है।

सामाजिक समानता का नारा लगाने वाला पंजाबी नाटक *मैं ता एक सारंगी हां* जो आत्मजीत के द्वारा रचित है। इसमें मुख्य तीन पात्र हैं, इन चरित्रों के चित्रण में नाटककार ने सामाजिक सजागता का सहज परिचय दिया है। सत्यमेव दीक्षित और समाजसेवा का ढोंग रचने वालों के द्वारा भोली-भाली लड़कियों को अपनी वासना का शिकार बनाया जाता है। इस नाटक में अध्यापक, चाचा, कोच आदि सारे बूरी नीयत के लोगों की तरफ संकेत करते हैं। नारी चरित्र प्रधान इस नाटक में पाल पात्र अपनी ही जुबानी अपनी त्रासदी को प्रस्तुत करती है-

> तेरा रेप किया एक स्कूल टीचर ने जो पहले एक स्कूल से निकाला गया था, तू उसे भूल भी सकती है और बदला भी ले सकती है। लेकिन मुझे तो शिकार बनाने वाला मेरा चाचा है, जिसको मेरी माता ने पाल कर बड़ा किया। मैं न तो उससे कोई बदला ले सकती हूँ और न ही भूल सकती हूँ। (80)

नाटकीय प्रसंग एवं वातावरण निर्मिति करने के लिए पंजाबी नाटककारों ने बड़ी कलात्मकता के साथ चरित्र सृष्टि की है। इस प्रयास में कभी-कभी नाटकों में अधिक पात्र आये हुए हैं। पंजाबी नाटककारों ने हिन्दी नाटककारों की भाँति ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित घटना प्रसंगों पर नाट्य लेखन किया हुआ है। सतीश कुमार वर्मा ने इतिहास के चर्चित चरित्रों पर पक्ष-विपक्ष को प्रस्तुत करता नाटक *लोक मना दा राजा* की रचना भी की है। इस नाटक में ऐतिहासिक यथार्थ के अनुसार महाराजा रणजीत सिंह के चरित्र को एक आदर्श चरित्र के रूप चित्रित किया गया है।

इक्कीसवीं शताब्दी विज्ञान की शताब्दी है, इस वैज्ञानिकता के कारण हमारे समाज में काफी बदलाव आया; जिसका प्रभाव नाटकों पर और उनके पात्रों के चरित्र-चित्रण पर भी पड़ा है। आज हम देखते हैं कि विषयवस्तु के साथ-साथ चरित्र सृष्टि में भी परिवर्तन आया है। आरम्भिक काल में जहाँ इतिहास और पुराण कथाओं पर आधारित आदर्श चरित्रों की स्थापना की जाती थी, वहाँ यथार्थ जीवन से सम्बंधित चरित्रों का चित्रण भी किया जाने लगा है।

6.2.2.3 चयनित नाटकों में मिथकों का प्रयोग

हिन्दी में मिथक के समानार्थी शब्द के रूप में 'पुराकथा' या 'कल्पकथा' आदि शब्द के प्रयोग मिलते हैं, जो कि उसके अलौकिक पक्ष को ही प्रेरित करते हैं। ऐसा भी माना गया है कि जितने मिथक हैं, परिकल्पना पर आधारित हैं। परिकल्पना पर आधारित होने पर भी इसका उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था को मजबूत करना था। दूसरे शब्दों में कहें तो मिथकों की खासियत यही है कि यह मूल्यहीन और आदर्शविहीन नहीं होते। मिथक लोक विश्वास से जन्मते हैं। पुरातनकाल में स्थापित किये गये धार्मिक मिथकों का मंतव्य स्वर्ग तथा नर्क का लोभ, भय दिखाकर लोगों को विसंगतियों से दूर रखना था। मिथक शब्द का प्रयोग काल्पनिक कथाओं के लिए भी किया जाता है। मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण में मिथकों का अध्ययन को बहुत महत्त्व दिया गया है। डॉ. नीलम राठी *साठोत्तर हिन्दी नाटक* में मिथक के विषय में लिखती है-

> 'मिथक' पाश्चात्य शब्द माइथोलॉजी के मिथ का प्रतिरूप है। शाब्दिक अर्थ के मापदंड़ो से परखें तो 'मिथक' वह है जो प्रमाणिक अस्तित्व न कभी था और न है परन्तु फिर भी उसके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि वह एक वाचिक परंपरा सुप्रतिष्ठित है। (162)

मिथक मानव द्वारा प्रकृति के चमत्कारिक कार्यों की अनुभूति का कल्पनामय सृजन है जो समाज के निरंतर विकास के साथ-साथ क्रमश: विकसित होकर मानव चेतना को आकृष्ट करते हैं। डॉ. शम्भूनाथ *मिथक और भाषा* में लिखते हैं-

> मिथक केवल आदिम युग की वस्तु न होकर वर्तमान की भी धरोहर होते हैं। इनमें मानवीय अनुभव की किसी चिरन्तन घटना, मनस्तात्विक द्वन्द्व, संकट या समस्या की अभिव्यक्ति करने की शक्ति होती है। अपने कालातीत एवं शाश्वत स्वरूप के कारण मिथक अतीत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों की व्याख्या कर सकते हैं। (03)

चयनित नाटककारों ने अपने नाटकों में मिथकों के रहस्यों को समझा, पहचानना और अपनी नाट्य रचनाओं में पूरी क्षमता से संदर्भित करने का प्रयास किया है। इनके नाटकों में सामयिक स्थितियों और समस्याओं के स्पष्टीकरण, इतिहास एवं नाटकीय संवेदना को अभिव्यकि मिथकीय प्रयोगों द्वारा ही मिली है। चयनित नाटकों में कुछ नाटक ऐतिहासिक मिथक पर आधारित हैं, जिसमें मीरा कांत का नाटक *हुमा को उड़ जाने दो,* जो हुमायूँ के जीवन पर आधारित है, असग़र वजाहत का नाटक *जिस लाहौर नइ देख्या ओं जम्याइ नइ*, जो भारत-पाकिस्तान के विभाजन पर आधारित है, पियूष मिश्रा का नाटक *गगन दमामा बाज्यो*, जो भगत सिंह और उनके साथियों के जीवन पर आधारित है। पंजाबी में सतीश कुमार वर्मा का नाटक *लोक मना दा राजा*, जो महाराजा रणजीत सिंह के जीवन पर आधारित है, ओंकारप्रीत सिंह का नाटक *प्रगटियों खालसा*, जो सिख गुरुओं के उपदेशों पर आधारित है।

हिन्दी नाटककारों में मीरा कांत की बात करें, तो उनके द्वारा रचित नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* की कथा का स्रोत तो मुगलिया सल्तनत के आरम्भिक दौर के बाबर और अकबर के बीच इतिहास है, लेकिन इसके बावजूद ये मौलिक, प्रासंगिक, आधुनिक और महत्त्वपूर्ण नाट्यकृति है। यथार्थ का जामा पहने नाटककार की कल्पनाशीलता आद्यंत प्रमाणिकता का बोध कराती है। विवेच्य नाटक का कथ्य है- हुमायूँ के मिथक के माध्यम से सत्य का उदघाटन करना है। इस नाटक में देश-काल एवं चरित्रों के अनुकूल उर्दू का और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का इतना सर्जनात्मक रंग-प्रयोग किया गया है कि इस ओर कहीं पाठक का ध्यान ही नहीं जाता कि ये पात्र किसी भी और भाषा या तरीके से अपनी बात कह सकते थे। दोनों भाषाओं पर लेखक का इतना अधिकार है कि कोई भी शब्द पाठक/दर्शक और रचना के बीच अर्थ के लिए रुकने का अवकाश ही नहीं देता। रंग-शिल्प की कारीगरी इतनी सहज है कि वह प्रभावित ही करती है, लेकिन रचना से अलग होकर अपनी ओर ध्यान आकृष्ट नहीं

करती। इस नाटक की कथा में हम देखते हैं कि हुमायूँ मुगल साम्राज का सबसे अभागा बादशाह था। एक ओर हुमायूँ एकान्तप्रिय, चिंतक, ज्योतिष का ज्ञाता, मानवीय मूल्यों में आस्था रखने वाला, प्रेमी और धार्मिक व्यक्ति था और दूसरी ओर उनके ऊपर थी, एक मुगल सुलतान की राजनीतिक जिम्मेदारियाँ, अपेक्षाएँ और मजबूरियाँ। ये कहना मुश्किल है कि हुमायूँ संवेदनशील व्यक्ति था। ऐसे दुविधाग्रस्त, विडम्बनापूर्ण और जटिल चरित्र को मीरा ने अपने नाटक का केन्द्रीय पात्र बनाया है। उसके अन्तर्द्वन्द्व को बड़े ही व्यंग्यपूर्ण दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है-

> इस जिस्म को लोग हुमायूँ कहते हैं। हुमायूँ ... कभी-कभी क्यों लगता है कि ये सिर्फ एक खेल है खेल। इस खेल में न जाने कितनी बेगानी आरजुएँ .... जाने कितनी हसरतें ठूंस-ठूंसकर भर दी गई हैं, जिन्हें पूरा करते-करते एक जान थी जो छटपटाती रही। जैसे किसी ऊपरी असर की और कदम बढ़ाता जाता हो। वो इरादे...वो फैसले कभी अपने भी लगे पर थे ज्यादातर पराए। बादशाह बाबर के। कौन हूँ मैं? हुमायूँ कि बाबर? या बाबर की आधूरी ख्वाहिशों को पूरा करने वाला एक बेरूह पुतला? सिर्फ पुतला..... बेरूह ..पुतला ! (25)

हुमा को उड़ जाने दो ऐतिहासिक मिथक के आवरण में भी समसामयिक जीवन के साथ जुड़कर सामयिक स्थितियों, विसंगतियों, मूल्यों को हमारे समक्ष आवरणहीन करके हमें वर्तमान विसंगतियों व स्थितियों पर चिन्तन करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार हुमायूँ के ऐतिहासिक मिथक के माध्यम से प्रकारान्तर में समसामयिक परिवेश का चित्रण हुआ है।

असग़र वजाहत का नाटक *जिस लाहौर नइ देख्या ओं जम्याइ नइ* की कथा मिथक और यथार्थ, इतिहास और वर्तमान, सभ्यता-संस्कृति और अमानवीयता के संदर्भ में परस्पर टकराते हुए जीवन मूल्यों, विद्रोह एवं संघर्ष को दीर्घकाल तक फैलाता है। देश की आज़ादी के समय देश-विभाजन की त्रासदी के साहचर्य में यात्ना, पीड़ा, क्रूरता, बर्बरता और विभत्सता के बोझ में दबा इतिहास एक ज्वलन्त के रूप में सामूहिक जातीय अवचेतना में संक्रात होने लगता है। विभाजन की त्रासद घटना भारतीय मानस में एक मिथक बन चुकी है और मिथक में सोयी हुई चेतना और खोया हुआ संगीत जीवंत हो उठता है। नाटककार इस रचनात्मक उपयोग करते हुए बात की ओर संकेत करता है-

> सिकंदर मिर्ज़ा: देखिए .... आप हमारी मजबूरी को समझिए ... हम भारत से लूटे-पूटे आए हैं ... माल-दौलत लुट गया.... बेसहारा और बेमददगार यहाँ के कैंप में महीनों पड़े रहे.... खाने का ठीक न सोने का ठिकाना.... अब खुदा करके हमें ये मकान एलाट हुआ है.. अपने लिए न सही बच्चों की खातिर ही सही अब लाहौर में जमना है। लखनऊ में मेरा चिकन का कारखाना था। यहाँ देखिए अल्लाह किस तरह रोजीरोटी देता है...
>
> हमीदा बेगम: अम्माँ, हमने बड़ी तकलीफें उठाई हैं, इतना दुःख उठाया है कि अब रोने के लिए आँख से आँसू भी नहीं हैं। (25)

पौराणिक कथा-प्रसंगों और चरित्रों से भिन्न इस नाटक की कथा को मिथक के रूप में ग्रहण किया जा सकता। इस नाटक की लोककथा को वर्तमान सन्दर्भों से जोड़कर देखा जा सकता है। यह नाटक हुमायूँ के जीवन एवं परिवेश को व्याख्यायित करता है तथा समकालीन, सामाजिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक जैसी युगीन समस्याओं से इसके मूल भाव को जोड़ते हैं। डॉ. नवीन नन्दवाना की संपादक रचना *समकालीन हिन्दी नाटक समय और संवेदना* में डॉ. प्रतिभा कोचर *इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटकों में मिथक* में लिखते हैं

> वर्तमान परिस्थितियों में इन मिथकों के चरित्र-विश्लेषण के प्रयासों को तत्कालीन परिवेश से अलग हटकर आधुनिक की कसौटी तथा नाटककार के मानस पटल पर तदनुसार मानवीकरण कर मुखरित किया जाता है। (161)

युगों से जनमानस इन मिथकों के रूप में अपनी सांस्कृतिक धरोहर को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचित करता आया है। ये मिथक जब रचे गये होंगे, तब किसी न किसी सामाजिक, सांस्कृतिक या मानवीय मूल्य अथवा विचार की सार्थक प्रस्तुति में सफल रहे होंगे।

पंजाबी नाटककारों ने अपने कुछ नाटकों में शाश्वत जीवन मूल्यों और नैतिक मूल्यों का उपदेश देने वाले चरित्रों का चित्रण मिथक पर आधारित किया गया है। इस दृष्टि से ओंकारप्रीत सिंह के द्वारा रचित *प्रगटियों खालसा* नाटक का उल्लेख किया जा सकता है। यह नाटक ऐतिहासिक मिथक पर आधारित है। इस नाटक में करुणा, शील और शान्ति का संदेश देने वाले सिख गुरुओं के चरित्र को आदर्श रूप में चित्रित किया गया है। माया-मोह से दूर रहकर प्राणी एवं प्रकृति पर प्रेम करने का संदेश

देनेवाले गुरु नानक देव जी, और उनके सेवकों को लोकहितवादी चरित्र के रूप चित्रित कर आधुनिक समाज में मानवीय जीवन मूल्यों को जगाने की प्रेरणा दी है। नाटककार ने सलाहुदीन नामक के पात्र के माध्यम से गुरु जी के चरित्र को उभारा है-

> सलाहुदीन: साहिबे आलम सुनने में है कि सिख गुरु शुरू से ही यही ऊच-नीच मिटाने में लगे हैं। इनके पहले गुरु बाबा नानक भी सुना है, ऊची जाति के थे लेकिन उनके साथी मरदाना और दोस्त बाला, निम्न जाति के गरीब इंसान थे। हमने ये भी सुना है कि उन्होंने अमीर का भोजन ठुकरा कर गरीब भाई लालो के भोजन को तरजीह दी थी। (20)

प्रस्तुत संवाद के माध्यम से हम कह सकते हैं नाटककार ने आधुनिक सामाजिक त्रासदी को मिथक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ऐसे ही सतीश कुमार वर्मा के द्वारा रचित नाटक *लोक मना दा राजा* भी ऐतिहासिक मिथक पर आधारित है। इस नाटक की कथा में महाराजा रणजीत सिंह के जीवन की लोककथा को नाटक का विषय बनाया गया है। नाटक में राजा की लोककथा आधुनिक सन्दर्भों से जुड़कर सामने आती है। भूत का राजा यानी वर्तमान का नेता। लोककथा के मिथक के आधार पर राजा को आज के नेता के रूप में देखा गया है। सतीश कुमार वर्मा इस नाटक में महाराजा रणजीत सिंह के विषय में लिखते हैं-

> उसकी सहनशीलता, लोकपक्ष की भावना और खूबसूरती के कारण इसको लोगों ने अपने दिल में जगह दी है, इसी कारण महाराजा रणजीत सिंह का लोक बिंब एक धर्म निरपक्ष के प्रजामुखी हैं। (48)

सतीश कुमार वर्मा ने मिथक का प्रयोग करते हुए लिखते हैं कि एक बार बच्चों के द्वारा बेर तोड़ते समय एक पत्थर महारजा रणजीत सिंह को लग जाता है और उनके सैनिक उन बच्चों को पकड़कर राजा के पास ले आते हैं। आगे से राजा कहता है-

> महाराजा: नहीं सैनापति, यह तो मासूम कलियां हैं, इसमें इनका कोई कसूर नहीं है, वैसे भी बेरी अनेक पत्थर खाकर भी इन्हें मीठे बेर दे सकती है तो हम एक पत्थर खाकर कुछ नहीं दे सकते? हम एक मामूली बेरी से गुजरे हुए तो नहीं। (28)

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं; उपर्युक्त हिन्दी और पंजाबी नाटकों के पात्र कथा परिवेश एवं स्थितियों का निर्वाचन ऐतिहासिक होने पर भी उनके नाटक

यथार्थ बिन्दुओं को रेखांकित करने वाले हैं। अत: यह नाटक मिथकीय प्रयोग की विविध भंगिमाओं को लिए हुए हैं। इनके नाटकों में मिथक विकास की एक लंबी यात्रा के दर्शन तो होते हैं, साथ ही मिथक के आवरण में समसामयिक व्यक्ति जीवन से सम्बंधित अनेक समस्याओं का चित्रण भी प्रमुख रूप से हुआ है।

6.2.2.4 चयनित नाटकों में प्रतीकों का प्रयोग

किसी वस्तु, चित्र, लिखित शब्द, ध्वनि या विशिष्ट चिन्ह को प्रतीक कहते हैं जो सम्बन्ध, सदृश्यता या परंपरा द्वारा किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है। अंग्रेजी में प्रतीक शब्द के लिए सिम्बल शब्द का प्रयोग किया जाता है। डॉ. रामनारायण लाल के *हिन्दी साहित्यकोश* के अनुसार-

> प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रति विधान है, उसके साथ अपने साहचर्य के अकारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु का नाम प्रतीक है। (515)

हम देखते हैं कि नाटक के क्षेत्र में प्रतीकात्मक नाटकों ने नाट्य विधा को एक नवीन दिशा प्रदान की है। समकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य में प्रतीकात्मक नाटकों का विकास और बहुलता नये प्रयोगों का परिणाम है। प्रतीकात्मक नाटकों में प्रतीकों के माध्यम से पूरा कथानक निर्मित होता है। कभी अमूर्त भावनाओं को स्त्री-पुरुष पात्र के रूप में कल्पित कर लिया जाता है तो कभी पशु-पक्षियों, खंडहर-पर्वत, पेड़-पौधों, सुरों-असुरों आदि को प्रतीक रूप में लाकर; उनके द्वारा मानव-जीवन के किसी पक्ष का अंकन किया जाता है।

प्रतीक अप्रस्तुत का प्रस्तुत रूप अवतार ही है। साहित्यकार अपने विशेष अनुभवों को व्यक्त करने के लिए शब्दों के भाव में प्रतीकों का आश्रय ग्रहण करता है। किसी प्रकार के रूप, भाव, गुण, आकार प्रयोग आदि की समता के अकर्ण किसी साधारण के स्थान पर विशेष अर्थ में प्रयुक्त शैली प्रतीकवादी अर्थात् किसी भी अव्यक्त की प्रतीकात्मक रूप से किसी अन्य व्यक्त वस्तु के द्वारा अभिव्यक्ति की जा

सकती है। इन प्रतीक नाटकों के नाटककार, पात्रों एवं कथा द्वारा किसी का प्रतिनिधित्व करता है तथा पात्रों एवं प्रतीक कथा द्वारा नाटककार जिसका बोध करता है, वही पात्र एवं प्रतीक कथा साधनमात्र है।

चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में प्रतीकों का प्रयोग देखने को मिलता है, चाहे वह प्रतीकात्मकता शीर्षक के रूप में, कथ्य के रूप में, पात्र के रूप में, घटना-प्रसंग के रूप में ही क्यों न हो। चयनित नाटकों में प्रतीकों को अपनाने का मुख्य उद्देश्य कथावस्तु का क्रमिक विकास न होकर समाज की समस्याओं, वर्ग-विशेष की मनोवृत्त्यों, व्यक्ति की उलझनों आदि को अपने अनुभवों के आधार पर सांकेतिक रूप से चित्रित करना रहा है।

ऐसे ही यदि पहले हिन्दी नाटककारों की बात करें, तो स्वदेश दीपक ने अपने नाटक *काल कोठरी* में चरित्रों व शीर्षक को प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण किया है। नाटककार नाटक में चरित्रों के माध्यम से अपने विचार प्रकट करता है। नाटक के शीर्षक से ही नाटक की प्रतीकात्मकता परिलक्षित होती है। काल कोठरी का प्रतीक है- 'जीवन की काल कोठरी में कैद रंगकर्मी का दर्द'। यह नाटक रंगकर्मी की जिन्दगी पर आधारित है।

इस नाटक की शुरुआत मंचीय नाटक के अंतिम दृश्य से होती है, जब दर्शक मंच पर आकर कलाकारों को बधाई देते हैं। इसी समय रंगकर्मी रजत का आना होता है, जो थिएटर का बादशाह है। रजत के इस खूबसूरत जीवन को देख, एक लड़की उसे दिल दे बैठती है। वह रजत से प्यार का इजहार करती है और उनकी शादी हो जाती है। जब रजत का रुतबा थिएटर से कम होने लगता है तो उसके इस बदले हुए जीवन से पत्नी परेशान हो जाती है और बेहतर जिन्दगी के लिए अच्छी नौकरी तलाश करने को कहती है। रजत इंटरव्यू देने जाता है, लेकिन किसी की सिफारिश न होने के कारण उसे परेशनियों से जूझना पड़ता है। वही इन्टरव्यू में एक ऐसी लड़की आती है, जिसकी पहुँच शिक्षा मंत्री तक होती है। उसे इन्टरव्यू में आसानी से सिलेक्ट कर लिया जाता है। लेकिन बाद में रजत की पत्नी ही किसी विभाग में छोटी-सी नौकरी करने को मजबूर हो जाती है।

नाटक का कथ्य सत्य को उजागर करने वाला प्रतीक है- काल कोठरी। जैसे कोई काल कोठरी में कैद व्यक्ति अपने जीवन निर्वाह के लिए मजबूर होता है, ऐसी

ही स्थिति रंगकर्मियों की दिखायी गई है कि कैसे रंगकर्मियों की बनावटी खुशियों से भरा जीवन को देख एक लड़की जिसका नाम मीना था, उसे दिल दे बैठती है और बाद में त्रास भरा जीवन व्यतीत करने को मजबूर है। उदाहणार्थ-

> मीना: मेरी गैरत। मेरी इज्ज़त। मेरा आत्मसम्मान। अब रोटी के लिए नौकरों से पैसे माँगूँगी। नौकरों से। यदि खिला नहीं सकते तो क्यों की थी शादी।
>
> रजत: शादी इसलिए की थी कि तुम भी मुझसे शादी करना चाहती थी। कोई भगाकर नहीं लाया। सात फेरे लिये हैं। पूरे सात।
>
> मीना: तुम ! तुम भगा लाते और मुझे ! कहीं पृथ्वीराज चौहान का कोई डायलाग तो याद नहीं आ गया। मंच और जीवन में अंतर होता है। बहुत बड़ा और घिनौना अंतर। लेकिन तुम्हारा भी क्या कसूर। न अपना जीवन और न अपनी सोच। इतिहास के मृत पात्रों ने कर लिया है कब्ज़ा तुम्हारी आत्मा पर। मुझसे तो छोटी बहन स्यानी निकली। माँ-बाप की मर्जी से शादी की। राज कर रही है राज। और तुम थिएटर की काल कोठरी में चक्की पीस रहे हो.. चक्की..। (10)

उपर्युक्त संवादों में एक रंगकर्मियों की त्रासदी की प्रतीकात्मक कथ्य की मूल संवेदना को उजागर करने की ओर संकेत करती है। ऐसे ही नादिरा जाहीर बब्बर के द्वारा रचित नाटक *जी, जैसे आपकी मर्जी* में प्रतीकों की बात करें, तो इसमें जी हाँ का प्रतीक है और आपकी मर्जी- पुरुष की इच्छा का प्रतीक है। समाज में विवाह-संस्था के आरम्भ होने से लेकर आज के उत्तर-आधुनिक युग तक पुरुष-स्त्री का सम्बन्ध कमोबेश स्वामी-सेवक के रिश्ते जैसा ही रहा है। परिस्थिति और परिवेश के साथ केवल उसका ऊपरी रंग-रूप ही बदला है।

बदलते परिवेश में चरित्र प्रतीक सृष्टि में राजनीतिक सम्बन्धों की विसंगतियों एवं विडंबनाओं का सूक्ष्म गहन विश्लेषण समकालीन नाटककारों का प्रिया रहा है। सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक *सिहांसन खाली है* में लोकनाट्य के तत्त्वों का अच्छा निर्वाह हुआ है। शिल्पगत प्रयोगों में विशेष उल्लेखनीय प्रयोग अंक-दृश्य विभाजन में किया गया है। इस नाटक में अंक नहीं हैं, दृश्य हैं और हर दृश्य परिवर्तन का प्रतीक शीर्षक दिया गया है। शीर्षक, दृश्य में घटित घटनाओं की मूल चेतना पर आधारित हैं। जैसे प्रथम दृश्य में देखते हैं-

सूत्रधार: आमंत्रित सज्जनो! मुझे एक सुपात्र की तलाश है। सुपात्र जो इस सिंहासन पर बैठ सके। मनुष्य का इतिहास सिंहासन पर बैठने का इतिहास है। यह न होता तो शायद मनुष्य के इतिहास का निर्माण भी न होता। अनादि काल से सिंहासन खाली नहीं रहा...लेकिन आज... आज यह सिंहासन खाली है .... अभी-अभी खाली हो गया है क्योंकि इस पर बैठने वाला राजा सत्य, अहिंसा और न्याय की हत्या करके भाग गया है। (15)

इस नाटक में भी सूत्रधार के रूप में ढोली-कथिक का प्रयोग हुआ, जिसने कथासूत्र को गतिशील बनाये रखा। यह नाटक लोककथा शैली में लिखा जाने पर भी लोकनाट्य से भिन्न स्वरूप प्रदर्शित करता है और अपनी प्रयोगशीलता का परिचय देता है। नरनारायण राय इसे अंक दृश्य विभाजन की एक नयी परंपरा मानते हुए अपनी रचना *समकालीन हिन्दी नाटक* में कहते हैं "अंक दृश्य विभाजन की यह एक नयी परंपरा शुरू हुई है। जिसमें हर दृश्य की मूल चेतना पर आधारित प्रतीक शीर्षक दिए गये हैं।" (106)

पंजाबी नाटकों में प्रतीकों की बात करें, तो प्रतीक अप्रस्तुत का प्रस्तुत रूप अवतार ही है। साहित्यकार अपने विशेष अनुभवों को व्यक्त करने के लिए शब्दों के अभाव में प्रतीकों का आश्रय ग्रहण करता है, किसी प्रकार के रूप, भाव, गुण आकार प्रयोग आदि के कारण किसी साधारण के स्थान पर विशेष अर्थ में प्रयुक्त शैली प्रतीकवादी है अर्थात् किसी भी अव्यक्त की प्रतीकात्मक रूप से किसी अन्य व्यक्त वस्तु के द्वारा अभिव्यक्त की जा सकती है।

आत्मजीत के द्वारा रचित नाटक *मैं ता एक सारंगी हां* में स्त्री पात्रों को प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण किया गया है। नाटक में जिन आधुनिक पात्रों का सृजन हुआ है; वह एक निश्चित अर्थ में प्रतीकात्मक हैं। इस नाटक का नाम ही स्त्री की गुलामी का एक प्रतीक है। मैं ता एक सरंगी हाँ में सारंगी के सुर आज़ादी और मुक्ति को तरस रहे हैं। यह नाटक नारी-मुक्ति का न होकर लाचारी मुक्ति का प्रतीक बन जाता है। इस नाटक में तीन स्त्री पात्र गीता, मीना और पाल ऐसी प्रतीक हैं जो पुरुष प्रधान समाज की सोच को उजागर करती हैं। उदाहरणार्थ-

मीना: सबसे ज्यादा भयानक क्या है?

पाल: गुस्सा।

मीना: उससे भी भयानक !

गीता: नफरत, जो बिना दोष के मिले।

पाल: अधिकार, जो आदमी, आदमी पर करता है।

गीता: हमारी कोई जिन्दगी नहीं है, हम तो मर्दों की सारंगी हैं। (78)

इस नाटक में इन तीन नारी पात्रों के चित्रण के माध्यम से देखते हैं कि यह अपने वजूद को बचाए रखने की लड़ाई लड़ती हैं; यह नाटक ऐसी कथा का प्रतीक है कि जो आधुनिक विचारों से ओतप्रोत होकर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्सशील है।

ऐसे ही पाली भूपिंदर सिंह के द्वारा रचित नाटक *चंदन दे ओहले* में एक ऐसी पात्र को प्रतीक बनाया गया है, जिसके अपने ही परिवार के सदस्य दुश्मन बन जाते हैं और उसकी जबरदस्ती शादी एक बुजुर्ग के साथ कर दी जाती है। इस नाटक में 'चंदन' एक परिवार का प्रतीक है और 'दे ओहले' अर्थात् परिवार की छत्रछाया के नीचे, नाटक के अंत में एक प्रतीकात्मक गीत प्रस्तुत किया जाता है-

चंदन ओहले कत्ल हो गई, मेरी चंन कहानी,

मेरी माँ रानी ने अपने हाथो ऐसे काज रचाएं,

यह देखो, डालर की डोली, महक चली मुकलावे

मेरे भाई ने अपने हाथो से बेचे, मेरे गुडीया पटोले ....

चंदन दे ओहले, चंदन दे ओहले .....(67)

अजमेर सिंह औलख के द्वारा रचित नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* में चरित्र व शीर्षक को प्रतीकात्मक रूप से ग्रहण किया गया है। नाटककार नाटक में चरित्रों के माध्यम से अपने विचारों को प्रकट करता है। नाटक के शीर्षक से ही नाटक की प्रतीकात्मकता परिलक्षित होती है। निक्के सूरजां दी लड़ाई अर्थात् छोटे लोगे का संघर्ष। जिसमें छोटे किसान, छोटे कारोबारी और प्राइवेट अदारो से जुड़े लोग जो आर्थिक संकट एवं मंदहाली का शिकार होने के बावजूद भी संघर्ष कर रहे हैं। इस नाटक की भूमिका में वरियाम सिंह संधू लिखते हैं-

> 'निक्के सूरज' अपने 'निक्के-पन' या मनुष्य की साधारणता के बावजूद मनुष्य की जुझारू और प्रगतिवादी प्रतिबद्ध दृष्टि के प्रतीक हैं। यह नायक की लड़ाई तो नहीं; निक्के मनुष्यों की निक्की लड़ाई तो है। इस लड़ाई में जीत तो संभव नहीं है, लेकिन हार तो है; लेकिन यह हार ही संघर्ष का प्रतीक है। निक्के और साधारण मनुष्य जो भी हैं जागते रहें; लड़ते रहे; संघर्ष करते रहें। (08)

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में प्रतीकों का प्रयोग कभी शीर्षक, कभी पात्र, कभी .घटना, कभी वस्तु तथा कभी नाटक की संवेदना को आधार बनाकर किया है। डॉ. रमेश गौतम *आधुनिक हिन्दी के प्रतीक नाटक* में लिखते हैं-

> नया नाटक साहित्य प्रतीक नाटकों का स्वर्णयुग है। ..... इसमें समय युग-चेतना और बदलते मूल्यों के साथ चलने की प्रवृत्ति सिद्ध करती है कि आधुनिक नाटकों का आगामी युग प्रतीक विरल नहीं प्रतीक बहुल होगा, क्योंकि मानव जीवन क्रमश: जटिलता और आयामगत विविधिता की ओर बढ़ रहा है। इस जटिलता और आयामगत को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों की भाषा को ग्रहण करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी होगा। (324)

6.3.1 2000 से 2018 के चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में रंग-विधान

रंगमंच अनेक कलाओं को साथ लेकर चलने वाला प्रदर्शनकारी माध्यम है। रंगमंच में अनेक प्रदर्शनकारी कलाएँ समाहित हैं, जो आवश्यकतानुसार इसमें प्रयुक्त होती रही है। रंगमंच अपने आप में एक सम्पूर्ण अनुभव है जो अपनी आरंभिक संकल्पनाओं से शैलीबद्ध पद्धतियों को लेकर चला है। नाट्य, नाटक अथवा रंगमंच को अनुभव करने की प्रक्रिया सबसे जटिल है। सबसे पहले तो वहाँ भी साहित्य की तरह मात्र शब्द हैं, लेकिन वे अपने-आप में पूर्ण और अंतिम नहीं हैं। साहित्य में एक बार लिखित होने के बाद शब्द अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, लेकिन नाटक में ऐसा नहीं होता, क्योंकि नाटक अनिवार्य रूप से एक प्रदर्शनकारी कला है। इस प्रदर्शनकारी

विधा के रंग-विधानों के विषय में देवेन्द्र राज अंकुर *रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र* में लिखते हैं-

> रंगभाषा के अपने कुछ ऐसे पहलू जो मात्र नाटक की ही सम्पत्ति है, मसलन मंचसज्जा या दृश्यबंध, वेशभूषा, रूपसज्जा, रंगसंगीत और प्रकाश। बेशक ये तत्त्व उसके प्रदर्शन के व्यावहारिक पक्ष से ज्यादा जुड़े हैं लेकिन ये उसके आलेख में भी कितने ही धुँधले रूप में ही क्यों न सही, उपस्थित अवश्य रहते हैं। (29)

6.3.1.1 मंच सज्जा एवं दृश्यबंध

अभिनय नाटक का महत्त्वपूर्ण अंग है। पात्रों के विशिष्ट अभिनय से ही दर्शक नाटक को समझ पाते हैं एवं प्रभावित होते हैं। इसलिए सभी दृश्यों को सही ढंग से मंच पर उपस्थित करने से उसकी प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है। सहज दृश्य ही मंच पर चित्रित किये जा सकते हैं। नाटक अकेला नहीं होता है। इसके साथ उसके अन्य मित्र भी कार्यरत रहते हैं जैसे मंच सज्जा, ध्वनि व्यवस्था, प्रकाश व्यवस्था, वेशभूषा, आभूषण आदि इन सभी की मदद के बिना एक नाटक तैयार नहीं किया जा सकता। यदि इनमें हम मंच सज्जा की बात करें, तो यह रंग शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जो नाटक के मूल भावों को मूर्त रूप में पाठकों/दर्शकों के समक्ष लाता है; जहाँ पाठक के लिए मंच सज्जा के संकेत दृश्य पैदा करते हैं तो वही दर्शक के लिए नाटक की आत्मा तक पहुँचने में सहायक होते हैं। मंच सज्जा के संकेत अभिनेता को उन स्थितियों से सन्मुख करवाने के साथ-साथ उसके अभिनय में भी सहायता करता है। मंच पर प्रयोग सज्जा के उपकरणों द्वारा चरित्र के पीछे छिपे मनोवैज्ञानिक भावों को समझा जा सकता है और उनकी स्थिति विशेष की जानकारी भी प्राप्त की जाती है। डॉ. सीताराम झा 'श्याम' *नाटक और रंगमंच* में मंच सज्जा एवं दृश्यबंध के विषय में लिखते हैं-

> दृश्यबंध के निर्माण में नाटक की सम्पूर्णता का ध्यान रखना पड़ता है। यह एक ऐसा स्थिर दृश्य होता है, जो न केवल एक दृश्य के लिए होता है, अपितु सभी दृश्यों में इसका अस्तित्व बना रहता है। आधुनिक काल में एक ही दृश्यबंध पर समाप्त होने वाले नाटक की माँग अधिक हो रही है। (178)

इस प्रकार यदि हम पहले चयनित हिन्दी नाटकों की बात करें, तो लगभग सभी नाटककारों ने इन नाटकों में बदलते परिवेश के अनुसार एक नया आयाम दिया है। इनका प्रत्येक नाटक पाठनीय और मंचनीय है। मंच पर बिना किसी ताम-झाम के साधारण मंच सज्जा में प्रस्तुत किए जा सकने वाले इनके नाटक दर्शकों को अपने अंदर झाँकने, अपनी पीड़ा, मर्म तथा यथार्थ को पहचानने के लिए उकसाते हैं।

चयनित नाटक पाठ करते समय ही स्थितियों, मानसिकताओं को दर्शाते चित्र आँखों के समक्ष आने लगते हैं। नादिरा जहीर बब्बर के द्वारा रचित नाटक *सकुबाई* एक ही अंक और दृश्य का नाटक है। पूरा नाटक एक बाई का काम करने वाली माई के इर्दगिर्द चलता है। निर्देशक की सुविधा तथा नाटक की मूल संवेदना को बनाए रखने के लिए नाटककार ने रंग संकेत दिए हैं-

> मंच पर प्रकाश आने पर हम देखते हैं मुम्बई में रहनेवाले मध्यमवर्गीय परिवार का फ्लैट। सुंदर और महँगे तरीके से सजा हुआ है। फ्लैट में बाई ओर एक दरवाजा है। जो बाहर की ओर खुलता है। जिससे सीधे हम फ्लैट के अंदर दाखिल होते हैं। स्टेज के आधे हिस्से में एक काल्पनिक दीवार के उस तरफ बेडरूम है। कमरे में टेपरिकार्डर, टी.वी., फ्रिज, सब हैं। घर बड़ी अस्त-व्यस्त हालत में है। जैसे कि घरवाले जल्दी-जल्दी में निकल गए हों। (15)

यह संकेत उस बाई के काम को करते हैं जो मुम्बई शहर में किसी के घर में काम करती है और उस घर के मालक बाई के आते ही जल्दी-जल्दी बाहर किसी काम के लिए चले जाते हैं। कृष्ण बलदेव वैद के द्वारा रचित नाटक *कहते हैं जिसको प्यार* में भी ऐसे ही घर के दृश्य देखने को मिलता है। जिसमें स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में बढ़ रहे तनाव तथा घुटन को व्यक्त करते साजो-सामान के संकेत नाटककार ने दिए हैं। उदाहणार्थ-

> एक प्रोफैसर के घर की बैठक, जिसमें बैठने की बजाय खड़े रहना ज्यादा आसान लगता है। सुजाता पात्र खड़ी बंद दरवाजे की तरफ देख रही है। अखिल उसी दरवाजे को धीरे से धकेलकर किसी अनाड़ी चोर की तरह अंदर आता है, तो सुजाता खिल उठती है। (11)

संक्षेप में नाटककार ने अपने नाटकों में रंग संकेतों द्वारा निर्देशक की मंचीयता की कठनाई को कम करने के साथ-साथ अपने नाटकों की संवेदनाओं को मूल रूप में व्यक्त किया है।

सुशील कुमार के द्वारा रचित नाटक *सिंहासन खाली है* की बात करें, तो यह नाटक राजनीतिक दृष्टि से लिखा गया है। इस नाटक का निर्माण इस तरीके से किया गया है, कि मंच सज्जा में निर्देशक के लिए कोई अधिक मुश्किल आने वाली नहीं है। एक साधारण प्लेटफार्म कुछ कुर्सियों तथा मेजों की मदद से ऐसा वातावरण आसानी से तैयार किया जा सकता है, जो स्वाभाविक भी लगे और नाटक के पात्रों की मन: स्थिति तथा नाटकीय संवेदना को भी व्यक्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में कुछ संकेत नाटककार ने भी दिए हैं और कुछ निर्देशक उसमें परिवर्तन करने की गुजांइश भी रख सकता है। उदाहरणार्थ-

> मंच पर अँधेरा। प्रारम्भिक संगीत के साथ खाली सिंहासन पर प्रकाश उभरता है। सिंहासन प्रकाश से जब पूर्णतया जगमगा उठता है, तब सूत्रधार मंच के दाहिने अग्रभाग में दिखायी देता है। सूत्रधार विनम्र-भाव से दर्शकों को सम्बोधित करता है। (15)

इस प्रकार यदि पंजाबी नाटकों की बात करें, तो पंजाबी नाटककारों ने अपने नाटकों में मंच सज्जा एवं दृश्यबंध सम्बन्धी संकेतों का ख़ास ध्यान रखा है। इन्होंने विशेष रूप से मध्यवर्गीय परिवेश को दर्शाया है। पंजाबी नाटककारों ने अपने नाटकों को मंच की दृष्टि से ही लिखा है। मंचपर नाटक की सफलता के लिए वे ऐसे वातावरण निर्माण के संकेत देते हैं, जो नाटक की स्वाभाविकतता को बनाए रखते हैं।

गुरचरन सिंह जसूजा के द्वारा रचित नाटक *परियां* की बात करें, तो यह नाटक दफ्तरों में काम करने वाले कर्मचारियों की त्रासदी को प्रस्तुत करता है। इस नाटक की मंच सज्जा एवं दृश्यबंध पूर्ण रूप से एक दफ्तरी वातावरण को प्रस्तुत करता है। मंच सज्जा को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि ऐसा माहौल पैदा हो जिससे दफ्तरी भाव अपने आप प्रस्तुत हो जाए-

> एक बहुमंजली इमारत की पहली मंजिल। ललित एंड कम्पनी का दफ़्तर। दाय ओर एक दरवाजा दफ्तर के अंदर आने के लिए। पहली दीवार पर एक दरवाजा मालक के कमरे की ओर खुलता है। कमरे के बाहर एक नाम प्लेट है। जिसके

> ऊपर 'ललित सेठ' लिखा हुआ है। इस दरवाजे की दाय ओर एक छोटा मेज रखा हुआ है और बाय ओर दो मेज। दाय ओर के पहले मेज पर एक टाईपराइटर की मशीन पड़ी हुई है। तीसरे मेज पर टैलीफोन पड़ा है। (13)

नाटककार ऐसा वातावरण तैयार करने के संकेत दे रहा है, जिसमें आसानी से ऐसा, माहौल तैयार हो सके; जिसके द्वारा नाटक की मूल संवेदना को दर्शकों के दिल और दिमाग तक आसानी से पहुँचाया जा सके।

पाली भूपिंदर सिंह के द्वारा रचित नाटक *चंदन दे ओहले* में एक जट्ट परिवार की दशा को प्रस्तुत किया गया है, इस नाटक में उसकी एक पढ़ी-लिखी लड़की है, जिसकी अभी शादी नहीं हुई, इसलिए नाटककार ने मंच सज्जा को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि वैसा ही माहौल पैदा किया जा सके-

> एक अमीर जट्ट परिवार का शहरी घर, बहुतात कार्य ड्राईंग रूम, जिसके पीछे ड़ाईनिग टेबल और एक ओर किचन और बेडरूम के दरवाजे नजर आ रहे हैं, घर को थोड़े सलीके से सजाने का प्रयास किया गया, जिसका ज्यादा आधार एक पढ़ी-लिखी लड़की का शौंक है, (09)

निर्मल जोड़ा के द्वारा रचित नाटक *सौदागर* की बात करें, तो सौदागर नाटक एक नशा तस्करी करने वाले सौदागर नामक व्यक्ति की कथा से जुड़ा है। सौदागर नशा तस्करी के साथ-साथ गाँव का सरपंच भी है और अपने थाणे के पुलिस मुलाजमों के साथ भी उसकी अच्छी पहचान है-

> एक सजा हुआ ड्राइंगरूम जिसमें पड़ी हुई हर वस्तु अमीरी का प्रतीक प्रस्तुत कर रही है। ड्राइंगरूम में ही कुछ सोफे पड़े हैं, जिसके ऊपर कुछ नशेडी व्यक्ति बैठे हैं और सौदागर की प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक दीवार के ऊपर किसी बड़े पुलिस अफ़सर के साथ सौदागर की फोटो लगी हुई है। (41)

दर्शकों को आकर्षित करने के साथ-साथ आने वाले दृश्य के प्रति जिज्ञासा भी उत्पन्न कर जाते हैं। इसके साथ ही अपने नाम की सार्थकता को भी बनाए रखते हैं।

निष्कर्ष रूप से कहें तो हिन्दी और पंजाबी नाटकों के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि चयनित नाटकों में नाटककारों ने मंच सज्जा एवं दृश्यबंध को एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में स्वीकारा है। नाटक से सम्बंधित वातावरण और परिवेश का निर्माण

करने के लिए नाटककार दृश्यबंध का प्रयोग करता है। चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में नाटककारों ने मंच संकेत देकर अपनी मंच के प्रति सजगता को तो प्रकट किया ही है, साथ ही इन संकेतों द्वारा दर्शक और नाटक को एक दूसरे के निकट लाने का कार्य भी किया है। मंच सज्जा का एक उद्देश्य दर्शकों को आकर्षित करना और उनकी रूचि को अंत तक बनाए रखना होता है। वही नाटी संवेदना को व्यक्त करती मंच सज्जा दर्शकों के ध्यान को नया क्षितिज देती है। उसके सामने अनेक प्रश्न पैदा करती है और उसकी वस्तुओं को देखने और समझने के दृष्टिकोण में परिवर्तन कर देती है।

बदलते परिवेश में हम यह भी देखते हैं कि चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के कुछ नाटककार ऐसे भी हैं; जिन्होंने इस कार्य के निर्देशक को स्वतंत्रता दी और कोई संकेत नहीं दिया है। वे निर्देशक से अपेक्षा करते हैं कि वह मंच परिकल्पना के समय नाटक की मूल संवेदना तथा काल विशेष को अवश्य ध्यान में रखेगा।

6.3.1.2 प्रकाश योजना

पात्रों की भाव भंगिमाओं को प्रभावी बनाने एवं विषय वस्तु से सम्बंधित सजीव वातावरण बनाने में प्रकाश योजना का अत्यधिक महत्त्व है। शोक दृश्य के मंचन में प्रकाश का धीमा होकर बूझ जाना, उन्मादक वातावरण के लिए लाल या नीला प्रकाश नाटक को भाव तीव्रता प्रदान करता है। नाटक में उसी परिवेश, उसी वातावरण या उसी दृश्य का चित्रण करने हेतु दृश्यबंध योजना का प्रयोग करते हुए; उसे प्रकाश किया जाता है, इसके द्वारा दर्शकों के हृदय में नाटक के दृश्य का सजीव चित्र उपस्थित हो जाता है। आज के बदलते परिवेश में प्रकाश योजना को लेकर नाटककार सजग हैं क्योंकि इसकी असीमित संभावनाएं रंगमंच पर उजागर हो रही हैं। प्रकाश के अनेक स्तर हैं, जो हृदय की विविध अंत: प्रतिक्रियाओं और मनोदशाओं को प्रकट करती हैं। प्रकाश का प्रयोग केवल वस्तुओं को दृश्य बनाने के लिए ही नहीं होता, बल्कि मंचीय मुहावरे के रूप में भी होता है। डॉ. सीताराम झा 'श्याम' *नाटक और रंगमंच* में प्रकाश योजना के विषय में लिखते हैं-

> प्रकाश योजना नाटक के संवादों एवं निहित भाव अनुरूप की जानी चाहिए। श्रृंगार, वीर, हास्य आदि में एक ही प्रकार का प्रकाश वांछनीय नहीं होता। इसी

प्रकार, अरुणोदय, सूर्यास्त, चाँदनी आदि के लिए भी विशेष प्रकार की प्रकाश व्यवस्था होनी चाहिए। (179)

चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के नाटककारों ने प्रकाश के महत्त्व को जानते हुए अपने नाटकों में प्रकाश-प्रयोग की संभावनाओं का समावेश किया है। जिनको आधार बनाकर रंगकर्मी प्रकाश का प्रयोग मंच के मुहावरे के रूप में करते हैं। बदलते परिवेश के अनुसार 2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में प्रकाश योजना का भी विशेष ध्यान रखा गया है।

यदि पहले हिन्दी नाटकों में प्रकाश योजना की बात करें, तो सुशील कुमार सिंह के द्वारा रचित नाटक *चार यारों की यार* जो दम्पति बिन्दिया और मा. सीताराम पर केन्द्रित है। इस नाटक को नाटककार ने तीन अंकों में विभाजित किया है, नाटक के प्रयेक अंक पर प्रकाश का प्रयोग विभिन्न दृश्यों को दर्शाने के लिए किया गया है। बिन्दिया और मा. सीताराम की बेचैनी को दिखाने के लिए प्रकाश उसके साथ-साथ चलता है। दृश्य परिवर्तन के लिए अंधकार का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के रूप में पहले अंक में "अरग मध्य भाग में बिन्दिया पर प्रकाश। बिन्दिया सीधे दर्शकों से सम्बोधित होती है।" (11) इस अंक के अंत में अँधेरा भी दिखाया गया है- "बिन्दिया सिर झुका कर रसोई की ओर चली जाती है। मास्टर जी निढाल से बैठ जाते हैं। मंच पर अँधेरा छा जाता है।" (28) इसी प्रकार दूसरे अंक के अंत में भी अँधेरा दिखायी देता है- "पूरी ताकत से गिलास जमीन पर पटक देती है। और स्वयं फफक कर रो पड़ती है। मंच पर अँधेरा छा जाता है। (71) इसी प्रकार तीसरे अंक की शुरुआत में भी प्रकाश दिखायी देता है- "मंच प्रकाशित होने पर अकेले मास्टर जी दिखायी देते हैं जो रसोई-घर में बैठे स्टॉप में हवा भर रहे हैं।" (72) नाटक के अंत में भी अंधकार को प्रस्तुत किया गया है- "फफक कर रो पड़ती है। अँधेरा उसे अपने आप में सिमटाने लगता है। कुछ क्षणों के बाद केवल उसकी सिसकियाँ ही रह जाती हैं, अँधेरे और सन्नाटे को चीरने के लिए।" (95)

ऐसे ही यदि स्वदेश दीपक के द्वारा रचित नाटक *काल कोठरी* की बात करें, तो इस नाटक में नाटकीय अभिनय तथा प्रकाश सम्बन्धी संकेत तथा निर्देश नाटककार द्वारा दिए गए हैं। मंच पर प्रकाश के लिए संकेत के रूप में जलती मोमबती का प्रयोग किया गया है। अंगद को लंगड़ा न दिखाने के लिए मंच पर अंधकार का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण- "लड़का अँधेरे में प्रवेश करेगा, उसे चलता हुआ

बिल्कुल नहीं दिखाना है अभी।" (12) इसके आलावा मंच पर कब कैसे प्रकाश हो; इसके भी संकेत दिए गये हैं। रात के समय के लिए बल्ब की रोशनी। दिन का समय सूचित करने के लिए पूरा प्रकाश। पात्रों की स्थिति, अभिनय तथा समय सूचक प्रकाश द्वारा नाटक की मूल संवेदना को उभारा गया है।

अजय शुक्ला के द्वारा रचित ऐतिहासिक नाटक *ताजमहल का टेंडर* में भी पात्रों के प्रस्थान और प्रवेश को संकेतित करने के लिए प्रकाश का प्रयोग किया गया है। उदाहरण- "प्रकाश कम होने के लिए साथ ही तीनों का प्रस्थान। पुन: प्रकाश तेज होने पर शाहजहाँ का दरबारियों सहित प्रवेश" (23) नये पात्रों के प्रवेश समय भी प्रकाश का सहारा लिया जाता है- "प्रकाश कम होता है। दृश्य परिवर्तन। गुप्ताजी एवं सुधीर का प्रवेश। गोलाकार प्रवेश केवल उन पर है।" (77)

इस प्रकार यदि पंजाबी नाटकों में प्रकाश योजना की बात करें, तो नाटक के मंचन को प्रभावशाली बनाने में प्रकाश योजना का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिसका प्रयोग पंजाबी नाटककारों ने भी किया है। सबसे पहले स्वराजबीर के द्वारा रचित नाटक *कल्लर* की बात करें, तो *कल्लर* की कथा किसानी समस्या से सम्बंधित है, इस लिए इसके प्रथम अंक की प्रकाश योजना का प्रयोग भी इस प्रकार किया गया है, जिससे दर्शकों का ध्यान आकर्षित किया जा सके-

> मध्यम प्रकाश मंच के सेंटर पर केन्द्रित है, जहाँ दो कामे गोडायी कर रहे हैं, दोनों मिट्टी से भरे हुए हैं और पसीने से पूरे भीगे हुए हैं, पीछे से आवाज़ आती है और वह दोनों कामे उनके साथ-साथ आवाज दे रहे हैं। (13)

इस नाटक में प्रकाश निर्देश पात्रों के अभिनय तथा कार्य को भी अंकित करते हैं। इस प्रकार यदि कुलदीप सिंह दीप के द्वारा रचित नाटक *तूं मेरा की लग्गदैं* की बात करें, तो इस नाटक का मुख्य पात्र बुजुर्ग प्रदुमन सिंह है, जो रेलवे विभाग से रिटायर होकर घर आ रहा है, नाटक के प्रथम दृश्य में प्रकाश दिखाया गया है और नाटक के अंत में अँधेरा दिखाया गया है-

> नाटक जब शुरू होता है तो प्रकाश मंच नंबर तीन पर पड़ता है, जहाँ बुजुर्ग ज्ञान सिंह, करम सिंह, हरचरन सिंह किशन सिंह ताश खेल रहे हैं। ताश खेलते-खेलते ज्ञान सिंह की नजर एक दाड़ी बंदे, पैंट शर्ट पाए और पगड़ीधारी सुटिड बुटिड अजनबी (प्रदुमन सिंह) पर पड़ती है। (17)

प्रकाश के द्वारा ही मंच पर मंच सज्जा दिखा गाँव का एक साझा स्थान दिखाया गया है। यहाँ गाँव के बुजुर्ग बैठे हैं। नाटक के अंत में प्रदुमन सिंह का रूप परिवर्तन प्रकाश प्रयोग के द्वारा ही दिखाया गया है-

> प्रदुमन सिंह बैग में से एक गठड़ी निकालता है और काम्पतें हाथों से गणेशी के हाथों में दे देता है। अलाप पूरा तेज होकर मध्मय होते होते ख़त्म हो जाता है..... और मंच पर अँधेरा छा जाता है। (72)

ऐसे ही पंजाबी नाटककार आत्मजीत के द्वारा रचित नाटक *मैं तां एक सारंगी हां* में प्रकाश का प्रयोग तीन औरतों की मानसिकता को दर्शाने के लिए किया गया है-

> मंच पर प्रकाश दिखायी देता है। गीता, मीना और पाल एक कमरे में बैठी हँस रही हैं। तीनों लगभग 50 वर्ष की उम्र की हैं। वह तीनों काफी सज-धज कर बैठी हैं, और गर्म कपड़ों में हैं। जैसे किसी विशेष अवसर पर मिली हो। (15)

नाटककार ने सर्दी के मौसम में तीन औरतों की मानसिकता को प्रकट करने का प्रयास किया है जो काफी समय बाद आपस में मिली हैं।

इस प्रकार चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में नाटककारों ने प्रकाश-योजना के प्रयोग से सजीवता एवं जीवंतता उत्पन्न कर दी है। जो कथा को आगे बढाती है तथा पात्रों की गतिमयता प्रदान करती है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि चयनित नाटक पूरी तरह से रंगमंचीय हैं, जिन्हें आसानी से मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। विकल गौतम *हिन्दी नाटक रंग शिल्प दर्शन* में लिखते हैं-

> वर्तमान युग के किसी भी नाट्य प्रयोक्ता को उस समय तक सफलता नहीं मिल सकती, जब तक वह प्रकाश व्यवस्था को भली-भांति न समझ ले, क्योंकि कुछ नाट्यशालाओं में सारा नाटक प्रकाश व्यवस्था पर अवलम्बित होता है। (37)

6.3.1.3 ध्वनि एवं संगीत

ध्वनि एवं संगीत का प्रयोग नाटक में सजीवता लाने हेतु किया जाता है। ध्वनि प्रभाव पर ही नाटक की सफलता अवलंबित होने के कारण नाटकों में इस तत्त्व

का उचित उपयोग करना आवश्यक है। वातावरण निर्माण करने में तथा दृश्य परिवर्तन करने में अत्यंत उपयोगी होता है। संवादों को प्रभावी बनाने में भी वाच्य संगीत का उपयोग किया जाता है। ध्वनि एवं संगीत रंगमंच का आज अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। बदलते परिवेश और समकालीन युग की वैज्ञानिकता ने रंगमंच को ध्वनि, संगीत एवं प्रकाश के क्षेत्र में अत्यंत समृद्ध किया है। इन वैज्ञानिक उपकरणों एवं तकनीक सुविधाओं का प्रयोग चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में किया गया है, उन्होंने अपने नाटकों में शोर, जुलूस-प्रदर्शन, शंख-घंटो के स्वर और चिड़ियों की आवाजें, स्थानीय रीति-रिवाजो के गीत गोलियों की आवाजे, तूफान, वर्षा की रिमझिम, बांसुरी, ढोलक आदि वाद्ययन्त्रों का सहारा लिया है, लोकनाटकों में तो संगीत नाटक की आत्मा माना जाता है। डॉ. सीताराम झा 'श्याम' *नाटक और रंगमंच* में ध्वनि एवं संगीत के विषय में लिखते हैं-

> समय की अल्पता में कम-से-कम पात्रों द्वारा नाटक को सफलतापूर्वक अभिनीत करने में ध्वनि-संकेत अत्यंत सहायक सिद्ध होता है। टेपरिकार्डर, टेलिफोन, बिजली की घंटी, विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्र आदि की सहायता से नाटकीय घटनाओं को अत्यंत रोचक, स्वाभाविक एवं प्रभावपूर्ण बना दिया जाता है। (190)

चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में संगीत एवं ध्वनि-योजना का प्रयोग पात्रों की मनोस्थितियों दृश्य-विभाजन तथा भावों को अभिव्यक्त करने तथा अमंचीय दृश्यों का मंचन करने हेतु किया है। इस प्रकार यदि हम पहले हिन्दी नाटकों की बात करें, तो असग़र वजाहत के द्वारा रचित नाटक *जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ* में ध्वनि और संगीत का पूरा ध्यान रखा गया है, नाटक का प्रारंभ ही जुलूस की ध्वनियों से होता है- "पृष्ठभूमि से किसी प्रदर्शन और जुलूस की स्पष्ट आवाजें आ रही है, जो धीरे-धीरे साफ़ होती जा रही है। प्रदर्शनकारी पास आते लगते हैं।" (09) इस नाटक की कथा भारत और पाकिस्तान के विभाजन पर निर्धारित है। नाटक के प्रथम अंक में ही एक संगीत को प्रस्तुत किया जाता है। "अँधेरे में कुछ क्षण के बाद हल्का प्रकाश आता है और लुटे-पिटे शरणार्थियों का काफला दिखायी पड़ता है। वे धीरे-धीरे मंच पर आगे बढ़ रहे हैं। पृष्ठभूमि से गायन की आवाज आती है" (11) इस प्रकार बाद में एक संगीत भी प्रस्तुत किया जाता है, जिस की पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

और नतीजे में हिन्दोस्तां बँट गया

ये जमीं बँट गयी आसमाँ बँट गया

तर्जे तहरीर, तर्जे बयाँ बँट गया

शाख़ें गुल बँट गयी, आश्याँ बँट गया

हमने देखा था जो ख्याब ही और था

अब जो देखा तो पंजाब ही और था।

(शरणार्थियों का ग्रुप मंच से निकल जाता है।) (11)

प्रस्तुत नाटक में ध्वनियों के साथ-साथ गीत-योजना का भी अत्यंत सुंदर ढंग से प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार डॉ. मधु धवन के द्वारा रचित नाटक *आज की पुकार* की बात करें, तो इस नाटक में दृश्य निर्माण के लिए ध्वनि संकेत दिए गये हैं, इस नाटक के प्रथम अंक में सुबह का दृश्य प्रस्तुत किया और लोग अपनी दुकाने खोल रहे हैं और कुछ लोग मन्दिर जा रहे हैं, मन्दिरों से शंख और घंटो की आवाज आ रही है, जिसको नाटक में प्रस्तुत किया गया है- "मन्दिरों में से शंख और घंटो के स्वर और चिड़ियों का चहचहाना सुनाई देता है" (12) ये ध्वनियाँ प्रात:काल के दृश्य को सजीवता प्रदान करती हैं।

हृषीकेश सुलभ के द्वारा रचित नाटक *अमली* की कथा बिहार की संस्कृति, समाज और आर्थिक संरचना से सम्बंधित है और इस नाटक में ध्वनि एवं संगीत का काफी प्रयोग किया गया है, इसलिए अपनी वस्तु और शिल्प में यह नाटक आधुनिक भी है, प्रयोगधर्मी भी और अपनी लोकरंग-परम्परा से आंतरिक रूप से जुड़ा हुआ भी। बिदेसिया शैली में पारम्परिक गीतों और नृत्यों का समन्वय इसकी विशिष्टता है और कथ्य एवं शैली के अभिन्न अंग होने के कारण अमली में इसका सुनियोजित विधान किया गया है। इस नाटक के आरम्भ में ही वाद्ययंत्रों को प्रस्तुत किया गया है-

> हारमोनियम, ढोलक, ताशा, बाँसुरी, झाल और करताल आदि वाद्यों के साथ नाटक के सारे पात्र मंच पर प्रवेश करते हैं। मंच के पिछले हिस्से पर दर्शकों के आमने-सामने बैठते हैं। मंच पर प्रवेश के बाद सब शीश झुकाकर अभिवादन करते हुए बैठ जाते हैं। समाजी अपने वाद्य-यंत्रों को मिलाते हैं और सुमिरन गाते हैं। सुमिरन में नाटक के सभी पात्र शामिल होते हैं। (27)

इस नाटक में बिहार की संस्कृति और उनके स्थानीय रीति-रिवाजो को भी बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक के प्रथम अंक में ही विवाह-गीत को प्रस्तुत किया गया है-

आवेले कवन बाबू हथिया से घोड़वा हे,

आवेले कवन दुल्हा बहु लहते डेलिया हे

आवेले रमेसर बाबू हथिया से घोड़वा हे,

आवेले रमेसर दुलहा बहु लेहले डोलिया हे। (30)

इस नाटक में नाटककार ने ध्वनि एवं संगीत को प्रस्तुत भी किया है और साथ ही निर्देशक के लिए एक संकेत भी दिया है कि निर्देशक स्वतंत्र रूप से इस नाटक में संगीत प्रयोग कर इनकी मूल संवेदना को व्यक्त कर सकेगा-

> निर्देशक स्थानीय रस्म-रिवाज के अनुसार किसी अन्य गीत का भी उपयोग कर सकते हैं। गीत समाप्त होते ही प्रकाश सिम्ट जाता है और समाजियों पर पूर्ववत् केन्द्रित होता है। (30)

किशोर कुमार सिन्हा के द्वारा रचित नाटक *धारा एक सौ चवालीस* की बात करें, तो इस नाटक में भयभीत वातावरण दिखाने के लिए नाटककार ने, साइरन, घण्टी, गोलियों और चीख-पुकार की ध्वनियों के लिए संकेत दिए हैं। नाटक के शुरू में ही विभिन्न ध्वनियाँ सुनाई देती हैं, जैसे- "साइरन बजने लगते हैं.... पुलिस की गाड़ियाँ.... मैजिस्ट्रेट की जीप ..... लाठी.... बंदूक .... भीड़ और पुलिस आमने सामने।" (27) दंगे को दर्शाने के लिए गोली चलने की आवाजें माहौल को डरावना बना देती है। वही इस वातावरण से उपजी लोगों की पीड़ा तथा पुलिस द्वारा उनके साथ मारपीट कर पकड़े गए लोगों के दर्द की कहानी कहती है-

> नेपथ्य से मारपीट की आवाजें आ रही हैं। ..... लाठियाँ चल रही हैं। हड्डियाँ चटक रही हैं, चीख-पुकार .....कराह में बदल रही हैं। ..... धीरे.... धीरे बसे चलने लगती हैं। (77)

इस प्रकार नाटककार ने ध्वनि संकेतों द्वारा नाटक की संवेदना को व्यक्त किया है।

पंजाबी नाटकों में देखें तो, पंजाबी नाटककारों ने भी संवादों को प्रभावी बनाने में भी वाच्य संगीत का उपयोग किया है। सबसे पहले पाली भूपिंदर सिंह के द्वारा रचित नाटक *चंदन दे ओहले* की बात करें, तो इस नाटक में एक माणा नामक नारी की त्रासदी को प्रस्तुत किया गया है, नाटक की शुरुआत भी संगीत से होती है- "पर्दा खुलते ही संगीत शुरू हो जाता है और एक लड़की दौड़-दौड़ कर एक कमरे की सफाई कर रही है।" (09) पाली भूपिंदर सिंह ने इस नाटक में लोकगीतों का प्रयोग कर संगीतात्मकता को पैदा किया है और एक बेटी की त्रासदी को संगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है-

"बाबुल मेरे वर टोलिया, जो उम्रा दा हाणी,

चंनण ओहले कत्ल हो गया मेरी चंन कहानी" (67)

ये गीत नाटक में रोचकता तथा संगीतात्मकता का संचार करते हुए माणा की त्रासदी को बयान करती है, जिसकी शादी जबरदस्ती उसके परिवार के द्वारा एक बुजुर्ग के साथ कर दी जाती है।

इस प्रकार सतीश कुमार वर्मा के नाटक *लोक मना दा राजा* में संगीत-गीत एवं ध्वनि-योजना का बड़े ही सुंदर ढंग से प्रयोग किया गया है, सतीश कुमार वर्मा संगीत को इस नाटक का अविभाज्य अंग मानते हैं, और इसकी संरचना ही संगीत के भीतर से हुई है। नाटककार ने इस नाटक में रोचकता बनाने के लिए ऐसे दृश्य प्रस्तुत किए गये हैं। उदाहरणार्थ- "पीछा करता हुआ भयावह स्वर क्रुध आंधी की तरह पूरे वातावरण को हिलाकर दूर चला जाता है।" (25) प्रस्तुत नाटक में नगाड़े, ढोल और मुँह से फूंकर बजाये जाने वाले लोकवाद्य यंत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। नाटककार ने अलग-अलग समय स्थिति को दर्शाने के लिए अलग-अलग संगीतों का प्रयोग किया है, जिनके निर्देश नाटक में दिए गए हैं। इस नाटक में इतिहास के साथ-साथ धर्म की भी जानकारी संगीत के माध्यम से देने का प्रयास किया है। उदाहरण के रूप में संगीत-

"खुश बहुत रहते हिन्दू-मुसलमान दोनों,

करते महाराजा से जान कुर्बान दोनों।" (35)

इस संगीत का प्रयोग नाट्य संवेदना के अनुसार ही किया गया है। ऐसे ही कुलदीप सिंह दीप के द्वारा रचित नाटक *तूं मेरा की लग्गदैं* में संगीत एवं ध्वनि-योजना प्रयोग बड़ी सुंदरता के साथ प्रस्तुत किया गया है, जिससे निर्देशक को कोई मुश्किल न आए, नाटक में प्रदुमन सिंह के छोटे बेटे राज को एक्टिंग का बहुत शौंक है, वह हर समय संगीत की ध्वनियों पर डांस करता हुआ दिखायी दे रहा है। उदाहरणार्थ- "डिंक चीका चीका चिक..... म्यूजिक चलता है, राज सलमान की तरह नाचने की एक्टिंग करता है।" (35)

आत्मजीत के द्वारा रचित नाटक *मैं तां एक सारंगी हां* में ध्वनि योजना का बड़ा सार्थक प्रयोग किया गया है। इस नाटक में प्रयोग की गयी ध्वनियाँ पात्रों की मनोदशा तथा परिवेश में व्याप्त त्रासदी तथा घुटन का चित्रण समग्रता से करती है। इस नाटक में औरत की त्रासदी को प्रस्तुत किया गया है और विषय के अनुसार अनेक गीतों का प्रयोग किया गया है, जो नाटक को लोकनाट्य शैली की ओर ले जाते हैं। उदाहरणार्थ-

मैं तां एक सारंगी

नजरों के जितने भी शीशे

उन रंगों में रंगी हां

मैं तां एक सारंगी हां (81)

इस प्रकार बदलते परिवेश में पंजाबी नाटककारों ने भी अपने नाटकों को गंभीर, रोचक, सजीव, स्वाभाविक, मनोरंजक व हास्यात्मक बनाने हेतु संगीत-गीत योजना का प्रयोग बड़ी सहजता के साथ किया है, जो नाटक की सफलता के लिए एक महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं।

6.3.1.4 वेशभूषा एवं रूप सज्जा

किसी भी वस्तु को रंगमंच पर उसके सजीव रूप में प्रस्तुत करने हेतु पात्र को किसी किरदार की भूमिका में ढालने के लिए वेशभूषा का प्रयोग किया जाता है, वेशभूषा पात्र को एक नवीन रूप प्रदान करती है। उसका बाहरी आवरण होती है,

जिसके माध्यम से पात्र अनेक प्रकार के चरित्रों की भूमिका अदा कर सकता है। मंचीय एवं अभिनय नाटकों में पात्रों की वेशभूषा, साज-सज्जा एवं मंच-सज्जा का भी एक विशिष्ट कोण तथा अपनत्व रहा करता है। वेशभूषा नाटक में चित्रित जीवन और परिवेश को ही निर्देशित नहीं करती, अपितु रंगीन आलोक में नाट्य-प्रदर्शन को प्रभावोत्पादक और सम्मोहक बनाती है। वेशभूषा या रूप सज्जा भी नाटक के अर्थ को चरित्र की दोहरी व्यंजना के रूप में प्रकट करने में सहायता पहुँचाती है। डॉ. नरेद्र मोहन *समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच* में वेशभूषा के विषय में लिखते हैं

> वेशभूषा का चयन और उपयोग, रूप सज्जा में कलात्मक कार्य है, क्योंकि अभिनेता का पूरा व्यक्तित्त्व और नाटक के पात्र उसकी अर्थ व्यंजना, उससे सीधे प्रभावित होती है। (12)

बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में पात्रों की वेशभूषा, रूपसज्जा आदि पर विशेष ध्यान दिया गया है। सबसे पहले हिन्दी नाटकों में वेशभूषा और रूप सज्जा की बात करें, तो ह्रषीकेश सुलभ के द्वारा रचित नाटक *अमली* जो अपनी वस्तुगत संरचना में नि:सन्देह समकालीन समाज का जीवंत परिवेश प्रस्तुत करता है। इनके चरित्र-विधान के द्वारा विसंगतियों से भरे जीवन की दु:खती रगों पर व्यंग्य का स्पर्श देकर हँसना-रूलाना, कहीं अति-नाटकीयता के साथ संवादों का सम्प्रेषण और कहीं बिना संवाद के ही मात्र मुद्राओं-मुखाकृतियों और वेशभूषा से ही गंभीर नाटकीय प्रभाव पैदा करने की नाट्यकला प्रस्तुत करता है, नाटक के आरम्भ में ही इसके संकेत मिलते हैं। उदाहरणार्थ-

> नाट्यदल अन्य पारम्परिक वन्दना का भी प्रयोग कर सकते हैं। सुमिरन समाप्त होते ही सूत्रधार उठता है। वह पारम्परिक वेशभूषा (घाघरानुमा पेशवाज, तंग मोहरी का पजामा या धोती-मिरजई और कमरबन्द, दुपट्टा तथा पगड़ी) में है। वह मंच के अगले भाग में आता है और लोकधुन पर नृत्य के टुकड़े प्रस्तुत करता है। नृत्य के बाद सिर झुकाकर दर्शकों को नमस्कार करता है। (28)

मीरा कांत के द्वारा रचित नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* की बात करें, तो यह नाटक ऐतिहासिक दृष्टि से रचा एक काल्पनिक नाटक है और इस नाटक का केंद्र बिन्दू हुमायूँ है। इस नाटक में नाटककार ने अंकों के शुरू में ही पात्रों की वेशभूषा को बताने

का कुछ प्रयास किया है, ताकि नाटक के बीच में उनके विषय में अलग से जानकारी देने की आवश्यकता न पड़े-

> शाम का समय। मस्जिद के सद्र दरवाजे से लोग नमाज पढ़कर बाहर आ रहे हैं। सिर पर अलग-अलग रंगों व नमूनों की टोपियाँ हैं। अधिकतर कंधों पर चौखाने के बड़े रुमाल हैं। इस हुजूम में प्रौढ़, नागरिक और युवक भी हैं। (67)

अजय शुक्ला के द्वारा रचित नाटक *ताज महल का टेंडर* की बात करें, तो यह नाटक एक व्यंग्य नाटक है। जिसमें इतिहास और वर्तमान का मिश्रित रूप मिलता है। इसमें नाटककार ने अलग-अलग प्रकार की वेशभूषा एवं रूप सज्जा का प्रयोग कर वर्तमान और इतिहास दोनों का मिला-जुला रूप प्रस्तुत कर शाहजहाँ को भी वर्तमान भ्रष्ट सरकारी तन्त्र में पिसते दिखाया है। उसकी वेशभूषा एवं रूप-सज्जा सम्बन्धी निर्देश देते हुए नाटककार कहता है-

> शाहजहाँ की वेशभूषा ऐतिहासिक रूप की हो। नाटक के प्रारंभ में उसकी आयु 40-45 वर्ष की प्रतीत हो। फिर हर नये प्रवेश पर उसकी आयु कुछ वर्ष अधिक होती रहे तथा अंतिम दृश्य में वह पूर्णत: वृद्ध लगे। नाटक के अन्य पात्र वर्तमान काल की वेशभूषा में हों। (09)

इस नाटक में पच्चीस वर्षों में केवल शाहजहाँ ही बूढ़ा होगा, जबकि अन्य पात्रों में कुछ अधिक परिवर्तन नहीं होगा; जो इस बात का संकेत हैं कि वर्तमान परिस्थितियां दिन प्रतिदिन खराब हो रही हैं। उनमें सुधार की संभावना नजर आती हैं, जबकि एक तरफ ताजमहल का सपना लिए शाहजहाँ इस संसार से ही चला जाता है। वैसे भी नाटककार ने ऐतिहासिक वेशभूषा में शाहजहाँ को दिखाकर तथा उसका वर्तमान समस्याओं में दबा दिखाकर एक प्रकार का प्रयोग किया है।

स्वदेश दीपक के द्वारा रचित नाटक *काल कोठरी* की बात करें, तो यह नाटक एक रंगकर्मी के जीवन के संघर्ष को प्रस्तुत करता है, इस नाटक में अलग-अलग पात्रों की अलग-अलग वेशभूषा को प्रस्तुत कर उसकी त्रासदी को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें एक नवीन बुजुर्ग जिसके द्वारा रचित नाटकों का अभी तक मंचित न होने के दर्द को दिखाने का प्रयास किया है। वहीं वसुंधरा को आधुनिक लड़की के रूप में दिखाने के लिए "कटे बाल, मोहक चाल, मीठी आवाज़" (26) होने के संकेत दिए हैं। जबकि इन्टरव्यू लेने वाला आई.ए.एस अफ़सर शर्मा को "बढिया कपड़े पहने"

(24) हुए दिखाया है। इस नाटक की दूसरी विशेषता यह भी है कि इसकी कथा रंगकर्मियों से जुड़ी होने कारण नाटक के रंगमंच और वेशभूषा को भी बड़ी बारीकी से प्रस्तुत करते हैं। जब रजत किसी नाटक की तैयारी कर रहे होते हैं तो वहाँ के एक दृश्य को प्रस्तुत किया जाता है-

> मंच के एक कोने में बड़ा सा आइना कुछ अभिनेता रखते हैं। दीवार से लटके दो-तीन छोटे दर्पण, मेकअप का सामान। मेकअप रूम मंच पर ही बनाना, दिखाना है। अगली शाम नाटक के प्रथम मंचन की शाम में निर्देशक को दृश्य बदलना है। मेकअप रूम में हो रही बातें दर्शको को सुनेंगी। अभिनेता शायद किसी मध्य युगीन समय कपड़े पहने हैं। रजत चोगा डाले बड़े आइने के सामने रखे स्टूल पर बैठा है। लगातार अपना चेहरा देखता है। लेकिन आत्मविश्वास कहीं ब्रश से थोड़ा काला कर दिया, रजत ने उसकी ओर देखा। (52)

नाटककार ने अलग-अलग पात्रों की वेशभूषा में भिन्नता उनके चरित्रों के अनुसार ही रखने का निर्देश दिया है।

यदि पंजाबी नाटकों में वेशभूषा की बात करें, तो हम जानते हैं पात्रों को मंच पर अभिनय द्वारा ही नाटकीय संवेदना को व्यक्त करना होता है। जिसमें वेशभूषा एवं रूप सज्जा अहम भूमिका अदा करती है। किसी भी पात्र के द्वारा धारण किए गए, वस्त्र एवं अपनाई गई रूप-सज्जा की पहली झलक दर्शकों के मन पर उस पात्र का गहरा प्रभाव छोड़ने में महत्त्वपूर्ण होती है। इसी महत्त्व को ध्यान में रखते हुए; चयनित पंजाबी नाटकों में पात्रों की वेशभूषा एवं रूप सज्जा का विशेष ध्यान रखा गया है। सबसे पहले गुरचरन सिंह जसूजा के द्वारा रचित नाटक *परियां* की बात करें, तो इस नाटक की कथा में दफ्तरों में काम-काज करने वाली महिलाओं की त्रासदी को प्रस्तुत किया गया है, इस नाटक में नाटककार ने वेशभूषा, रूपसज्जा का विशेष ध्यान रखा, जिससे हमें पात्र के रंग, रूप आयु, बाह्य व्यक्तित्व आदि का बोध हो जाता है। उदाहरणार्थ-

> मिसिज मेहता पूरी घबराई हुई कमरे में प्रवेश करती है। उनकी आयु 45 साल। मांथे बिंदी, मांग में संदूर चमक रहा है। उसने एक शाल की बुकल मारी हुई है। हाथ में पर्स है। एक पार-दर्शी थैला है, जिसमें ऊन का एक गोला, सलाइयां और कुछ बुना हुआ स्वेटर। (14)

दफ्तरी सभ्यता के परिवेश को ध्यान में रखते हुए, उस दफ्तर के बाबूजी ललित सेठ की वेशभूषा का भी खास ध्यान रखा है- "ललित सेठ कमरे में प्रवेश करता है। उसकी आयु 50-52 साल के करीब है। अमीराना लिबास पहने हुए हैं।" (15) इसी प्रकार नाटककार ने अपने नाटक में वेशभूषा के संकेत दिए हैं, जिसमें हमें उनके बाह्य व्यक्तित्व व रहन-सहन का बोध होता है।

इस प्रकार आत्मजीत के द्वारा रचित नाटक *मैं तां एक सारंगी हां* की बात करें, तो यह आधुनिक नारी के समसामयिक परिवेश एवं युग-बोध वाला नाटक है। अत: इसमें इस प्रकार की योजनाओं के लिए किसी भी प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव नहीं होता। पात्रों की वेशभूषा, मंज-सज्जा, मंचीय-योजना सभी कुछ सहज और साधारण है। नाटककार ने स्वयं इस दिशा में विशेष सतर्कता अपनाई है। उसने नाटक के प्रत्येक अंक के आरंभ में ही उनकी वेशभूषा आदि का भी परिचय दिया। इसके साथ-साथ उसने पात्रों के आंतरिक स्वरूप विधान के लिए, उनके स्वभाव, प्रकृति आदि भी बता दी। इस स्वभाव समूचे नाटक में यत्र-तत्र स्पष्टत: उभरता हुआ दिखायी देता है। रंगमंच की योजना एवं मंच सज्जा के लिए उचित निर्देश दिए हैं। उदाहरणार्थ- "प्रथम दृश्य- गीता, मीना और पाल एक कमरे में बैठी हँस रही हैं। तीनों लगभग 50 वर्ष की उम्र की हैं। तीनों काफी सज-धज कर बैठी हैं"। (15) "दूसरा दृश्य- तीनों सहेलियां साधारण कपड़ो में हैं और स्वैटर और शाल आदि पाए हैं" (22)

कुलदीप सिंह दीप के द्वारा रचित नाटक *तूं मेरा की लग्गदैं* में वेशभूषा की बात करें, तो यह वर्ग भेद को दर्शाता एक गंभीर नाटक है। जिसमें पात्रों की वेशभूषा इस तरफ इशारा करती है। नाटक में एक रिटायर प्रदुमन सिंह की वेशभूषा से उनके नौकरी करने और उम्र के सम्बन्ध में निर्देश मिलते हैं- "ताश खेलते ज्ञान सिंह की नजर एक दाड़ी बंदे, पैंट शर्ट और पगड़ीधारी सुटिड-बुटिड अजनबी बजुर्ग (प्रदुमन सिंह) के ऊपर जाती है" (17) इस नाटक में पात्रों की वेशभूषा के संकेत मिलते हैं उनकी वेशभूषा द्वारा उनके क्रियाकलाप का बोध होता है, यथा- "प्रदुमन सिंह पैंट में से कमीज़ बाहर निकालता है, जैसे कहीं से आया हो"। (31) नाटककार ने इस नाटक में वेशभूषा सम्बन्धी एक नवीन प्रयोग को दिखाया है, एक अफ़सर की वेशभूषा और दूसरी गाँव की सीधी-सादी वेशभूषा। इस प्रकार इसकी बेटी मीत की वेशभूषा को नये रूप में दर्शकों के सामने लाता है- "मीत न तो बहुत सुंदर ही है और न असुन्दर पढ़ी-लिखी है, पर अधयन्न के संस्कार उसके चेहरे पर कम ही दिखायी देते हैं।" (36)

इस तरह नाटककार ने कुछ पात्रों द्वारा ही उनकी रूप सज्जा को इस प्रकार रखवा कर अलग-अलग भूमिकाएँ करवाने के संकेत दिए हैं। ये संकेत निर्देशक के लिए काफी अहम सिद्ध होंगे। इसके साथ ही ये प्रयोगात्मक भी हैं।

बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि प्रस्तुत हिन्दी और पंजाबी नाटकों के नाटककारों ने सर्जनात्मकता में समकालीनता से सीधे साक्षात्कार हैं। इन नाटककारों ने पात्रों की वेशभूषा एवं रूप सज्जा सम्बन्धी पर्याप्त संकेत दिए हैं। इन नाटककारों ने पात्रों की आयु, वेशभूषा एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी निर्देश दिए हैं। इन नाटकों के पात्रों की वेश-रचना इंगित करने के साथ-साथ उनकी मानसिकता अवस्था व व्यक्तित्त्व को भी रेखांकित किया है, जिसका नाट्य-निर्देशक एवं अभिनेताओं के लिए अत्याधिक महत्त्व है। इन नाटकों के पात्रों की भूमिका वेशभूषा इनके कथानक पर भी प्रभाव डालती है तथा रोचक बनाती है। अत: यह भी कहा जा सकता है कि आधुनिक परिवेश में यह केवल व्यावसायिक कोटि के नाटक नहीं हैं, बल्कि इसका युगीन दृष्टि से साहित्यिक मूल्य में भी असंदिग्ध है। विकल गौतम *हिन्दी नाटक रंग शिल्प दर्शन* में लिखते हैं-

> इस प्रकार नाटक का सम्बन्ध रंग भवन, मंच, रंग, शिल्प, रंग सज्जा तथा दो मूलभूत तत्वों से है। वे तत्व हैं- अभिनेता और दर्शक। प्रत्येक नाटककार को नाट्य रचना के रूप शिल्प, उसके प्रस्तुतिकरण के व्यावहारिक पक्ष तथा विभिन्न प्रकारों एवं दर्शकों के सौंदर्य बोध और रूचि वैविध्य का ज्ञान होना चाहिए। जो वर्तमान में दिखायी दे रहा है। (35)

निष्कर्ष:-

2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के बदलते परिवेश की दृष्टि से चर्चा करने के बाद तुलनात्मक निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि दोनों भाषाओं के नाटक मंच सज्जा एवं दृश्यबंध, प्रकाश योजना, ध्वनि एवं संगीत और वेशभूषा एवं रूप सज्जा की दृष्टि से सफल हैं। इन नाटकों को देखते हुए हम यह भी कह सकते हैं कि इनके नाटककार, सफल नाटककार तो हैं ही साथ-साथ सूत्रधार व कुशल रंगकर्मी भी हैं। दोनों भाषाओं के नाटकों का मंचन अनेक-अनेक स्थानों पर हुआ है, दोनों भाषाओं के नाटककारों ने नाटकों को लिखा भी तथा

लोक और बदलते परिवेश के अनुसार विभिन्न शैलियों को अपनाकर अपने नाटकों में नवीन प्रयोग किए तथा कुछ कमियां होने के बावजूद भी नाटकों की अनेक रंगमंचीय संभावनाओं को उजागर भी किया है।

दोनों भाषाओं की नाट्य कृतियों में कथ्य, शिल्प, परिवेश तथा संवेदना के विविध आयाम दृष्टिगत होते हैं, इन नाटकों के रचनाकारों ने नाट्य-शिल्पियों की भाँती केवल नाटकों की सृष्टि ही नहीं की अपितु अभिनय और रंगमंचीय सम्बन्धी अनेक नवीन प्रयोग कर; उन्हें सार्थकता भी प्रदान की है और इन नाटकों पर सहजता से अभिनीत किए जा सकते हैं।

6.4.1 चयनित हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में शैलियाँ

शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है; जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। डॉ. महेश प्रसाद जायसबाल *आधुनिक भाषा विज्ञान का इतिहास* में लिखते हैं-

> पिछले बीस, पचीस वर्षों से शैली अध्ययन के क्षेत्र में दो पक्ष उभर कर आए हैं। पहला व्यक्तिगत कथ्य शैली, जिसका सम्बन्ध लिखित अथवा साहित्यिक भाषा से होता है एवं वह भाषा के कलात्मक तथा परिनिष्ठ प्रयोग के लिए उत्तरदायी होती है। दूसरा सामान्यजन की बोली जाने वाली भाषा की कथ्य शैली, जिसका सम्बन्ध अलिखित, सामाजिक व्यवहार, अकृत्रिम और सामयिक प्रयोग की भाषा से होता है। (201)

इस दृष्टि से देखने पर यह जाना पड़ेंगा कि शैली न तो केवल अनुकूल विषयवस्तु का धर्म है और न कहने के तरीके का ही, शैली की आत्मा से मुख्यत: वे सम्बन्ध हैं, जिनके ढाँचे में अनुभूत विषयवस्तु को समाहित या व्यवस्थित किया जाता है। विषयवस्तु में उक्त सम्बन्ध की स्थापना रस की उत्पत्ति के लिए की जाती है। डॉ. सुरेश कुमार *शैली विज्ञान* में नाटकों की शैलियों के विषय में लिखते हैं-

> नाटक के अंतर्गत ऐतिहासिक नाटकों की शैली, मनोविश्लेणवादी नाटकों की शैली आदि भेद हो सकते हैं; तथा और नीचे उतरें तो वैयक्तिक चरित्रों की शैली, प्रतिनिधि चरित्रों की शैली, सुघटित कथानक की शैली, शिथिल कथानक

की शैली आदि का अध्ययन कर सकते हैं। यह एक सोपानक्रम है; जिसमें हर सोपान की उपशैली का अपेक्षाकृत अकेले अध्ययन हो सकता है, यद्यपि यह तो स्पष्ट है कि सिद्धान्त रूप से प्रत्येक सोपान को उससे उच्चतर सोपान के अंतर्गत देखना ही उचित है। (51)

शैली के द्वारा प्रत्येक नाटककार अपने नाटक को नया रूप प्रदान करता है। इसी कारण शैली को लेखक के व्यक्तित्व का एक अंग माना गया है। चयनित नाटकों में नाटककारों ने विविध शैलियों का प्रयोग किया है। जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं-

हिन्दी नाटक:-	**विभिन्न शैलियाँ**
मोहम्मद जलालुद्दीन	चित्रात्मक शैली (45) मनोविश्लेषणात्मक शैली (58) वर्णात्मक शैली (19)
ताजमहल का टेंडर	हास्य-व्यंग्य शैली (71) मिथक शैली (18) कथात्मक शैली (31)
सिंहासन खाली है	व्यंग्यात्मक शैली (53) प्रतीकात्मक शैली (15) वर्णात्मक शैली (43)
काल कोठरी	कथात्मक शैली (36) डायरी शैली (05) प्रतीकात्मक शैली (08)
जिस लाहौर नइ देख्या ओं जम्याइ नइ	मिथक शैली (15) कथात्मक शैली (50) संवादात्मक शैली (25)
आज की पुकार	कथात्मक शैली (28) वर्णात्मक शैली (28) मनोविश्लेषणात्मक शैली (18)
अमली	डायरी शैली (37) वर्णात्मक शैली (87) चित्रात्मक शैली (56)
धारा एक सौ चवालीस	कथात्मक शैली (55) मनोविश्लेषणात्मक शैली (15) प्रतीकात्मक शैली (23)
सुकुबाई	प्रतीकात्मक शैली (21) मनोविश्लेषणात्मक शैली (44) कथात्मक शैली (20)
जी जैसी आपकी मर्जी	व्यंग्यात्मक शैली (37) प्रतीकात्मक शैली (12)

	मनोविश्लेषणात्मक शैली (16)
चार यारों की यार	व्यंग्यात्मक शैली (74) प्रश्नात्मक शैली (24) चित्रात्मक शैली (94)
आओ ! तनिक प्रेम करें	पत्रात्मक शैली (12) कथात्मक शैली (35) प्रतीकात्मक शैली (65)
कहते है जिसको प्यार	व्यंग्यात्मक शैली (52) मनोविश्लेषणात्मक शैली (18) प्रतीकात्मक शैली (14)
हुमा को उड़ जाने दो	मिथक शैली (23) फ्लैशबैक शैली (46) मनोविश्लेषणात्मक शैली (36)
गगन दमामा बाज्यो	मनोविश्लेषणात्मक शैली (45) चित्रात्मक शैली (23) मिथक शैली (11)

पंजाबी नाटक:-	**विभिन्न शैलियाँ**
तूं मेरा की लग्गदैं	मनोविश्लेषणात्मक शैली (23) व्यंग्यात्मक शैली (19) काव्य शैली (45)
सौदागर	फ्लैशबैक शैली (84) चित्रात्मक शैली (83) मनोविश्लेषणात्मक शैली (103)
एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?	काव्य शैली (35) कथात्मक शैली (29) वर्णात्मक शैली (64)
सुपर वीज़ा	चित्रात्मक शैली (35) भावात्मक शैली (13) कथात्मक शैली (39)
कथा रिड़दे परिंदे दी	प्रश्नात्मक शैली (22) भावात्मक शैली (39) फ्लैशबैक शैली (46) व्यंग्यात्मक शैली (56)
कंधा रेत दियां	व्यंग्यात्मक शैली (23) वर्णात्मक शैली (47) मनोविश्लेषणात्मक शैली (64)
कल्लर	डायरी शैली (07) पत्रात्मक शैली (35) कथात्मक शैली (63)
छां विहूणे	चित्रात्मक शैली (39) कथात्मक शैली (58) भावात्मक शैली (33)
पायदान	काव्य शैली (52) भावात्मक शैली (36) मनोविश्लेषणात्मक शैली (38) प्रतीकात्मक शैली (22)

लोक मना दा राजा	मिथक शैली (13) मनोविश्लेषणात्मक शैली (56) फ्लैशबैक शैली (39)
चन्दन दे ओहले	कथात्मक शैली (28) प्रतीकात्मक शैली (67) काव्य शैली (65)
निक्के सूरजां दी लड़ाई	पत्रात्मक शैली (55) वर्णात्मक शैली (23) भावात्मक शैली (58)
मैं ता एक सारंगी हाँ	प्रश्नात्मक शैली (67) भावात्मक शैली (76) कथात्मक शैली (83) प्रतीकात्मक शैली (37)
परियां	व्यंग्यात्मक शैली (53) कथात्मक शैली (27) मनोविश्लेषणात्मक शैली (88)
प्रगटियों खालसा	मिथक शैली (13) भावात्मक शैली (58) व्यंग्यात्मक शैली (42)

6.5.1 हिन्दी और पंजाबी के नाटकों के शिल्प एवं भाषा पक्ष के तुलनात्मक बिंदु

हिन्दी और पंजाबी का गत दो दशकों का इतिहास यदि हम देखें तो नाटक के क्षेत्र में किये गये नये-नये प्रयोग तथा शैलियों से हमारा परिचय होता है। इन नयी नाट्यशैलियों ने भारतीय रंगमंच को निश्चित रूप से समृद्ध किया है। प्रस्तुत शोध में हिन्दी और पंजाबी नाटकों की जिन नाट्यशैलियों ने जो योगदान दिया है, उसकी चर्चा की गयी है। वैसे तो प्रत्येक काल में नाटकों पर नये-नये प्रयोग होते हैं। प्रत्येक नाटककार अपने काल में लिखा गया, अपने नाटक का प्रयोग नया ही मानता है, परन्तु हर नये नाटक को नवनाट्य अथवा प्रायोगिक नाट्य नहीं कहा जा सकता। नाटक मूलत: दृश्य-श्रव्य विधा है। अत: नाटक के संदर्भ में विचार करते समय शिल्प एवं भाषा पक्ष में विचार करते समय इन दोनों माध्यमों का नाटक में ध्यान रखा गया है अथवा नहीं, ये देखना आवश्यक है, जिसका प्रस्तुत अध्याय में अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के बाद हिन्दी और पंजाबी नाटकों में शिल्प एवं भाषा पक्ष के कुछ तुलनात्मक बिंदु प्रस्तुत किए हैं जो निम्नलिखित हैं:-

1. चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में पात्रानुकूल एवं वातावरण के अनुकूल भाषा योजना, दोनों भाषाओं के नाटकों की समान विशेषता है, जो दोनों भाषाओं के नाटकों में दिखायी देती है। इसका सोदाहरण विवेचन किया गया है।

2. प्रस्तुत नाटकों के माध्यम से हम कह सकते हैं कि हिन्दी विश्व स्तर पर बहुत ज्यादा बोले और समझे जानी वाली भाषा है, हिन्दी का प्रादेशिक वैविध्य एवं नाटककारों की प्रादेशिक भिन्न पृष्ठभूमि के कारण शब्द भंडार, बोली भाषा के शब्दों की बहुलता हिन्दी नाटकों में पायी जाती है। पंजाबी नाटकों का प्रादेशिक दायरा सीमित होने के कारण उसमें शायद उतना शब्द वैविध्य नहीं दिखायी देता।

3. हिन्दी और पंजाबी नाटकों में शैली की दृष्टि से विचार करें, तो पंजाबी की अपेक्षा हिन्दी नाटकों में शैली की अनेकता भी अधिक है। पूर्ण नाटकों में डायरी शैली, फ्लैश बैक, गीत, व्यंग्य, और नृत्य नाटक आदि हैं।

4. प्रस्तुत नाटकों में संगीत नाटक पंजाबी की विशेषता है। हिन्दी में यह नहीं है। हालाँकि हिन्दी नाटकों में यथास्थान गीत, संगीत, काव्य का प्रयोग हिन्दी में भी दिखायी देता है। लेकिन वह पंजाबी के संगीत शैली से अलग हैं।

5. हिन्दी में सुशील कुमार सिंह ने प्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश के नाटकों की नायिकाओं पर केन्द्रित एक नाट्यलेख है, जिसकी प्रस्तुत शोध में बड़ी प्रभावशाली प्रस्तुतियाँ भी हुई हैं।

6. पंजाबी नाटककारों ने हिन्दी नाटककारों की भाँति ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित घटना प्रसंगों पर नाट्य लेखन किया हुआ है। सतीश कुमार वर्मा ने इतिहास के चर्चित चरित्रों पर पक्ष-विपक्ष को प्रस्तुत करता नाटक *लोक मना राजा* की रचना की है और हिन्दी में मीरा कांत के द्वारा रचित नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* नाटक का स्रोत मुगलिया सल्तनत के आरम्भिक दौर के बाबर और अकबर के बीच का इतिहास है। इन नाटकों की कथा शैली ऐतिहासिक होने के बावजूद भी आधुनिक समस्याओं के यथार्थ को प्रस्तुत करती है।

7. चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटककारों ने लोकनाट्य रूपों से विभिन्न प्रकार के प्रभाव ग्रहण कर अपने नाटकों में नये प्रयोगात्मक प्रवृत्ति का विकास किया है और नये नाट्य रूपों की संभावनाओं से साक्षात्कार कर लोकजीवन से जुड़ने का प्रयास भी किया है।

8. यहाँ दोनों भाषाओं की कृतियों के लेखन का उनके रचनाओं का उद्देश्य हमें एक ही दिखायी देता है और वह है 'अपनी रचना को आम आदमी तक पहुँचाना'। इसके लिए कथ्य एवं वस्तु के साथ-साथ शिल्प भी लोकधर्मी हैं। लोकनाट्य शैली खासकर अंतिम

आदमी तक पहुँचने वाली शैली है, इसलिए दोनों भाषाओं के नाटकों में इस लोकनाट्य शैली को अपनाकर दोनों भाषाओं के नाटककारों ने अपनी प्रयोगशील दृष्टि का परिचय दिया है।

निष्कर्ष

चयनित हिन्दी और पंजाबी के नाट्य-साहित्य का भाषा एवं संवादों की दृष्टि से अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इनके नाटकों की भाषा युग परिवेश के आधार पर रची गई है। चयनित नाटकों में सरल शैली और शब्दों के माध्यम से इतिहास में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं को रूपाकार किया गया है, इसलिए आधुनिक बोलचाल के प्रचलित शब्दों के प्रयोग से वह बचने का प्रयास नहीं करते, बल्कि वह अतीतगत परिवेश की रक्षा करते हुए ऐसी शब्दावली का प्रयोग करते हैं, जिससे भावों को गति देने की गहरी सामर्थ्य हो और उनके नाटकों में भाषा का यही स्वर उतरकर सामने आता है।

चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों की भाषा पात्रों एवं कथानक के अनुकूल तो है ही; साथ ही उसमें लयात्मकता, प्रवाहात्मकता, सहजता, पात्रानुकूलता, प्रसंगानुकूलता, व्यंग्यात्मक, यथार्थता, स्वाभाविकता, काव्यात्मकता व संगीतात्मकता आदि गुणों के भी दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त इनके नाटकों में अंग्रेजी, उर्दू-फारसी तथा मुहावरों व लोकोक्तियों का प्रयोग भी प्रचूर मात्रा में हुआ है, जो चयनित नाटकों की भाषा के सहज प्रवाह को अवरुद्ध नहीं करते बल्कि उनके सौंदर्य की अभिवृद्धि करते हैं। चयनित नाटकों में भाषा एवं संवादों का प्रयोग हुआ है, वह प्रशंसनीय एवं सराहनीय है क्योंकि इन आधुनिक हिन्दी और पंजाबी नाटकों के लिए लिखना और देखना, आलेख और रंगकर्म एक ही सिक्के के दो पहलू रहे हैं।

सप्तम अध्याय

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: व्यावहारिक पक्ष

समस्या और समस्याओं के निवारण का सम्बन्ध मानव के अस्तित्व के साथ जुड़ा है। शायद ही इतिहास में ऐसा कोई समय और समाज हो, जो अपराधों और समस्याओं से मुक्त रहा हो। अपराध को लेकर समाज में अनेक भ्रांतियां बनी रहती हैं। यह स्वयं को विकास में छिपाने की कोशिश करता रहता है। अपराध के स्वरूप, प्रसार एवं प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में दुनिया के विभिन्न राष्ट्र इसके निवारण के लिए प्रयास करते देखें जा सकते हैं, लेकिन इस विषय में एक बात अवश्य कहीं जा सकती है कि समस्याओं की अधिकाधिक मात्रा देश के विकास को प्रभावित करती है। यह समाज के सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। हमारे इस शोध के विषय और उद्देश्य के अनुसार हमने 2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित नाटकों के सन्दर्भ में सांकेतिक समस्याओं के कारकों को पहले पाँच अध्यायों में प्रस्तुत किया। इन सांकेतिक कारकों को हिन्दी और पंजाबी दोनों भाषाओं के चयनित नाटकों और बदलते परिवेश को प्रस्तुत करने के लिए, इन दोनों भाषाओं के अतीत के नाटकों के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी किया। इस अध्याय में हमने प्रस्तुत शोध के अंतिम उद्देश्य 'बदलते परिवेश के संदर्भ में सांकेतिक कारकों के निवारक बिन्दुओं का निर्देश करना' की पूर्ति की है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के अध्ययन के बाद सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक तथ्यों को निकाला था, उसका हमने सामाजिक स्तर पर एक व्यावहारिक सर्वेक्षण किया है, जिससे इन तथ्यों के असल एवं विषय विशेषज्ञ पात्रों से बातचीत की। जिससे इस बात का अंदाजा लगाया जा सके कि यह पात्र वास्तव में इस दशा का जीवन व्यतीत कर रहे हैं और इस सर्वेक्षण के द्वारा ही हमने इन समस्याओं का संताप भोग रहे एवं इन समस्याओं का ज्ञान रखने वाले अर्थात् विशेषज्ञ पात्रों के द्वारा पीड़ित समस्याओं के सांकेतिक कारकों को बताते हुए, निवारक बिन्दुओं को रेखांकित भी किया है।

7.1.1.1 बदलते परिवेश और तुलनात्मक अध्ययन के संदर्भ में सांकेतिक कारकों के निवारक बिन्दुओं का व्यावहारिक अध्ययन

वर्तमान समय में बदलता परिवेश और तुलनात्मक अध्ययन, दोनों ही एक स्वत्रंत विषय के रूप में विकसित हो चुके हैं। यदि बदलते परिवेश की बात करें, तो इक्कीसवीं शताब्दी ने जो नयी चेतना प्रदान की है, उसमें आस्था व आशा का स्वर प्रमुख रहा है। जैसे-जैसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक परिवेश बदला है, वैसे ही उसमें सांस लेने वाले व्यक्ति भी बदल गये। आज से कुछ दशक पहले जो भी समस्याएँ थी, वे बाद में एक नये रूप में उभरकर सामने आयी हैं। इसका प्रमुख कारण लोगों के अनुभवों की श्रृंखला में नये अनुभवों का जुड़ना है। वर्तमान समय में बदलते परिवेश से रीति-रिवाज और रागात्मक सम्बन्ध भी प्रभावित हुए हैं, साथ ही प्राचीन परम्पराओं में भी बदलाव आया है। शिक्षा के प्रसार से आम आदमी में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में जागरूकता देखी गई है। आज समाज के दबले-कुचले लोग भी जाग्रत हुए हैं और अपने अधिकारों के प्रति सुचेत भी हो रहे हैं। बदलते परिवेश में हम देख रहे हैं कि नयी और पुराणी पीढ़ी के बीच भी संघर्ष है। बदलते परिवेश में प्रत्येक क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव तो देखने मिलते हैं, लेकिन आज के व्यक्ति में निराशा, कुंठा और बेचैनी भी बड़ी है।

इस प्रकार यदि हम तुलनात्मक अध्ययन की बात करें, तो भारत जैसे बहुभाषिक देश में एक-दूसरे की संस्कृति व आचार-विचार को समझने का एक प्रमुख माध्यम तुलनात्मक अध्ययन है। यह किसी भी भाषा तथा उसके साहित्य को समृद्ध तो करता ही है, साथ ही साथ सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के विकास का महत्त्वपूर्ण साधन भी है तथा किसी भाषा के साहित्य के अकादमिक विकास में सहयोग भी करता है। वर्तमान समय में कई देशी तथा विदेशी भाषा के साहित्य का अनुवाद विशाल पैमाने पर हो रहा है तथा ये साहित्य एक-दूसरे को समृद्ध और प्रभावित भी कर रहे हैं। पर अभी भी इस प्रक्रिया में कई चुनौतियाँ हमारे सामने हैं, जिसके अध्ययन की आवश्यकता है, इसलिए बदलते परिवेश और तुलनात्मक अध्ययन पर, कुछ आलोचकों के साथ बातचीत कर, इसका व्यावहारिक अध्ययन किया गया, जो इस प्रकार है-

तुलनात्मक अध्ययन पर व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने डॉ. जाहिदुल दीवान से बातचीत की। डॉ. जाहिदुल दीवान ने जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की और 2019 से भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICSSR) में पोस्ट डॉक्टरेल फेलोशिप हेतु चयनित है। डॉ. जाहिदुल दीवान शोधसंवाद- रिसर्च फोरम के संस्थापक होने के साथ-साथ एकेडमिक जगत (द्विभाषिक मासिक पत्रिका) के संस्थापक एवं संचालक के रूप में भी काम कर रहे हैं। आपने प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के लिए अनुवाद का कार्य भी किया। प्रकाशित कृतियाँ: *अनुवाद और तुलनात्मक अध्ययन: एक भारतीय दृष्टि, नागार्जुन दिल्ली में, इक्कीसवीं सदी में मध्यकाल का पुर्नपाठ, प्रवासी साहित्य और भारतीय संस्कृति, लोकपरंपरा और भारतीय संस्कृति, हिन्दी प्रवासी साहित्य में स्वदेश, साहित्यिक विमर्श एवं नई सांस्कृतिक चुनौतियां, देश विदेश में भारतीय संस्कृति* आदि हैं। डॉ. जाहिदुल दीवान हिन्दी साहित्य से बड़ी गहराई से जुड़े हुए हैं, इसीलिए मैंने उनसे निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न: एक अच्छे तुलनात्मक अध्ययन के आधार बिंदु क्या होने चाहिएं ?

उत्तर- किसी भी तुलनात्मक अध्ययन का मूल आधार दो क्षेत्र होते हैं। इसमें दो अलग-अलग भौगोलिक दृष्टि से भाषाएँ हो सकती हैं, दो कवियों या दो से अधिक कवियों, नाटककारों, कहानियों या अन्य विद्याओं का साहित्य भी हो सकता है, या एक ही लेखक की दो रचनाएँ, एक ही भाषा के दो काल और दो धाराएँ, या अलग-अलग विषयवस्तु भी इसके आधार बिंदु हो सकते हैं।

प्रश्न: आधुनिक साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता ?

उत्तर- इसमें कोई दो राय नहीं है कि तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता पहले की अपेक्षा आज बहुत बढ़ गई है और निरंतर बढ़ भी रही है। साहित्य और संस्कृति के निरंतर विकास के लिए तुलनात्मक अध्ययन बहुत जरूरी है। आज हम देख रहे हैं कि तुलनात्मक अध्ययन से ही अलग-अलग देशों, राज्यों, प्रान्तों आदि में साहित्य, कला और संस्कृति को व्यापक स्तर पर समझने का माध्यम बनाया जा रहा है। दूसरे शब्दों के कहें तो, भारतीय साहित्य की बहुलता को समझने के लिए तुलनात्मक साहित्य आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है क्योंकि वह विभिन्न भाषाओं के बीच सांस्कृतिक संवाद की संभावना को उजागर करते हुए एकसूत्रता का संधान करता है, जिससे भारतीयता एवं भारतीय साहित्य की पहचान बन रही है।

डॉ. जाहिदुल दीवान

असिस्टेंट प्रोफेसर, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली

मो. 7678245992

इसी प्रकार तुलनात्मक अध्ययन पर ही व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने प्रियंका शर्मा से बातचीत की। प्रियंका शर्मा ने बनारस विश्वविद्यालय से अपनी शोध को पूरा किया। स्त्री विमर्श के क्षेत्र में खासतौर से प्रतिष्ठित कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और आलोचनाओं के प्रति विशेष रुझान है। आपकी कुछ प्रसिद्ध कृतियाँ: *प्रभाकर माचवे का कथा साहित्य, धर्मवीर भारती की कहानियों एवं गीति-नाट्य, कथाचयन, भक्तिरसामृत, इक्कीसवीं सदी में मध्यकाल का पुनर्पाठ, भारतीय लोक-जीवन: एक अध्ययन* आदि हैं। प्रियंका शर्मा हिन्दी साहित्य से बड़ी गहराई से जुड़े हुए हैं, इसीलिए मैंने उनसे निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न: तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद की क्या महत्ता है?

उत्तर- तुलनात्मक साहित्य में तुलनाकार जब तुलना करता है तब उसे दोनों साहित्यिक भाषाओं का ज्ञान होने के साथ-साथ अनुवादक की भूमिका भी निभानी पड़ती है। तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद संप्रेषण का सशक्त साधन सिद्ध होता है।

प्रश्न: सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन की क्या महत्ता है?

उत्तर- तुलनात्मक अध्ययन में ऐसी विशेषता उजागर होती है, जो सामान्य अध्ययन से संभव नहीं हो सकती। तुलनात्मक अध्ययन पूर्वग्रहों से मुक्त होकर देश के विभिन्न रूपों को परस्पर निकट लाने में प्रोत्साहन करता है। साहित्य की केवल भाषा एवं व्याकरणिक स्तर पर तुलना नहीं होती, बल्कि अन्य स्तरों पर भी तुलना होती है। कोई भी लेखक अपनी भाषा में साहित्य का अच्छा चित्र प्रस्तुत करता है तथा कल्पना से संस्कृति में प्रवेश करता है। इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन से दृष्टिकोण में विस्तार होता है और संकुचित मनोवृत्ति से मुक्ति मिलती है।

प्रियंका शर्मा

मो- 9915708990

बदलते परिवेश पर व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने डॉ. राजेश कुमार गर्ग से बातचीत की। डॉ. राजेश कुमार गर्ग इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर हैं, डॉ. राजेश कुमार गर्ग जी ने हिन्दी साहित्य के निर्माण में अपना काफी योगदान दिया है। गर्ग जी हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका अनुसंधान के सम्पादक भी हैं। डॉ. राजेश कुमार गर्ग हिन्दी साहित्य से बड़ी गहराई से जुड़े हुए हैं, इसीलिए मैंने उनसे निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न: बदलता परिवेश सामाजिक सम्बन्धों को कैसे प्रभावित करता है?

उत्तर- बदलता परिवेश सबसे ज्यादा सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित करता है, बदलते परिवेश की प्रक्रिया में समाज की संरचना एवं कार्यप्रणाली का नया जन्म होता है। इसके अंतर्गत मूलत:प्रस्थिति, वर्ग, स्तर तथा व्यवहार के अनेकानेक प्रतिमान बनते बिगड़ते रहते हैं।

प्रश्न: बदलते परिवेश में साहित्य का समाज पर प्रभाव किस प्रकार का है।

उत्तर- परिवेश चाहे कैसा भी क्यों न हो साहित्य सदैव समाज का दर्पण ही रहेगा, मानव सभ्यता की विकास यात्रा से हमें ऐसे बहुत से साहित्यिक प्रतीक देखने को मिलते हैं, जो उस समय के सामाजिक परिवेश को दर्शाते हैं, इसलिए साहित्य और समाज का गहरा सम्बन्ध होता है, जो आज भी बरकरार है। साहित्य के अलावा समाज की कल्पना करना व्यर्थ लगता है क्योंकि समाज की अभिव्यक्ति तो साहित्य है।

डॉ. राजेश कुमार गर्ग, एसोसिएट प्रोफेसर

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

मो. 94156-13194

इसी प्रकार बदलते परिवेश पर व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने डॉ. मनीष कुमार से बातचीत की। डॉ. मनीष कुमार ने विश्वभारती शांतिनिकेतन से पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की और अब हिन्दी विश्वविद्यालय के कॉलेज में प्रोफेसर हैं। डॉ. मनीष कुमार की नाटक के क्षेत्र में विशेष उपस्थिति है, नाटकों के साथ-साथ इनकी काफी आलोचनाएँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें प्रसिद्ध:- *आदिवासी*

रंगमंच, दलित रंगमंच, स्त्री रंगमंच, महामारी काल, दलित विमर्श आदि प्रसिद्ध हैं। डॉ. मनीष कुमार हिन्दी साहित्य से बड़ी गहराई से जुड़े हुए हैं, इसीलिए मैंने उनसे निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न: बदलते परिवेश में संस्कारों में बदलाव क्यों हो रहा है ?

उत्तर- बदलते परिवेश में हम देखते हैं कि हमारे समाज का रहन-सहन बहुत बदल रहा है, पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव ने हमारे समाज को बहुत प्रभावित किया है। जैसे हम जानते हैं कि बच्चों के प्रारंभिक गुरु माता-पिता और प्रारंभिक पाठशाला घर होती है, लेकिन आज के ज्यादा माता-पिता कामकाजी हैं, इसलिए ज्यादा व्यस्त होने के कारण बच्चों को स्तरीय ज्ञान नहीं मिल पाता, इस कारण वह अपने संस्कारों की शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते और इस कारण ही बदलाव देखने को मिल रहा है।

प्रश्न: बदलते परिवेश में भारतीय परम्पराओं में बदलाव क्यों हो रहा है।

उत्तर- जैसे हम जानते हैं कि भारतीय समाज में परंपराएं मानव हित के लिए बनाई गईं थी, लेकिन बदलते समय के साथ-साथ कुछ परम्पराओं में कट्टरता बहुत ज्यादा आ गई थी, आधुनिक समाज में ऐसी किसी भी परंपरा के लिए कोई स्थान नहीं जो रूढ़ हों, समय बदलने के साथ-साथ जड़ हो चुकी ऐसी परंपराओं और रीति-रिवाजों में बदलाव आना निश्चित ही था।

डॉ. मनीष कुमार

मो- 97113-67633

मेल. Manishmahour90@.com

7.1.1.2 बदलते परिवेश के संदर्भ में सांकेतिक सामाजिक कारकों के निवारक बिन्दुओं का व्यावहारिक अध्ययन

मानव समाज के इतिहास को यदि गहराई से देखा जाए, तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह विविध प्रकार की समस्याओं एवं चुनौतियों का ही इतिहास रहा है। प्रत्येक सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित, विकसित और विकासशील समाज में कुछ-न-कुछ सामाजिक समस्याएं सदैव विद्यमान रही हैं और आज भी हैं, इन्हीं समस्याओं को सामाजिक विघटन का प्रमुख कारण माना जाता है। सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में सामाजिक विचारकों का ध्यान सहज रूप से, इसलिए आकर्षित हुआ है क्योंकि ये सामाजिक जीवन के अविभाज्य अंग हैं। मानव समाज न तो कभी सामाजिक समस्याओं से पूर्ण मुक्त रहा है और न ही रहने की सम्भावना निकट भविष्य में नज़र आती है, परन्तु इतना तो निश्चित है कि आधुनिक समय विद्यमान साहित्य और संचार की क्रांति तथा शिक्षा के प्रति लोगों की जागरूकता के फलस्वरूप, मनुष्य इन समस्याओं के प्रति संवेदनशील एवं सहज हो गया है। किसी भी समाज में स्थायित्व एवं निरंतरता हेतु, इन समस्याओं का समाधान किया जाना आवश्यक माना जाता है। इसलिए चयनित हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में अंकित समकालीन समस्या का अर्थ, प्रकृति, प्रकार, कारण तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान के उपायों के साथ-साथ, इनके अध्ययन की विधियों एवं परिप्रेक्ष्यों को भी समझने का प्रयास किया है।

सामाजिक समस्याओं के निवारण के लिए, यह अत्यावश्यक है कि इनकी प्रकृति को समझा जाए एवं परिवेश की व्याख्या की जाए। भिन्न-भिन्न सामाजिक समस्याओं के मध्य पाए जाने वाले परस्पर सम्बन्धों का विश्लेषण एवं अनुशीलन कर, इन समस्याओं का व्यावहारिक अध्ययन कर, उसके निवारण के लिए आम लोगों की नयी सोच को प्रस्तुत किया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, हमने चयनित नाटकों के तथ्यों के आधार पर जिन सामाजिक समस्याओं के कारकों को रेखांकित किया था, वैसा पात्र अथवा विशेषज्ञ समाज में ढूंढ कर, उससे चयनित नाटकों की समस्याओं को साँझा कर, एक सांकेतिक निवारकों की प्रश्नावली तैयार की है, जिससे इन समस्याओं के निवारक बिन्दुओं को नोट किया गया, चूँकि भविष्य में हम ऐसी समस्याओं से सचेत रह सके।

7.1.1.2.1 संयुक्त परिवार प्रणाली की परम्परा और बदलता परिवेश के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

आधुनिक युग में औद्योगीकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकरण इत्यादि, परिवर्तन की प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार की संरचना में भी अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों से संयुक्त परिवारों में, परिवार के मुखी की सर्वोच्च स्थिति को झंकझोर कर रख दिया है। नवीन पीढ़ी, मुखियों की निरंकुश सत्ता में नहीं रहना चाहती। इसलिए हमारे समाज में संयुक्त परिवार की परम्परा बदल रही है। प्रस्तुत शोध में चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में भी इस प्रकार की समस्या को देखा गया है। जिसमें हिन्दी नाटक *जी, जैसी आपकी मर्ज़ी...* और *आओ ! तनिक प्रेम करें* एवं पंजाबी नाटक *तूं मेरा की लग्गदैं* और *चंदन दे ओहले* हैं।

हिन्दी नाटक *जी जैसे आपकी मर्ज़ी...* की कथा में एक परिवार के बड़े सदस्य लड़के-लड़की में इतना अंतर देखते हैं कि लड़कियों का उस घर में दम घुटने लग जाता है। संयुक्त परिवार का माहौल इस प्रकार का बना दिया जाता है कि सिर्फ मर्द लोग ही बोल सकते हैं, इसके अलावा यदि बेटियाँ और उनकी माताएँ अपने विचारों का कुछ प्रगटावा करती हैं, तो उन्हें खूब पीटा जाता है। इस नाटक की बबली पात्र इस प्रकार के संयुक्त परिवार पर प्रश्न चिन्ह लगाती हुई कहती है कि ऐसे माहौल में हम कैसे रहें। (16) नाटक *आओ ! तनिक प्रेम करें* में जीवन की जद्दोजहद में फँसे एक व्यक्ति को साठ साल की उम्र में यह ख्याल आता है कि उसने जीवन-भर बगैर पारिवारिक प्रेम से व्यतीत किए हैं। रिटायर होने के उपरांत वह चाहता है कि शादी करे और अपने परिवार के साथ ही वक्त बिताए। (12)

ऐसे ही यदि चयनित पंजाबी नाटक *तूं मेरा की लग्गदैं* की कथा का वर्णन करें, तो इसमें एक रिटायर प्रदुमन सिंह, सारी जिन्दगी घर से बाहर नौकरी करने में गुजार देता है। जब वापस आकर अपने पुराने संयुक्त परिवार की तलाश करता है, तो वह देखता है कि उसकी पत्नी और बच्चें, सब उसके कहने से बाहर हैं। घर के सभी सदस्यों के अपने-अपने विचार हैं, जिनको प्रदुमन सिंह चाह कर भी संयुक्त नहीं कर सकता। (25-26) नाटक *चंदन दे ओहले* में हम एक ऐसे परिवार को देखते हैं, जो अपनी बनावटी शानो-शौकत को बढ़ाने के लिए अपने ही परिवार के सदस्यों की बलि दे देते हैं। (66)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने वृद्ध रिटायर व्यक्ति हरबंस सिंह से बातचीत की। हरबंस सिंह काफी वृद्ध हैं, उन्होंने फ़ूड सप्लाई इंस्पेक्टर की नौकरी की और पिछले आठ वर्ष से अपने परिवार के साथ रह रहें हैं। हरबंस सिंह को जिन्दगी का काफी तजुर्बा है इस कारण मैंने उनसे निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- संयुक्त परिवार के विघटन तथा एकल परिवार की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण क्या है?

उत्तर- आज के संयुक्त परिवार के विघटन के हम दो प्रमुख कारण मान सकते हैं जिसमें

1. पहला कारण आज के पारिवारिक झगड़े हैं, पारिवारिक झगड़ों के कारण संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है। संपत्ति, पारिवारिक आय तथा व्यय, कार्यों का असमान वितरण इत्यादि झगड़े की वज़ह हैं।

2. दूसरा कारण निर्धन तथा बेरोजगार लोग जब दूरस्थ स्थानों पर रोजगार पाते हैं तो वे स्वयं अपना अलग परिवार बनाते हैं तथा धीरे-धीरे उनका संयुक्त परिवार कमज़ोर हो जाता है।

प्रश्न:- पारिवारिक विघटन को रोकने के उपाय क्या हो सकते हैं?

उत्तर:- 1. परिवार का मूल अर्थ है समर्पण, लेकिन आज बहुत छोटी-छोटी बातों को तूल देने, व्यक्तिगत अहंकार, हेकड़ी, भावनात्मक असंतुलन, अविश्वास आदि के कारण परिवार का मूल तत्व खत्म होता जा रहा है, इसको खत्म करना होगा।

2. शिक्षित पति-पत्नियों के बीच आपसी मनमुटाव आज झगड़े का नया रूप ले रहा है और नव विवाहित लड़कियाँ नए परिवार के सदस्यों से उनका तालमेल न बनना, एक आम बात हो गयी है। मैं और मेरा पति और उसकी कमाई की भावना आज परिवार टूटने का कारण बनती जा रही है, इससे भी थोड़ा गुरेज करना चाहिए।

3. आज सभी परिवारों में 'अहं' काम करता है, आपसी बातचीत की कमी और समस्या को समस्या न समझने के कारण दोनों पक्ष इसी वहम में रहते हैं कि समस्या अपने आप सुलझ जाएगी, जबकि ऐसा कभी नहीं होता। परिवार के सभी सदस्यों को

सबकी भावना समझते हुए, उनके जज्बातों की कदर करनी चाहिए; तभी यह मन-मुटाव दूर किया जा सकता है।

हरबंस सिंह (रिटायर फ़ूड सप्लाई इंस्पेक्टर)

गाँव- महुआना, तहसील-मलोट, जिला-मुक्तसर

मो- 94178-27270

7.1.1.2.2 नयी और पुरानी पीढ़ी की सोच में संघर्ष और बदलाव के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

नयी एवं पुरानी या युवा एवं वृद्ध पीढ़ी के विचारों के संघर्ष को, अंतर पीढ़ी संघर्ष भी कह सकते हैं। दोनों पीढ़ियों के मूल्यों, विश्वासों तथा व्यावहारिक प्रतिमान में काफी अंतर पाया जाता है। इसका मुख्य कारण दोनों पीढ़ियों के सामाजीकरण में समय का अंतर है। पुरानी पीढ़ी के लोग अपने-आपको जमाने की पुरानी परम्पराओं के अनुसार चलाना चाहते हैं, लेकिन नयी सभ्यता में जन्म लिए हुए युवक-युवतियाँ, इसका विरोध करते हैं और ऐसा न करने पर पुराने पीढ़ी के लोग उन्हें कोसते हैं, गाली देते हैं, उल्टा-सीधा कहते हैं। नये जमाने के स्वतंत्र और आजाद तबियत के युवक-युवतियों को, वृद्धजनों की यह रोक-टोक बुरी लगती है, अत: वे अनुशासन-हीनता, लापरवाही, अनादर का रास्ता अपनाते हैं। पुराने जमाने में पली हुई सास, अपने समय की मर्यादा, मान्यताओं में बहुओं को कोसना चाहती है, दूसरी ओर आजकल के स्वतंत्र समानाधिकार के वातावरण से प्रभावित आधुनिक नारी अपने जीवन में कुछ और स्वप्न लेकर आती है। दोनों पक्षों में परस्पर टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती। प्रस्तुत शोध में चयनित हिन्दी नाटकों में *काल कोठरी* और *आओ ! तनिक प्रेम करें* एवं पंजाबी नाटकों में *तूं मेरा की लग्गदैं* और *कल्लर* में इस समस्या को देखा गया है।

हिन्दी नाटक *काल कोठरी* की कथा के अनुसार एक पुराना आई.ए.एस ऑफिसर, थिएटर में निकली नौकरी की इन्टरव्यू लेने आता है और वह अपना पुराना रुतबा दिखाते हुए, विषय से सम्बंधित प्रश्न न पूछ कर, इन्टरव्यू देने वाले युवा का मजाक उड़ाता है, इसमें वह अपनी शानो-शौकत समझता है। इस बात से इन्टरव्यू देने वाला युवा, उस पर भड़क जाता है और उसे कोसते हुए आगे से खरी-खोटी सुनाने

लग जाता है। (37) विभा रानी का नाटक *आओ ! तनिक प्रेम करें* में हम देखते हैं कि माँ-बाप का विरोध न कर पाने के कारण बच्चे भीतर ही भीतर घुटते रहते हैं। उनकी यह घुटन जब सीमा पार कर जाती है और वह घर से भागने जैसा निर्णय कर लेते हैं। (30)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *तूं मेरा की लग्गदैं* की कथा के अनुसार प्रदुमन सिंह रेलवे में नौकरी कर रिटायर होकर घर आता है तो आमदनी कम होने के कारण, वह अपने बच्चों को खर्च कम करने का सुझाव देता है और घर में काम करने वाले नौकर को भी हटा देता है। पिता की इस कारवाई के कारण उसके बच्चे, उसको काफी बुरा-भला बोलते हैं। यह सब देखकर बुजुर्ग प्रदुमन सिंह बहुत उदास हो जाता है। (56-57) नाटक *कल्लर* में हम देखते हैं कि गुरदयाल सिंह का बेटा दलबीर सिंह जबरदस्ती विदेश जाना चाहता है और अपने माता-पिता से चोरी पासपोर्ट भी बनवा लेता है जिसका; उसका पिता विरोध करता है, लेकिन नयी पीढ़ी का दलबीर इसकी कोई परवाह नहीं करता। (37)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने वृद्ध एवं युवा दोनों से इस विषय को प्रस्तुत करते हुए बातचीत की। पहले वृद्ध माता अमरजीत कौर और बाद में उसके पोते हरमनदीप सिंह से निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- आज पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच विषमता क्यूं बढ़ रही है?

उत्तर- नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच आज ही नहीं, बल्कि हमेशा से विषमता रही है। इन दोनों के बीच असली समस्या यह है कि पुरानी पीढ़ी यह नहीं समझती कि उनकी उम्र बीत गयी है और युवा पीढ़ी ये समझती है कि अब वे काफी बड़े हो गये हैं, उनकी उम्र इतनी हो गयी है कि वे सबकुछ कर सकते हैं। दोनों के बीच सारी समस्या ही यही है।

प्रश्न:- नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच टकराव को कैसे दूर कर सकते हैं?

उत्तर- 1. बुजुर्गों यानी बड़ों को खुद पीछे रहना सीखना होगा, जिससे नौजवान उस जगह को ले सकें।

2. युवा पीढ़ी को वृद्धों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए, उन्हें समय देना चाहिए।

3. युवाओं को कुछ भी नया करने से पहले वृद्धों की सलाह लेनी चाहिए, जिससे सफलता भी जल्दी मिल सकती है और वृद्धों को ख़ुशी भी।

बाद में युवा हरमनदीप सिंह से बातचीत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न: आज के कुछ युवा बुजुर्गों का विरोध क्यूँ करते हैं? इन दोनों पीढ़ियों में सहानुभूति कैसे लाई जा सकती है।

उत्तर- आज का युवा विरोधी नहीं, वह उन परम्पराओं का विरोध करता हैं जो उन्हें अन्धविश्वास की ओर ले जा रही हैं। बुजुर्ग यहीं सोचते हैं कि उनके बच्चें घर में उनके सामने ही रहें, हमने पढ़ाई-लिखाई, खेलकूद और नौकरी आदि के लिए बाहर भी जाना है। मेरा विचार तो यह है कि बुजुर्गों को पुरानी रीत को छोड़ते हुए, नये जमाने के साथ चलना चाहिए। उन्हें अपने बच्चों को पूर्ण रूप से आजाद कर देना चाहिए, जिससे वह अपना अच्छा बुरा खुद जान सकें और अपनी जिन्दगी में सफलता हासिल करें। यदि वह हर बात बुजुर्गों से पूछ कर करेंगे, तो आज के युग में सफलता हासिल करनी बहुत मुश्किल हो जाएंगी, क्योंकि आज के वैज्ञानिक युग का बुजुर्गों को कोई ज्ञान नहीं। मैं उन युवाओं का विरोध भी करता हूँ, जो अपने घर के बुजुर्गों का आदरभाव नहीं करते। हमें चाहिए कि जिस बात का बुजुर्गों को ज्ञान नहीं, उस बात को उनके पास बैठ कर, उन्हें समझा दी जाए। जब उन बुजुर्गों को संतुष्टि हो जाएंगी तो वह अपने बच्चों के प्रति चिंता भी कम करेंगे।

अमरजीत कौर (दादी 75) हरमनदीप सिंह (पोता 24)

गाँव- शाहपुरा तहसील और जिला-फाजिल्का मो- 89736-47000

7.1.1.2.3 बदलते परिवेश में बुजुर्गों के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

भारतीय समाज की परम्परा और इसके इतिहास से पता चलता है कि प्राचीन काल में 'वृद्धों' की समाज में अत्यन्त उच्च स्थिति थी। संयुक्त-परिवार में 'कर्ता-धर्ता' सर्वाधिक आयु का व्यक्ति ही होता था। इसके अतिरिक्त परिवार में बड़े बुजुर्गों का खासा जमघट था, जिन्हें जीवन का लम्बा अनुभव होता था। बड़े बुजुर्गों के उपदेशों और निर्देशों को ही 'ब्रह्मवाक्य' मानकर संयुक्त-परिवार एवं अन्य समाज के लोगों को संचालित किया जाता था, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में समाज और संयुक्त-परिवार में, जिस तेजी से विघटन हो रहा है, उतनी ही तेजी से

समाज और परिवार में वृद्धों की स्थिति गिर रही है और उनकी पारिवारिक समस्याएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। प्रस्तुत शोध के नाटकों में भी, इस प्रकार की समस्या देखने को मिल रही हैं। जिनमें हिन्दी नाटक *काल कोठरी* और *आओ ! तनिक प्रेम करें* एवं पंजाबी नाटक *सुपर वीज़ा* और *लोक मना दा राजा* हैं।

हिन्दी नाटक *काल कोठरी* की कथा के अनुसार एक नवीन नामक बुजुर्ग व्यक्ति, जिसने सारी जिन्दगी अपनी संतान के लिए संताप भोगा है और उसी संताप को उसने एक कथा के माध्यम से नाटक का रूप दिया। अब उस बुजुर्ग की अंतिम इच्छा यह है कि उसके नाटक का रंगमंच किया जाए और वह अपने भोगे हुए संताप को लोगों के सन्मुख रख सके, जिससे लोगों को कुछ संदेश दिया जाए, लेकिन थिएटर वाले उस बुजुर्ग का मजाक बनाते हैं और उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचातें हैं। (46-47) नाटक *आओ ! तनिक प्रेम करें* में हम देखते हैं कि आज के बच्चे अपने माता-पिता की सेवा से अधिक ध्यान अपने कैरियर की ओर देते हैं। इस नाटक की एक स्त्री पात्र आज की पीढ़ी के विषय में में अपनी भावना प्रकट करती है। (15)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *सुपर वीज़ा* की कथा के अनुसार मनप्रीत सिंह जो पहले पंजाब में रहा करता था, अब विदेश चला गया। मनप्रीत सिंह विदेश अपने पास अपने माता-पिता को बुलाता है, लेकिन उसकी पत्नी इस बात का बहुत बुरा मनाती है। वह अपने सास-ससुर को वह आदरभाव नहीं देती, जो एक आम बुजुर्ग व्यक्तियों को देना चाहिए। इस बात से परेशान होकर मनप्रीत सिंह के बुजुर्ग माता-पिता वापस भारत आ जाते हैं। (20) ऐतिहासिक नाटक *लोक मना दा राजा* में प्रस्तुत किया गया है कि महाराजा रणजीत सिंह के समय बुजुर्गों का अपने परिवार और समाज में तो सम्मान था ही, साथ-साथ राज दरबारों में भी बहुत सम्मान दिया जाता था। जो आज बहुत कम देखने को मिलता है। (34)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने वृद्ध रिटायर सूबेदार मेजर सुखदेव सिंह से इस विषय को प्रस्तुत करते हुए बातचीत की। सुखदेव सिंह ने पहले आर्मी में नौकरी की और फिर रिटायरमेंट के बाद घर में मन न लगने के कारण रेलवे में नौकरी शुरू कर दी। सुखदेव सिंह के दो बेटे और एक बेटी है। जिनमें एक बेटे की शादी हो चूकी है। उनका सारा परिवार उसके साथ ही जालन्धर में रहता है। मैंने अपने विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- आधुनिक समाज में बुजुर्गों के प्रति बढ़ते भेदभाव के कारण क्या हैं?

उत्तर- 1. बदलते दौर के साथ लोग अपने आपमें ही सिमटने लगे हैं, एकल परिवार को प्राथमिकता दी जाने लगी है और बुजुर्गों के अपने ही घर में बोझ समझा जाने लगा है।

2. अनेक वृद्धों को आर्थिक रूप से अपने परिजनों जैसे पुत्र, पुत्री, भाई इत्यादि पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसमें अनेक बार असहज स्थितियों का सामना करना पड़ता है।

3. यदि कोई संतान गलत संगत में पड़ जाए, तो बड़े बुजुर्ग उसे रोकने का प्रयास करते हैं। जिसकी वजह से वहीं संतान बुजुर्गों के विरुद्ध हो जाती है। विडंबना यह भी है कि इस दुर्व्यवहार के खिलाफ अधिकांश बुजुर्ग कोई शिकायत भी दर्ज नहीं करा पाते, क्योंकि दुर्व्यवहार करने वाले लोग प्राय: घर के ही होते हैं और शिकायत करने से समस्या ओर बढ़ सकती है।

प्रश्न:- वृद्धों की समस्या का समाधान?

उत्तर- वृद्धों की समस्या का मुख्य समाधान उनकी संतान की उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करना है। यदि किसी भी बुजुर्ग के बच्चे उनसे खुश होकर बात कर लेंगे, तो वे भी खुश रहेंगे। बुजुर्गों को अपनी जिन्दगी का बहुत अनुभव होता है, समाज और परिवार के लोगों को किसी भी कार्य को करने से पहले, उससे बातचीत कर लेनी चाहिए, इससे एक ओर समाज और परिवार में बुजुर्गों की स्थिति लाभप्रद सिद्ध होगी और दूसरी ओर बुजुर्गों में भी आत्मविश्वास बढ़ेगा। इसके अलावा बुजुर्गों को भ्रमण एवं योग-व्यायाम करना चाहिए। वह साहित्य पढ़ें और हम उम्र के लोगों से मिले जो प्रसन्न एवं अनंदित रहते हो। समाज में अधिक आयु के सभी बेसहारा व्यक्तियों के लिए, सरकार की ओर से आर्थिक सहायता या पेंशन की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। संचार और मीडिया के माध्यम से बुजुर्गों में यह जागरूकता उत्पन्न करनी आवश्यक है कि 'बुजुर्ग' भी समाज के उपयोगी नागरिक हैं और उन्हें भी समाज-कल्याण में अपना योगदान करना चाहिए।

सुखदेव सिंह (रिटायर सूबेदार मेजर)
मकान नंबर-36 दीप नगर, जालन्धर कैंट
मो. 94650-21852

7.1.1.2.4 बदलते सामाजिक परिवेश में दाम्पत्य सम्बन्धों में परिवर्तन, के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

बदलते सामाजिक परिवेश में यदि हम दाम्पत्य सम्बन्धों में पुरुष और नारी की अलग-अलग बात करें, तो इनमें नारी का स्थान और महत्त्व भी वहीं होना चाहिए जो पुरुष का है। स्त्री और पुरुष दोनों एक रथ के पहियों के समान हैं। यदि एक कमजोर और घटिया हुआ, तो यह दाम्पत्य नामक रथ निर्विघ्न आगे नहीं बढ़ सकता। पति-पत्नी एक परिवार के बच्चों और बूढ़ों के लिए दुःखद एवं सुखद दोनों प्रकार की अनुभूतियों का आधार बनते हैं। उनकी देखभाल करना या फिर उन्हें हर तरह से वंचित रखना, दोनों ही स्थितियों में दाम्पत्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, लेकिन समकालीन समाज में दाम्पत्य के सम्बन्धों में काफी बदलाव आ गया है। प्रस्तुत शोध में चयनित हिन्दी नाटक *चार यारों की यार* और *कहते हैं जिसको प्यार* एवं पंजाबी नाटक *परियां* और *मैं ता एक सारंगी हां* में ऐसी घटनाओं को महसूस किया गया है, जिसमें पारिवारिक सम्बन्धों में बहुत गिरावट आ गयी है।

हिन्दी नाटक *चार यारों की यार* इस बात को सोचने के लिए मजबूर कर देता हैं कि क्या दाम्पत्य सम्बन्ध का आधार केवल यौन-तृष्टि तक ही सीमित है? इस नाटक की बिन्दिया पात्र अपने पति से इस तृष्टि से संतुष्टि प्राप्ति नहीं करती, जिसके चलते हुए वह अपने चार यारों के सम्पर्क में आती है और अंत में अपने ही पति की हत्या कर देती है। इस प्रकार बिन्दिया अपने हाथों से अपना घर बर्बाद कर लेती है। (03) नाटक *कहते हैं जिसको प्यार* में पति-पत्नी दोनों ही रिश्तों की औपचारिकता निभा रहे हैं। सम्बन्धों में झूठ और दिखावे का सहारा अधिक लिया जा रहा है। इस नाटक का पात्र अखिल शादी तो गीता से करता है, किन्तु प्रेम सम्बन्ध उसकी छोटी बहन सुजाता से बनाए हुए हैं। पत्नी के पूछने पर वह इन सम्बन्धों को अस्वीकार भी कर देता है। (53)

इस प्रकार पंजाबी नाटक *परियां* में दाम्पत्य सम्बन्धों को देखें, तो इसमें भी इनके सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं। कहीं औरतें इस प्रकार के हालात बना देती तो कहीं पुरुष जिससे दाम्पत्य नर्क बन जाता है। *परियां* नाटक में मिसिज मेहता का पति नशेडी और बदमाश व्यक्ति था और वह हर रोज शराब पीकर, उसे पीटता है और जो थोड़े से पैसे मिसिज मेहता कमाती है, वह पैसे भी छीन कर ले जाता है। इस प्रकार मिसिज मेहता की जिन्दगी नर्क बनी हुई है। वह अपनी छोटी बेटियों के कारण इसे

छोड़ भी नहीं सकती। (79-80) नाटक *मैं ता एक सारंगी हां* की बात करें, तो इसमें एक ऐसे दम्पति को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें पिता अपनी बेटियों पर बहुत ज्यादा अत्याचार करता है, उन्हें छोटी-छोटी बात पर कोसता है, बेटियाँ कुछ भी करें, उसका सारा इल्जाम पत्नी पर ही आता है। बेटी पाल ने एक बार स्कूल के किसी कार्यक्रम में डिबेट में भाग लिया और उसका सारा गुस्सा उसकी माता अर्थात् अपनी पत्नी पर निकाल देता है। (40)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने एक दम्पति सहजपाल सिंह और उसकी पत्नी सुमनप्रीत कौर से इस विषय को प्रस्तुत करते हुए बातचीत की। पहले सहजपाल सिंह से प्रश्नावली हुई:-

प्रश्न: अच्छे दाम्पत्य सम्बन्धों में पुरुष और औरत की क्या भूमिका होनी चाहिए?

उत्तर:- 1. स्त्री और पुरुष दोनों को एक-दूसरे की भावनाओं को समझना चाहिए। किसी भी एक को तानाशाही फरमान लागू नहीं करने चाहिए।

2. दोनों को एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए प्रत्येक समस्या का निवारण एक-दूसरे से मिलकर करना चाहिए।

3. अच्छे काम के लिए दोनों को एक दूसरे को उत्साहित करना चाहिए।

प्रश्न:- दाम्पत्य सम्बन्धों में तनाव आने के प्रमुख कारण कौन-कौन से हैं।

उत्तर- 1. जब पति या पत्नी दोनों में से कोई एक, हमेशा अपने-आपको ही सही और दूसरे को गलत दिखाने का प्रयास करता है तो ऐसे में कड़वाहट पैदा हो जाती है।

2. पत्नी के द्वारा पति के माता-पिता को सम्मान न देना या पति-पत्नी के बीच आपसी तालमेल न होने के कारण आपसी बहस भी तनाव का कारण बनती है।

3. दाम्पत्य की कमजोर आर्थिकता में पति या पत्नी नाजायज खर्च करें, तो तनाव पैदा हो सकता है। आज पति-पत्नी में तनाव का मुख्य कारण नशे भी हैं, जिसकी वजह से सबसे ज्यादा तलाक हो रहे हैं।

सहजपाल सिंह (मुलाजम पंजाब पुलिस)
गाँव- महुआना, जिला-फाजिल्का
मो. 96462-57991

सुमनप्रीत कौर से इस विषय को प्रस्तुत करते हुए बातचीत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- दाम्पत्य के तनाव का बच्चों पर क्या असर पड़ता है?

उत्तर- 1. जिन घरों में पति-पत्नी आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं उनके बच्चें मानसिक रूप से डरे रहते हैं। लड़ाई के बाद जो तनाव की स्थिति बनती है, वो बच्चों पर शारीरिक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालती है।

2. उनका ध्यान पढ़ाई और खेलों में नहीं लगता, वह हमेशा अपने माता-पिता के विषय में सोचते रहते हैं और हमेशा भय में ही जीते हैं।

3. इस स्थिति को देखते हुए कई बार बच्चे गलत कदम भी उठा लेते हैं।

प्रश्न:- दाम्पत्य सम्बन्धों में किस प्रकार सार्थकता लाई जा सकती है।

उत्तर- 1. दाम्पत्य सम्बन्ध तभी सार्थक है जब उनके बीच प्रेम भावना सदा तरोताजा बनी रहे। तभी तो पति-पत्नी को दो शरीर एक प्राण कहा जाता है। इसलिए दोनों में प्रेम भाव का होना अति जरूरी है।

2. दोनों में से कोई भी, किसी भी समस्या में घिरता है तो दोनों को एक-दूसरे की समस्या को समझते हुए मदद करनी चाहिए।

3. पत्नी को अपने ससुराल परिवार की कदर करनी चाहिए।

4. प्रेम, सेवा, उदारता, समर्पण और क्षमा की भावना स्त्रियों में ऐसे गुण हैं, जो उन्हें देवी के समान सम्मान और गौरव प्रदान करते हैं। ऐसे गुणों को भी पति को अपना लेना चाहिए।

5. पति पत्नी के रिश्ते में कई बार मनमुटाव आ जाता है, वैवाहिक जीवन में कोई भी समस्या न हो इसके लिए जरूरी है पति और पत्नी को आपसी समस्याएं खुद निपटा लेनी चाहिए, किसी तीसरे को अपनी जिन्दगी में हस्तक्षेप न करने दें।

सुमनप्रीत कौर (एम.ए. अर्थशास्त्र)
पत्नी सहजपाल सिंह, गाँव-महुआना, जिला-फाजिल्का
मो. 98761-62208

7.1.1.2.5 बदलते सामाजिक परिवेश में नारी के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

प्राचीन काल से ही नारी भरण-पोषण के लिए अपने पति और पिता पर निर्भर रही है, इसका मुख्य कारण यह है कि सदैव ही नारी का घर से बाहर जाकर नौकरी करना पारिवारिक सम्मान के विरुद्ध समझा जाता था। अत: आर्थिक मामलों में नारी को अपने पति और पिता पर ही निर्भर रहना पड़ता था, जिसके कारण उस पर पुरुषों की प्रभुता भारी थी। वास्तव में इसी आर्थिक निर्भरता के कारण ही नारी की स्थिति अति निम्न हो गयी और पुरुषों को उनके प्रति भेदभाव व उत्पीड़न का अवसर मिला, लेकिन समय के अनुकूल, यह बदलाव आने लगा और नारी अपना अच्छा-बुरा खुद समझने लगी; जिसके कारण उनके प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदलने लगा। प्रस्तुत शोध में भी कुछ उदहारणें इस प्रकार की हैं, जिसमें नारी ने डट कर मुकाबला किया। जिनमें हिन्दी नाटक *जी, जैसी आपकी मर्ज़ी* और *हुमा को उड़ जाने दो* एवं पंजाबी नाटक *चंदन दे ओहले* और *कथा रिड़दे परिंदे दी* हैं।

हिन्दी नाटक *जी, जैसी आपकी मर्ज़ी* में एक नारी ने इस बात को साबित किया है कि जिन्दगी में चाहे कितनी भी मुश्किलें आ जाएं, आज की नारी उसका मुकाबला करने के लिए तैयार है। नाटक की कथा के अनुसार सुल्ताना की छोटी उम्र में शादी हो जाती है और वह तीन बेटियों को जन्म देती है। बेटा पैदा न करने की वजह से उसके ससुराल वाले उन्हें घर से निकाल देते हैं। बाद में वह अपने मायके आ जाती है, लेकिन वहाँ भी उसे कोई रहने नहीं देता, लेकिन सुल्ताना वहाँ झोपड़ी बना कर रहने लगती है और आस-पास के घरों में झाड़ू-पोचा आदि का काम कर अपना गुजारा करने लग जाती है। कुछ समय बाद सुल्ताना के भाई उसकी इच्छा के विरुद्ध, उसकी शादी एक हकीम से कर देते हैं, लेकिन हकीम सुल्ताना और उसकी बेटियों पर अत्याचार करता है और सुल्ताना की बड़ी बेटी के साथ बलात्कार करता है। जिसका विरोध करती हुई सुल्ताना उसका कत्ल कर देती है, लेकिन अपनी बेटियों पर आंच नहीं आने देती सुल्ताना को कुछ सजा होती है और बाद में वह रिहा हो जाती है। (30) नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में हुमायूँ की सेहत खराब होने पर शासन की कमान उनकी बेगम हमीदा बानो संभालती है। हुमायूँ और हमीदा दोनों राजनीतिक

सलाह भी करते हैं। हुमायूँ चाहता है कि अकबर शासक संभाल ले, परन्तु मरने से पूर्व हमीदा बानो ही सारा शासन संभालती है। (37)

पंजाबी नाटक *चंदन दे ओहले* की कथा भी आधुनिक नारी शक्ति से जुड़ी है। इस नाटक की कथा के अनुसार एक विदेशी लड़की का लालची पिता पंजाब के किसी लड़के वाले के परिवार से पैसे लेने का निश्चित करता है और उन्हें कहता है कि उसकी लड़की उससे शादी कर विदेश ले जाएगा, लेकिन जब उस विदेशी लड़की को यह पता चलता है कि उसकी शादी एक रिश्तों का बंधन न होकर एक पैसों का विदेश जाने का समझौता है, तो वह इस शादी को अस्वीकार कर देती है और अपने पिता का विरोध करती हुई, विदेश चली जाती है। (80) नाटक *कथा रिड़दे परिंदे दी* ऐसी कथा से ही जुड़ी हुई है, इसमें हम देखते हैं कि आज के आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के ऊपर पुरुष वर्ग की पकड़ मजबूत है, नारी को आर्थिक और सामाजिक आजादी होने पर भी, वह इसका सम्पूर्ण आनंद नहीं मान सकती। इस प्रकार नारी की स्थिति बेहद कमजोर हो जाती है। पीड़ित नारी के चाहते हुए भी कोई दूसरी नारी उसकी मदद नहीं कर सकती। (30)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने स्कूल अध्यापक और समाज भलाई के कामों में व्यस्त रहने वाली नारी वीरपाल कौर से इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- आज की नारी किस प्रकार के आंतरिक सम्बन्धों के घेरे में जकड़ी हुई है?

उत्तर- आधुनिक युग में भी नारी के अनेक रूप दिखायी दे रहे हैं, लेकिन इन्हें हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं- एक परिवार के आंतरिक सम्बन्धों के घेरे में जकड़ी नारी और दूसरी परिवार के बाहर सामाजिक परिवेश में साँस लेती नारी।

1. सबसे पहले नारी 'माँ' के रूप में स्वीकार होती है। वह अपने बच्चों के प्रति बहुत सजग दिखायी देती है। इस रूप में नारी चाहती है, उसके बच्चों का भविष्य सुख समृद्धि तथा प्रतिष्ठा से परिपूर्ण हो।

2. नारी का एक रूप 'बहु' है आज की बहु भी अपनी सास की पारंपरिक तानाशाही तथा शोषण में जकड़ी हुई है। ऐसे ही नारी सास के रूप में हमेशा बहु के जीवन में अपने भूतकाल को देखती है।

3. नारी का एक रूप पति की मृत्यु के बाद बड़ा शोचनीय हो जाता है, जिसे हम विधवा कहते हैं।

4. नारी नौकरानी के रूप में जकड़ में है और वेश्या के रूप में नारी तरसयोग।

5. एक शिक्षित बेरोजगार नारी अपने लिए रोजगार की तलाश करती है। नारी डॉक्टर और नर्स के रूप रोगी लोगों की सेवा तन, मन से करती है।

इस प्रकार नारी कहने को आजाद है लेकिन किसी-न-किसी रूप में वह जिम्मेदारियों से बंधी हुई है।

प्रश्न:- आज की नारी के प्रति लोगों का दृष्टिकोण किस प्रकार बदल रहा है।

उत्तर- 1. आज नारी की शिक्षा, परवरिश, रहन-सहन आदि सब कुछ बदल गया है, जिससे उसकी सोच में भी सकारात्मक बदलाव हुआ है। अब वे केवल दूसरों के लिए ही नहीं, बल्कि अपने लिए भी जीती हैं।

2. आज वह अपने विचारों को खुल कर लोगों के सामने रखती है। शिक्षित होने के कारण, उन्हें कई विषयों का ज्ञान है। वे आधुनिकता, सभ्यता और संस्कारों से तालमेल बिठाकर चलती है।

3. आज की नारी खुद से प्यार करती है, वह परिवार के साथ खुद का भी ख्याल रखती है, साथ ही वह नयी-नयी चीजें व टेक्नोलॉजी जैसे मोबाइल, स्मार्टफोन, नेट बैंकिंग, टिकट बुकिंग, कंप्यूटर, लैपटॉप जैसे तमाम वस्तुओं का उपयोग अपने जीवन को आसान बनाने के लिए कर रही है।

4. आज वे किसी प्रकार के जुल्म को चुपचाप नहीं सहती और न ही दूसरों के ऊपर होने देती है। यदि ऐसा हो तो वह इस गलत व्यवहार के प्रति आवाज़ उठाती हैं।

वीरपाल कौर (स्कूल अध्यापक)

पत्नी कुलदीप सिंह

आदेश नगर गली नं. 1 K.K रोड़, श्री मुक्तसर साहब

मो. 75892-36240

7.1.1.2.6 भ्रष्टाचार से प्रभावित सामाजिक परिवेश के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

भ्रष्टाचार सदैव किसी स्पष्ट अथवा अस्पष्ट लाभ के लिए कानून तथा समाज के विरोध में किया जाने वाला कार्य है। आज दिन प्रतिदिन समाज में भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है। आज के सामाजिक परिवेश में भ्रष्टाचार से शायद ही कोई वर्ग बचा हो, जिसको जहाँ मौका मिलता है, वह वहीं अपने पद का दुरुपयोग कर रहा है। यह समस्या हमारे समाज में घर कर गयी है। प्रस्तुत शोध में भी कुछ नाटकों में इस समस्या को देखा गया है, जिसमें हिन्दी नाटक *ताजमहल का टेंडर* और *आज की पुकार* एवं पंजाबी नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* और *पायदान* है।

हिन्दी नाटक *ताजमहल का टेंडर* की कथा तो काल्पनिक है, लेकिन समकालीन समाज से इसकी कड़ी जुड़ती है। नाटककार नाटक में कल्पना करता है कि आधुनिक दिल्ली दरबार के शासन पर शाहजहाँ आ कर बैठ जाता है और अपनी बेगम के लिए ताजमहल बनाने की इच्छा प्रकट करता है। आधुनिक भ्रष्ट सिस्टम ने ताजमहल बनाने में 50 वर्ष लगा दिए। जिस दिन ताजमहल का टेंडर पूरा हुआ, उस दिन शाहजहाँ स्वर्गवास हो गया। इस नाटक में आधुनिक भ्रष्ट सिस्टम का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया कि किस प्रकार सरकारी टेंडर जो लाखों का ही होता है, लेकिन उच्च अधिकारी पहले ही अपना हिस्सा निकाल कर, उसे करोड़ो में देते हैं और आगे से वह इसमें किस प्रकार घटिया मटिरियल का प्रयोग करते हैं। (26) नाटक *आज की पुकार* में हम देखते हैं कि मास्टर जी भ्रष्टाचार पर मौलिक चिन्तन करता है। (46)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* की कथा के अनुसार कोई विदेशी कम्पनी पंजाब में अपना प्रोजेक्ट लगा रही है, लेकिन जितना पैसा कृषकों को मिलना था, उसका आधे से ज्यादा हमारे भ्रष्ट प्रशासनिक सिस्टम और राजनेताओं के द्वारा हड़प कर लिया जाता है। जब कृषक इस बात का विरोध करते हैं तो पुलिस के द्वारा उसके विद्रोह को दबा दिया जाता है। (39) नाटक *पायदान* में उन्होंने चुहियों को इसका प्रतीक बना कर दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया गया है कि किस प्रकार सरकारी अफ़सर भ्रष्टाचार के द्वारा सब कुछ कुतर-कुतर कर खा जाते हैं। (27)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने ऐसी समस्याओं के कारणों और कोर्ट के द्वारा निवारण करते देखने वाले गुरदास सिंह औलख नामक वकील से इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- आधुनिक समाज में दिन प्रतिदिन बढ़ते भ्रष्टाचार के कारण क्या हैं?

उत्तर- जैसे इसके नाम से ही स्पष्ट होता है कि आचरण का भ्रष्ट हो जाना। आचरण का प्रतिनिधित्व सदैव नैतिकता करती है। नैतिकता की कमी इसका प्रमुख कारण है। जब जीवन की पहली सीढ़ी में बच्चों को उचित मार्गदर्शन, नैतिकता का पाठ और औचित्य अनौचित्य के भेद करने का ज्ञान नहीं दिया जाता, तब इस समस्या का जन्म होता है। कुछ लोग जल्दी अमीर होने के चक्कर में यह भ्रष्टाचार का मार्ग अपनाते हैं। परिवेश और परिस्थितियाँ भी इसका कारण बनते हैं क्योंकि कई बार कर्मचारी की तनखाह बहुत कम होती है और उसकी मूलभूत आवश्यकताएँ बहुत ज्यादा होती है, जिसके कारण उसे घूस लेना पड़ता है। भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए या तो प्रभावी कानून नहीं होते अथवा उनके क्रियान्वयन के लिए सरकारी प्रबंधन भी सही नहीं होता। सिस्टम में तमाम ऐसी खामियाँ होती हैं जिनके सहारे भ्रष्टाचारी को दण्ड दिलाना बेहद मुश्किल हो जाता है।

प्रश्न:- भ्रष्टाचार का निवारण कैसे हो सकता है?

उत्तर- 1. दुनिया के किसी भी देश में भ्रष्टाचार और अपराध से निपटने के लिए कठोर और प्रभावी कानून व्यवस्था का होना अति आवश्यक है जो भारत में भी होनी चाहिए।

2. इस प्रकार हमारे समाज की शिक्षा संस्थाओं को इस की ओर विशेष ध्यान देते हुए उसमें नैतिकमूल्य, आत्म नियन्त्रण, राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य जैसे विषयों का समावेश होना अति आवश्यक है।

3. आर्थिक असमानता का तेजी से बढ़ना बड़े स्तर पर कुंठा को जन्म देता है। समाज के आर्थिक रूप से निचले स्तर पर आजीविका के लिए संघर्ष, किसी व्यक्ति के लिए नैतिकता और ईमानदारी अपना मूल्य खो देती है। इसलिए आर्थिक असमानता को खत्म करने का प्रयास करना चाहिए। इसके अलावा भ्रष्टाचार के खिलाफ आम व्यक्ति

को लड़ाई लड़नी चाहिए, जो यह गलत काम करता है उसके खिलाफ कम्पलेंट दर्ज कराए।

गुरदास सिंह औलख (वकील)
जुडिशल कोर्ट काम्प्लेक्स, फाजिल्का
मो. 93207-01313

7.1.1.2.7 बदलते सामाजिक परिवेश में प्रवास की प्रवृत्ति के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

व्यक्ति के एक स्थान से दूसरे स्थान में जाकर बसने की क्रिया को प्रवास कहते हैं। भारतीय समाज में दिन प्रतिदिन यह समस्या बढ़ती जा रही है। प्रवासी भारतीयों से आशय उन लोगों से है, जो मूल रूप से भारतीय हैं, परन्तु विभिन्न कारणों से विश्व के अन्य देशों और भारत के अन्य राज्यों में जाकर बस गये हैं। आज तकनीक बढ़ जाने के कारण प्रत्येक युवा अपनी शिक्षा के अनुसार अच्छी जीवन व्यवस्था और रोजगार की तलाश इंटरनेट और मीडिया के द्वारा करता है, आज के युवा को रोजगार और अच्छी जीवन व्यवस्था चाहिए, फिर वह किसी भी देश और राज्य में जा सकता है। आज अनेक युवा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान जाते देखें गये हैं। आज पंजाब और देश के ओर बड़े शहरों एवं राज्यों से लोग विदेश की ओर जा रहें हैं, साथ ही बिहार, यू.पी, झारखंड, उड़ीसा आदि से लोग बड़े शहरों जैसे दिल्ली, मुंबई, कोलकाता और पंजाब, गुजरात और हरियाणा आदि राज्यों की ओर आ रहे हैं। इन सब लोगों का उद्देश्य एक ही है। प्रस्तुत शोध में भी चयनित हिन्दी नाटक *अमली* और *आओ ! तनिक प्रेम करें* एवं पंजाबी नाटक *कल्लर* और *चंदन दे ओहले* में इस प्रकार की समस्या को देखा गया है।

ह्रषीकेश सुलभ के द्वारा रचित नाटक *अमली* में बिहार के उन परिवारों की त्रासदी को प्रस्तुत किया गया जिनके आदमी किसे अन्य राज्यों में काम करने के लिए जाते हैं और पीछे से उनके परिवार वालो को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस नाटक के माध्यम से उस समाज के लोगों को संबोधित किया गया है, जिसके सदस्य आर्थिक मजबूरी के कारण अपने परिवार और बच्चों को छोड़ कर किसी प्रदेश एवं देश गये हैं। (38-39) नाटक *आओ ! तनिक प्रेम करें* में बेटा पैसे कमाने के लिए स्वयं विदेश चला जाता है। माँ-बाप अकेले रह कर उसकी चिंता करते हैं, उसके

आने का इंतजार करते हैं। वह दोनों आपस में विचार-विमर्श ही करते रह जाते हैं (64)

स्वराजबीर के द्वारा रचित नाटक *कल्लर* में पंजाब के उन युवाओं की त्रासदी को प्रस्तुत किया गया है, जो यहाँ काम नहीं करना चाहते, लेकिन विदेश जाने की चाहत के कारण गलत ऐजंटों के हाथों धोखा खा कर किसी और देश चले जाते हैं और उस देश में उन्हें अनेक प्रकार की मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। कुछ समय इस प्रकार की समस्याओं का सामना करते हुए बाद में पुलिस के द्वारा डिपोर्ट कर दिए जाते हैं। बाद पंजाब में आकर वह अपने पश्चाताप और आत्म ग्लानि का प्रगटावा करते हैं। (111) नाटक *चंदन दे ओहले* में लोगों के मनों में प्रवास की प्रवृत्ति को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक का बनी पात्र विदेश जाना चाहता है, जब उसकी बहन उससे पूछती है कि तू विदेश क्यों जाना चाहता है? वह इसका कारण यहाँ की भ्रष्ट व्यवस्था को मानता है। (20-21)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने ऐसी समस्याओं के कारणों का सामना करने वाले प्रवासी व्यक्ति लवप्रीत सिंह जो पहले पंजाब रहता था और अब आस्ट्रेलिया में रह रहा है और इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- आधुनिक भारतीय बदलते सामाजिक परिवेश में प्रवास की प्रवृत्ति के कारण कौन से हैं?

उत्तर- 1. आधुनिक समाज में ऐसे बहुत-से कारण हैं, जो हमें विदेश की ओर जाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इन कारणों में सबसे प्रमुख कारण है, रोजगार। जिस क्षेत्र में हम रहते हैं, वहाँ सभी व्यक्तियों को रोजगार मिलना भी बहुत कठिन हो जाता है इसलिए हम उस देश अथवा राज्य में जाना चाहते हैं, जहाँ रोजगार के अवसर मिल सके।

2. इसके साथ ही बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा व्यवस्था और अच्छी प्रशासनिक एवं राजनीतिक व्यवस्था भी प्रवास के आकर्षण का कारण बनते हैं, जहाँ की सरकार अच्छी होगी और जहाँ का प्रशासन लोकहित कार्य करेगा, वहाँ लोग आवश्यक जाएंगे।

3. इसके साथ प्राकृतिक असंतुलन के कारण भी बहुत-से व्यक्ति विदेश की ओर आकर्षित हो रहे हैं, क्योंकि पिछले कुछ सालों से हमारे देश के उत्तरी राज्य किस प्रकार धुंए की लपेट में आ रहें हैं।

प्रश्न:- युवाओं के प्रदेस जाने की समस्या को रोकने के सुझाव बताएं।

उत्तर- 1. भारत सरकार को उन तथ्यों की गहराई से समीक्षा करनी चाहिए जिनकी वजह से युवा प्रदेस धारण कर रहें हैं।

2. युवा जिस प्रकार की शिक्षा की माँग करते हैं उस प्रकार के शिक्षा संस्थाओं का प्रबंध किया जाए और बाद में जिस विषय की शिक्षा ग्रहण की है, उसी प्रकार की नौकरियाँ दी जाएं, इसके लिए चाहे नए कारखानों का निर्माण ही क्यूँ न करना पड़े, इस प्रकार एक तो हमारे देश का निर्यात बढ़ेगा दूसरा जो लेबर अन्य राज्यों में काम के लिए जाती है उसे भी रोजगार मिलेगा।

3. इसके अलावा बेहतरीन और बड़े हस्पताल बनाएं जाएं, जिससे किसी भी गंभीर से गंभीर बीमारी का इलाज भी यहाँ किया जाए।

4. लोगों की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा जाए और प्रशासनिक व्यवस्था की कमियों को दूर किया जाए। जिससे लोगों को यह विश्वास हो सके कि सरकार हर तरह से उनकी मदद करने को तैयार है, इससे लोगों में प्रवास का रुझान घट सकता है।

लवप्रीत सिंह (NRI)
30 होली ड्राइव, डीन पार्क 2761
न्यू साउथ वेल्स, आस्ट्रेलिया मो. +61450552445

7.1.1.2.8 वर्तमान के सामाजिक परिवेश में युवाओं की मानसिकता के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

आज के युवाओं की बदलती मासिकता का सामाजिक और साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन किया जाए, तो इन दोनों क्षेत्रों में हमें बहुत बड़ा बदलाव देखने को मिलेगा है। आज के युवाओं की मानसिकता को समझने का प्रयास करें, तो बहुत-सी ऐसी प्रवृत्तियाँ देखने को मिलेंगी, जिनकी कल्पना आज से दो-तीन

दशक पहले तक संभव भी न थी। आज हमारा समाज शिक्षा के कारण विकास के रास्ते पर है। आज हमारी सरकारें शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दे रही, देश की युवा शक्ति समाज की रीढ़ है, हमारे युवा ही समाज और देश को शिखर पर ले जा सकते हैं। हमारे युवा देश के वर्तमान तो हैं ही, साथ वह भविष्य के भी सेतु हैं। प्रस्तुत शोध में कुछ नाटक इस प्रकार के हैं, जिसके युवा पात्र समाज को प्रगति की ओर ले जा रहे हैं। इन नाटकों में हिन्दी नाटक *आज की पुकार* और *जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ एवं* पंजाबी नाटक *कंधा रेत दियां* और *छां विहूणे* हैं।

हिन्दी नाटक *आज की पुकार* की कथा पंजाब के किसी सुंदर गाँव का चित्र प्रस्तुत करती है, जहाँ के लोग शांति से रह रहें हैं। उस गाँव के शिक्षित युवाओं ने मिल कर एक होटल का निर्माण किया और उस होटल में पढ़े-लिखे युवाओं और गाँव के और लोगों को भी रोजगार मिला। जिससे अच्छी सोच और अच्छे उद्देश्य की पूर्ति हुई और वह होटल थोड़े ही समय में उन युवाओं को काफी आमदन देने लगा। उसके क्षेत्र के एम.एल.ए. ने युवाओं से जबरन चुनाव भत्ता लेने का प्रयास किया, तो युवाओं ने मीडिया को बुला कर सारी पोल खोल दी, जिसके कारण मंत्री को माफ़ी भी मागनी पड़ी। इस प्रकार इस नाटक के माध्यम से युवाओं ने सिद्ध कर दिया है कि वह समाज को उन्नति की ओर ले जा रहें हैं। (46) हमारा कुछ पढ़ा-लिखा युवा, सामाजिक दूरियों को खत्म करने का प्रयास कर रहा है। इस प्रकार की उदाहरण हमें असग़र वजाहत के द्वारा रचित नाटक *जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ* में मिलती है, इस नाटक में नासिर युवा अपने दोस्त अलीम से बातचीत कर रहा है। (48)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *कंधा रेत दियां* का युवा पात्र कुंदन सिंह भी क्रांतिकारी कदम उठाता है। कुंदन सिंह इंजीनियर अफ़सर है और वह एक आदर्श समाज का निर्माण करना चाहता है। वह न तो खुद रिश्वत लेता है और न ही किसी ओर को लेने देता है, इसके कारण उन्हें बहुत-सी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है, लेकिन इन मुश्किलों के बावजूद भी वह अपने कार्य में लगा रहता है। (66-67) नाटक *छां विहूणे* में हम आज के युवाओं की बदलती मानसिकता देखते हैं, इस नाटक में सुधीर और जगदीप शिक्षित युवा हैं, उनके पिता की मृत्यु के बाद उनके परिवार की आर्थिक दशा बहुत कमजोर हो जाती है कि एक समय का पूरे परिवार के लिए खाना भी नहीं होता, लेकिन वह अपनी माँ के लिए खाना जरुर लेकर आते हैं। (33)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने युवा ले. मनिन्दर कौर; जिसने कम आयु में सहायक प्रोफेसर अंग्रेजी की नौकरी प्राप्त की और साथ ही एन.सी.सी में भी अपना नाम बनाया, उनसे इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- आज समाज के कुछ युवाओं ने गलत रास्ता अपना लिया है। युवा पीढ़ी के भटकाव का मुख्य कारण क्या है?

उत्तर- 1. आज के एकल परिवार के एकलौते बच्चे ज्यादा विगड़ जाते हैं, क्योंकि माता-पिता नौकरी करते हैं और दादा-दादी साथ नहीं रहते, जिसके वजह से युवा गलत रास्ते पर जा रहें हैं।

2. इसके अलावा बचपन से युवाओं को धार्मिक और नैतिक शिक्षा से दूर रखा जाता है, इसके कारण भी युवा गलत संगत में बैठने लग जाते हैं और उसका प्रभाव आवश्य उस पर पड़ता है।

3. आज के युवाओं के भटकाव का मुख्य कारण बेरोजगारी भी है। आज के शिक्षित युवाओं के पास बहुत-सी तकनीक है, जब उन्हें रोजगार नहीं मिलता तो वह इसका प्रयोग गलत उद्देश्य से करते हैं।

प्रश्न:- आज के युवाओं को सही रास्ते पर किस प्रकार लाया जा सकता है।

उत्तर- 1. युवा पीढ़ी को चरित्रवान बनाना तथा पौराणिक ज्ञान से अनुप्रमाणित होकर आधुनिक तकनीक और विज्ञान में भी किसी से पीछे न रहने की पद्धति का अनोखा संगम हमें युवाओं को पढ़ाना होगा।

2. आज के युवाओं को सही रास्ते पर लाने का सबसे बेहतर सुझाव, उन्हें हर समय व्यस्त रखना। यह कार्य शिक्षा देकर, खेलों की कोंचिग देकर, धार्मिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा और रोजगार देकर किया जा सकता है।

3. हमारी सरकार को इस प्रकार का प्रयास करना चाहिए, जिससे प्रत्येक युवा को मैट्रिक कक्षा से ही उसकी रोचकता को जाना जा सके। यदि बच्चा खिलाड़ी बनना चाहता है तो उसे उसकी रोचक खेल की ओर प्रेरित किया जाए, यदि वह शिक्षक, डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, बिजनेस मेन एवं कर्मचारी या अधिकारी बनना चाहता है, तो उसके अनुकूल ही उसके विषयों का चयन किया जाए। इस प्रकार के कार्य से

युवा अपने लक्ष्य की प्राप्ति भी जल्द कर लेगा और इससे समाज में असंतुलन भी पैदा नहीं होगा।

ले. मनिन्दर कौर
सहायक प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, फिरोजपुर (पंजाब)
मो. 8872104461

7.1.1.2.9 आधुनिक साहित्यकारों के द्वारा समाज के यथार्थ रूप का प्रस्तुतीकरण के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

जिस प्रकार हमारा समाज बदल रहा है, समाज की जरूरतें भी बदल रही हैं, वैसे ही समाज की समस्याएं के अनुसार साहित्यकारों का दृष्टिकोण भी बदल रहा है। आज का साहित्यकार पलायन या मुक्ति नहीं चाहता, बल्कि वह इसी समाज में रहते हुए आम लोगों में शांति और सद्भावना चाहता है। आज वह समाज को विभाजित करने की अपेक्षा पूर्ण विकसित और नये आयाम प्रदान करना चाहता है, जिससे नये मूल्य विकसित होते हों और यथार्थ अपने पूर्ण रूप से उभरने की योग्यता रखता हो। प्रस्तुत शोध में भी कुछ नाटक इस प्रकार के हैं, जो आज के समाज की यथार्थ स्थिति को प्रकट करते हैं और इंसानियत को जगाते हैं। जिसमें हिन्दी नाटक *मोहम्मद जलालुद्दीन* और *आज की पुकार* एवं पंजाबी नाटक *सुपर वीजा* और *पायदान* हैं।

डॉ. अजय शर्मा ने अपने नाटक *मोहम्मद जलालुद्दीन* द्वारा यह बताने की कोशिश की है कि समाज में वास्तविक शांति साम्प्रदायिक दंगों से नहीं; अपितु मानवता की स्थापना से होगी। आज हम जिस प्रकार चारों ओर धार्मिक दंगों को देखते हैं, तो इनमें से सहानुभूति प्रकट करने वाले लोग बहुत कम मिलेंगे, लेकिन इस नाटक में सलमा नामक पात्र हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक बनी है। यह नाटक आदर्शवादी होने के बावजूद भी, आज की समस्याओं को देखते हुए यथार्थवादी प्रतीत होता है। (60) नाटक *आज की पुकार* में भी आधुनिक समस्याओं पर चिंता प्रकट करते हुए, अपने पात्रों के माध्यम से आधुनिक युग की त्रासदी को बयान किया है। (18)

ऐसे ही पंजाबी नाटकों में नाहर सिंह औजला के द्वारा रचित नाटक *सुपर वीजा* की कथा भी आज के समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करता है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने आधुनिक पंजाब और भारत की दशा को प्रस्तुत किया गया है कि किस तरह एक बेटे के द्वारा माता-पिता को सुपर वीज़ा के अधीन विदेश में बुलाया जाता है और बेटे की पत्नी द्वारा सास-ससुर का अपमान किया जाता है। इस अपमान से दुखी होकर माता-पिता अपने देश वापस आ जाते हैं। (29) नाटक *पायदान* की बात करें, तो इन्होंने आज के समाज का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार आज के लोगों में जातिवाद की प्रवृत्ति बढ़ रही है और इस नाटक में आज की नारी की यथार्थ दृष्टि को भी प्रस्तुत किया गया है। (35)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने पंजाब के प्रसिद्ध साहित्यकार और प्रस्तुत नाटक के लेखक डॉ. अजय शर्मा जी से इस विषय को प्रस्तुत करते हुए, बातचीत की। डॉ. अजय शर्मा जी के द्वारा काफी नाटकों और उपन्यासों की रचना की गयी है और उनके साहित्य पर काफी शोध कार्य भी हो चुके हैं। मैंने अपने विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न: आज के कुछ साहित्यकार सामाजिक समस्याओं की यथार्थवादी स्थिति लिखने से गुरेज क्यूँ करते हैं?

उत्तर- सबसे बड़ी बात तो यह है कि सत्य लिखना बहुत मुश्किल है। जब हम उपन्यास और नाटक जैसी विद्याएं लिखते हैं, तो उसमें सत्य कहानी तो बहुत कम होती है। उदाहरण स्वरूप जैसे हम कोई कथावस्तु तो ले सकते हैं, लेकिन यदि आप उसमें कल्पना नहीं करते तो उसमें सफलता हासिल नहीं की जा सकती। हमने कोई सच्ची कहानी तो लिखनी नहीं है, इसके ऊपर तो अखबारें भरी पड़ी हैं; लेकिन साहित्यकार ने उसके साथ मिलती-जुलती कहानी लिखनी होती है। प्रत्येक साहित्यकार का उद्देश्य यही होता है कि उसकी रचना में ज्यादा से ज्यादा रोचकता बने, लेकिन कोरी यथार्थता से यह संभव नहीं।

प्रश्न: एक अच्छा साहित्यकार सामाजिक उन्नति में किस प्रकार सहायक हो सकता है।

उत्तर- हमारा मानना है कि साहित्य समाज की उन्नति में सहायक होता ही नहीं और न ही उसका कोई विशेष योगदान होता है। अगर साहित्य ही समाज को बदलता होता तो बहुत-से ऐसे देश जहाँ बड़े-बड़े साहित्यकार पैदा हुए हैं और उन देशों के

आज टुकड़े-टुकड़े न होते। हमारा साहित्य तो ऐसा है, जैसे बहुत ज्यादा अँधेरा हो तो उसमें एक दीया जगा दिया जाए, तो वह किसी को रौशनी दे सकता है और किसी को नहीं, यह होता है साहित्यकार का काम। समाज को तो राजनेता ही बदल सकते हैं।

डॉ. अजय शर्मा (साहित्यकार)

30 मधुवन कालौनी कपूरथला रोड, जालन्धर

मो. 9041334567

7.1.1.3 बदलते परिवेश के संदर्भ में सांकेतिक राजनीतिक कारकों के निवारक बिन्दुओं के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

बदलते विकास के संदर्भ में राजनीतिक विकास एक बहुआयामी प्रक्रिया है। राजनीतिज्ञों का काम सामाजिक जीवन में व्यवस्था स्थापित करना और विविध प्रकार की समस्याओं एवं चुनौतियों का निवारण करना होता है। समाज में केवल संघर्ष नहीं, बल्कि संघर्ष और सहमति दोनों बातें पायी जाती हैं। राजनीतिज्ञ अपने कार्यों को सरकार के द्वारा पूरा करते हैं। सरकार का अर्थ राजा अथवा राज्याध्यक्ष, संविधान, व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, पुलिस, सेना, दण्ड, कानून आदि के मिले जुले स्वरूप से है। राजनीतिक विकास समाज पर पड़ने वाले सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव, विकासात्मक परिवर्तन के कारण तथा विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं के द्वारा किए गए, कार्यों का विश्लेषण भी करता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें, तो राजनीतिक कारकों में सामाजिक समस्याओं का बौद्धिक आधार ग्रीक दार्शनिकों के चिन्तन से मिलता है। यूनान तथा रोमन विद्वानों में प्लेटो, अरस्तू आदि के चिन्तन में सरकार सम्बन्धी वर्गीकरण की जो चर्चा मिलती है, उसमें भी आम लोगों की विभिन्न समस्याओं का निवारण राजा एवं राजनीतिज्ञों के द्वारा निकाले जाने के संकेत मिलते हैं, जिसे आम जनता के द्वारा बनाया जाता है। इसलिए चयनित नाटकों में अंकित राजनीतिक समस्याओं के निवारण का सुझाव भी आम जनता से व्यावहारिक अध्ययन के द्वारा एकत्रित करने का प्रयास किया गया है।

सत्तर से अधिक वर्षों की प्रजातांत्रिक व्यवस्था ने हमारे राष्ट्रीय जीवन को कितना समृद्ध और कितना कमजोर किया, इसका लेखा-जोखा भी आम जनता से ही लेना बनता है। स्वाधीनता से पूर्व देश की आज़ादी के लिए संघर्ष करने वाले युवकों की एक पीढ़ी तो फांसी के फंदों को चूमती रही और काले पानियों में अपनी जवानी नष्ट करती रही। आज आज़ादी के इतने वर्ष पश्चात स्थिति क्या है? क्या नेताओं का समाज में सम्मान होता है? क्या जनता उनके आचरण को आदर्श मान सकती है? असंख्य अपराधी चुनाव जीत कर विधान सभाओं और संसद में जा पहुंचे हैं। ये तथाकथित जन-प्रतिनिधि क्या जनता को मार्ग दिखाने में सक्षम हैं? ऐसे कितने ही और प्रश्न हैं, जो हमारे चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में उत्पन्न हो रहें हैं,

जिनका जवाब आम लोगों और विशेषज्ञों को चयनित नाट्य-साहित्य में प्रस्तुत कथा को बताते हुए, निवारक बिन्दुओं को रेखांकित किया गया है।

7.1.1.3.1 बदलते राजनीतिक परिवेश में राजनेताओं और जनता के साथ पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

प्राचीन काल में नेता राजा के रूप में स्वीकार होता था, जो जनता के सुख-दुःख में भागीदार होता था, लेकिन आज बदलते परिवेश में राजा का स्थान नेताओं ने ले लिया है और उनका जनता के साथ सम्बन्ध भी पहले वाला नहीं रहा। अब उन्हें सिर्फ जनता से वोटों की जरूरत होती है, वोट मिल जाने के बाद वह जनता की सुध नहीं लेते, लेकिन नेता इस बात को भूल जाते हैं कि आज राजनीति केवल शासन के रूप तक सीमित नहीं है, नेता और जनता का सम्बन्ध एक सामाजिक संगठन भी है। सामाजिक आदर्श के रूप में लोकतंत्र वह समाज है, जिसमें कोई विशेषाधिकार युक्त वर्ग नहीं होता। जनता के द्वारा चुना व्यक्ति ही नेता होता है, यदि नेता जनता के साथ अच्छे सम्बन्ध नहीं रखता, तो जनता ही उसे बदल देती है। प्रस्तुत शोध के नाटकों में कुछ नेता पात्र इस प्रकार के हैं, जो जनता के साथ हमदर्दी नहीं रखते, जिनमें हिन्दी नाटक *सिंहासन खाली है* और *धारा एक सौ चवालीस* एवं पंजाबी नाटक *परियां* और *प्रगटिओ खालसा* हैं।

हिन्दी नाटक *सिंहासन खाली है* की कथा के अनुसार बताया गया है कि नेताओं के भाषण व्यवहार आदि सब जनता के लिए दिखाऊ चोला होता है, जिसके द्वारा वे सिहांसन तक पहुँचना चाहते हैं। आज के नेता वोटों के समय तो जनता की बहुत चापलूसी करते हैं और उन्हें बहुत बड़े-बड़े सपने भी दिखाते हैं, लेकिन सत्ता हासिल करने के बाद जनता नेता से समय मांगती है, लेकिन नेता ईद के चाँद हो जाते हैं। इस प्रकार की अनेक कथाओं का वर्णन इस नाटक में मिलता है। (12) नाटक *धारा एक सौ चवालीस* में राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह से प्रस्तुत किया गया है, जब हमारे आस-पास कर्फ्यू लग जाता है तो शहर के लोगों का जीना मुश्किल हो जाता है, जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। कोई नेता जनता की सार लेने नहीं आता। जब शांति होती है तो सब दिखावा करने आ जाते हैं। (83-84)

ऐसे ही स्थिति पंजाबी नाटक *परियां* में देखने को मिलती है, इस नाटक में वर्षा नामक पात्र अपने पति को नेताओं के आगे झुकने पर बुरा मनाती है और सच प्रकट करने को कहती है। वर्षा इस नाटक में परी है, परी से भाव, वह न तो झूठ बोलती है और न ही झूठ सहन करती है। जब उसे इस बात का पता चलता है कि उसके पति के साथ नेता झूठी सहानुभूति प्रकट करता है, तो वह अपने पति पर भी नाराज़ होती है कि हम जैसे लोगों ने इन नेताओं को सिर पर बिठा रखा है। (91) नाटक *प्रगटिओ खालसा* में ऐतिहासिक घटना के द्वारा प्रस्तुत किया कि जब गुरु नानक देव जी ने जाति-पाति के भेद-भाव को खत्म करने के उद्देश्य से लंगर प्रथा चलाने का प्रयास किया था, उनका उपदेश था कि चाहे राजा हो, चाहे रंक हो, उनमें कोई अंतर नहीं समझा जाएगा। (17)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने युवा नेता जगदीश कंबोज गोल्डी से बातचीत की। जगदीश कंबोज गोल्डी पहले ब्लाक युवा कांग्रेस प्रधान, जलालाबाद थे, फिर युवा जर्नल सेक्रेटरी कांग्रेस, पंजाब और बाद में आल इंडिया जर्नल सेक्रेटरी युवा कांग्रेस के प्रधान भी रहे हैं। जगदीश कंबोज गोल्डी ने LLB की उच्च शिक्षा प्राप्त की है। इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्नावली की गई:-

प्रश्न:- आज की जनता का नेताओं के प्रति आदरभाव क्यूँ घट रहा है?

उत्तर- लोकतंत्र में लोगों द्वारा ही सरकार का निर्माण किया जाता है। एक समय ऐसा भी हुआ करता था, जब जनता नेता को भगवान का दर्जा दिया करती थी, लेकिन कुछ नेताओं की गलत हरकतों के कारण जनता में दिन प्रतिदिन नेताओं के प्रति वे पुराना आदरभाव घटता जा रहा है। कुछ समय पहले नेता के किसी भी वचन को उसी तरह मान लिया जाता था, लेकिन आज हर वर्ग के लोग उस भाषण की समीक्षा करते हैं कि इसमें कितना झूठ है कितना सत्य है। ऐसी स्थिति बनने का कारण खुद नेता लोग हैं, क्योंकि उन्होंने स्थिति ही कुछ इस प्रकार की बना दी कि जनता के दिलों में उनके प्रति प्रेम कम होने लगा। आज के नेताओं में जनता प्रेम की भावना की जगह परिवारवाद, जातिवाद और सम्प्रदाय ने ले ली है। आए दिन जिस तरह से नेताओं के भ्रष्टाचार के किस्से बाहर आ रहे हैं, देश की जनता में नेताओं के प्रति उदासीनता बढ़ती जा रही है।

प्रश्न:- आज नेता और जनता के बीच, किस प्रकार सहानुभूति पैदा की जा सकती है।

उत्तर- आज प्रत्येक वर्ग के लोग छोटी से छोटी बात की जानकारी रखते हैं। पहले समय में होता था कि नेता लोग जनता को झूठे वायदे कर गुमराह कर लेते थे और उनकी वोटों से विधयाक बन जाते थे, लेकिन आज वह पहले वाली बात नहीं रही। आज जनता नेता से एक-एक वादे का हिसाब मांगती है, जो उन्होंने चुनाव के दौरान किए थे। आज के नेताओं को चाहिए कि वह सिर्फ वहीं वादे करें, जिन्हें वह जीतने के बाद पूरा कर सके और जीत के बाद उन वादों की ओर विशेष ध्यान भी देना चाहिए। नेताओं को चुनाव के दौरान धर्म और सम्प्रदाय में जनता को बांट कर, वोट नहीं मांगनी चाहिए, जो ऐसा करता है, उसे आज की जनता पसंद नहीं करती। हमारे जहाँ यह भी देखने को मिला है कि एक बार नेता वोट ले जाए, फिर पाँच साल नहीं आते। इससे भी जनता का रोष बढ़ता है। नेता को चाहिए कि वह समय-समय पर जनता के साथ सम्बन्ध बनाए रखे और आम लोगों की ख़ुशी-गमी में उनकी सुध लेता रहे, इससे जनता के साथ नेताओं के दोस्ताना सम्बन्ध बनेगे।

जगदीश कंबोज गोल्डी

(पूर्व आल इंडिया जर्नल सेक्रेटरी, युवा कांग्रेस)

दिल्ली, मो-9216300199

7.1.1.3.2 बदलते राजनीतिक परिवेश में साम्प्रदायिकता के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

आज भारत में शायद ही कोई ऐसा दिन बीतता होगा, जिस दिन दैनिक अखबार में साम्प्रदायिक दंगों का समाचार न आया हो। साम्प्रदायिक के अर्थ को जाँचते हुए, हम कह सकते हैं कि एक सम्प्रदाय वह व्यक्ति अथवा समूह है, जो अपने धार्मिक या भाषा समूह को एक ऐसी पृथक राजनीतिक तथा सामाजिक इकाई के रूप में देखता है, जिसके हित अन्य समूहों से पृथक होते हैं और जो अक्सर उनके विरोधी भी हो सकते हैं। आज के नेताओं में सत्ता की भूख, इतनी बढ़ गयी है कि वह अपनी कुर्सी के लिए लोगों की लाशों पर खेल जाते हैं। भारतीय चुनाव के समय

अनेक ऐसी घटनाएँ देखने को मिली है, जिसमें एक धर्म के लोग दूसरे धर्म पर दूषित प्रहार करते हैं और चुनाव के समय ही आतंकी हमले भी ज्यादा होते हैं, लेकिन चुनाव गुजर जाने के बाद, इन सबमें किसी-न-किसी मंत्री का नाम आवश्य आ जाता है। प्रस्तुत शोध में भी कुछ हिन्दी और पंजाबी नाटक के नेता पात्र हैं, जो ऐसा करते दिखायी दिए। जिनमें हिन्दी नाटक *सिहांसन खाली है* और *धारा एक सौ चवालीस* एवं पंजाबी नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* और *लोक मना दा राजा* हैं।

हिन्दी नाटक *सिहांसन खाली है* की कथा में इस प्रकार की कथा को देखा गया है। इसमें एक स्त्री पात्र बातों-बातों में नेता से पूछती है कि साम्प्रदायिक दंगे करने वाले कौन हैं? तो नेता साफ़ उत्तर दे देता है कि जब कोई समर्थन देने को तैयार नहीं, तो मजबूरन ऐसा ही करना पड़ता है। इस नाटक में साफ पता चलता है कि राजनेता किस प्रकार जीत के लिए नयी-नयी नीतियाँ बनाते हैं। (42) नाटक *धारा एक सौ चवालीस* में हम देखते हैं कि दो पहलवानों की कुश्ती का दंगल ही साम्प्रदायिक दंगे के दंगल में बदल जाता है। साम्प्रदायिक दंगों में जो लोग अपने संबंधियों को खो बैठते हैं, उनमें से अधिकतर पागलों की स्थिति में पहुँच जाते हैं। पीड़ित लोगों को समझ नहीं आता कि क्या करें? कहाँ जाए? (16)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* में कोई विदेशी कम्पनी पंजाब में ज़मीन खरीदना चाहती है, लेकिन कृषक उन्हें ज़मीन देने के लिए तैयार नहीं, फिर वह कम्पनी के मालिक पंजाब के किसी मंत्री से पैसे की बात करते हैं, तो मंत्री इस समस्या का निवारण उसे बताता हुआ कहता है कि यदि चालीस प्रतिशत कृषक ज़मीन देने को तैयार हो गए, तो बाकी कृषकों से तो अपने तरीके से ले लेंगे। नाटक के अंत में मंत्री साम्प्रदायिक दंगे करवा कर ज़मीन हड़प लेता है। (36) ऐतिहासिक नाटक *लोक मना दा राजा* में देख सकते हैं कि पहले किस प्रकार सभी धर्मों के लोग आपसी-प्रेम और भाईचारिक सांझ में रहते थे और उस समय के सत्ताधारी भी सभी धर्मों का आदरभाव करते थे। (35)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने राजनीति विज्ञान के विशेषज्ञ प्रोफेसर (डॉ.) एच.एस भारद्वाज जिन्होंने इस विषय पर यू.जी.सी नेट एवं पीएच.डी की डिग्री भी धारण की है और काफी लम्बे समय से कॉलेज में शिक्षा प्रदान कर रहें हैं। इसके आलावा भारद्वाज साहब सामाजिक समस्याओं के प्रति काफी चिंतित रहते

हैं और एक आदर्श राजनीतिक व्यवस्था की कामना भी करते हैं। इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- आज के साम्प्रदायिक दंगों में नेताओं की क्या भूमिका है?

उत्तर- आज़ादी से पहले विद्रोह आजादी के लिए होता था, लेकिन आजादी मिलने के बाद यह विद्रोह कुर्सी के लिए होने लगा। भारत में जब चुनाव होने होते हैं या हो जाए तो उसके बाद ही धर्म, जाति, आरक्षण आदि के नाम पर दंगे होते हैं। इस बात से स्पष्ट होता है कि नेता लोग अपनी सत्ता प्राप्त करने के लिए आम लोगों में धर्म, जाति और आरक्षण का सिक्का फैंकते हैं, जिससे प्रेरित होकर लोग दंगे करते हैं।

प्रश्न:- साम्प्रदायिकता को रोकने के उपाय बताए।

उत्तर- 1. शिक्षा-संस्थाओं तथा शिक्षा प्रक्रियाओं को इन तत्वों का विरोध करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

2. इसको बढ़ावा देने वाले समाचार पत्रों एवं साहित्य के प्रकाशनों के विरुद्ध कठोर कदम उठाए जाएं।

3. धर्म प्रचारकों के लोगों को भड़काऊ प्रचार की अपेक्षा सहिष्णुता के विकास के लिए सहयोग देना चाहिए।

4. नेताओं को अपने चुनाव प्रचारों के समय वचनों में हमदर्दी प्रकट करनी चाहिए।

5. साम्प्रदायिकता को रोकने के लिए धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देना चाहिए। प्रशासनिक व्यवस्था इतनी प्रभावशाली बनायी जानी चाहिए, कि साम्प्रदायिक तनावों का पूर्वानुमान लगाया जा सके तथा इन्हें रोकने के लिए कठोर कदम उठाए जा सकें।

डॉ. एच.एस. भारद्वाज, अस्सिटेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान)

मकान नं. 29, कीर्ति नगर, फिरोजपुर सिटी

मो. 7986799599

7.1.1.3.3 राजनीति सत्ता के दबदबे में भ्रष्टाचार का प्रफुल्लित रूप के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

राजनीतिक एवं प्रशासनिक लोक सेवकों से सदैव यह अपेक्षा रखी जाती है कि इनका आचरण शुद्ध, पवित्र एवं सभी प्रकार की कलंक कालिमा से मुक्त होगा, लेकिन हमारी राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था में कुछ अधिकारी, कर्मचारी और नेता इस प्रकार के आ गये हैं, जिन्होंने अपनी सत्ता के दबदबे में भ्रष्टाचार का जाल फैला दिया। इस प्रकार के भ्रष्टाचार के लिए मुख्य रूप से राजनेता ही जिम्मेदार हैं, वे इस प्रकार की स्थिति बना देते हैं, जिससे उन्हें दोबारा सत्ता में आने के लिए पैसों की कोई कमी न आए। इसलिए बदलते परिवेश से हम देखते हैं कि आम जनता का राजनेताओं को देखने का नजरिया ही बदल गया है। प्रस्तुत शोध में भी इस प्रकार की समस्या वाले नाटक हैं, जिनमें हिन्दी नाटक *आज की पुकार* और *धारा एक सौ चवालीस* एवं पंजाबी नाटक *कंधा रेत दियां* और *चंदन दे ओहले* हैं।

हिन्दी नाटक *आज की पुकार* में पंजाब के किसी गाँव के कुछ युवा मिलकर एक होटल खोलते हैं और उन्हें इसकी अच्छी कमाई होने लग जाती है, लेकिन उस क्षेत्र के एम.एल.ए. का पी.ए. उनसे चुनाव प्रचार के लिए पैसे लेने के लिए दबाव डालता है। इस स्थिति को देखते हुए, उस गाँव के युवा मीडिया वालों को सारी बात बता देते हैं, जिसके कारण मंत्री को मजबूरन माफ़ी मांगनी पड़ती है। (44-45) नाटक *धारा एक सौ चवालीस* में हम देखते हैं कि देश की भीतरी सुरक्षा एवं शान्ति व्यवस्था में पुलिस विभाग की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। परन्तु आज पुलिस जनता के प्रति उचित व्यवहार नहीं करती, अपितु वह तानाशाही स्वेच्छाचारी हो गई है, पुलिस थाणे में कभी भी पूरी फ़ोर्स नहीं होती, ज्यादा अधिकारी राजनेताओं की सुरक्षा में तैनात होते हैं और कुछ नेताओं की छत्रछाया में भ्रष्ट का माल इकठ्ठा करने में लगे होते हैं। (16-17)

पंजाबी नाटक *कंधा रेत दियां* में भंडारी नामक एक नेता किसी इंजीनियर अफसर को रिश्वत लेकर काम करने को कहता है, लेकिन वह अफसर ईमानदार होता है और साफ इंकार कर देता है, इससे वो नेता उसके तबादले की धमकी देकर चला जाता है। (22-23) नाटक *चंदन दे ओहले* में हम देखते हैं कि बनी पात्र यह सोचता है

कि इस देश में भ्रष्ट राजनीति और रिश्वतखोरी है, इसलिए वह यहाँ अपने भविष्य को सुरक्षित नहीं समझता है। (22)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने महिंद्र सिंह कचूरा से बातचीत की। महिंद्र सिंह कचूरा राजनीति से जुड़े ऐसा नेता है जिन्होंने M.Sc Food Technology की उच्च शिक्षा प्राप्त की और बाद में आम आदमी पार्टी में सरगर्म रहे, आम आदमी पार्टी ने इन्हें पूर्व विधानसभा चुनाव के समय जलालाबाद से MLA के उम्मीदवार के रूप में घोषणा की थी। आम आदमी पार्टी, पंजाब विधानसभा में विपक्ष की भूमिका निभा रही है। इस विषय को प्रस्तुत करते हुए, निम्नलिखित प्रश्नावली की गई:-

प्रश्न:- आधुनिक राजनीति सत्ता के दबदबे में भ्रष्टाचार का रूप कैसे प्रफुलित हो रहा है।

उत्तर- किसी भी देश या राज्य की वागडोर वहाँ के सत्ताधारी लोगों के पास होती है। सत्ताधारी वहीं लोग होते हैं जो राजनीति में आकर जनता की वोट हासिल कर कुर्सी पर बैठे हो। यदि सत्ताधारी नेता चाहे तो उसके देश अथवा राज्य में भ्रष्टाचार नहीं हो सकता, लेकिन आधुनिक राजनीति में नेता कुर्सी पर बाद में बैठता है और पाँच साल बाद सत्ता में आने के लिए पैसे इक्कठे करने की पहले सोचने लग जाता है। चुनाव लड़ने के लिए चुनाव प्रचार आदि पर बहुत खर्च हो जाता है, इस लिए सत्ता में आने पर वह लोगों की बाद में सोचता है, पहले अपने खर्च की पूर्ति करना चाहता है, इसके लिए वह अपने सगे-संबंधियों को टेंडर देकर या अपने करीबी अफसर लगा कर जनता का पैसा अपनी जेब में इकठ्ठा करते हैं। वह अफसर छोटे कर्मचारियों से महीना वसूल करता है और छोटे कर्मचारी जनता का गला दबाते हैं। इस प्रकार बेखोफ कर्मचारी दोगुनी रिश्वत लेते हैं। एक हिस्सा अपने पास रखते हैं और जो बचा वह एक कड़ी के रूप में ऊपर तक पहुँच जाता है।

प्रश्न:- राजनीतिज्ञों के दबदबे में हो रहे भ्रष्टाचार को कैसे रोका जा सकता है।

उत्तर- राजनीति कोई नौकरी नहीं, यह सेवा है। इस प्रकार की भावना प्रत्येक नेता में उत्पन्न होनी चाहिए। हमारी आम आदमी पार्टी इस बदलाव को लाने के लिए ही आयी है। जैसे दिल्ली में भ्रष्टाचार खत्म किया जा रहा है, हम भी चाहते थे कि हमारे पंजाब में भी ऐसा हो, जिस कारण ही हम इस पार्टी से जुड़े हैं। भ्रष्टाचार रोकने के

उदाहरण मैं आपको दिल्ली से दे रहा हूँ, दिल्ली में केजरीवाल ने शिक्षा को बहुत ज्यादा प्रोत्साहित किया है, जिससे प्रत्येक वर्ग शिक्षित हो सके और जब प्रयेक वर्ग को ज्ञान होगा तो भ्रष्टाचार किसी भी किस्म का क्यों न हो, उसका अंत जरूर होगा। दूसरा चुनाव के समय खर्च कम करने के लिए चुनाव कमीशन को कोई सख्त कदम उठाने की जरूरत है क्योंकि जब किसी भी उम्मीदवार को गलत लोगों के द्वारा फंडिंग दी जाएगी तो वह बाद में अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए गलत काम के लिए उम्मीदवार पर दबाव बनाएंगे।

नेता को इस बात की फिकर नहीं होनी चाहिए के उन्हें चुनाव में पैसा देकर ही जीत प्राप्त करनी है। बल्कि उसमें इस प्रकार भावना होनी चाहिए वह नेकी और ईमानदारीपूर्वक जनता के कार्य करे। इस प्रकार जनता उसको उपेक्षित कभी नहीं करेगी। हमारे देश की राजधानी दिल्ली की उदाहरण को सारे देश वासियों ने देखा है। केजरीवाल ने वोटरों को यह साफ़ कह दिया था कि यदि आपको लगे कि मैंने काम किया है तभी वोट देना।

महिंद्र सिंह क्चुरा
(MLA उम्मीदवार, आम आदमी पार्टी, पंजाब)
पता- जलालाबाद, मो-97814-65008

7.1.1.3.4 बदलते परिवेश में राजनेताओं का न्याय एवं पुलिस प्रशासन में दखल के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

किसी भी देश में शांति बनाए रखने के लिए पुलिस विभाग अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन आज के राजनीतिज्ञों ने पुलिस एवं न्याय दोनों को दूषित कर दिया है। पुलिस को मजबूरन जनता का पक्ष कम और नेताओं का पक्ष ज्यादा लेना पड़ता है। एक अनुशासन के रूप में प्रशासन व्यवस्था का अर्थ जनसेवा है, जिसे 'सरकार' कहे जाने वाले व्यक्तियों के संगठन के द्वारा व्यवस्थित किया जाता है, लेकिन सरकार के रूप में बैठा व्यक्ति न्याय एवं पुलिस में इतना दखल देता है कि कानून को अपनी कठपुतली बनाने का प्रयास करता है। प्रस्तुत शोध में भी इस विषय से सम्बंधित नाटक हैं, जिनमें हिन्दी नाटक

सिहांसन खाली है और *धारा एक सौ चवालीस* एवं पंजाबी नाटक *परियां* और *सौदागर* है।

हिन्दी नाटक *सिहांसन खाली है* की कथा के अनुसार एक नेता, किसी व्यक्ति की पत्नी के साथ दुष्कर्म करता है, जब उसका पति विरोध करता है तो, नेता पुलिस से कह कर उसे मरवा देता है, पुलिस न चाहते हुए भी, उसकी आज्ञा का पालन करती है। इस नाटक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है कि एक नेता किस तरह पुलिस और न्यायलय को अपनी कठपुतली बना कर रखता है। (33-34) नाटक *धारा एक सौ चवालीस* में पात्र वी.आई.पी. नेता प्रशासन की कमियों को स्पष्ट रूप से जनता के सन्मुख प्रस्तुत करता है। (82)

पंजाबी नाटक *परियां* की कथा के अनुसार एक मनीषा लड़की ललित सेठ नामक नेता के ऑफिस में काम करती है, ललित सेठ उसके साथ बुरी नीयत से गलत व्यवहार करता है, जिसका वह विरोध करती हुई न्यायलय और पुलिस प्रशासन में जाती है, लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि ललित सेठ ने मनीषा पर ही केस डलवा कर जेल भेज दिया। (74) नाटक *सौदागर* में इस समस्या का यथार्थ रूप देखा जा सकता है। इस नाटक का मुख्य पात्र सौदागर कुछ नेताओं और उच्च अफसरों के साथ मिल कर नशे का व्यापार करता है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार बदलते परिवेश में क्रिमिनल व्यक्ति राजनेताओं को पैसे देकर न्याय एवं पुलिस प्रशासन को प्रभावित करते हैं। (82)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने ऐसी समस्याओं के कारणों और कोर्ट के द्वारा निवारण करते देखने वाले एक जसप्रीत सिंह ढिल्लों नामक वकील से इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- आज के न्याय एवं पुलिस प्रशासन में राजनीतिज्ञों की गलत उद्देश्य से दखलंदाजी को किस प्रकार रोक सकते हैं?

उत्तर- आज के न्याय एवं पुलिस प्रशासन में राजनीतिज्ञों की दखलंदाजी बहुत बढ़ गयी है। आज प्रत्येक विभाग को चाहिए कि वह अपना काम ऑनलाइन जनता के सामने करे। इस प्रकार सभी अफसर अपना काम कानून के अनुसार करेंगे और कोई भी नेता उस पर दबाव नहीं डाल सकता। आज के मीडिया-कर्मियों को भेदभाव और पक्ष-विपक्ष को छोड़ कर ज्यादा से ज्यादा कवरेज करनी चाहिए।

प्रश्न:- अच्छी प्रशासनिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए अपने सुझाव दें।

उत्तर- यदि हम अपने देश की उन्नति चाहते हैं तो सबसे पहले हमें अपनी प्रशासनिक व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान देना होगा। एक अच्छी और सुचारों प्रशासनिक व्यवस्था एक विकासशील समाज और देश की निशानी होती है। इसको अनुशासित बनाने के लिए, हमें ऐसे नेताओं का चुनाव करना चाहिए, जिसमें इसको सुधारने की योग्यता हो, वोटों का इस्तेमाल हमें व्यक्तिगत हितों के लिए नहीं करना चाहिए, बल्कि हमारे देश और समाज को प्रमुखता देनी चाहिए। इसके अलावा अकेली सरकार भी कुछ नहीं कर सकती। हमें सरकार के आदेशों की पालना करते हुए उनका साथ देना चाहिए।

जसप्रीत सिंह ढिल्लों (वकील)
जुडिशल कोर्ट काम्प्लेक्स, फाजिल्का
मो. 94658-12288

7.1.1.3.5 वर्तमान की राजनीति में जातिवाद एवं परिवारवाद को बढ़ावा के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

आधुनिक युग की राजनीति में जातिवाद एवं परिवारवाद की बात करें, तो हम कह सकते हैं कि जाति और राजनीति के बीच एक तरफा सम्बन्ध होता है। नेता भी जातियों को राजनीति के आखाड़े में लाकर, जातिगत लाभ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सिर्फ राजनीति ही जातिग्रस्त नहीं होती, जाति भी राजनीतिग्रस्त हो जाती है। आधुनिक युग में हम देखते हैं कि नेता सत्ता हासिल करने के बाद अपनी जाति के लोगों और परिवार के सदस्यों को उसे लाभ पहुँचाने का प्रयास करता है। इस एक तरफा लाभ के कारण ही आम जनता में रोश की लहर है। प्रस्तुत शोध के कुछ नाटकों में ऐसी स्थिति देखी गयी है, जिसमें हिन्दी नाटक *सिहांसन खाली है* और *हुमा को उड़ जाने दो* एवं पंजाबी नाटक *कंधा रेत दियां* और *प्रगटिओ खालसा* है।

हिन्दी नाटक *सिहांसन खाली है* की कथा के अनुसार जब नेता के अपनी जाति और परिवार के लोग उनसे नाराज़ हो जाते है, तो वह उन्हें कहता है 'भाइयों !

मैं विश्वास दिलाता हूँ, कि सिहांसन पर बैठते ही सर्वोच्च पद अपनी जाति और परिवार के लोगों में ही वितरित करूँगा। आप लोगों को कोई भी शिकायत नहीं होगी। इस नाटक की वार्तालाप यदि हम अपनी राजनीतिक व्यवस्था में देखें, तो बहुत सारे नेताओं की सोच ऐसी ही होती है। (47-48) नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में हम देखते हैं कि बचपन से ही हुमायूँ एकांत प्रेमी, उसकी लिखावट अच्छी न थी, न ही राजपाट में शौंक था किन्तु बाबर चाहते थे कि वह कच्ची उम्र में ही राजपाठ करना सीखे। (46)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *कंधा रेत दियां* में भी एक नेता जिसका नाम भंडारी है, वह भी ऐसा ही करता है। भंडारी पहले तो अपने क्षेत्र में उच्च पदवी के अफसर अपने सगे संबंधियों को नियुक्त करता है और बाद में उनसे गलत काम करवाता है, यदि कोई अफसर इंकार करता है तो वह उस पर दबाव बनाता है। इस नाटक की कथा हमारे समाज के यथार्थ से जुड़ी है। (64-65) नाटक *प्रगटिओ खालसा* में सत्ताधारी औरंगजेब अपने सैनिक बल पर यह चाहता है कि सारे देश में लोग इस्लाम धर्म को कबूल कर ले, जिसके कारण वह कश्मीरी पंडितों पर बहुत अत्याचार करता है। (55)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने शिरोमणि अकाली दल पार्टी के पूर्व ब्लाक प्रधान सरदार कत्तर सिंह से बातचीत की। कत्तर सिंह की उम्र काफी है और वह लम्बे समय से राजनीति पार्टियों से जुड़े हुए हैं और राजनेताओं के दावपेंच को बड़ी गहराई से जानते हैं। इस विषय को प्रस्तुत करते हुए मैंने निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न: राजनीति में दिन प्रतिदिन बढ़ रही जातिवाद और परिवार की भावना का कारण क्या है?

उत्तर- 1. जब एक पीढ़ी सत्ता में रह कर इसका सुख प्राप्त कर लेती है, तो उनकी इच्छा होती है कि उसकी औलाद भी इसी राजनीति में आ जाए, इसका मुख्य कारण तो यही है।

2. राजनेता कभी दूसरे व्यक्तियों पर विश्वास नहीं करता, वह जिस प्रकार की भी नीतियों का निर्माण करता है, उसे अपने नजदीक वालों को ही बताता है, जिसमें उसके परिवार वाले और जाति के लोग होते हैं।

3. कुछ नेताओं की भावना एक राष्ट्र की होती है, जिसमें वह किसी खास जाति को लेकर एक खास उद्देश्य से सत्ता में आया होता है। जिसके कारण वह अपनी जाति और परिवार के लोगों को ही उत्साहित करा है।

4. कुछ लोगों के दिमाग में ही उच्च वर्ग, निम्न वर्ग की मानसिकता ज्यादा होती है, जिसकी वजह से वह ऐसा करते हैं।

प्रश्न: राजनीति को जातिवाद के जंजाल से कैसे छुटकारा दिलाया जा सकता है।

उत्तर- 1. धर्मनिरपेक्ष की भावना का ज्यादा प्रचार किया जाए।

2. जनता को भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए के वह उस उम्मीदवार को अपना वोट दे, जिस में योग्यता है न कि किसी जाति के आधार पर अपनी वोट का इस्तेमाल करें।

3. प्रत्येक चुनाव के समय अलग-अलग जाति के लोगों को सीट का आरक्षण दिया जाए।

4. विशेष जाति और धर्म के नाम पर प्रचार करने वाले नेताओं के खिलाफ चुनाव कमीशन को सख्त एक्शन लेना चाहिए।

सरदार कत्तर सिंह, (पूर्व ब्लाक प्रधान) शिरोमणि अकाली दल

जिला-फाजिल्का (पंजाब)

मो- 97795-38032

7.1.1.3.6 आधुनिक राजनीति में बढ़ते स्वार्थ के कारण परिवर्तित परिवेश के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

आधुनिक युग में राजनीतिक व्यवस्था के दूषित होने से समाज भी दूषित होने लगा है। अपराधियों को कानून व्यवस्था का किसी प्रकार का भय नहीं, क्योंकि कोई भी बड़े से बड़ा जुर्म करने पर उन्हें बड़े-बड़े नेताओं

का सहयोग प्राप्त हो जाता है। आज के नेता पैसे और वोटों के लिए, इतने स्थार्थी हो गये हैं कि अपराध करने वाले लोगों की बिना सोचे-समझे मदद करते हैं। बस उनसे अपना स्वार्थ पूरा होता हो। आज चुनाव के पहले तो नेता लोगों की बहुत चापलूसी करते हैं, लेकिन सत्ता हासिल कर लेने के बाद दिखायी नहीं देते। प्रस्तुत शोध के चयनित नाटकों में इस प्रकार की समस्या भी देखने को मिलती है, जिसमें हिन्दी नाटक *ताजमहल का टेंडर* और *आज की पुकार* एवं पंजाबी नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* और *प्रगटिओ खालसा* है।

हिन्दी नाटक *ताजमहल का टेंडर* की कथा के अनुसार एक स्वार्थी नेता का पर्दाफाश होता है। इस नाटक के माध्यम से यह बताने का यतन किया गया है कि किस प्रकार नेता जनता से टेक्स के रूप में वसूल किया धन, अपने घर में ले जा रहें हैं। इसमें नेता घटिया ठेकेदार को ताजमहल बनाने का टेंडर बहुत ज्यादा रेट पर दिलवाता है और ठेकेदार से सीधे रूप में कुछ प्रतिशत पैसे रखने की बात करता है। (41) नाटक *आज की पुकार* में मिनी नामक पात्र तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था पर चिंता प्रकट करती है, क्योंकि एक नेता उनसे जबरदस्ती बड़ी रकम चुनाव के लिए माँगता है तो मिनी, केसरचन्द से इस बात पर चिंता प्रकट करती है। (54)

पंजाबी नाटक *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* की कथा के अनुसार एक विदेशी कम्पनी को अपना प्रोजेक्ट बनाने के लिए ज़मीन की जरूर होती है, लेकिन जिस गाँव में यह प्रोजेक्ट लगना, वहाँ के कृषक ज़मीन देने के लिए तैयार नहीं। इसलिए उस कम्पनी के अधिकारी स्थानीय नेता से बातचीत करते हैं। बातचीत के दौरान नेता उस ज़मीन के पैसे में से मोटी रकम अपने लिए लेने का समझौता करता है और बाद ऐसी योजना बनाता है कि लोग चाह कर भी अपने अधिकारों को नहीं बचा सके। इस प्रकार नेता जनता के हित्तों की बजाय अपने स्वार्थों की पूर्ति करने लगे हैं। (39-40) ओंकारप्रीत सिंह के द्वारा रचित नाटक *प्रगटिओ खालसा* में हम देखते हैं कि इसमें जहांगीर की साफ़ स्वार्थ की नीति दिखायी देती है, एक बार गुरु अर्जन देव जी से जहांगीर के बेटे खुसरों ने शरण मांगी तो गुरु जी ने इंकार नहीं किया, क्योंकि गुरु जी तो अक्सर ही बेसहारों को शरण देते रहते थे, लेकिन जब बादशाह जहांगीर को इस बात का पता चला तो उनके स्वार्थ की आग भटक पड़ी और वह गुरु जी को अपना दुश्मन मानने लगा एवं गुरु जो गिरफ्तार कर लिया गया। जहांगीर ने गुरु जी को रावी के किनारे जान-बूझकर इतना जुल्म किया गया कि उसके आगे ओर कोई

व्यक्ति बोल न पाए। इस बात का उस समय की प्रजा ने बहुत विरोध किया और राजा को एक स्वार्थी कहा। (26)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने एक आम वोटर, वृद्ध व्यक्ति नश्तर सिंह से इस विषय की बातचीत की। नश्तर सिंह राजनीतिक नीतियों का काफी ज्ञान रखता है। मैंने अपने इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- नेताओं के स्वार्थी होने का कारण क्या है?

उत्तर- आज के सभी नेताओं को स्वार्थी नहीं कहा जा सकता। आज भी हमारे देश के ऐसे नेता हैं, जिसके ऊपर न तो भ्रष्टाचार का आरोप लग सका और न ही चुनाव के दौरान गलत शब्दावली और पैसे, नशा आदि के वितरण का दोष लगा है। हाँ, हम कह सकते हैं कि कुछ नेता राजनीति में लोगों की सेवा करने के लिए नहीं, बल्कि एक बिजनेस मेन की तरह आए हैं। सत्ता के दौरान उनकी आमदनी कितने गुना बढ़ गयी। नेता के स्वार्थी होने का सबसे बड़ा कारण, उसके अंदर हार जाने का डर होता है जो उसे दिन रात अपनी सत्ता में फिर वापस आने के लिए सोचता है। उसकी सोच यह होती है कि यदि उसके पास पैसा और शक्ति होगी, तो इसके बल पर वह दुबारा सत्ता में आ सकता है। पैसा और शक्ति प्राप्त के लिए, वह घोर स्वार्थी बन जाता है।

प्रश्न:- आज के नेताओं में ईमानदारी और नैतिकता कैसे लाई जा सकती है।

उत्तर- आज हमारे देश को राजनेताओं की नहीं, समाज सेवकों की जरूरत है। आज पढ़े-लिखे शिक्षित वर्ग को राजनीति में आना चाहिए, जिससे हमारे देश का नैतिक मीनार ऊँचा हो। आज के नेताओं में ज्यादा ईमानदारी आम जनता ही ला सकती है क्योंकि वह वोटों के समय ईमानदार व्यक्ति को बिना किसी व्यक्तिगत लालच के वोट दें। जिस नेता ने जनता की निस्वार्थ सेवा की उसी को फिर से बहुमत दें, इससे ईमानदार नेताओं का भी मनोबल बढ़ेगा।

नश्तर सिंह (आम वोटर)

गली नं-6 साहिबजादा अजीत सिंह नगर, अबोहर रोड, मुक्तसर

मो- 94179-61491

7.1.1.4 बदलते परिवेश के संदर्भ में सांकेतिक आर्थिक कारकों के निवारक बिन्दुओं के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

प्राचीनकाल में हमारा भारत आर्थिक रूप से पूर्ण संपन्न था, इसी वजह से इसको सोने की चिड़िया कहा जाता था, लेकिन कुछ जानी-अनजानी घटनाओं ने, इसकी व्यवस्था को बिगाड़ दिया, बहुत सालों से इस समस्या को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है, लेकिन अभी तक सफलता हासिल नहीं हुई। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में आर्थिक विकास की वास्तविक क्रांति आई, ब्रिटिश शासन में भारत आर्थिक विकास ज्यादा नहीं कर सका, विकास की यह दर इतनी कम थी कि अंग्रेजों ने भारत को मात्र कच्चे माल की आपूर्ति करने तथा पश्चिमी निर्यातकों के लिए अच्छा बाजार बना कर रख दिया था। आर्थिक विषमता को दूर करने हेतु, नयी नीतियों का भी गठन किया गया। युवाओं को अधिकाधिक संख्या में शिक्षित कर, उन्हें रोजगार से जोड़ा गया और बहुत बड़ी संख्या में उद्योगों का निर्माण हुआ। वैज्ञानिकों, समाज सुधारकों, लेखकों, कलाकारों एवं अन्य बुद्धिजीवी वर्ग ने भी जन-जन से जुड़कर लोगों में आर्थिक स्थिरता लाने के लिए, नयी प्रेरणा और चेतना से संचार किया, ताकि देश में सामाजिक विकास के साथ-साथ आर्थिक विकास में भी स्थिरता लाई जा सके। नोबेल पुरस्कार विजेता भारतीय अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने भी कहा है कि सामाजिक चेतना के बिना आर्थिक विकास सम्भव नहीं है, इसलिए हमने प्रस्तुत शोध के माध्यम से सांकेतिक आर्थिक समस्याओं के कारकों के निवारण के लिए सामाजिक स्तर पर व्यावहारिक अध्ययन किया, जिससे चयनित नाटकों की समस्या को बताते हुए, आम आदमी के सुझावों को रेखांकित किया जाए। इस व्यावहारिक अध्ययन में जैसे चयनित नाटकों के पात्र थे, उदाहरण स्वरूप दुकानदार, कृषक, कर्मचारी, व्यापारी और बेरोजगार आदि, उनसे मिला और उन्हें नाटकों की कथा बताते हुए और उसकी स्थिति के अनुकूल प्रश्न प्रस्तुत किए है, जिनका उन्होंने उत्तर दिया।

7.1.1.4.1 बदलते परिवेश में पूंजीवादी व्यवस्था एवं आर्थिक वर्ग का स्वरूप के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

पूंजीवादी व्यवस्था और आर्थिक वर्ग विभाजन की बात करें, तो इसकी वजह से आज हमारे भारत में आर्थिक विषमता पैदा हो रही है, क्योंकि आर्थिक प्रणाली और उत्पदानों के साधनों पर निजी कम्पनियों का अधिकार होने लगा है, जिससे अधिकांश व्यवस्था पूंजीपतियों के हाथों में रहने लगी। जिसके कारण सबसे ज्यादा शोषण निम्न वर्ग का होने लगा है। भारत में दिन प्रतिदिन अमीर और गरीब का अंतर बढ़ता ही जा रहा है। भारत का 80 प्रतिशत पैसा थोड़े से लोगों के पास है। प्रस्तुत शोध में भी कुछ नाटक ऐसे हैं, जिनकी कथा में समस्याओं का कारण आर्थिक वर्ग विभाजिन हैं, क्योंकि पूंजीवादी लोग छोटे वर्ग से नफ़रत करते हैं। हिन्दी नाटक *अमली* और *सकुबाई* एवं पंजाबी नाटक *परियां* और *पायदान* में इस प्रकार की समस्या को देखा गया है।

हिन्दी नाटक *अमली* की कथा बिहार के किसी गाँव से सम्बंधित है। उस गाँव में कुछ साहूकार और पूंजीपति लोग भी रहते हैं और बहुत सारे गरीब लोग भी, गरीब वर्ग के लोग जब अपनी रोजी-रोटी कमाने के लिए, किसी अन्य राज्य में जाते हैं, तो पूंजीपति वर्ग पैसों के दम पर उनकी बेटियों का शारीरिक शोषण करते हैं। गरीब आदमी चाह कर भी विरोध नहीं कर पाते, क्योंकि पुलिस और प्रशासन में उनकी पहुँच होती है। (55) नाटक *सकुबाई* में मुम्बई शहर में गरीबों की त्रासदी को प्रस्तुत करती है। *सकुबाई* नाटक में सकुबाई गरीब परिवार से है, जिसके पास रहने के लिए घर तक नहीं। (32)

ऐसे पंजाबी नाटक *परियां* की कथा है इसमें एक पूंजीपति साहूकार अपने ऑफिस में काम करने वाली गरीब सुंदर लड़कियों का शोषण करता है, जिसका वह चाह कर भी विरोध नहीं कर पाती। यदि कोई विरोध करती भी तो उनको नौकरी से निकाल दिया जाता है। आज हमारे देश में यह एक अजीब पूंजीपतियों का तानाशाही राज है, जिसमें गरीबों का दम घुटता है। (33) नाटक *पायदान* पूंजीपति और गरीब वर्ग के अंतर को साफ स्पष्ट करता है, इस नाटक की मुख्य पात्र एक डॉक्टर है जो इस प्रकार के आर्थिक अंतर के कारण गरीबी की त्रासदी को देखते हुए, भगवान को कोसती है। (40)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने प्रोफेसर पूनम रानी से बातचीत की। जो अर्थ शास्त्र के व्याख्याता है। इन्होंने इस विषय पर यू.जी.सी नेट एवं एम.फिल की डिग्री भी प्राप्त की है। प्रो. पूनम रानी स्वयं एक गाँव रहती है और गरीबों की दशा को देख कर काफी चिंतित है। उन्होंने इस विषय पर गंभीरता से अध्ययन कर अपनी रचनाओं में इस पर चर्चा भी की है। मैंने अपने इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- भारत में आर्थिक वर्ग विभाजन और गरीब-अमीर में अंतर क्यूँ बढ़ रहा है?

उत्तर- पुरानी कहावत है कि पैसे को पैसा जोड़ता है। इस प्रकार अमीर और गरीब का अंतर बढ़ता जा रहा है। यदि आज सरकार गरीबों के लिए, कोई सुविधा भेजती है तो उसका पूर्ण लाभ उन्हें नहीं मिलता, बल्कि अमीर इसका लाभ पहले ही ले लेते हैं। इसके अलावा गरीबों के बहुत-से लोग अनपढ़ होते हैं, जिसकी वजह से वह सरकार की योजनाओं को जान नहीं पाते, लेकिन थोड़े-से पढ़े-लिखे लोग उन योजनाओं का लाभ लेकर अपना काम चला लेते हैं। इस कारण गरीब और गरीब होता जा रहा है और अमीर और अमीर होते जा रहें हैं।

प्रश्न:- समाज के आर्थिक वर्ग विभाजन को किस प्रकार खत्म किया जा सकता है।

उत्तर- आज पूरे विश्व का समाज दो वर्गों में विभाजत है, एक गरीब और दूसरा अमीर वर्ग। इस वर्ग विभाजन के कारण ही मानवीय अधिकारों का घाण होता जा रहा है। आज अमीर वर्ग को गरीबों के प्रति सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए। इसके अलावा प्रत्येक सरकार को चाहिए कि जो भी गरीब लोगों के लिए योजनाएं बनायी हैं, उसकी पूर्ण समीक्षा भी करें कि उस योजना का वास्तव में गरीब वर्ग को लाभ मिल रहा है या नहीं। सरकार और सामाजिक कार्यकर्ताओं को गरीबों के बच्चों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि इनके बच्चे पढ़-लिख जाएंगे तो वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी हो जाएंगे।

प्रो. पूनम रानी
एस.यू.एस कॉलेज, गुरुहर सहाय (पंजाब)
मो. 9781004289

7.1.1.4.2 बदलते परिवेश में बढ़ती हुई महँगाई के कारण जन-सामान्य की त्रासदी के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

महँगाई की समस्या अकेले हमारे देश की ही नहीं है, बल्कि पूरे विश्व की एक गंभीर समस्या है, जो दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आर्थिक दृष्टि से बहुत-से देश इस समस्या से मुक्त नहीं हो पा रहे। कालाधन, जमाखोरी, राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, गरीबी, बढ़ती जनसंख्या उद्योगों का घाटा भयानक बीमारियां आदि ऐसे कारण है, जो निरंतर महँगाई को बढ़ाये जा रहे हैं। इस महँगाई से अमीर वर्ग को कोई ख़ास फर्क नहीं पड़ता, लेकिन मध्य और निम्न वर्ग की कमर टूट जाती है। प्रस्तुत शोध के नाटकों में भी कुछ ऐसे पात्र हैं, जो इस समस्या से पीड़ित हैं, जिनमें प्रमुख हिन्दी नाटक *आज की पुकार* और *सकुबाई* एवं पंजाबी नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* और *छां विहूणे* हैं।

हिन्दी नाटक *आज की पुकार* में मध्य वर्ग के लोगों को महँगाई की मार से झूझते हुए दिखाया है कि किस प्रकार मकान का कराया, राशन, बच्चों की फ़ीस, बिजली का बिल आदि दिन प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे हैं, लेकिन इसके विपरीत कमाई के साधन और आम व्यक्ति की एक दिन की मजदूरी में कोई खास बढ़ोतरी नहीं आई। इस समस्या का इस नाटक में बड़ी गहराई से वर्णन किया गया है। (36) सकुबाई के पति को एड्स हो जाती है और वह जानबूझकर शहर छोड़ कर गाँव आ जाता है कि उसने तो मरना ही है लेकिन उसकी दवा-दारू की खातिर उसका परिवार कहीं गलत रास्ता न अपना ले। जब उसकी पत्नी उसे लेने आती है तो वह आगे से महँगाई की मार को देखकर अस्पताल जाने से इंकार कर देता है। (60)

इसी प्रकार पंजाबी नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* में भी एक मध्य वर्गीय कृषक की दशा को प्रस्तुत किया गया है, जिसका बढ़ती महँगाई के कारण उसके और उसके परिवार का मंदा हाल हो जाता है। उसने पहले बहन की शादी की उसका कर्ज, बाद में उसकी माता की दवा-दारू के महँगे मूल्यों के कारण, उसकी ज़मीन बिक जाती है और वह कृषक से मजदूर बन जाता है। (33) नाटक *छां विहूणे* में महँगाई की बात करें, तो इस नाटक में इसका यथार्थ रूप देखा जा सकता है, इसमें ऐसे परिवार की कथा को प्रस्तुत किया गया है, जिस परिवार में सिर्फ एक सदस्य सुधीर ही कमाता है और ज्यादा महँगाई के कारण उनके सैलरी आने से दो दिन पहले ही राशन समाप्त हो जाता है और उन दिनों ही उनके घर एक मेहमान आ जाता है। (13)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने एक मध्य वर्गीय सूझवान कृषक चमकौर सिंह से इस विषय को लेकर बात की। चमकौर सिंह किसानी के साथ-साथ सब्जी ऊगाने और मुर्गीपालन का भी काम करता है। मैंने अपने इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- बढ़ती महँगाई के कारण क्या हैं?

उत्तर- महँगाई हमारे देश के लिए एक बड़ा आर्थिक संकट है। गरीब लोगों के लिए दो वक्त की रोटी का इंतजाम करना मुश्किल हुआ पड़ा है। महँगाई के प्रमुख कारणों में अमीर वर्गों के द्वारा जरूरी वस्तुओं को स्टोरेज करके रखना और जब उसकी कीमत बढ़ जाए, उसको बाज़ार में लेकर आना। इसके अलावा कई बार प्रकृतिक आपदा के कारण जरूरी फसलों के नष्ट हो जाने के कारण भी महँगाई बढ़ जाती है। आज एक बात तो आम देखी गयी है कि कृषक किसी भी फल, सब्जी और फसल को ऊगाता है तो उस कृषक से व्यापारी वर्ग 10 रुपए लेकर बाज़ार में उसे 50 रुपए बेचता है। कृषक छ: महीनों में 10 रुपए कमाता है और व्यापार एवं दुकानदार छ: घण्टे में 50 रुपए कम लेता है यह भी महँगाई का कारण है।

प्रश्न:- बढ़ती महँगाई को किस प्रकार रोका जा सकता है।

उत्तर- उपभोक्ता और सरकार के बीच अच्छे गठबंधन से महँगाई पर लगाम कसी जा सकती है। महँगाई बढ़ते ही सरकार को देश में ब्याज दर नहीं बढ़ा देनी चाहिए। सरकार के अधिकारियों को समय-समय पर यह जांच करनी चाहिए कि कोई व्यापारी या फिर कोई अन्य व्यक्ति काला बाजारी या मुनाफाखोरी तो नहीं कर रहा, इसलिए समय-समय पर यह सर्वे करके जांच करनी चाहिए, कि वस्तु का दाम कितना है, यह मानक से ज्यादा तो नहीं। यदि ज्यादा है, तो उस दुकानदार के खिलाफ कारवाई करनी चाहिए। इसके अलावा सरकार को आयात और निर्यात की ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिए, जिससे वस्तु की कीमत स्थिर रहे सके।

चमकौर सिंह (कृषक)
गाँव-चक जानीसर, जिला मुक्तसर
मो. 82888-49661

7.1.3.3 बदलते परिवेश में दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई बेरोजगारी के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

काम करने की इच्छा रखने वाले को काम न मिलने को बेरोजगारी कहते हैं। यदि हम प्राचीनकाल की बात करें, तो उस समय बेरोजगारी की समस्या ही नहीं थी। उस समय हर व्यक्ति और हर वर्ग के पास अपना-अपना काम था और उसकी आर्थिक दशा उसके अनुकूल थी। कुछ लोग चरखा चलाते थे, कुछ गुड़ बनाते, कुछ लोग खिलौने बनाते, कुछ खेती करते, कुछ साहूकार दुकाने चलाते थे, इस प्रकार सारे कार्यों की एक कड़ी बनी हुई थी और हर वर्ग उसमें अपनी भूमिका निभा रहा था, लेकिन जैसे-जैसे वैज्ञानिक क्रांति आई। लोगों ने अपने आर्थिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए इन कामों को नष्ट करना शुरू कर दिया और इन लोगों के काम खत्म होने लगे, जिसके कारण बेरोजगारी बढ़ने लगी। प्रस्तुत शोध के चयनित नाटकों में भी इस समस्या का यथार्थ रूप देखने को मिला। जिसमें हिन्दी नाटक *सकुबाई* और *कहते हैं जिसको प्यार* एवं पंजाबी नाटक *कल्लर* और *सुपर वीजा* हैं।

हिन्दी नाटक सकुबाई की कथा में छुपी बेरोजगारी को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक की मुख्य पात्र *सकुबाई* है और पहले वह किसी गाँव में अपने मायके परिवार के साथ रहती है और बाद में सकुबाई शहर आ कर बाई का काम करने लगी। सकुबाई इस नाटक में बताती है कि किस प्रकार एक गरीब वर्ग शिक्षा से दूर रह जाता है और शिक्षा से दूर व्यक्ति को रोजगार कहाँ से मिलेगा। एक बेरोजगार स्त्री और पुरुष अपनी सारी जिन्दगी एक-एक पैसे के लिए कोसता रहता है। (21) नाटक *कहते हैं जिसको प्यार* में हम देखते हैं कि एक अखिल नामक पात्र पीएच.डी समाप्त करने पर नौकरी पाने के लिए अपनी प्रेमिका गीता की सहायता लेने को मजबूर है क्योंकि उसका पिता उसे नौकरी दिला सकता है। आगे से गीता उसकी सहायता इस शर्त पर करने को तैयार होती है कि वह पहले उससे शादी की तारीख निश्चित करे। (26)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *कल्लर* की कथा के माध्यम से इस बात को स्पष्ट किया गया है कि युवा भारत में रोजगार न मिलने के कारण ही विदेश जाते है और वहाँ वह किन-किन परिस्थितियों का शिकार होते हैं। इस नाटक का पात्र दलबीर सिंह जहाँ नौकरी न मिलने के कारण विदेश जाता है, लेकिन उसका एजेंट उसके साथ धोखा कर उसे गलत जगह भेज देता है। जिसके कारण उसे पुलिस की मार और जेल की

हवा भी खानी पड़ती है। अंत वह बेरोजगार मुश्किल से अपनी जान बचाकर पंजाब वापस आते हैं। (17) नाटक *सुपर वीजा* में भी इस प्रकार की समस्या को देखा गया है। (23)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने एक मध्य वर्गीय बेरोजगार ज्ञान चन्द जिसने 2008 में BA और बाद में B.ED एवं दो MA की डिग्री प्राप्त करने के बाद भी अभी तक रोजगार नहीं मिला। उन्होंने अपनी त्रासदी को भी प्रस्तुत किया। मैंने अपने इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- दिन प्रतिदिन बेरोजगारी बढ़ने के कारण क्या हैं?

उत्तर- 1. प्राइवेट स्कूलों के ज्यादा होने के कारण सरकारी स्कूलों में सरकार के द्वारा नौकरियों को कम निकालना। इसके कारण भी बेरोजगारी बढ़ रही है।

2. बड़े पैमाने पर मशीनों का अंधाधुंध प्रयोग बेरोजगारी का एक प्रमुख कारण है। इनके कारण मनुष्य के श्रम की आवश्यकता बहुत कम हो गयी है।

3. इसके अलावा हमारी जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है और रोजगार के अवसरों में कम वृद्धि हो रही है। भारत में व्याप्त अशिक्षा भी बेरोजगारी का मुख्य कारण है।

4. आज के मशीनी युग में शिक्षित और कुशल व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। हमारे देश में व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा की कमी है। शिक्षित व्यक्ति शारीरिक मेहनत के काम करने से कतराते हैं और सभी सफेदप नौकरी तलाशते हैं, जिससे यह समस्या बढ़ रही है।

प्रश्न:- हमारे देश से बेरोजगारी कैसे खत्म की जा सकती है।

उत्तर- हमारे देश की बहुत सारी समस्याओं की जड़ बेरोजगारी है, यदि युवाओं को रोजगार दिया जाए, तो उन्हें हम भटकने से बचा सकते हैं। बेरोजगारी को खत्म करने के लिए व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। साथ ही शिक्षित युवाओं को नौकरी देने के लिए ज्यादा से ज्यादा उद्योगों का निर्माण किया जाए। इसके अलावा भारत एक खेती प्रधान देश है, इसलिए खेती को एक लाभदायक धंधा बनाया जा सकता है।

ज्ञान चन्द
गाँव-गंधड़ तहसील- फाजिल्का, जिला फाजिल्का।
मो. 99887-59666

7.1.1.4.4 बदलते परिवेश में कृषक का आर्थिक संघर्ष के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि है और कृषि करने वाले लोग ही कृषक कहलाते हैं। कृषकों की उन्नति से ही देश की उन्नति संभव है, लेकिन दुर्भाग्य से हमारे देश में कृषक सबसे ज्यादा दुखी है और सबसे ज्यादा ख़ुदकुशी कर रहें हैं। स्वतंत्रता पूर्व काल से ही भारतीय कृषकों की दशा अच्छी नहीं रही। आज भी यह दिन प्रतिदिन और गंभीर होती जा रही है। राजनेताओं को वोटों के समय किसानी मुद्दे याद आते हैं, लेकिन चुनाव के बाद सब भुला दिए जाते हैं। प्रस्तुत शोध में भी कुछ नाटक इस प्रकार के हैं, जिनमें कृषकों की समस्या को प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया गया है। इन नाटकों में हिन्दी नाटक *आज की पुकार* और *गगन दमामा बाज्यो* एवं पंजाबी नाटक *कल्लर* और *निक्के सूरजां दी लड़ाई* है।

हिन्दी नाटक *आज की पुकार* में कृषक अपनी कम आमदनी से परेशान दिखायी देते ही हैं, साथ ही वह इस बात से भी परेशान हैं कि आज खाद, स्प्रे आदि सब बहुत ज्यादा महँगे हो गये हैं, जिसके कारण हमारी आय पहले जितनी नहीं रही और साथ ही इन खाद स्प्रेयों का बहुत ज्यादा प्रयोग करने की वजह से कैंसर की बीमारी बढ़ने लगी है। यह बीमारी भी हम कृषकों को ही ज्यादा लग रही है। वह कृषक इसके लिए अपने-आपको दोषी मानता है। (14) नाटक *गगन दमामा बाज्यो* में लिखते हैं कि एक निरीक्षण से पता चलता है कि बड़े साहूकार और पटवारी किसानों का शोषण किस प्रकार करते हैं। (43)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *कल्लर* में एक कृषक सख्त मेहनत करने के बावजूद भी सारी जिन्दगी कर्जे में ही डूबा रहता है। वह कृषक अपनी जीवनगाथा सुनाता हुआ कहता है कि इस ज़मीन में पहले बहुत ज्यादा कल्लर था, हमने बहुत मेहनत कर इस कल्लर को तोड़ा है और आज यह आमदनी देने लगी तो घर एवं बच्चों की शादी के खर्चे बढ़ गए। वह कहता है कि एक कृषक का सारा जीवन ही इस प्रकार बीत जाता है। वह सारी जिन्दगी सुख की तलाश करता रहता है। (38) नाटक *निक्के सूरजां दी*

लड़ाई में भी कृषक की आर्थिक मंदाहाली को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक का मुख्य पात्र चरना किसान है, जो अपनी बेटी की शादी, माता की बीमारी, भाई के नशे, ज्यादा घरेलू खर्च, ट्रैक्टर की किश्ते और खेती से आमदन कम होने के कारण कर्ज़ में डूब जाता है और उसकी सारी ज़मीन का इकरारनामा साहूकार अपने नाम कर लेता है, जब वह तहसील से घर आकर सब बताता है, तो उस किसान की माँ जमीन बिकने के सदमे को सहन नहीं कर पाती और अपनी मानसिकता को खो बैठती है। (39-40)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने एक वृद्ध कृषक बलविंदर सिंह से बातचीत। बलविंदर सिंह एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति है और किसानी समस्याओं को लेकर तर्क-वितर्क में भी काफी सतर्क रहता है। मैंने अपने इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- भारतीय कृषक की वर्तमान समस्याएं कौन-सी हैं?

उत्तर: सारे देश का अन्नदाता कहलाने वाला कृषक आज खुद भूखा रह रहा है, इससे बड़ी कृषकों के लिए त्रासदी क्या हो सकती है? कृषकों की समस्याओं को देखें, तो आबादी बढ़ने के साथ-साथ खेतों का आकार दिन प्रतिदिन छोटा होता जा रहा है। इस कारण खेती मशीनों का प्रयोग छोटे कृषकों के लिए थोड़ा मुश्किल हो रहा है। गरीबी तथा ऋणग्रस्तता के कारण कृषक अपनी उपज कम कीमतों पर बिचौलियों को बेचने के लिए मजबूर हैं और ऊपर से सरकार खेती विरुद्ध आर्डिनेंस पास कर, फसलों का कम से कम खरीद दर को खत्म किए जा रही है। खेती के लिए आवश्यक मूलभूत सुविधाओं जैसे मंडीकरण, स्टोरेज, बिजली, पानी, खाद और स्प्रे आदि की कमी है। जिसके कारण खेती उत्पादों का बाजार प्रभावित होता है। कृषकों की उत्पादों की गुणवत्ता अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप नहीं। इससे कृषि उत्पादों का निर्यात नहीं हो रहा है, इसके आलावा प्राकृतिक आपदाएँ भी कृषकों की समस्याओं को बढ़ा देती हैं।

प्रश्न:- आज के कृषक की दशा को किस प्रकार सुधारा जा सकता है।

उत्तर- आज भारत के कृषकों के प्रति सरकार और आम लोगों को सहानुभूति प्रकट करने की विशेष जरूरत है। आज के कृषकों को चाहिए कि खेती के साथ-साथ, इससे सम्बंधित क्षेत्र जैसे अंडे का उत्पादन, मांस का उत्पादन, दूध का उत्पादन और मत्स्य

के उत्पादन की ओर भी ध्यान दें। हालांकि, सरकार इसके लिए राष्ट्रीय पशुधन मिशन जैसी योजना भी चला रही है। कर्ज माफ़ी जैसी छोटी सुविधा नहीं देनी चाहिए, बल्कि भविष्य में कृषक खुशहाल रहें, इस प्रकार की योजनाएं बनायी जाएं। खेती उत्पादों के भंडारण और उनके वितरण वाले पहलू पर सरकार को ध्यान देना होगा, क्योंकि हमारे यहाँ उत्पादन पर्याप्त मात्रा में होने के बावजूद भी एक बड़ा वर्ग ऐसा है जो खाद्यान्न के अभाव से जूझ रहा है। हालांकि सरकार ने इसके लिए राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन जैसे उपाय जरूर किए हैं, लेकिन अभी भी कहीं सफलता नज़र नहीं आ रही है। सरकार को स्वामीनाथन रिपोर्ट की सारी शर्तों को लागू भी करना चाहिए और msp को खत्म न करें। जिससे कृषकों की दशा सुधर सके।

बलविंदर सिंह (कृषक)
गाँव-होज खास, जिला- फाजिल्का
मो. 95305-08345

7.1.1.4.5 बदलते आर्थिक परिवेश में भ्रष्ट व्यवस्था का स्वरूप के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

रिश्वतखोरी आज की आर्थिक व्यवस्था को खोखला बना रही है। कम शब्दों में यदि हम रिश्वतखोरी के विषय में लिखे तो, इसके अनुसार यदि कोई शासकीय कर्मचारी को जो वेतन मिलता है, उससे अधिक पैसा स्वयं के लिए या किसी अन्य के लिए घूस के रूप प्राप्त करता है या प्राप्त करने को तैयार हो जाता है, वह या तो उपहार लेता है या पक्षपात करता है, वह रिश्वतखोरी की परिधि में आता है। यह समस्या हमारे सिस्टम में प्रवेश कर गयी है। यदि कोई भी कर्मचारी या अधिकारी रिश्वत न भी ले, तो हमारे लोग अपना काम जल्दी से करने के लिए उसे जबरदस्ती देते हैं। प्रस्तुत शोध में कई नाटक ऐसे जिसमें इस समस्या के अंतक को देखा गया है, जिसमें प्रमुख हिन्दी नाटक *ताजमहल का टेंडर* और *गगन दमामा बाज्यो* एवं पंजाबी नाटक *कंधा रेत दियां* और *प्रगटिओ खालसा* हैं।

हिन्दी नाटक *ताजमहल के टेंडर* की कथा के अनुसार एक व्यक्ति अफसरों को रिश्वत देकर जमुना नदी के किनारे पड़ी हुई, बेकार ज़मीन को आम भाव से दस-बीस गुना ज्यादा बेच देता है, लेकिन उसको ज़मीन के पैसों की प्राप्ति के लिए भी क्लर्कों

को रिश्वत देनी पड़ती है। नाटककार ने इस नाटक की कथा को ऐतिहासिक आधार बनाते हुए समकालीन समस्याओं से जोड़ा है, जिससे आधुनिक प्रशासन को सुधारा जा सके। है। (32) नाटक *गगन दमामा बाज्यो* में इस समस्या को बड़ी गंभीरता से लिया गया है। इस नाटक में एक पात्र काला बाजारी पर चर्चा करता हुआ कहता है- सुनो व्यापारी का जाति और समुदाय नहीं बल्कि उसका आधार होता है पैसा और परिवार। और यह भ्रष्टाचार व्यापार से ही तो फैलता है। (83)

पंजाबी नाटक *कंधा रेत दियां* का मुख्य विषय ही रिश्वतखोरी है। इस नाटक में एक भंडारी नामक व्यक्ति ने अफसरों को रिश्वत देकर नकली कोकीन का काफी धंधा किया। जिससे वह बहुत अमीर हो गया है और अपने क्षेत्र के लोगों पर अपनी दहशत भी रखता है। भंडारी आज भी किसी अफसर को रिश्वत देने का प्रयास करता है, लेकिन जब वह इंकार देता है वह भंडारी उस पर बहुत दबाव डालता है। (67) नाटक *प्रगटिओ खालसा* में हम देखते हैं कि बड़े लोक रिश्वत के द्वारा किसी भी फैसले को अपनी ओर कर लेते हैं और गरीबों की कोई सुनवाई नहीं होती। इस नाटक में हम देखते हैं कि एक गरीब परिवार काजी के आगे फरियाद करते हैं कि साहूकार के उनका बनता हक़ दिला दिया जाए, वह साहूकार को भी बुला लेता है। गरीब औरत अपने छोटे बच्चे की ओर संकेत कर न्याय की गुहार लगाती है, उसी समय साहूकार काजी को एक तरफ ले जाता है और वहाँ उसकी जेब में कुछ पैसे डाल देता है। (05)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने ऐसी समस्याओं के कारणों और कोर्ट के द्वारा निवारण करते देखने वाले एक अमनदीप शर्मा नामक वकील से इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- रिश्वतखोरी बढ़ने के कारण क्या हैं?

उत्तर- आज भारत का कोई भी मंत्रालय शेष नहीं बचा है, जहाँ पर रिश्वतखोरी ने अपना रंग न दिखाया हो। रिश्वतखोरी के बढ़ने के कारणों में हम लिख सकते हैं कि आज का मनुष्य कितना कुछ हासिल करने के बाद भी उसकी और अधिक प्राप्त करने की लालसा कभी समाप्त नहीं हुई, जिसके कारण वह रिश्वत लेता है, इसके अलावा यदि अफसर खुद रिश्वत देकर नौकरी पर लगा है तो वह रिश्वत अवश्य लेगा। ऐसे ही कई बार किसी अफसर पर सीनियर अफसरों या नेताओं के द्वारा दबाव बनाया जाता

है कि उन्हें महीने के इतने रुपए दे या किसी काम को पूरा करने के लिए कहा जाए, जो पैसों से होता है, तो वह अपने घर से नहीं देगा, उसने अपने पद का दुरुपयोग कर जनता से रिश्वत लेगा।

प्रश्न:- अफसरों में रिश्वतखोरी को कैसे रोका जा सकता है।

उत्तर- आज हमारे देश में रिश्वतखोरी रोकने के लिए अनेक उपायों का प्रयोग किया जा रहा है, लेकिन इसे रोकने में पूरी सफलता हासिल नहीं हो सकी। आज हमारे समाज में नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा की कमी आ रही है। यदि इन्हें स्कूल-कॉलेज में पढ़ाया जाए, तो आने वाले भविष्य के अफसरों में रिश्वतखोरी की कमी लायी जा सकती है। दूसरा अफसरों का वेतन पूरा किया जाए, यदि उन्हें जरूरत अनुसार वेतन मिलेंगा तो वह रिश्वत लेने से गुरेज करेंगे। तीसरा बड़े अफसरों और नेताओं को छोटे कर्मचारी पर पैसे लेना का दबाव नहीं डालना चाहिए। चौथा हमें चुनाव के समय बिना पैसे एवं अन्य वस्तु के लिए ईमानदार नेताओं को वोट देना चाहिए, जिससे वह ईमानदारी से काम कर सके। पांचवा हमारे देश में सख्त से सख्त कानून बनाया जाए, जिससे रिश्वत देने और लेने वाले दोनों पर कार्यवाही हो।

अमनदीप शर्मा (वकील)
जुडिशल कोर्ट काम्प्लेक्स, फाजिल्का
मो. 94173-11089

7.1.1.4.6 बदलते परिवेश में व्यावसायिक व्यापार के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

आधुनिक युग में लागत लेखांकन बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया; आज चाहे कृषक हों, मजदूर हों, दुकानदार हों और कारोबार हों, वह अपनी लागत एवं खर्च का लेखा रखता है। भारत में भी सब अपना लेखांकन रखते हैं और इस बात को महसूस भी कर रहें हैं कि प्रत्येक वर्ग में पहले जैसी कमाई नहीं रही। बदलते परिवेश के साथ-साथ सभी वर्गों की आमदनी क्यों कम होती जा रही है? आज आमदनी कम होने के कारण ही बेरोजगारों और गरीबों की तदाद बढ़ती जा रही है। इस प्रकार की समस्या प्रस्तुत शोध के कुछ नाटकों में भी देखने को मिली है, जिसमें

हिन्दी नाटक *आज की पुकार* और *धारा एक सौ चवालीस* एवं पंजाबी नाटक *कल्लर* और *परियां* हैं।

हिन्दी नाटक *आज की पुकार* में पात्र दया, इस बात की चिंता प्रकट करता है कि हमारे देश की बनी वस्तुओं हमारे बाजारों में कम बिकती है और चीन की वस्तुओं की बिक्री ज्यादा है। इस नाटक में दया सीधा इस बात को स्पष्ट करता है कि हमारे देश के बाज़ार की गिरावट का कारण चीनी वस्तुओं का आयात है। उनका कहना है कि हमारे बाज़ार में चीनी मिले न मिले, लेकिन चीनी सामान जरूर मिल जाएगा। (18) नाटक *धारा एक सौ चवालीस* में हम देखते हैं कि दंगों के कारण हालात इतने बिगड़ जाते हैं कि कर्फ्यू लगाने की नोबत आ जाती है। हम देखते हैं कि धारा 144 लगा दी जाती है जिसके तहत एक स्थान पर पाँच से अधिक लोग एक स्थान पर इकठ्ठे नहीं हो सकते, जिसके कारण बाजार में मंदी का दौर आ जाता है। (29)

इस प्रकार पंजाबी नाटक *कल्लर* में भी इस प्रकार की समस्या को देख सकते हैं। इस नाटक में एक कृषक का पुत्र दलबीर सिंह इस बात की चिंता करता है कि खेती में भी खाद, स्प्रे, तेल आदि का खर्च बहुत ज्यादा हो जाता है और आमदन बहुत कम होती, इसलिए वह यहाँ न रहकर विदेश जाना चाहता है, लेकिन विदेश में भी ऐसी ही स्थिति देखता है। (79) *परियां* नाटक में मिसिज मेहता एक निम्न वर्ग की स्त्री है और उसका पति बलवंत सिंह एक नशेड़ी है। मिसिज मेहता एक प्राइवेट नौकरी करती है, जिससे वह अपना गुजारा मुश्किल से करती है और ऊपर से उसका पति बलवंत, उससे जबरदस्ती पैसे लेने आता है। मेहता अपनी त्रासदी को प्रकट करती हुई कह रही है। (78)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने अशोक कुमार नामक एक दुकानदार से इस विषय को लेकर बातचीत की। अशोक कुमार के बुजुर्ग भी लगातार दुकानदारी और व्यापार का काम करते रहें हैं। अशोक कुमार के पास बैठे, उनके पिता केवल कुमार ने बताया कि चार पीढियों तक तो मुझे भी पता है कि हम यहीं काम कर रहें हैं। उसके बाद मैंने अशोक कुमार से अपने इस विषय को प्रस्तुत करते हुए, निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- क्या आज के दुकानदार और व्यापारी वर्ग की आमदनी पहले के मुकाबले कम हुई है? यदि हाँ तो कारण बताए।

प्रश्न:- इसमें कोई संदेह नहीं कि दुकानदारों और व्यापारी वर्ग के लोगों की आमदनी पहले के मुकाबले कम हुई है, इसके बहुत सारे कारण हैं, जिनमें दिन प्रतिदिन प्रत्येक वस्तुओं पर सरकार के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार का कर लगाया जाता है, जिससे वस्तु की कीमत बढ़ जाती है और ग्राहक उतनी कीमत देने को तैयार नहीं, इस लिए उसमें मुनाफा कम करना पड़ता है, इसके आलावा आज बेरोजगारी की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ गयी है। जिसके कारण जब उन्हें कोई और रोजगार नहीं मिलता, तो वह इस प्रकार का काम करने लग जाते हैं, जिसके कारण वस्तु को बेचने वालों में एक मुकाबला हो जाता है और ग्राहक कम रेट की ओर आकर्षित होने लगता है। जिसके कारण भी आमदनी कम हो रही है।

प्रश्न:- दुकानदार और व्यापारी वर्ग को किस प्रकार की राहत की जरूरत है।

उत्तर- आज के दुकानदार और व्यापारी वर्ग को राहत की जरूरत है। सरकार को इनकी ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि आज ईजीडे और हाल-माल जैसी शॉपिंग दुकानों के खुल जाने कारण, आम दुकानदार और व्यापारी को ठेस लगी है, इसलिए छोटे दुकानदारों और व्यापारियों पर टैक्स थोड़ा कम किया जाए। साथ ही प्रत्येक वस्तु का मुनाफे के बाद एक निश्चित मूल्य निर्धारित किया जाए, जिससे ग्राहक एक से दूसरी दुकान की ओर न जाए।

अशोक कुमार (दुकानदार)
जलालाबाद जिला-फाजिल्का
मो. 70870-99600

7.1.1.4.7 बदलते आर्थिक परिवेश में बढ़ती गरीबी दर के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

निर्धनता और गरीबी से सामाजिक निराशा जन्म लेती है तथा समाज में प्राय: उथल-पुथल का खतरा पैदा होने की सम्भावना बनी रहती है। इसलिए 'गरीबी हटाओ' आज की सरकार का प्रमुख उद्देश्य बन गया है। भारत के करोड़ों लोगों के पास खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए वस्त्र तथा रहने के लिए

मकान नहीं हैं। कुछ गरीब लोगों का जीवन स्तर अति निम्न है। इस गरीबी के कारण ही चोरी-डकैती आदि अपराध बढ़ते जा रहें हैं। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य भी भारत के निर्धन और गरीबों की समस्या के विभिन्न पहलूओं की विवेचना करना है। प्रस्तुत शोध में कुछ पात्र ऐसे हैं जो गरीबी से झूझ रहें हैं। इस विषय से सम्बंधित हिन्दी नाटक *काल कोठरी* और *सकुबाई* एवं पंजाबी नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* और *सौदागर* है।

हिन्दी नाटक *काल कोठरी* की कथा के अनुसार एक रजत पात्र जो शादीशुदा है और थिएटर का कर्मी है, लेकिन बेरोजगार होने के कारण उसके परिवार की दशा अच्छी नहीं है। उसके घर इतनी गरीबी है कि एक समय का खाना तक नहीं, लेकिन उस रजत पात्र की सोच सामाजिक समानता लाने की है, इस स्थिति को उसकी पत्नी बड़े विलाप से प्रस्तुत करती है। (09) नाटक *सकुबाई* में हम देखते हैं कि शंकुतला की बहन बसंती गरीबी के चलते घर से भाग गई। पैसे कमाने के लिए वह गलत रास्ते को अपना लेती है। जिसके चलते वह बाद में आत्महत्या भी कर लेती है। पुलिस वाले शंकुतला को सूचना देते हैं- "धन्धा करती थी"। (45)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* में हम गरीबी का ऐसा रूप देखते हैं, जिसके आगे आदमी हर समय हारता ही जाता है और उस व्यक्ति के लिए हरऱोज कोई नयी मुसीबत ही खड़ी हो जाती है। वह जितना कमाते हैं, उसमें आधे से ज्यादा तो बीमारी पर खर्च हो जाता है। इस नाटक के पात्र सारी जिन्दगी इसी चक्की में पिसते रहते हैं और अंत में एक पशु की तरह उनकी मौत हो जाती है, जिस पर अफसोस करने वाला कोई नहीं होता। (39) नाटक *सौदागर* में प्रस्तुत किया गया है कि गरीबी का कारण अपनी आमदनी से ज्यादा खर्च करना है। (93)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने कामरस की प्रोफेसर निशा चौहान से बातचीत की। निशा चौहान चंडीगढ़ के पास मनीमाजरा के वासी हैं और गुरुहर सहाय कॉलेज में नौकरी करते हैं। प्रो. निशा चौहान सामाजिक कार्यों में अपना काफी योगदान देते हैं। देश में कोरोना महामारी के समय गरीबों के पास खाने की कमी आ रही थी। प्रो. निशा ने अपने पति पवन कुमार के साथ मिल कर अपने आस-पास के कुछ गाँव में गरीबों को राशन भी बांटा। इस विषय को प्रस्तुत करते हुए मैंने निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- हमारे देश में दिन प्रतिदिन गरीबी बढ़ने के कारण क्या हैं?

उत्तर- 1. लोगों के पास रोजगार की कमी।

2. उचित एवं तकनीकी शिक्षा की कमी।

3. उद्योगों की कमी।

4. बढ़ती जनसंख्या और राजनीतिक कारण।

5. सरकार की रोजगार प्रदान करने की नीतियों में असफलता।

प्रश्न: हमारे देश को गरीबी से मुक्त कैसे किया जा सकता है।

उत्तर:- 1. शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाना।

2. तकनीकी शिक्षा युवकों को मुफ्त प्रदान करना।

3. उद्योगों को बढ़ाना।

4. भ्रष्टाचार को दूर करना।

5. बढ़ती जनसंख्या को रोकना।

6. FDI की ओर विशेष ध्यान दें।

निशी चौहान
अस्सिटेंट प्रोफेसर (कामरस)
मकान नं-52 सुभाष नगर मनीमाजरा, चंडीगढ़
मो. 89683-34415

7.1.1.5 बदलते परिवेश के संदर्भ में सांकेतिक मनोवैज्ञानिक कारकों के निवारक बिन्दुओं के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

प्राचीनकाल में ऋषि-मुनियों के दिव्यज्ञान एवं वर्षों के गहन तप, अनुसंधान के परिणामस्वरूप जो अथाह ज्ञान उन्होंने लिपिबद्ध किया, उसी से अनेकों महान ग्रन्थों की रचना हुई है। ये ग्रन्थ भारतवर्ष के अपार ज्ञानभंडार का परिणाम हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हमारे पूर्वज चिंता, नैराश्य, भय आदि को दूर करने के लिए मेलों, त्यौहारों, सांस्कृतिक

गतिविधियों, भजन, यज्ञ आदि संस्कारों एवं धार्मिक अनुष्ठान करते थे। उक्त आयोजन मात्र मनोरंजन का साधन नहीं, अपितु ऐसे प्रयास थे, जिसमें लोग समय-समय पर एकत्र हों, परिचय बढ़े, सामूहिक भावना का विकास हो तथा भय दूर हो। नृत्य-संगीत से शारीरिक एवं मानसिक व्यायाम हो एवं चिंता, निराशा दूर हो जाए। धार्मिक अनुष्ठानों से आत्मविश्वास, स्वास्थ्य एवं नैतिकता में वृद्धि होने के साथ-साथ पर्यावरण शुद्ध हो। विद्वजनों ने प्रत्येक महाज्ञान को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक-एक श्लोक एवं मंत्र में समाहित कर दिया था। मनोविज्ञान के इतिहास की जड़े हजारों वर्ष गहरी ही नहीं, बल्कि ज्ञान के अनेक क्षेत्रों से सम्बंधित है, धर्म, जादू, दर्शनशात्र और विज्ञान सभी का मनोविज्ञान की उत्पत्ति में योगदान है। ईसा से पूर्व छठी शताब्दी के दार्शनिकों के विचारों में अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं की विवेचना मिलती है।

आज विश्व भर के प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी में भागदौड़ और चुनौतियां भरी पड़ी हैं। जिसकी वजह से वह मानसिक घुटन महसूस करने लगा है। जब किसी देश के लोग मानसिक व शारीरिक रूप से स्वस्थ होंगे, तभी वह उन्नति कर सकता है। मनोवैज्ञानिक साहित्यकारों को समाज में बढ़ रही समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए, उनकी समस्याओं का निवारण करना चाहिए, चूँकि समाज भविष्य व वर्तमान की चुनौतियों से निपट सके।

मानव स्वभाव की प्रकृति होती है कि वातावरण में उसे कोई अभाव अथवा त्रुटि दिखती है तो यह आंकलन, विश्लेषण करता हैं तथा त्रुटि को दूर करने के उपाय खोजने लगता है। क्रमबद्ध विकास में वह उत्तरोत्तर की गयी खोजों को प्रस्तुत करता जाता है। मानव भूतकाल से ज्ञान प्राप्त करके, उसे समकालीन परिस्थिति के अनुसार क्रियान्वित करता है, इसी प्रकार हमने चयनित नाटकों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों को प्रस्तुत कर समाज में व्यावहारिक अध्ययन कर संकेतिक समस्याओं के कारकों को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

7.1.1.5.1 बदलते परिवेश में नैतिक अवमूल्यन का मनोवैज्ञानिक पक्ष के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

नैतिक मूल्यों को समझदार लोग अच्छे रास्ते पर चलने का मार्ग और ईमानदारी से जीवन व्यतीत करने का सिद्धान्त बताते हैं, साथ ही नैतिक मूल्यों की

पालना करने वाले बड़ों की इज्जत करते हैं और सत्यभाषी होते हैं। वह कभी भी झूठ नहीं बोलते। प्राचीनकाल से भारतीय परम्पराओं और संस्कृति में नैतिक मूल्यों का बहुत महत्त्व रहा है, लेकिन दुर्भाग्य से आधुनिकता आते-आते, इसमें भी बदलाव आ गया। आज लोग मानसिक द्वन्द्व में जी रहें हैं, किसी के प्रति सहृदय की भावना प्रकट करना कष्टकारी लगता है। बदलते नैतिक मूल्यों में आज भी हमारे समाज में कुछ इस प्रकार के पात्र हैं, जिनमें इंसानियत जिंदा है। प्रस्तुत शोध के नाटकों में भी इस प्रकार का संदेश देने वाले कुछ नाटक है जिनमें हिन्दी नाटक *मोहम्मद जलालुद्दीन* और *आज की पुकार* एवं पंजाबी नाटक *सुपर वीज़ा* और *चंदन दे ओहले* हैं।

हिन्दी नाटक *मोहम्मद जलालुद्दीन* साम्प्रदायिक दंगो में एक ऐसे समय का प्रतीक है, जब प्रत्येक व्यक्ति में धर्म की आग जल रही होती है, तो सलमा नामक मुस्लिम लड़की दूसरे धर्म के व्यक्ति को बचाती है। सलमा मानसिक रूप से नैतिकता से भरी हुई है, उसके घर साम्प्रदायिक दंगों से पीड़ित एक हिन्दू मदद के लिए आता है और वह बिना किसी जाति-पाति देखें, उसको अपने घर में पनाह भी देती है और उसका इलाज भी करती है। आज के साम्प्रदायिक धार्मिक दंगे करने वाले लोगों को नसीहत देती है कि धर्म से बड़ी इंसानियत होती है। (57) नाटक *आज की पुकार* में भी हम देखते हैं कि पात्र किस प्रकार बदले नैतिक मूल्यों पर चिंता करते हैं। (16)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *सुपर वीज़ा* में नैतिक मूल्यों का हनन होता हुआ दिखाया है, इस नाटक की कथा के अनुसार एक बेटा अपने माता-पिता को विदेश अपने पास बुलाता है, लेकिन उस बेटे की पत्नी, उसके साथ इतना बुरा व्यवहार करती है कि उन्हें वापस अपने ही देश को जाने के लिए मजबूर होना पड़ता है। (30) नाटक *चंदन दे ओहले* में हम देखते हैं कि परिवार के सारे सदस्य अपने विदेश जाने के स्वार्थ पर अपनी बेटी की शादी एक बुजुर्ग से कर देते हैं, जिसका वो लड़की विरोध भी करती है, लेकिन उसकी एक नहीं सुनी जाती। इस प्रकार इस नाटक में इसके आलावा भी कुछ पात्र अनैतिक मानसिकता में फँसे हुए हैं। (62)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने डॉ. रेशम सिंह से बातचीत की। डॉ. रेशम सिंह ने अपनी एम.फिल और पीएच.डी की पढ़ाई, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, से की और बाद में एक सहायक प्रोफेसर के रूप में अपने ज्ञान का प्रसार करने लगे। डॉ. साहब वर्तमान पंजाबी नाट्य-साहित्य के प्रमुख आलोचक के रूप में ऊभर रहें हैं। उन्होंने अपनी कलम से 9 किताबों की रचना की, जिसमें पाँच मूल

आलोचना, तीन संपादित और एक अनुवादित रचना है। इन्होंने रवीद्रनाथ टेगौर के नाटकों में नैतिक मूल्यों पर काम किया। मैंने अपनी शोध के इस विषय को प्रस्तुत करते हुए, मैंने निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- आज नैतिक मूल्यों का हनन क्यूँ हो रहा है?

उत्तर:- आज के युग को वैज्ञानिक युग कहा गया है, आज के इस वैज्ञानिक युग ने हर व्यक्ति को इतना व्यस्त कर दिया है कि वह अपने माता-पिता के लिए भी समय नहीं निकाल रहा। आज की पीढ़ी में नैतिकता खत्म होने के कई कारण हो सकते हैं। जिसमें सबसे पहला कारण, आज के माता-पिता के द्वारा बच्चों को कम समय देना। आज एकल परिवार में इस प्रकार की समस्या ज्यादा आ रही है क्योंकि माता-पिता या तो नौकरी करते हैं, या किसी और काम में व्यस्त रहते हैं, जिसके कारण वह अपने बच्चों को समय नहीं दे पाते। इसके अलावा आज की नयी शिक्षा प्रणाली ने बच्चों को धार्मिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा से दूर कर दिया और वह पश्चिमी प्रभाव में आने लगे। जिसके कारण नैतिकता खत्म होने लगी। ऐसे ही आज परिवारों में हो रहे झगड़े भी, इस नैतिकता को खत्म कर रहे हैं, क्योंकि बच्चे जो देखते है, उसको अपना लेते हैं।

प्रश्न:- लोगों में एक दूसरे के प्रति सहानुभूति कैसे पैदा की जा सकती है।

उत्तर- आज से 3-4 दशक पहले लोगों में जो मेल-मिलाप की भावना थी, वह आज नहीं रही। पहले इस प्रकार की समस्या सिर्फ शहरों में ही देखी गयी थी, लेकिन आज तो गाँव में भी ऐसे अनेक लोग देखने को मिलते हैं, जो अपने पड़ोसी तक से भी सम्बन्ध नहीं बनाकर रखते। आज के वैज्ञानिक युग में यह मानसिक तनाव की निशानी है। आज लोगों को पहले जैसे संयुक्त परिवार और संयुक्त समाज की जरूरत है। आज के माता-पिता को चाहिए कि वह बच्चे को बचपन से किसी व्यक्ति, धर्म, जाति, समुदाय के प्रति नफ़रत पैदा न करे, बल्कि प्रत्येक के प्रति सहानुभूति प्रकट करे। हमारे समाज में अमीर लोगों को मुसीबत के समय गरीबी लोगों के लिए मसीहा बनना चाहिए। किसी विशेष धर्म के नाम पर किसी भी स्कूल एवं कॉलेज में ऐसे कार्याक्रम न किए जाए, जिससे दूसरे धर्म को ठेस पहुँचती हो। बल्कि प्रेम-भावनाओं को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

डॉ. रेशम सिंह (अस्सिटेंट प्रोफेसर)
वार्ड नंबर-3 दशमेश नगर, टांडा, तहसील-दसूहा, जिला- होशियारपुर (पंजाब)
मो. 9876338180

7.1.1.5.2 वर्तमान युग में सामान्य जन में कुंठा और एकान्तप्रियता की भावना के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

कुंठा और एकान्तप्रियता एक ऐसा मनोविकार है, जिससे व्यक्ति वांछित वस्तु की पूर्ति न होने पर ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है, जहाँ उसमें व्याकुलता पैदा हो जाती है, जिसके कारण व्यक्ति सही निर्णय नहीं ले पाता और वह किसी-न-किसी कारण कुण्ठित रहता है। आज हमारे समाज में यह समस्या, उन लोगों में ज्यादा प्रवेश कर गयी है, जो ज्यादा पढ़े-लिखे हैं, क्योंकि वह एक अनपढ़ व्यक्ति के मुकाबले ज्यादा सोचते हैं। इस प्रकार की स्थिति प्रस्तुत शोध के चयनित नाटकों में भी देखने को मिली है, जिसमें हिन्दी नाटक *चार यारों की यार* और *आओ ! तनिक प्रेम करें* एवं पंजाबी नाटक *सौदागर* और *परियां* है।

हिन्दी नाटक *चार यारों की यार* की बिन्दिया पात्र इस प्रकार की कुंठा का शिकार होती है। कथा के अनुसार बिन्दिया अपने पहले पति से न खुश हो कर, दूसरी शादी करती है और फिर दूसरे पति से भी उसे संतुष्टि नहीं मिलती और वह अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आती, जब अन्य व्यक्ति भी उसे भोग विलास की वस्तु ही समझते हैं, तो वह कुंठा की शिकार हो जाती है। वह व्याकुल होकर सोचती है कि उसने अपने पहले पति को ही क्यों छोड़ा। (87, 88) नाटक *आओ ! तनिक प्रेम करें* में हम देखते हैं कि एक नारी नौकरी पेशा से सम्बंधित है और घर बाहर दोनों को संभालती है। नौकरी से थक कर जब घर आती है, तो घर काम भी करती। वह सास-सासुर, बच्चों और पति की सेवा में कोई कमी नहीं रखती। लेकिन उसका पति सब कुछ नशे में उड़ा रहा है। (56)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *सौदागर* का मुख्य पात्र सौदागर नशे का व्यापार कर, दूसरों के बच्चों को नशे पर लगा कर खुश होता है और उनसे अपने बेटे के लिए पैसे इकठ्ठे कर रहा था, लेकिन जब उसका एकलोता बेटा इसका शिकार हो जाता है और ज्यादा डोज के कारण मर जाता है, तो वह भी व्याकुलता और कुंठा का शिकार हो जाता है और नाटक के अंत में किसी एकांत की तलाश करता है। (99, 100) *परियां*

नाटक में एक मिसिज मेहता नामक पात्र जिसके सामने उसके अफ़सर ने मनीषा के साथ दुष्कर्म किया, लेकिन जब न्यायालय में उसे गवाही देनी पड़ी, तो वह नौकरी के डर से सच न बोल सकी, जिसके कारण उन्हें आज भी घुटन महसूस होती है, वह सोच रही है कि मेरी आत्मा ने उस समय मेरा साथ नहीं दिया। (80)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञ जोली मोंगा जी से बातचीत की। मोंगा साहब MA मनोविज्ञान, MA एजुकेशन, MA मैथेमेटिक्स और डिप्लोमा PGDGC और PGDCA प्राप्त किया है। मोंगा साहब अब चाइल्ड प्रोटेक्शन ऑफिसर (N.I.C) के अंतर्गत फरीदकोट में नौकरी कर रहें हैं। मोंगा साहब की इतनी प्राप्ति और ज्ञान से प्रभावित होकर, मैंने इनसे अपने विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- आज की पीढ़ी तनाव और डिप्रैशन का शिकार क्यूँ हो रही है?

उत्तर- तनाव एवं डिप्रैशन मनुष्य की आंतरिक एवं बाहरी दोनों प्रकार की गतिविधियां हो सकती हैं। बात हमारे आज की पीढ़ी की है कि वर्तमान में यह तनाव और डिप्रैशन का शिकार क्यों हो रही है, इसके प्रमुख कारण नीचे दर्शाए गये हैं-

1. सबसे पहला कारण मनुष्य अपने-आपको पहचानने की बजाये, दूसरे लोगों को जानने की अधिक कोशिश करता हैं।

2. मनोविज्ञान के जरिए जानने की कोशिश करें, तो मनुष्य मुख्य चार प्रमुख चरणों से होकर गुजरता है:- शिशु- 0-5, बचपन- 5-12, किशोर- 12-18, बालक- 18-जीवन भर

अगर मनुष्य इन चरणों के अनुसार अपने जीवन की प्राप्तियों को सही तरीके से क्रियात्मक रूप देता रहा तो वह अपने जीवन में तनाव मुक्त रहता है। किशोर- 12-18 इस आयु में विपरीत दशा की ओर अधिक प्रतिक्रिया रहती है।

प्रश्न:- युवाओं को तनाव और डिप्रेशन से कैसे मुक्त किया जा सकता है।

उत्तर- अब जैसे हम जान ही चूंके हैं कि युवाओं के तनाव का मुख्य कारण उनकी भावनाओं को न समझना अथवा उनकी बातों को अध्यापकों, दोस्तों और माता-पिता के द्वारा अनदेखा कर देना। इसलिए जो युवा एवं युवती आपको ऐसी स्थिति में दिखते हैं, उनसे आपको बातचीत करनी चाहिए, मिल बैठकर हंसना और हंसाना भी

चाहिए। साथ ही अपने मन की बाते उनसे करना और उनकी बातों को बड़ी गहराई समझने का प्रयास करना चाहिए। उस व्यक्ति के आस-पास गम की बरसात की बजाय खुशियों की फुहार जैसा माहौल बनाना चाहिए।

जोली मोंगा
नजदीक बाबा रामदेव मन्दिर, गली नंबर-03, फाजिल्का
मो. 95920-66176

7.1.1.5.3 बदलते परिवेश में अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित वर्ग की त्रासदी के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

अन्तर्द्वन्द्व एक प्रकार की व्यक्ति की तनावपूर्ण स्थिति है। अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त संभवतः अधिक तनावग्रस्त होते हैं, वे किसी भी बात को बहुत गहराई से सोचते हैं और उनके अंतर्मन में निरंतर एक संघर्ष चलता रहता है कि वे क्या करें और क्या न करें। हमारे समाज में अनेक ऐसे कारण बन जाते हैं, जिसके कारण स्त्री और पुरुष अपने अंदर ही संघर्ष करने लग जाते हैं। प्रस्तुत शोध में चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में कुछ ऐसे पात्र हैं, जो इस स्थिति का शिकार होते हैं। जिनमें हिन्दी नाटक *सकुबाई* और *हुमा को उड़ जाने दो* एवं पंजाबी नाटक *चंदन दे ओहले* और *कथा रिड़दे परिंदे दी* हैं।

हिन्दी नाटक *सकुबाई* की मुख्य पात्र सकुबाई है, वह किसी शहर में बाई का काम कर अपने घर का गुजारा करती है, सकुबाई काम तो लोगों के घरों में करती है, लेकिन उसके मन में सदैव, यह चलता रहता है कि मेरे बच्चे क्या कर रहें होंगे, कहीं बारिश हो गयी तो मेरा घर नीची जगह पर है, कहीं पानी न भर जाएं। उसका पति बीमार है, उसको किसी ने दवा-दारू दी होगी कि नहीं। इस प्रकार की स्थिति में सकुबाई जी रही है। (21) नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में हम देखते हैं कि प्रेम, मानवीय मूल्यों के अभाव में जीवन कितना जटिल हो सकता है, इसका ब्यौरा वहीं व्यक्ति दे सकता है, जिसने सब ऊंचाइयां प्राप्त की हो किन्तु जीवन के अंतिम क्षण तक सुकून को तड़पे। ऐसे दुविधाग्रस्त, विडम्बनापूर्ण और जटिल चरित्र हुमायूँ को बनाया है। (81)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *चंदन दे ओहले* के 'बनी' की स्थिति भी कुछ इस प्रकार की है। बनी विदेश जाना जाता है, लेकिन जिस लड़की के पिता के साथ पैसों की बात

हुई थी, उसने शादी से इंकार कर दिया। अब बनी अपने भविष्य को लेकर हर समय इस स्थिति में है कि उसकी आधी-अधूरी पढ़ाई न तो उसे भारत में नौकरी दिलवा सकती है और विदेश लेजा सकती है। इस बात को लेकर वह चिंता में रहता और अपनी चिंता का कारण किसी को बता भी नहीं सकता। इस प्रकार के अनेक पात्र हमारे समाज में भी मिल जाएंगे, जो अपनी समस्याओं को प्रकट भी नहीं कर सकते। (48-49) नाटक *कथा रिड़दे परिंदे दी* में नाटककार ने एक ऐसे लेखक बलवंत सिंह के अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत किया गया है, जिसके खुद के उपन्यास सामाजिक समस्याओं के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं; लेकिन वह आप इससे बचने का प्रयास करता है। (26)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने एक पल्लवी नामक स्कूल अध्यापक से बातचीत की। पल्लवी ने B.Ed और MA मनोविज्ञान में की है। पल्लवी गुरदासपुर के आर्मी स्कूल में पी.जी.टी अध्यापक है। मनोवैज्ञानिक तथ्यों का ज्ञान होने के कारण मैंने अपने विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- अन्तर्द्वन्द्व के मुख्य स्रोत कौन से हैं?

उत्तर- अन्तर्द्वन्द्व दो प्रकार का होता है, सकारात्मक और नकारात्मक। उदाहरणत: मक्खन खाने से मोटापा होगा और न खाने से शरीर में कहीं कमजोरी न आ जाए। इस प्रकार के सकारात्मक और नकारात्मक द्वन्द्व में वह डूबता रहता है, इसके कई स्रोत हो सकते हैं, जैसे लक्ष्य की प्राप्ति। अनेक बार ऐसी स्थिति पैदा होती है कि व्यक्ति बहुत ज्यादा मेहनत करता है, लेकिन उसे लक्ष्य प्राप्ति नहीं होती। उस समय व्यक्ति ऐसी स्थिति में फंस जाता है, इसके बाद युवाओं में आजादी की भावना। कई बार व्यक्ति अपने माता-पिता के साथ रहने के कारण अपनी मनमर्जी नहीं कर सकते। फिर वह साथ रहे या न। इस प्रकार की स्थिति में फंस जाते हैं। इसके आगे माता-पिता और समाज के द्वारा नैतिकता का दबाव भी अन्तर्द्वन्द्व का कारण बनता है क्योंकि युवा यदि अपनी यौन सम्बन्धी इच्छाओं को पूरा न कर पाए तो द्वन्द्व पैदा होता है।

प्रश्न:- अन्तर्द्वन्द्व से बचने का उपाय बताएं।

उत्तर- अन्तर्द्वन्द्व मन और बुद्धि को इन्टीग्रेट कर लेने के बाद ही अन्तर्द्वन्द्व से छुटकारा पाया जा सकता है। किंतु, अन्तर्द्वन्द्व तो प्रकृति का नियम है। अंधकार के बिना प्रकाश का क्या अस्तित्व है। रात के बिना दिन का क्या अस्तित्व। अत: तर्क को न रोकें। परंतु, तर्क को अनवरत ना चलने दें। जो निर्णय लें, उसमें ख़ुशी-ख़ुशी जिए। निर्णय के बाद द्वंद न रखें।

पल्लवी
मकान नं-1891 गली नं-3C कैलाश नगर, फाजिल्का (पंजाब)
मो. 81463-30990

7.1.1.5.4 आत्मविश्वास की कमी और अकेलापन की भावना के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

आत्मविश्वास सेहत और सफलता का आधार होता है। कमजोर आत्मविश्वास से बहुत सारी शारीरिक और मानसिक बीमारियां जन्म लेती हैं, आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ्य होना अति जरूरी है। समकालीन व्यक्ति अंतर्विरोधों में आधी-अधूरी जिन्दगी जीने के लिए विवश है। आज की भागदौड़ की जिन्दगी में वह अपने-आपको असफल अनुभव करता है और उसमें आत्मविश्वास की कमी आने लग जाती है। प्रस्तुत शोध में चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में कुछ ऐसे पात्र हैं, जो इस स्थिति का शिकार हैं। जिनमें हिन्दी नाटक जिस लाहौर *नइ देख्या ओ जम्याइ नइ* और *हुमा को उड़ जाने दो* एवं पंजाबी नाटक *चंदन दे ओहले* और *मैं ता एक सारंगी हाँ* हैं।

हिन्दी नाटक *जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ* की कथा में रतन सिंह जौहरी की माँ की दशा इस प्रकार की है। ऐतिहासिक दृष्टि से रचे गये, इस नाटक की कथा हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बटवारे में हुए साम्प्रदायिक दंगों से जुड़ी है। यह ऐतिहासिक होने के बावजूद भी आधुनिकता की झलक प्रस्तुत करता है। रतन और उसके परिवार की साम्प्रदायिक दंगों में मौत हो जाती है और उसकी माँ ऐसे अकेलेपन का शिकार होती है कि उसमें आत्मविश्वास नाम की कोई चीज नहीं रहती और वह हर व्यक्ति और वस्तु से डरने लगती है। (42) नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में हुमायूँ सत्ता को सुदृढ़ करने के लिए प्रजा पर अत्याचार करता है और जैसे-जैसे अत्याचार बढ़ाता है तो सत्ताधारी अपनी सुरक्षा के लिए आशाकित और भयभीत भी हो जाता है। हुमायूँ की भी यही नियति है। लेकिन वह अंदर से टुटा हुआ है और उसमें आत्मविश्वास नहीं है। (36)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *चंदन दे ओहले* की कथा में माणा पात्र ऐसी स्थिति का शिकार हो जाती है, माणा किसी अन्य जाति के लड़के को प्यार करती है और उसके साथ शादी करना चाहती है, परन्तु उसके माता-पिता इस बात लिए खुश नहीं होते, लेकिन माणा की स्थिति उस समय तरस योग बन जाती है, जब उसके परिवार के

सदस्य ही उसकी जबरदस्ती शादी एक बूढ़े व्यक्ति से करने लगते हैं। उस स्थिति में न तो वह घर से भाग सकती है और न घर वालों पर विश्वास कर सकती है। इस प्रकार माणा ऐसी स्थिति का शिकार हो जाती है। (66) *मैं ता एक सारंगी हाँ* नाटक में एक गीता पात्र जो थिएटर में काम करना चाहती है लेकीन वहाँ के लोगों की मानसिकता को देखकर उसका विश्वास खत्म हो जाता है। (66)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने डॉ. हरनाम सिंह से बातचीत की। डॉ. हरनाम सिंह शारीरिक शिक्षा के प्रोफेसर हैं। इन्होंने 2012 में पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से पीएच.डी की डिग्री प्राप्त की। हमारे लिए यह ख़ुशी की बात हैं डॉ. साहब की पीएच.डी का विषय ही खिलाड़ियों में आत्मविश्वास पर है। इस लिए डॉ. साहब ने मेरे इस विषय को ध्यान से सुना और निम्नलिखित प्रश्नावली के उत्तर दिए:-

प्रश्न:- आज युवाओं में आत्मविश्वास की कमी क्यूँ आ रही है?

उत्तर- आज बहुत-से युवाओं के द्वारा आत्महत्या करने की खबर हमें सुनने को मिलती है। जिसका मुख्य कारण युवाओं में आत्मविश्वास की कमी हैं। आज के युवा सामाजिक और आध्यात्मिक शिक्षा से दूर हो रहे हैं। ऐसी शिक्षा न मिल पाने के कारण उनमें जागरुकता का अभाव है और वे तनाव व आत्मविश्वास की कमी के शिकार हो जाते हैं। आज भारतीय समाज तेजी से पश्चिमी सभ्यता की ओर बढ़ रहा है। ऐसे में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति के बीच सामंजस्य नहीं बन पा रहा, उदाहरण के रूप में एक व्यक्ति के पास पूर्ण ज्ञान है और उसे अंग्रेजी नहीं बोलने आती है तो आगे कम ज्ञान वाला यदि कुछ अंग्रेजी में बोल जाएंगा, तो दूसरा व्यक्ति अपने-आपको हीन समझने लगता है। युवा आत्मविश्वास की कमी के कारण ही नशों की ओर जाते हैं। नशा कर वह सच्चाई से दूर भागते हैं।

प्रश्न: आत्मविश्वास को कैसे बढ़ाया जा सकता है।

उत्तर- जिन्दगी में सफलता हासिल करने के लिए आत्मविश्वास का होना अति जरूरी है। आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए हमें सबसे पहले अपने जीवन में ऐसे लोग देखने होंगे, जो आपने उद्देश्य की पूर्ति कर चूंके हैं, ऐसे सफल लोगों की बातों को नोट कर अपनी जिन्दगी में लागू करें। दूसरा बीते समय में मिली सफलता को याद कर अपने-आपको हौंसला देना चाहिए। तीसरा यदि आपसे कोई गलती हो जाए तो आप घबराएं न संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं, जिससे गलती न हुई हो। यदि आप

कोशिश करेंगे तो गलती भी होगी और उस गलती से आपको सीख भी मिलेगी। चौथा भगवान ने प्रत्येक व्यक्ति को कोई भिन्नता दी होती है और उसको आप पहचाने। जिससे लोगों से बेहतर कर सके। पांचवा, दूसरे व्यक्तियों के साथ अपनी तुलना न करें क्या पता उस आदमी को आपसे बेहतर हालात और मौके मिले हों, जिस कारण वह सफल हुआ हो, इसलिए किसी भी व्यक्ति को कामयाब देखकर खुद से तुलना न करें, बल्कि अपनी प्रतिभा और ताकत को अपना औजार बनाये और सफलता को हासिल करने की सोचे।

डॉ. हरनाम सिंह, अस्सिटेंट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा

गाँव- सारेन डाक-हुसेनपुर लालोवाल, जिला- होशियारपुर (पंजाब)

मो.94634-43899

7.1.1.5.5 प्रेम वासना और प्राकृतिक काम से पीड़ित युवा के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

आधुनिक साहित्यकारों एवं आलोचकों द्वारा यौन शोषण और प्राकृतिक काम को मानसिक मनोवैज्ञानिक विकार के रूप में परिभाषित किया गया है। इस प्रकार के मनोविकारों का मूल स्त्रोत मानव की काम चेतना है, जिस पर मनुष्य या पात्र कई बार कठिन परिस्थितियों का सामना करते हैं। इस प्रकार की स्थिति, हमारे समाज में भी देखने को मिलती है, जिसमें स्त्री या पुरुष इस प्रकार की वासना का शिकार होकर अपने घर को बर्बाद कर बैठता है। प्रस्तुत शोध में भी कुछ पात्र इस प्रकार की समस्या का सामना करते हुए नज़र आए हैं। जिनमें हिन्दी नाटक *चार यारों की यार* और *कहते हैं जिसको प्यार* पंजाबी नाटक *कंधा रेत दियां* और *चंदन दे ओहले* है।

हिन्दी नाटक *चार यारों की यार* की बिन्दिया पात्र अपनी काम वासना को वश में नहीं रख सकती और वह अपने पति के अलावा भी अन्य मर्दों के सम्पर्क में आती है, जिसका विरोध उसका पति करता है और बिन्दिया अपने चार यारों के साथ अपने पति की हत्या कर देती है। इस प्रकार बिन्दिया अपने घर की बर्बादी अपने हाथों से ही कर लेती है। नाटक के अंत में उसके पास पश्चाताप के आलावा और कुछ नहीं रह जाता है। (27) नाटक *कहते हैं जिसको प्यार* में हम देखते हैं कि आखिल

और सुजाता एक दूसरे से प्रेम करते हैं, किन्तु सुजाता मानती है कि आवश्यक नहीं कि जिससे प्रेम करें, उससे ही शादी की जाए। (19)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *कंधा रेत दियां* में एक स्त्री पात्र उर्मिला है। उर्मिला बहुत शरीफ और चरित्र की साफ नारी है, लेकिन उसकी माता चरित्रहीन थी जिसकी वजह से उर्मिला जहाँ चाहती थी; वहाँ उसकी शादी टूट जाती है। शादी के टूटने का कारण उसकी माता की चरित्रहीनता है। जाने-अनजाने में उर्मिला की माँ की काम वासना की सज़ा उसकी बेटी को मिली। (47-48) *चंदन दे ओहले* में हम देखते हैं कि एक सेठ की बेटी माणा किसी अन्य जाति के लड़के से प्रेम करती है और जिसका पता उसके सारे मुहल्ले वालों को है, इस बात पर उसके पिता को प्रत्येक व्यक्ति की बात सुननी पड़ती है। (15)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने निरवैल सिंह औलख से बातचीत की। निरवैल सिंह औलख ने बी.एड एवं एम.एड की डिग्री की है, जिससे वह मनोवैज्ञानिक विषय का ज्ञान भी रखता है, इसके अलावा निरवैल सिंह पंजाबी भंगड़े का भी कोच है और पंजाबी साहित्य के साथ गहराई से जुड़ा है। इनकी कलम से पंजाब के मालवा क्षेत्र के गिद्धों की बोलियों पर रचना 'बोलीयां मलवी गिद्धें दियां' लिखी और इसके बाद 'पुत परदेसी' नामक एक कहानी संग्रह भी रचा। जिसमें कुछ पात्र काम चेतना का शिकार होते हुए दिखायी दिए। इस कहानी संग्रह का मैंने भी अध्ययन किया, जिससे प्रभावित होकर में औलख साहब के पास आया और मैंने अपनी शोध के इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- वर्तमान के युवाओं का काम वासनाओं के शिकार के कारण क्या है?

उत्तर- 1. बच्चों का माता-पिता से पढ़ाई या किसी अन्य काम के कारण दूर रहना, जिसके कारण वह गलत कदम उठा लेते हैं।

2. स्कूल और कॉलेज में धार्मिक और नैतिक शिक्षा का अलोप हो जाना भी, इसका कारण है।

3. इंटरनेट और पश्चिमी प्रभाव के कारण बच्चों की मानसिकता में बदलाव आना।

4. बेरोजगारी और अनपढ़ता।

5. नशे का सेवन।

प्रश्न:- यौन शोषण जैसी समस्याओं का निवारण किस प्रकार किया जा सकता है।

उत्तर- 1. काम भोग की लालसा को बढ़ावा न दें, भाव ऐसी चीजों को पाने की इच्छा पर नियन्त्रण करें, जो आपको कामातुर बनाती हैं। इस बात का मुख्य रूप से ये मतलब है कि लोगों को अश्लील साहित्य, फोटो और वीडियों से दूर रहना चाहिए, मतलब ऐसी चीजों की लालसा को नियंत्रित करें।

2. अपने-आपके साथ-साथ दूसरों का भी आदर करना सीखें भाव। अगर सचमुच आपके मन में लोगों के प्रति कुछ भी अच्छी भावनाएँ हैं, तो आप अपनी वासना की भावना का विरोध करेंगे और ऐसी भावनाओं पर काबू करके दूसरों के लिए और खुद के लिए जो सही है, वो ही करने की कोशिश करेंगे।

3. नशीले पदार्थों और शराब के सेवन से आपकी निर्णय लेने की क्षमता कम हो जाती है, इसलिए काम-भावना पर नियन्त्रण कर पाना लोगों के लिए ज्यादा मुश्किल हो जाता है। इनके सेवन से उन्हें दूर रहना चाहिए।

निरवैल सिंह औलख
गाँव- शाहपुरा डाक- नुकेरियां
मो. 94658-14404

7.1.1.5.6 बदलते मनोवैज्ञानिक परिवेश में कल्पना और स्वप्न के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

जीवन की विभिन्न स्थितियों और परिस्थितियों में हृदय नवीन कल्पनाओं, उन्माद, भावनाओं और स्वप्नों की जन्मस्थली रहा है। कभी वह आकाश में विचरते पक्षी के समान इस संसार में अपने लिए सुखों से निर्मित नीड़ खोजता है, तो कभी सामाजिक बन्धनों को अपने मार्ग में बाधा मानकर, उनको तोड़ने का प्रयास करता है। वैसे हमारे समाज में यह भी कहावत है कि किसी भी कार्य में सफलता हासिल करने से पहले, उसकी कल्पना और स्वप्न देखना भी लाजमी हैं। प्रस्तुत शोध के नाटकों में भी कुछ इस प्रकार के पात्र पाएं गये हैं, जो उचित अनुचित कल्पनाओं का शिकार होते हैं, उन नाटकों में हिन्दी नाटक *जी जैसे आपकी मर्ज़ी..* और *कहते हैं जिसको प्यार* एवं पंजाबी नाटक *सौदागर* और *छां विहूणे* है।

हिन्दी नाटक *जी जैसे आपकी मर्ज़ी....* में इस प्रकार की पात्र बबली नामक लड़की है, जो अपनी शादी के पहले बहुत सपने देखती है कि उसका पति हीरो जैसा होगा, लेकिन सब उसकी कल्पना के विपरीत होता है। शादी के बाद उसकी कल्पना

के महल मिट्टी में मिल जाते हैं। उसका पति नशेडी और चरित्रहीन होता है, वह शाराबी है, प्राय: रात को देर से घर आता है और सुबह होते ही किसी नयी लड़की के साथ निकल जाता है। बबली चाह कर भी, उसका विरोध नहीं कर सकती, क्योंकि उसकी माता ने शादी के समय कहा था कि बेटी तेरे पापा ने सारी जिन्दगी की कमाई तेरी शादी पर लगा दी। (39-40) *कहते हैं जिसको प्यार* में हम देखते हैं कि सुजाता और अखिल एक-दूसरे से प्यार करते हैं, लेकिन सुजाता की बहन यह चाहते हुए भी अखिल से शादी करना चाहती है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार बदलते मनोवैज्ञानिक परिवेश को प्रस्तुत करता हुआ; उन दोनों की मानसिकता को प्रस्तुत कर रहा है। (19)

ऐसे पंजाबी नाटक *सौदागर* की कथा भी इस विषय से सम्बंधित है, क्योंकि इस नाटक का मुख्य पात्र सौदागर नशे का व्यापारी है और उसका सपना है कि वह अपने पुत्र के लिए सारे गाँव की ज़मीन खरीद ले। इस कल्पना की पूर्ति के लिए, वह अनेक युवाओं को नशे की लत लगा रहा है, लेकिन जब उसका बेटा उससे चोरी नशे का आदी हो जाता है और ज्यादा डोज लेने के कारण उसकी मौत हो जाती है, तो सौदागर मानसिक रूप से मूक बन जाता है। (60-61) *छां विहूणे* नाटक में हम देखते हैं कि जगदीप और सुधीर जो कि बेरोजगार होते हैं और कुछ दिनों से उन्होंने खाना भी नहीं खाया, वह दोनों इस बात को लेकर चिंता में डूबे हुए हैं कि यदि व्यक्ति को भूख न लगे तो उसे गरीब और बेरोजगार होने की मानसिक पीड़ा भी कम महसूस होती है। (45)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने हरदीप सिंह से बातचीत की। हरदीप सिंह समाज विज्ञान और एजुकेशन दोनों में नेट पास हैं एवं समाज विज्ञान में गुरु नानक विश्वविद्यालय, अमृतसर से पीएच.डी कर रहें हैं। हरदीप सिंह मनोविज्ञान के विशेषज्ञ हैं, इसलिए मैंने प्रस्तुत शोध के इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- कल्पना दैनिक जीवन में प्रभाव कैसे डालती है।

उत्तर- 1. जब हम दैनिक जीवन में किसी अजीब वस्तु को देखते हैं या कोई बात पढ़ते हैं, वैसा ही चित्र हम अपने मन में बना लेते हैं। जब तक मन में, उसका चित्र अंकित न हो, ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। अत: वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति के कल्पना का प्रमुख आधार है।

2. इसके द्वारा हम सबसे श्रेष्ठ और उत्तम आदर्श खड़े करते हैं। धर्म, ईश्वर, देवी-देवता, स्वर्ग इत्यादि, इसी कल्पना के उच्चतम शिखर हैं। भावों का प्रभाव कल्पना पर पड़ता है और मनोभावों के अनुसार ही आदर्शों की सृष्टि होती है। मनुष्य के अंतजगत में स्थित भलाई, सत्यता एवं सौंदर्य से हमारे आदर्श बनते हैं। जो कल्पना से संभव हैं।

प्रश्न: 'कल्पना' मानवीय जीवन को महत्त्व देने का श्रेष्ठ माध्यम कैसे है।

उत्तर- 1. रस, माधुर्य, स्नेह, लालित्य भाव सभी कल्पना से जुड़े हैं।

2. जीवन वर्तमान है, स्मृति अनुभव है और कल्पनाशक्ति व्यक्ति की योजनाशक्ति है।

3. परिणाम तो किसी के हाथ में नहीं है, प्रयास करने की दिशा हमारे वश में है। लक्ष्यानुरूप प्रयास करने की दिशा तय करना कल्पनाशक्ति का ही कार्य है।

4. कल्पनाशीलता व्यक्ति को आशावादी बनाती है, इसके द्वारा ही भावी योजना का मानचित्र तैयार होता है।

हरदीप सिंह (शोधार्थी)

गाँव- मठाढ, डाक-अहमद ढंडी, जिला- फिरोजपुर (पंजाब)

मो. 98144-09656

7.1.1.5.7 बदलते परिवेश में नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

नारी पात्रों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की बात करें, तो पुरातन काल से नारी को शारीरिक रूप के आधार पर अबला कहा गया है, क्योंकि उसमें पुरुष जैसा बल नहीं होता। महिला और अबला का अर्थ समान नहीं। महिला का सम्बन्ध महानता से है, लेकिन जिन महिलाओं ने शारीरिक और मानसिक रूप से सिद्धियाँ पायी हैं, उन्हें हम अबला नहीं कह सकते। भारतीय समाज में नारी परिवार का मेरुदंड रही है, लेकिन नारी की मानसिकता को समझने का प्रयास हमारे समाज ने न के मात्र ही किया है। जिसके कारण हमारे समाज की कुछ स्त्रियों ने गलत रास्ते को अपना लिया, इन नारियों को गलत रास्ते पर जाने को मजबूर, हमारे समाज ने ही किया। प्रस्तुत शोध के नाटकों में भी कुछ नारी पात्र इस प्रकार की हैं, जिसकी मानसिकता को समझने का प्रयास किसी ने नहीं किया। जिस कारण चाहे-

अनचाहे में उनसे गलतियाँ हुई हैं। इस विषय से सम्बंधित हिन्दी नाटक *चार यारों की यार* और *जी जैसी आपकी मर्जी* एवं पंजाबी नाटक *मैं तो एक सारंगी हाँ* और *कल्लर* हैं।

हिन्दी नाटक *चार यारों की यार* में बिन्दिया एक ऐसी पात्र है, जो पहले अपने शराबी पति से परेशान थी, क्योंकि वह हर रोज शराब पी कर आता था और नशे में उसे खूब पीटता था। इस कारण उसने दूसरी शादी कर ली, लेकिन जिस इच्छाओं की पूर्ति के लिए, उसने दूसरी शादी की, उसकी पूर्ति न हुई। दूसरा पति भी उसकी भावनाओं को न समझ सका। जिसके कारण वह अन्य पुरुषों के सम्पर्क में आई, लेकिन सभी लोगों ने उसे सिर्फ भोग विलास की वस्तु ही समझा, उसके मानसिक तृष्णा को जानने का किसी ने प्रयास नहीं किया। (29, 30) *जी जैसी आपकी मर्जी* नामक नाटक की पात्र दीपा जो सदैव ही अपने स्कूल में प्रथम श्रेणी से पास होती है, लेकिन उनकी माँ सामाजिक रिवाजों से हिचकती हुई और अपने परिवार के मान सम्मान पर कोई आंच न आने के डर से तीनों बहनों को नाटकों में भाग लेने से मना करती है। (61)

ऐसे ही पंजाबी नाटक *मैं तो एक सारंगी हां* में तीन नारियां हैं और तीनों ही मानसिक रूप से पीड़ित हैं। इन तीनों का परिवार और सगे-सम्बन्धी पुरुषों के द्वारा शोषण किया गया। जिसका वह चाह कर भी विरोध न कर पायी। बाद में वे तीनों अपनी-अपनी स्थिति से मुकाबला करती हुई, किसी-न-किसी तरीके से अच्छी पढ़ाई कर गयी और अच्छी-खासी नौकरी भी प्राप्त कर ली। अब इन तीनों ने अपने साथ हुए शारीरिक और मानसिक शोषण को जनता के सामने उजागर किया और समाज की उन स्थितियों और परिस्थितियों का विरोध कर रही हैं, जो नारी को पीड़ित करती हैं। (61) *कल्लर* में दलबीर की माँ की मानसिकता को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है। दलबीर जब विदेश जाता है तो उन्हें और उसके साथियों को गलत ऐजटों के द्वारा रोमानिया भेज दिए जाते हैं। वहाँ उन्हें बहुत सारी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है और जेल में भी रहना पड़ता है, लेकिन पीछे उसकी माँ, उसकी शादी के बड़े-बड़े सपने देख रही होती है। (100)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने कर्मजीत कौर से इस विषय को लेकर बातचीत की। कर्मजीत कौर सामाजिक विज्ञान की प्रोफैसर है और साथ में एक कवि और शायर भी हैं। इनके द्वारा नारी की आजादी के लिए बहुत सारी कविताओं

की रचना भी की गयी। इनकी कलम से 'रोंदे पानी' नामक उपन्यास भी नारी स्वतंत्रता के विषय पर है। प्रस्तुत शोध के इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न:- आज नारी दोहरी मानसिकता का बोझ कैसे ढो रही है।

उत्तर- असल में मुझे लगता है कि दोहरी मानसकिता को नारी को आशावादी दृष्टि से लेना चाहिए। घर के काम तो नारी आदिकाल से ही करती आ रही है। जिसमें उसकी भूमिका एक पत्नी, माता और बहु के रूप में होती थी। बदलते परिवेश में अब उसे एक नया किरदार निभाने का मौका मिला है। इस मानसिकता को हमें आशावादी दृष्टि से ही लेना चाहिए, न कि बोझ नहीं समझना चाहिए।

प्रश्न:- आज की नारी किस प्रकार की आज़ादी चाहती है।

उत्तर- आज की नारी को किसी भी प्रकार की आज़ादी नहीं चाहिए, वह किसी प्रकार मर्द से आगे नहीं निकलना चाहती। आज की नारी की चाहत यह हैं कि आज का समाज, आज का प्रत्येक परिवार उन्हें सिर्फ समानता का अधिकार दे। आज उन्हें किसी बस या रेल में बैठने के लिए स्पेशल सीट की जरूरत नहीं, केवल उस बस में सवार मुसाफिर उसके प्रति अपने दिमाग में गलत सोच को न लाए। आज वह दिन रात प्रत्येक क्षेत्र में काम करने को तैयार है, लेकिन काम करते समय उसके मन में भय न हो, कि मैं नारी हूँ। मेरी इज्जत पे दाग न लग जाए। आज नारी को आज़ादी नहीं, बल्कि पुरुष को अपनी सोच बदलनी चाहिए। हमारी सरकार को भी यहीं अपील है कि नारी की सुरक्षा के पहले हमारे समाज में नारी की अध्यात्मिकता और नैतिकता का पाठ पढ़ाया जाए, जिससे हमारे देश के भटके हुए लोगों की सोच बदली जा सके।

प्रो. कर्मजीत कौर

गाँव- सुखेरा खेड़ा, तहसील- डबवाली, जिला-सिरसा (हरियाणा)

मो. 97293-18523

7.1.1.5.8 बदलते परिवेश में पुरुष पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, के विषय में व्यावहारिक अध्ययन

हमारे साहित्य और समाज में स्त्री द्वंद को तो बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया जाता है, लेकिन पुरुष की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। पुरुष के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिए, उसके चरित्र को समझना

आवश्यक है। मानव चरित्र जल में पड़े हिमखंड की भाँती है, जिसके नौ हिस्से जल में डूबे होते हैं और मात्र दसवाँ अंश ही हमें दिखायी देता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हमारे समाज में बहुत-से ऐसे पुरुष है, जो अपने दुःख-दर्द को अपने दिल में ही छिपाएं रखते हैं और इस राज को अपने साथ ही इस दुनिया से ले जाते हैं। प्रस्तुत शोध के भी कुछ नाटकों में ऐसे पात्र हैं, जिसमें इस स्थिति को अनुभव किया गया है। जिसमें हिन्दी नाटक *चार यारो की यार* और *हुमा को उड़ जाने दो* एवं पंजाबी नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* और *कल्लर* हैं।

चयनित हिन्दी नाटक *चार यारो की यार* का मुख्य पुरुष पात्र मा. सीताराम है। सीताराम बहुत ईमानदार और आदर्श पुरुष था, लेकिन उसकी पत्नी बिन्दिया एक चरित्रहीन नारी थी। जिसकी वजह से मा. सीताराम हर समय टेंशन में रहता था और साथ ही बिन्दिया को समझाने का प्रयास भी करता रहता, लेकिन बिन्दिया दिन प्रतिदिन बिगड़ती गयी और एक दिन जब देर रात सीताराम अपने घर आए, तो बिन्दिया अपने यारों के साथ शराब पीकर झूम रही थी। बिन्दिया की हरकतों का जब सीताराम विरोध करता है, तो नशे में वह सब मिलकर सीताराम को मार देते हैं। इस प्रकार एक शरीफ व्यक्ति अपनी जान से हाथ धो बैठता है। (92-93) नाटक *हुमा को उड़ जाने दो* में हम देखते हैं कि हुमायूँ सत्ता में नहीं जाना चाहता था, लेकिन बाबर के दबाव में वह कुत्सित राजनीति में आ जाता है। शासन के लिए हत्या, झूठ-फरेब आदि का सहारा लेता है, किन्तु जीवन के अंतिम पड़ाव में मौत उसे भयभीत कर देती है। (80)

ऐसे ही यदि पंजाबी नाटक *निक्के सूरजां दी लड़ाई* में पुरुष पात्रों की त्रासदी की बात करें, तो इस नाटक में एक चरना नामक पात्र ऐसी दशा का शिकार हो जाता है। चरना एक मध्य वर्गीय कृषक है, लेकिन उनके संयुक्त परिवार का खर्च बहुत ज्यादा है। बहन की शादी, माता की दवाई, छोटे भाई का नशा, ट्रैक्टर की किश्ते आदि सब खर्चों के कारण वह साहूकार के कर्ज के नीचे आ जाता है, लेकिन वह इस बात को परिवार से छुपाए रखता है, लेकिन साहूकार का कर्ज दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है, जिसके कारण उसकी सारी ज़मीन बिक जाती है। ज़मीन बिकने के बाद चरने पर दुखों का पहाड़ गिर पड़ता है, लेकिन वह फिर अपने परिवार के पालन पोषण के लिए, किसी कारखाने में मजदूरी करने लग जाता है। कारखाने में उसका एक हाथ कट जाता है और उसे कारखाने से निकाल दिया जाता है। हाथ कटने के बाद भी वह अपने परिवार का खर्च उठाना चाहता है, लेकिन वह बेबसी का शिकार है।

(32) *कल्लर* में गुरदयाल सिंह जिसने सारी जिन्दगी बहुत सख्त मेहनत की, अपनी जमीन में से कल्लर को खत्म किया, लेकिन फिर भी उन्होंने सारी जिन्दगी कर्ज़ में ही व्यतीत की और कर्ज़ होने पर भी उन्होंने अपनी बेटियों की धूमधाम से शादी की, बेटे को जमीन बेचकर विदेश भेजा, जिस कारण उनकी जमीन भी आधी रह गई, लेकिन फिर भी उनका हौसला बरकरार है। (79)

व्यावहारिक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने गुरतेजपाल सिंह एक पुलिसकर्मी से इस विषय को लेकर बातचीत की। गुरतेजपाल सिंह काफी पढ़ा-लिखा व्यक्ति है। अपनी ड्यूटी के अतिरिक्त वह खेलों और किताबों में व्यस्त रहता है। इनका कहना है कि हम थाने में इस प्रकार के बहुत-से घरेलू झगड़े देखते हैं, जिसमें एक पुरुष निर्दोष होता है, लेकिन फिर भी समाज और परिवार की परिस्थितियों के द्वारा उन्हें दोषी बना दिया जाता है। इस प्रकार वह अपने द्वन्द्व को छुपाए हुए, जीवित रहता है क्योंकि वो व्यक्ति उस स्थिति का सामना भी नहीं कर सकता और उसे अपनी लज्जा के कारण किसी को बता भी नहीं सकता। जिसके कारण कई बार आत्महत्या तक की नौबत भी आ जाती है। प्रस्तुत शोध के इस विषय को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किए:-

प्रश्न: पुरुष वर्ग की मानसिक त्रासदी के कारण क्या हैं?

उत्तर- 1. दुनिया भर में यह गलत मिथक बनाया गया है कि भारत में महिलाओं पर बेहद अत्याचार किया जाता है। यह भी कहा जाता है कि भारत पुरुष-प्रधान देश है और यहाँ केवल पुरुषों की ही चलती है, जबकि हकीकत इसके विपरीत है, वर्तमान में स्थिति यह है कि पुरुष पूरी तरह हाशिये पर चले गये हैं।

2. हमारे देश के कुछ कानूनों में सुधार की जरूरत है, क्योंकि इसमें पुरुषों के अधिकारों की कुछ अपेक्षा की गयी है और महिलाओं को केन्द्रित कर ही कानून बनाये गये हैं, जिसका कई बार गलत इस्तेमाल किया जाता है और इसके कारण पुरुषों पर अत्यधिक दबाव होने के कारण पुरुषों का स्वास्थ्य भी प्रभावित हो रहा है।

3. आज हमने बहुत सारे रेप के ऐसे केस भी देखे हैं, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों की सहमति होती है, लेकिन बाद में स्त्री पैसे को लालच या और किसी निजी हित के लिए केस दर्ज करवा देती है। जिसका शिकार केवल पुरुष ही होता है।

4. पुरुष परिवार का मुखियां भी होता है, यदि ज्यादा खर्च के कारण, उसके सिर कर्ज हो जाएं, तो वह अपने परिवार को नहीं बताता, बल्कि अपने अंदर ही सोचता रहता है, जिसके कारण कई बार हार्ट अटैक जैसी रोगों का शिकार भी हो जाते हैं।

प्रश्न: पुरुष की मानसिक समस्याओं के निवारण के लिए अपने सुझाव बताए।

उत्तर- 1. जिस प्रकार महिलाओं के लिए विशेष अधिकारों के मंत्रालय बनाये गये हैं, वैसे ही तटस्थ कानून पुरुषों के हितों की रक्षा के लिए बनाए जाए, जिसमें पुरुषों पर हो रहे झूठे मुकद्दमों की सुनवाई की जाए।

2. घर के सभी परिवार के सदस्यों को अपने घर के मुखियां से बातचीत करते रहना चाहिए और उनसे इस बात का भी पता लगाना चाहिए, कि वह किसी प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व में तो नहीं जी रहा।

3. हमारे समाज की सभी महिलाओं जिसमें माता, पत्नी, बहन और बेटी आती हैं, उन्हें अपने बेटे, पति, भाई और पिता की भावनाओं को समझना चाहिए। उनके परिवार की स्थिति कैसी है, उसके अनुकूल ही रहना चाहिए।

4. आजकल संयुक्त परिवार खत्म होते जा रहे हैं और एकल परिवार बढ़ते जा रहे हैं। इससे भी पुरुष की त्रासदी बढ़ती है कि वह अकेला घर का काम करें, कि बाहर कमा कर लाए। इस लिए एकल परिवार की सोच को दूर कर संयुक्त परिवार में रहना चाहिए, जिससे थोड़ा-बहुता काम सभी के हिस्से आए और यदि परिवार में कोई समस्या भी आ जाएं, तो सभी लोग उसे संभाल सके, किसी एक पर वह विपदा न बने।

गुरतेजपाल सिंह (पुलिसकर्मी)

अजीत सिंह नगर, श्री मुक्तसर साहिब (पंजाब)

मो. 79738-74613

7.1.1.6 प्रस्तुत शोध पर कोरोना वायरस का नकारात्मक एवं सकारात्मक प्रभाव

वर्ष 2020 को शायद ही विश्व का कोई भी राष्ट्र कभी भूल पाएगा और न ही किसी राष्ट्र ने कभी कल्पना की होगी कि ऐसे दिन भी देखने पड़ेगें। ऐसा नहीं है कि भारत या विश्व के समक्ष कोरोना वायरस के रूप में यह पहली महामारी है। इससे पहले भी विश्व अनेक महामारियों का सामना कर चुका है, लेकिन वह महामारियां एक प्रान्त या एक देश की सीमा में सीमित रहती थी। लेकिन कोरोना वायरस ने सम्पूर्ण विश्व की सीमाओं को तोड़ते हुए जनजीवन को अस्त-व्यस्त कर पूरी दुनिया में कोहराम मचा दिया। दुःख की बात तो यह है कि कोरोना वायरस संक्रमित व्यक्ति के सम्पर्क में आने से एक व्यक्ति से दूसरे, दूसरे से तीसरे और तीसरे से चौथे एक श्रृंखला के क्रम में फैलता है। ऐसे में इस संक्रमण को फैलने से रोकने के लिए तथा स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए सभी लोगों ने स्वयं को अपने घर की सीमा में कैद कर लिया। इस तालाबंदी के कारण पूरे विश्व की आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था और शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह से प्रभवित हुई।

प्रस्तुत शोध पर इसके प्रभाव की बात करें, तो कोरोना वायरस के कारण सभी शोधार्थी अपने घर तक ही सीमित हो चुके थे, इस समय तक प्रस्तुत शोध का काम शोधार्थी की दृष्टि से तो लगभग पूरा हो चुका था, लेकिन पूरा करने के बाद शोध निर्देशक को दिखाना अभी बाकी था, जिसके कारण मैं अवसाद से ग्रसित हो रहा था। शिक्षा व्यवस्था के मूल ढांचे को इस महामारी ने छिन्न-भिन्न कर दिया था। लॉकडाउन हो जाने के कारण शिक्षण संस्थान बंद हो गये और इसका असर हम सभी शोधार्थियों पर पड़ा। संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक और संस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) ने एक रिपोर्ट जारी की थी। जिसमें लिखा था-

> भारत में लगभग 32 करोड़ छात्रों की शिक्षा प्रभावित हुई, जिसमें 15.81 करोड़ लड़कियाँ और 16.25 करोड़ लड़के शामिल हैं। वैश्विक स्तर की बात करें, तो इस महामारी से दुनिया के 193 देशों के 157 करोड़ छात्रों की शिक्षा प्रभावित हुई है। जो विभिन्न स्तरों पर दाखिला लेने वाले छात्रों का 91.3 प्रतिशत है। (25 मई 2020)

यही कारण है कि हर देश शिक्षा को ऑनलाइन से जोड़ने के लिए प्रयासरत हुआ, यह कहा जा सकता है, इसका सकरात्मक प्रभाव यह रहा कि कोरोना ने शिक्षा को ऑनलाइन का रास्ता दिखा दिया। हम कह सकते हैं कि कोरोना ने देश को एक नया मार्ग खोज कर दिया और शिक्षा को ऑनलाइन करने पर मजबूर कर दिया।

शोध-छात्रों के लिए ऑनलाइन माध्यम एक रामबाण के रूप में पेश हो रहा है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय स्वयं डिजिटल शिक्षा के प्लेटफार्म विकसित कर रहे हैं। संभव है कि उच्च शिक्षा का यह नया वर्चुअल रूपांतरण हमें बेहतरी की ओर ले जाएगा और शिक्षा के क्षेत्र को ज्यादा नवाचारी, समाहारी एवं क्षमता विकास की दिशा में आगे बढ़ाएगा।

उपसंहार

साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में नाटक की चर्चा की जाती है। नाटक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का मनोरम अनुकरण है। यह सामूहिक कला होने के साथ-साथ जनरुचि के निकट है। नाटक में विभिन्न दृश्यों एवं श्रव्य कला का आयोजन किया जाता है, इसलिए इसे पंचम वेद की उपाधि दी गयी है। नाट्य-साहित्य का प्राचीनतम स्वरूप भारतीय साहित्य में प्राप्त होता है। आचार्य 'भरतमुनि' का 'नाट्यशास्त्र' नाट्य-साहित्य का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है। यह विधा निरंतर प्रत्येक समस्या को गहराई से प्रस्तुत करती हुई, इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक को सफलतापूर्वक पार कर गई है। प्रस्तुत शोध के माध्यम से दो भाषाओं, हिन्दी एवं पंजाबी के नाटकों का चुनाव किया और एक विशेष समय-सीमा को निश्चित कर, उसके परिवेश को अतीत के परिवेश के साथ तुलना करते हुए, समस्याओं के कारकों को जाँचा, और फिर इन समस्याओं के निवारण के लिए व्यावहारिक अध्ययन कर लोगों के सुझावों को रेखांकित भी किया। 2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित हिन्दी और पंजाबी नाटकों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक चेतना का जो स्वर प्रमुखता के साथ उभर कर सामने आया है, उससे यह आलोच्य अवधि के नाटक जनमानस के अधिक करीब लगते हैं।

बदलते परिवेश की प्रक्रिया इसलिए महत्त्वपूर्ण हो गयी, क्योंकि भारत युवाओं का देश है और युवा सोच स्थिर नहीं रहती, यह निरंतर विकास और विघटन की ओर बढ़ती है। जैसा कि डॉ. श्याम सुंदर दास ने कहा है 'साहित्य समाज का दर्पण है'। आज हमारे साहित्य में भी युवा समाज की सभ्यता, संस्कृति, रूढ़ियों परम्पराएँ, वेश-भूषा, रहन-सहन आदि दिखायी दे रहें हैं। प्रस्तुत शोध का विषय- हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: एक तुलनात्मक अध्ययन (2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित नाटकों के संदर्भ में) है, जो 2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित हिन्दी और पंजाबी के नाटकों की कथा में वर्णित सामाजिक परिवेश, राजनीतिक परिवेश, आर्थिक परिवेश और मनोवैज्ञानिक परिवेश के तथ्यों एवं उनकी समस्याओं को समझना और फिर निवारण की ओर बढ़ना; प्रस्तुत शोध का उद्देश्य था। अत: यह विषय पूरी तरह से आज के समाज के लिए समीचीन है।

हिन्दी और पंजाबी नाटकों के भाषा एवं कला पक्ष के तुलनात्मक अध्ययन से दोनों भाषाओं के नाटककारों की नयी चेतना का सूत्रपात भी हुआ है और साथ ही

उनकी सीमाओं का बोध भी हुआ है। तुलनात्मक शोध द्वारा भारतीय जनमानस को अधिकाधिक समझने का प्रयास किया गया है। भारत सामाजिक संस्कृति का देश है। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा अनेक प्रकार की विघटनशील प्रवृत्तियों को दूर कर हमारी मूलभूत एकता को बढ़ाने का प्रयास किया गया है। प्रादेशिक भाषा पंजाबी में विद्यमान संस्कृति, साहित्य एवं शब्द सम्पदा के उत्तमोत्तम से हिन्दी को विभूषित करने तथा समृद्ध करने का प्रयास प्रस्तुत शोध में किया गया है। प्रस्तुत शोध के चयनित हिन्दी और पंजाबी के नाटककारों ने जिस विषयवस्तु को केन्द्रित कर नाटकों की रचना की थी, उनमें कुछ नाटककार पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाए, उदाहरणस्वरूप सुशील कुमार सिंह ने अपने नाटक *चार यारों की यार* के कुछ दृश्यों में स्त्री-पुरुष के ऐसे सम्बन्धों को प्रस्तुत किया गया है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। स्वदेश दीपक का नाटक *काल कोठरी* में जिस गहराई से रंगकर्मियों की समस्याओं को प्रस्तुत किया था, उनकी समस्याओं के निवारण का कोई संकेत नहीं दिया। पंजाबी में पाली भूपिंदर सिंह के नाटक *चंदन दे ओहले* में जिस प्रकार नारी पात्रों को प्रस्तुत कर, उन्हें सामाजिक बन्धनों से मुक्त करने का प्रयास किया है, वहीं माणा पात्र के साथ इंसाफ नहीं कर सके और उसकी शादी एक बुजुर्ग से कर दी जाती है, जो एक निराशावादी संदेश था। अत: कहा जा सकता है कि चयनित नाटकों में कुछ कमियां होने के बावजूद भी, प्रस्तुत शोध के माध्यम से समाज को नयी दिशा-निर्देश देने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। चयनित आलोच्य अवधि के नाटकों का अध्ययन-विश्लेषण और उद्देश्यों की पूर्ति करने के उपरांत, बदलते परिवेश से सम्बंधित निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं:-

प्रस्तुत शोध का प्रथम उद्देश्य 'बदलते परिवेश के स्वरूप को स्पष्ट करना' था। इस उद्देश्य को प्रथम अध्याय- सैद्धांतिक पृष्ठभूमि, में पूरा किया गया है। परिवेश सदैव बदलता रहता है, इसकी कोई निश्चित समय-सीमा नहीं होती। बदलता परिवेश एक विस्तृत कालखण्ड है। इसलिए कुछ वर्षों में हम इसकी पूर्ण गणना नहीं कर सकते। कभी-कभी थोड़े से ही वर्षों में युग परिवर्तित हो जाता है तथा कभी-कभी सैकड़ों वर्षों तक भी परिवर्तित नहीं होता। किसी भी युग का निर्माण वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों कालों के संयोग से ही होता है। बदलते परिवेश का असल सम्बन्ध तो समाज से ही है। हमारी पूर्व पीढ़ी के सदस्यों की ओर देखें, तो उन्होंने जो अनुभव

किया या परम्परा के रूप में देखा, उन्हें अपना लिया, ऐसा ही हमने जो देखा, उसे हमने अपना लिया। सामान्य शब्दों में कहें, तो ज्यादातर पूर्व पीढ़ी के लोगों के मूल्यों से ही नव पीढ़ी के मूल्यों का जन्म होता है।

प्रस्तुत शोध का दूसरा उद्देश्य 'हिन्दी तथा पंजाबी के नाटकों में प्रस्तुत बदलते परिवेश के विकास को रेखांकित करना' था। प्रत्येक समाज में बदलते परिवेश का अभिप्राय सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आ जाने से है। परिवेश समय, स्थान और कार्य के आधार पर सदैव साथ रहता है और समय के अनुकूल परिवेश का बदल जाना आम बात है, क्योंकि परिवर्तन के कारण प्रचलित सामाजिक व्यवस्था और सम्बन्धों में बदलाव आता है। यदि हम सामान्य रूप से देखें, तो परिवेश जटिलता से सरलता की ओर ही बढ़ता है। ऐसे ही जाति, परिवार और धर्म की कठोरताओं पर प्रहार करने से इनकी जटिलताओं को कम किया जा सकता है। परिवेश की परिवर्तन प्रक्रिया को पूर्व से अधिक ताकत और क्षमता के रूप में देखा जा सकता है। सामान्य विकास में व्यापार, कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विभिन्न क्षेत्र में प्रगति को गिना जाता है। विकास के रास्ते पर ही विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों को निश्चित कर उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है, इनमें से कुछ उद्देश्यों का पूरा होना ही परिवेश का बदलाव या विकास कहलाता है। इस बदलाव और विकास को सम्पूर्ण शोध में रेखांकित करते हुए, इस उद्देश्य की प्राप्ति की है। साथ ही, इस उद्देश्य को प्रथम अध्याय में चयनित नाटकों में बदलते परिवेश के विषय को प्रस्तुत करने के लिए, उस विषय से सम्बंधित अतीत के नाटकों को भी प्रस्तुत किया गया है, चूँकि बदलाव को क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया जा सके। इस प्रकार इस उद्देश्य को भी पूरा किया गया है।

प्रस्तुत शोध का चौथा उद्देश्य 'हिन्दी तथा पंजाबी के नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, रिश्वतखोरी, बेरोजगारी, कृषकों की दशा आदि सामाजिक, राजनीति और आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना' था। इसमें से सामाजिक स्थिति के अध्ययन को दूसरे अध्याय 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: सामाजिक पक्ष' में पूरा किया गया है। बदलते सामाजिक परिवेश के संदर्भ में देखें, तो 2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के मनुष्य दोहरे व्यक्तित्त्व एवं स्वार्थीपन की भावना के शिकार होते हुए दिखायी दे रहे हैं, यह भावना इनके चरित्र को गिरा रही है। यही कारण है कि आज हमारे समाज में असुरक्षा का वातावरण बनता जा रहा है। भौतिकतावादी सोच के कारण संयुक्त

परिवार व्यवस्था टूटती जा रही है और इसके स्थान पर एकल परिवारों का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच टकराव पैदा हो रहा है। दाम्पत्य जीवन में दरारें पड़ती जा रही हैं। विवाह एक मात्र समझौता बनता जा रहा है। आज का व्यक्ति तो विवाह की अनिवार्यता को भी स्वीकार नहीं कर रहा। स्वच्छंदतावादी सोच ने युवा वर्ग में वैवाहिक वर्जनाओं को समाप्त कर दिया है। एक तरफ नारी अपने अधिकारों की माँग कर रही है, वहीं दूसरी ओर नारी का आकर्षक एवं मोहनी रूप भी सामने आ रहा है। अपने शारीरिक सौंदर्य की समाप्ति के भय के कारण नारी में संतान विमोह की स्थिति उत्पन्न हो रही है। भ्रष्टाचार ने सारी सामाजिक व्यवस्था को बिगाड़ कर रख दिया है। प्रवास की समस्या भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, लेकिन इस बदलते परिवेश में हम देख रहे हैं कि हमारा कुछ युवा वर्ग तो शिक्षित होकर हमारे समाज को एक आशावादी किरण दिखा रहा है। वह प्राचीन रूढ़िवादी परम्पराओं की घोर आलोचना करते हुए, अपने अधिकारों के प्रति लोगों को सचेत कर रहे हैं। आज के समाज को नयी दिशा दिखाने के लिए, साहित्यकार भी अपनी भूमिका अदा कर रहें हैं। आज का साहित्यकार जहाँ प्रशासन और सरकार सही है, वहाँ उसकी प्रशंसा करता है, लेकिन जहाँ गलत है, तो उसकी आलोचना करने से भी नहीं डरता।

प्रस्तुत शोध का चौथा उद्देश्य 'हिन्दी तथा पंजाबी के नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, रिश्वतखोरी, बेरोजगारी, कृषकों की दशा आदि सामाजिक, राजनीति और आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन' था। इसमें से राजनीतिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन को तीसरे अध्याय 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: राजनीतिक पक्ष' में पूरा किया गया है। यदि 2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के माध्यम से, हम बदलते राजनीतिक परिवेश की बात करें, तो आज की राजनीति मर्यादा एवं मूल्य विहीन हो गयी है। आम-आदमी राजनेताओं की नज़र में केवल एक वोटर है, उससे अधिक और कुछ नहीं। इस वोटर से राजनेता को केवल पाँच वर्ष के बाद ही काम पड़ता है। राजनेता अपनी भाषणबाजी, झूठे वायदे और आश्वासनों के साथ चुनाव के समय जनता के दरबार में जाते हैं। अपने चुनावी हथकण्डों, धन एवं शक्ति के दुरुपयोग से, वे फिर सत्ता को प्राप्त कर लेते हैं। आज की राजनीति में साम्प्रदायिकता, जातिवाद, निरकुंशता, परिवारवाद आदि का प्रभाव ज्यादा पड़ रहा है। छोटे-छोटे क्षेत्रीय

राजनीतिक दल सरकार को प्रभावित करते हैं और अपने स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। विपक्षी दल जनता की लड़ाई लड़ने की अपेक्षा दोबारा सत्ता हासिल करने की फिराक में रहते हैं। ऐसे में सबसे ज्यादा दयनीय स्थिति मतदाता की होती है, जिसके पास कोई विकल्प नहीं होता। पुलिस एवं प्रशासन नेताओं के हाथ की कठपुतली बने हुए हैं। बड़े-बड़े घोटालों को जांच आयोग व कमेटियां बनाकर दबा दिया जाता है।

प्रस्तुत शोध का चौथा उद्देश्य 'हिन्दी तथा पंजाबी के नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, रिश्वतखोरी, बेरोजगारी, कृषकों की दशा आदि सामाजिक, राजनीति और आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन' था। इसमें से आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन को चौथे अध्याय 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: आर्थिक पक्ष' में पूरा किया गया है। ऐसे ही 2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के माध्यम से, हम बदलते आर्थिक परिवेश की बात करें, तो किसी भी देश की सम्पन्नता एवं सुदृढ़ता, उसकी अर्थव्यवस्था पर निर्भर करती है। गरीबी, महँगाई, भ्रष्टाचार और बेरोजगारी ने हमारे देश में आर्थिक विषमता की दीवार खड़ी कर दी है। आज अमीर और अधिक अमीर, तथा गरीब और अधिक गरीब बनता जा रहा है। दिन प्रतिदिन बिगड़ती अर्थव्यवस्था का प्रभाव हमारे सामाजिक सम्बन्धों पर भी पड़ रहा है। आज सभी सम्बन्ध अर्थ आधारित हो गये हैं, जिसके पास पैसा नहीं है, उसको समाज में कहीं महत्त्व नहीं मिलता। प्रतिदिन कोई-न-कोई नया घोटाला, देश की अर्थव्यवस्था को जर्जर कर रहा है। विदेशी बैंकों में जमा काला धन बढ़ता जा रहा है। भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के दौर में बड़ी-बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों ने हमारे लघु-उद्योगों को लगभग नष्ट कर दिया है। अब खुदरा व्यापार में छोटे दुकानदारों, व्यापारियों व कृषकों में भी भय का माहौल बना हुआ है। ये सभी लोग मध्यवर्ग की श्रेणी में आते हैं, मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ न होने के कारण, उसका सम्पूर्ण जीवन एक अनवरत संघर्ष बन जाता है, जिसके कारण इसकी विविध समस्याएँ, समुचित पोषण, सुविधाजनक आवास की समस्याएं आदि जुड़ जाती है। यहीं नहीं, इस वर्ग की प्रदर्शन प्रियता, महँगाई, बेरोजगारी इन समस्याओं को और विकराल रूप दे देती है। अतीत में देखें, तो यह वर्ग समाज का अग्रणी वर्ग रहा है। देश को विकास के मार्ग पर अग्रसर करने के लिए, इस वर्ग ने अनेक आंदोलन एवं संघर्ष किए थे। जहाँ चयनित हिन्दी और पंजाबी नाट्य-साहित्य का सम्बन्ध है, इसमें नाटककारों के द्वारा इनका यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध का तीसरा उद्देश्य 'हिन्दी तथा पंजाबी नाटकों में प्रस्तुत परिवेश के संदर्भ में पात्रों की मानसिक दशा का चित्रण करना' था। इसको पाँचवें अध्याय 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: मनोवैज्ञानिक पक्ष' में पूरा किया गया है। ऐसे ही 2000 से 2018 के मध्य प्रकाशित चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों के माध्यम से बदलते मनोवैज्ञानिक परिवेश की बात करें, तो मानव मन का ज्ञान मनोविज्ञान है तथा मानव मन की वृतियाँ, मनोवृत्तियाँ कहलाती है। चयनित हिन्दी और पंजाबी नाट्य-साहित्य में मनोविश्लेषण भी विशिष्ट स्थान रखता है। चाहे कोई भी नाटक हो, उसमें नाटककार के मन की छवि स्पष्ट दिखायी देती है। नाटककार पात्रों के संवादों के माध्यम से अपने समय अर्थात् समकाल का ब्यौरा पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है। पात्रों के संवादों के माध्यम से ही हम अंदाजा लगाते हैं कि नाटककार के मन में क्या चल रहा है। फ्रायड, एडलर तथा युंग से शुरू हुआ यह मनोविश्लेषण, धीरे-धीरे इक्कीसवीं शताब्दी के नाट्य-साहित्य तक अपना प्रभाव बनाता चला आया है। समकालीन हिन्दी और पंजाबी नाटकों में जो नैतिकता का पतन, कुण्ठा, अन्तर्द्वन्द्व, तनाव, घुटन, त्रास और स्वार्थ आदि मनोभाव उभर कर सामने आए हैं और इसकी चपेट में स्त्री, पुरुष, बच्चे तथा बूढ़े सभी लोग आ गये हैं। इन मनोभावों के वशीभूत होकर व्यक्ति सामान्य अथवा असामान्य व्यवहार करने लगता है। असामान्य व्यवहार ही मनोविकारों की उपज है। चयनित नाटकों में यौन सम्बन्धी समस्याओं के अंतर्गत काम विकृति, काम-भावना, काम-कुण्ठा आदि को विवेच्य विषय बनाया। जीवन में असफलता, कठिन परिस्थितियाँ तथा सम्बन्धों में असफलता आदि ऐसे अनेक भाव है, जो व्यक्ति को हीन बनाते हैं। चयनित नाटकों में बदलते परिवेश के अनुसार स्त्री पात्रों की मनोवैज्ञानिक त्रासदी के साथ-साथ पुरुष पात्रों की मानसिकता को समझते हुए, उसे भी बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही मध्यवर्ग की दमित इच्छाएँ, हीनभावनाएँ, स्वार्थपरता, मानसिक संघर्ष आदि उसके जीवन में अनेक रूपों में परिलक्षित होते हैं, जिसका वर्णन नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत शोध में किया गया है।

प्रस्तुत शोध में छठा अध्याय 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: भाषा एवं शिल्प पक्ष' है। भारतीय नाट्य साहित्य का गत दो दशकों का इतिहास यदि हम देखें तो नाटक के क्षेत्र में किये गये नये-नये प्रयोग शिल्पों से हमारा परिचय होता है। इन नयी नाट्य-शैलियों और शिल्पों ने भारतीय नाट्य-साहित्य को निश्चित रूप से समृद्ध किया है। प्रस्तुत शोध में हिन्दी और पंजाबी नाटकों में भाषा

एवं शिल्प ने जो योगदान दिया है, उसकी चर्चा की गयी है और साथ ही चयनित सभी नाटकों की विभिन्न शैलियों को भी प्रस्तुत किया गया।

प्रस्तुत शोध का पांचवां उद्देश्य 'बदलते परिवेश के संदर्भ में सांकेतिक कारकों के निवारक बिन्दुओं का निर्देश करना' था। इसको सप्तम अध्याय 'हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता परिवेश: व्यावहारिक पक्ष' में पूरा किया गया है। आज दुनिया के प्रत्येक समाज को भिन्न-भिन्न समस्याओं ने घेरा हुआ है। मानव समाज न तो कभी सामाजिक समस्याओं से पूर्ण मुक्त रहा है और न ही रहने की सम्भावना निकट भविष्य में नज़र आती है, परन्तु इतना तो निश्चित है कि आधुनिक समय के साहित्य और संचार की क्रांति तथा शिक्षा के प्रति लोगों की जागरूकता के फलस्वरूप मनुष्य, इन समस्याओं के प्रति संवेदनशील हो गया है। किसी भी समाज में स्थायित्व एवं निरंतरता हेतु, इन समस्याओं का समाधान किया जाना आवश्यक माना जाता है। इसलिए प्रस्तुत शोध के अंत में चयनित नाटकों के तथ्यों के आधार पर जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं को रेखांकित किया गया था, उसके निवारण के लिए व्यावहारिक अध्ययन किया। व्यावहारिक अध्ययन के समय मुख्य उद्देश्य उन सभी समस्याओं को, उन लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करना था, जो इस विषय से जुड़े हों, चाहे उसमें कृषक हों, बेरोजगार हों या इस विषय के विशेषज्ञ हों। उनसे मिलकर सम्बंधित समस्या की दोनों भाषाओं के नाटकों की कथा को प्रस्तुत कर, उसके साथ बातचीत के दौरान निवारण के सुझाव बिन्दुओं को प्रस्तुत शोध-प्रबंध में उल्लेखित किया गया है, इससे भविष्य में इन समस्याओं के प्रति सचेत रहा जा सके और एक आदर्श समाज की व्यवस्था में प्रस्तुत शोध सहायक सिद्ध हो सके। इस अध्याय में ही कोरोना महामारी का प्रस्तुत शोध पर जो प्रभाव रहा उसे भी प्रस्तुत किया गया।

चयनित हिन्दी और पंजाबी नाटकों का अध्ययन, चिन्तन-मनन करते हुए, शोध के उद्देश्य को पूरा किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अभी कुछ ऐसी विशेष दिशाएं हैं, जिनके ऊपर शोध की संभावनाएँ दृष्टिगोचर होती है-

हिन्दी और पंजाबी नाटकों में किसानी समस्या और समाधान का तुलनात्मक अध्ययन

सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का तुलनात्मक अध्ययन

इक्कीसवीं शताब्दी के हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलते मानवीय मूल्य का अध्ययन

इक्कीसवीं शताब्दी के हिन्दी और पंजाबी नाटकों में बदलती ग्रामीण संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता पारिवारिक परिवेश का तुलनात्मक अध्ययन

हिन्दी और पंजाबी के नाटकों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

संदर्भ ग्रंथ सूची

क. आधार ग्रन्थ हिन्दी

ख. आधार ग्रन्थ पंजाबी

ग. शब्दकोश

घ. सहायक ग्रन्थ हिन्दी

ड. सहायक ग्रन्थ पंजाबी

च. सहायक ग्रन्थ अंग्रेजी

छ. पत्रिकाएँ

ज. समाचार-पत्र

झ. इंटरनेट

क. आधार ग्रन्थ हिन्दी

कांत, मीरा. *हुमा को उड़ जाने दो.* वाणी प्रकाशन, 2002.

दीपक, स्वदेश. *काल कोठरी.* वाणी प्रकाशन, 2015.

धवन, मधु. *आज की पुकार.* वाणी प्रकाशन, 2014.

बब्बर, नादिरा जहीर. *सुकुबाई.* वाणी प्रकाशन, 2008.

---. *जी जैसी आपकी मर्जी.* वाणी प्रकाशन, 2008.

मिश्रा, पीयूष. *गगन दमामा बाज्यो.* इतिहास बोध प्रकाशन, 2001.

वजाहत, असग़र. *जिस लाहौर नइ देख्या ओं जम्याइ नइ.* वाणी प्रकाशन, 2015.

वैद, कृष्ण बलदेव. *कहते हैं जिसको प्यार.* राजकमल प्रकाशन, 2004.

रानी, विभा. *आओ! तनिक प्रेम करें.* किताबघर प्रकाशन, 2006.

शर्मा, अजय. *मोहम्मद जलालुद्दीन.* आस्था प्रकाशन, 2018.

शुक्ला, अजय. *ताजमहल का टेंडर.* राजकमल प्रकाशन, 2016.

सुल्भ, हृषीकेश. *अमली.* राजकमल प्रकाशन, 2010.

सिंह, सुशील कुमार. *सिंहासन खाली है.* वाणी प्रकाशन, 2016.

---. *चार यारों की यार.* वाणी प्रकाशन, 2008.

सिन्हा, किशोर कुमार. *धारा एक सौ चवालीस.* वाणी प्रकाशन, 2009.

ख. आधार ग्रन्थ पंजाबी

आत्मजीत, *मैं ता एक सारंगी हाँ.* लोकगीत प्रकाशन, 2002.

औलख, अजमेर सिंह. *निक्के सूरजां दी लड़ाई.* चेतना प्रकाशन, 2003.

---. *एइं किवें खोहलोंगे ज़मीनां साडीयां?* चेतना प्रकाशन, 2015.

औजला, नाहर सिंह. *सुपर वीज़ा.* श्री प्रकाशन इन्द्रप्रस्थ, 2014.

जसूजा, गुरचरण सिंह. *कंधा रेत दियां.* आरसी पब्लिकेशन, 2008.

---. *परियां.* आरसी पब्लिकेशन. चाँदनी चौक, 2000.

जोड़ा, निर्मल. *सौदागर.* चेतना प्रकाशन, 2015.

दमन, दविंदर. *छां विहूणे* . चेतना प्रकाशन, 2006.

दीप, कुलदीप सिंह. *तूं मेरा की लग्गदैं.* अदबी परवाज़ प्रकाशन, 2016.

बराड़, जतिंद्र. *पायदान.* नानक सिंह पुस्तकमाला, 2005.

वर्मा, सतीश कुमार. *लोक मना दा राजा* श्री प्रकाशन, 2004.

शबदीश, अनीता. *कथा रिड़दे परिंदे दी.* चेतना प्रकाशन, 2012.

स्वराजबीर, *कल्लर.* चेतना प्रकाशन, 2007.

सिंह, पाली भूपिंदर. *चन्दन दे ओहले.* चेतना प्रकाशन, 2003.

सिंह, ओंकारप्रीत. *प्रगटिओ खालसा.* चेतना प्रकाशन, 2009.

ग. शब्दकोश

पाठक, रामचन्द्र. *शब्दकोष* भार्गव भूषण प्रेस. 2011.

बाहरी, हरदेव. *राजपाल हिन्दी शब्दकोष.* कश्मीरी गेट, 2012.

बसु, नरेद्र. *हिन्दी विश्वकोष.* नगेन्द्रनाथ वसु विश्वकोष. बिग बाज़ार, 2008

नाभा, भाई कान्ह सिंह. *महान शब्दकोष.* तरुण आरट प्रैस. जालन्धर नैशनल बुक शॉप, 2006.

Hornby, A.S. *oxford advanced learners dIctIonary*. Oxford unIversIty press.

घ. सहायक ग्रन्थ हिन्दी

अमरनाथ, *हिन्दी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली.* राजकमल प्रकाशन, 2009.

अग्रवाल, भारत. *भारतीय समाज: मुद्दे एवं समस्याएँ.* साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2001.

आहूजा, राम. मुकेश आहूजा. *समाजशात्र. विवेचना एवं परिप्रेक्ष्य.* रावत पब्लिकेशन, 2012.

आत्रेय, कमला. *आधुनिक मनोविज्ञान और सूरकाव्य.* विभू प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1976.

ओझा, मान्धाता. *हिन्दी समस्या नाटक.* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1998.

ओझा, दशरथ. *हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास.* राजपाल एंड सन्स, 1984.

---. *हिन्दी नाटक: प्रगति और प्रभाव.* राजकमल प्रकाशन, 1984.

---. *हिन्दी नाटक का उदय और विकास.* राजपाल एंड सन्स, प्रथम प्रकाशन, 1955.

ओझा, संतोष. *आधुनिक हिन्दी नाटक और पंजाबी नाटक.* भाषा विभाग, 1974.

अंकुर, देवेन्द्र राज. *रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र.* राजकमल प्रकाशन, 2012.

उपाध्याय, बलदेव. *भारतीय साहित्य शास्त्र.* प्रसाद परिषद. तीसरा संस्करण, 2012.

उपाध्याय, *पशुपतिनाथ. हिन्दी आलोचना: बदलते परिवेश.* आलेख प्रकाशन, 2007.

उपाध्याय, देवराज. *आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य का मनोविज्ञान.* साहित्य भवन, 2002.

---. *साहित्य शोध के सिद्धान्त और समस्याएँ.* अनुपम प्रकाशन, 2003.

ऊटवाल, करन सिंह सम्पा. *हिन्दी और उर्दू की सांझी विरासत.* संस्करण प्रथम. नैशनल पब्लिशिंग हाउस, 2018.

कुमार, सुरेश. *शैली विज्ञान.* वाणी प्रकाशन, 2010.

कुमार, लव. *हिन्दी नाटक के बदलते तेवर.* पराग प्रकाशन. प्रथम संस्करण, 2018.

कुमार, दूबे. *राजनीति की किताब.* वाणी प्रकाशन, 2016.

कुमार, मुकेश. शेखर, सुंधाशु. *भूमंडलीकरण नीति और नियति.* विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009.

कोली, सी.एम. *राजनीति शास्त्र के मूल आधार.* साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2005.

कौड़ा, स्वामी प्यारी. *स्वतन्त्रोत्तर हिन्दी नाटक और रंगमंच.* के.एल. पचौरी प्रकाशन, 2013.

खिसमेरा, ज्ञानचन्द्र. *आंबेडकर का आर्थिक चिंतन.* भोपाल. 1995.

खेमानी, कुसुम. *हिन्दी नाटक के पाँच दशक.* राधाकृष्ण प्रकाशन, 2015.

खंडई, हेमंत. श्री शबनम खा. *नैतिक शिक्षा.* ए.पी.एच प्रकाशन, 2005.

गढ़वी, नैनेश. सोंदर्वा, राम. *21 वीं सदी में महिलाओं का बदलता स्वरूप.* पैराडाइज पब्लिशर्स, 2013.

गुप्त, अवधेश चन्द्र. *स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी नाटक: विचार-तत्त्व.* राजकमल प्रकाशन, 2000.

गुप्त, सोमनाथ. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास. वाणी प्रकाशन, 1988.

गुप्ता, विपिन. *हिन्दी नाटक में समसामयिक परिवेश.* निर्मल प्रकाशन, 2000.

गुप्ता, रमासेन. *हिन्दी तथा बंगला नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन.* वाणी प्रकाशन 2011.

गौड़ा, गणेश दत्त. *आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन.* सरस्वती पुस्तक सदन, 1996.

गौतम, रमेश. *आधुनिक हिन्दी के प्रतीक नाटक.* नचिकेता प्रकाशन, 2003.

गौतम, विकल. *हिन्दी रंग शिल्प दर्शन.* वाणी प्रकाशन, 2013.

गौतम, वीणा. *हिन्दी नाटक रंगानुशासन एवं प्रयोगिक नवोम्मेष.* के.के पब्लिकेशन, 2013.

चन्द्र, एस.एस. भारतीय सामाजिक संरचना. कनिष्का पब्लिशर्स, 2002.

---. *भारतीय सामाजिक समस्याएं.* कनिष्का पब्लिशर्स, 2002.

चातक, गोबिन्द. *नाटक की साहित्यिक संरचना* लोक भारती प्रकाशन, 1999.

चतुर्वेदी, रामस्वरूप. *हिन्दी नवलेखन.* लोकभारती प्रकाशन, 2007.

चौधरी, इन्द्रनाथ. *तुलनात्मक साहित्य की भूमिका.* नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1983.

---. *तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य.* नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1988.

जाधव, सर्वराव. *शंकर शेष का रचना संसार.* ममता प्रकाशन, 2009.

जैन, नेमिचंदर. *द्रश्य-अद्रश्य.* वाणी प्रकाशन, 1994.

तनेजा, जयदेव. *आधुनिक भारतीय नाट्य-विमर्श.* राधाकृष्ण प्रकाशन, 2015.

तिवारी, नगेन्द्रनाथ. *साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध.* सारस्वत प्रकाशन, 2006.

तिवारी, भोलानाथ. *भाषाविज्ञान.* किताब महल. प्राइवेट लिमिटेड, 1998.

तिवारी. रंजन, *स्वतंत्रयोत्तर, हिन्दी नाटक जन साधारण परिप्रेक्ष्य में.* आशीष प्रकाशन, 2011.

द्विवेदी, हजारी प्रसाद. प्राचीन भारत का कला विकास. लोक भारती प्रकाशन, 1952.

दोषी, एस.एल. *आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता एवं नव-समाजशास्त्रीय सिद्धान्त.* रावत पब्लिकेशन, 2002.

नगेन्द्र. *हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास.* नेशनल पब्लिकेशन हॉउस, 1973.

---. *श्रेष्ठ निबन्ध.* नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1975.

---. *तुलनात्मक साहित्य.* नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1985.

नन्दवाना, नवीन. *समकालीन हिन्दी नाटक समय और संवेदना.* अमन प्रकाशन रामबाग, 2014.

पडोड़े, विजय. *जैनेंद्र के उपन्यास साहित्य में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध.* अन्नपूर्ण प्रकाशन, 2006.

प्रसाद, गोपी कृष्ण. *विकास का समाज शास्त्र.* रावत पब्लिकेशन्स, 2002.

पाण्डेय, कैलाश नाथ. *हिन्दी आलोचना का पुन: पाठ.* प्रभात प्रकाशन, 2018.

पुनियानी, राम. *साम्प्रदायिक राजनीति. तथ्य एवं मिथक.* वाणी प्रकाशन, 2012.

फडिया, बी.एल. *भारत में लोक प्रशासन.* साहित्य भवन प्रकाशन, 2005.

भारद्वाज, लक्ष्मी नारायण. *नाटक परम्परा और परिवेश.* के. एल. पचौरी प्रकाशन, 2001.

भंडारे, सुकुमार. *समकालीन हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चित्रण.* विकास प्रकाशन. प्रथम संस्करण, 2007.

मजूमदार, डी.एन, रायचौधरी. *स्त्री संघर्ष का इतिहास.* वाणी प्रकाशन, 2014.

मलिक, शांति. *हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास.* नैशनल पब्लिशिंग, 2000.

ममता. *साठोत्तर हिन्दी नाटक और राजनीति.* संजय प्रकाशन, 2008.

मंगलानी, रूपा. *भारतीय शासन एवं राजनीति* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2010.

मानधाने, धनराज. *हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास.* रामबाग प्रकाशन, प्रथम संस्करण जनवरी 1991.

मुकर्जी, रविन्द्रनाथ. *भारतीय समाज: मुद्दे एवं समस्याएँ.* विवेक प्रकाशन, 2001.

मोहन, नरेंद्र. *समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच.* वाणी प्रकाशन, 2014.

---. *आज की राजनीति और भ्रष्टाचार.* राजपाल एंड सन्स प्रकाशन, 1997.

रस्तोगी, गिरीश. *रंगभाषा.* राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, 2002.

----. *हिन्दी नाटक: सिद्धान्त और विवेचन.* इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, 1982.

रावत. हरिकृष्ण, *समाजशास्त्र विश्वकोश.* रावत पब्लिकेशन्स, 2006.

राजुरकर, भ. ह. *तुलनात्मक अध्ययन.* वाणी प्रकाशन, 2015.

---. *तुलनात्मक अध्ययन: स्वरूप और समस्याएँ.* वाणी प्रकाशन, 2017.

राठी, नीलम. *साठोत्तरी हिन्दी नाटक.* संजय प्रकाशन, 2001.

राय, नारायण. *नया नाटक उद्भव और विकास.* राजकमल, 2002.

विनोद, टी.आर. *मार्क्सवादी साहित्य आलोचना.* अरुणोदय प्रकाशन, 2006.

वर्मा, दिनेश चन्द्र. *समकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार.* चिंतन प्रकाशन, 2008.

श्याम, सीताराम झा. *नाटक और रंगमंच.* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 2012.

शर्मा, सुभाष. *भारतीय महिलाओं की दशा.* आधार प्रकाशन, 2012.

शर्मा, के.एल. *भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन.* रावत पब्लिकेशन, 2014.

शर्मा, कृष्ण और जाहिदुल दीवान. सम्पा. *अनुवाद और तुलनात्मक अध्ययन: एक भारतीय दृष्टि.* अकेडमिक पब्लिशिंग नेटवर्क, 2019.

शर्मा, रामविलास. *भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएं.* वाणी प्रकाशन, 1986.

शर्मा, शिवकुमार. *हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां.* अशोक प्रकाशन, 2018.

शर्मा, रेखा. *कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान.* मिलिन्द प्रकाशन, संस्करण 2001.

शर्मा, शेखर. *समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक.* भावना प्रकाशन, 1998.

शर्मा, श्री राम. *लोक साहित्य का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन.* निर्मल पब्लिकेशन्स, 2000.

शर्मा, के. एल. *भारतीय समाति संरचना.* रावत पब्लिकेशन्स. जवाहर नगर, 2006.

---. *भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन.* रावत पब्लिकेशन, 2006.

शर्मा, आर.एन. और शर्मा आर.के. *सामाजिक विघटन.* एटलांटिक पब्लिशर्स, 2002.

शुक्ल, देवेन्द्र. *साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में बिम्ब-विधान.* विकास प्रकाशन, प्रथम प्रकाशन 2011.

शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* प्रभात पेपरबैक्स, 2016.

शुक्ल, हनुमानप्रसाद. *तुलनात्मक साहित्य- सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य.* राजकमल प्रकाशन, 2015.

शुक्ला, श्रीमती लक्ष्मी. *भारतीय मनोविज्ञान.* ईस्टर्न बुक लिंकेर्स, 2009.

शम्भूनाथ, *मिथक और भाषा.* वाणी प्रकाशन, 2001.

शैलेन्द्र, सेंगर. *भारतीय राजनीति. उभरते मुद्दे.* पुष्पाजंली प्रकाशन, 2006.

स्वामी, देवेन्द्र. *आधुनिक नाटक: दृष्टि एवं शिल्प* भावना प्रकाशन, 2010.

सहाय, कैलाश कुमारी. *प्रवासी भारतीयों की हिन्दी सेवा.* अविराम प्रकाशन, 2010.

सहाय, रधुवीर. *सामाजिक यथार्थ से शिल्प तक.* राजकमल प्रकाशन, 2000.

सारस्वत, ओमप्रकाश. *बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक.* मंथन पब्लिकेशन, 2001.

सिंह, केदार. *हिन्दी नाटक: कल और आज. क्लासिकल* पब्लिशिंग कम्पनी, 2005.

सिंह, निर्मल कुमार. *अपराध और भ्रष्टाचार की राजनीति.* वाणी प्रकाशन, 2000.

सिंह, निर्मल कुमार. *अपराध और भ्रष्टाचार की राजनीति.* वाणी प्रकाशन, 2000.

सिंह, बच्चन. *आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोक भारती प्रकाशन, 1986.

सिंह, बैजनाथ. *स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि.* राजकमल प्रकाशन, 1999.

---. *हिन्दी नाटक.* लोकभारती प्रकाशन, 1975.

---. *हिन्दी साहित्य का इतिहास.* लोकभारती प्रकाशन, 1967.

सिंह, बिर्केश्वर प्रसाद. *भारतीय शासन एवं राजनीति.* भावना प्रकाशन, 2008.

सिंह, राजू. *विकास, विस्थापन एवं पुनर्स्थान.* रावत पब्लिकेशन्स, 2015.

सिंह, रमेश. भारतीय अर्थव्यवस्था. टी. एम.एच. प्रकाशन, 2017.

सिंह, लाभ. *असामान्य मनोविज्ञान.* आगरा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1981.

श्रीवास्तव, जगदीश सहाय. *समाज दर्शन की भूमिका.* नेशनल पब्लिसिंग, 2004.

त्रिपाठी, रामछबीला. *हिन्दी और भारतीय भाषा का तुलनात्मक अध्ययन.* वाणी प्रकाशन, 2017.

त्रिपाठी, नरेन्द्रनाथ. *हिन्दी नाटक: बदलते आयाम.* विक्रम प्रकाशन, 2010.

ड. सहायक ग्रन्थ पंजाबी

आत्मजीत, *पंजाबी नाटक का सफ़र.* नैशनल बुक ट्रस्ट. इंडिया, 2009.

औलख, अजमेर सिंह. *सत बगाने.* लोकगीत प्रकाशन, 1987.

कौर, गगनदीप. *बाबा बलवंत और नागार्जुन: संदर्भ प्रगतिवाद (तुलनात्मक अध्ययन).* सतलुज प्रकाशन, 2007.

कौर, राजदीप. *स्वराजबीर की नाट-चेतना.* रूही प्रकाशन, 2009.

दीवाना, मोहन सिंह. *इंडियन डरामा.* पब्लिकेशन डिवीज़न, 2000.

दुगल, करतार सिंह. *पुरनियाँ बोतला.* अतर चन्द एण्ड सनज़, 1965.

फुल, गुरदयाल सिंह. *पंजाबी नाटक स्वरूप. सिद्धान्त और विकास.* पब्लिकेशन ब्यूरो, 1998.

बजाज, गुरदयाल सिंह. *साहित्य मनोविज्ञान और हिन्दी एकांकी.* राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993.

वर्मा, सतीश कुमार. *पंजाबी नाटक और रंगमंच की एक सदी.* राजकमल प्रकाशन. 2009.

---. *पंजाबी नाटक का इतिहास.* पंजाबी अकादमी, 2005.

सीमा, सम्पा. *आधुनिक पंजाबी नाटकों के बदलते परिवेश.* युनिस्टार, 2016.

सिंह, पाली भूपिंदर. *पंजाबी नाट्यशास्त्र.* युनीस्टार पब्लिकेशन, 2015.

सिंह, ब्रह्मजगदीश. राजबीर कौर. *पंजाबी साहित्य के इतिहास.* वारिस शाह फाउन्डेशन, 2011.

सिंह, रशपाल. *पंजाबी नाटक सिद्धान्त और समस्या.* युनीस्टार पब्लिकेशन, 2015.

सिंह, रविन्द्र. *विरसा और वर्तमान.* पंजाब प्रकाशन, 1986.

सिंह, रेशम. *सत्ता सिद्धान्त और पंजाबी नाटक.* चेतना प्रकाशन, 2015.

---. *नाट सरोकार.* चेतना प्रकाशन, 2020.

सिंह, सतिन्दर. *तुलनात्मक भारतीय साहित्य.* पंजाबी अध्ययन स्कूल. गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1990.

सिंह, सुखदेव. *मार्क्सवादी काव्य-शास्त्र.* चेतना प्रकाशन, 2000.

सिंह, जसपाल. *पंजाबी नाटक और रंगमंच.* प्राप्तियां एवं संभावना. पब्लिकेशन ब्यूरो. 2016

सेठी, उमा, *आत्मजीत की नाट-संवेदना.* लोकगीत प्रकाशन, 2002.

हुंदल, साधू सुखवंत. *मलुके विश्वविद्यालय.* बलराज साहनी यादगार प्रकाशन, 1995.

नूर, जगीर सिंह. *अजमेर सिंह औलख की नाट-रचना के प्रतिमान.* पंजाबी साहित्य और सभ्याचार सदन, 2001.

बवेजा, नसीब. *सतीश कुमार वर्मा का नाट जगत.* बिशन चन्द एंड संनस, 2006.

च. सहायक ग्रन्थ अंग्रेजी

Brooks. Robert C. *CorruptIon In AmerIcan PolltIcs and LIfe.* New York: Dodd. Mead and Company. 1910

EllIott. M.A and F.E. MerrIll. *SocIal DIsorganIzatIon*. New York: Harper and Brothers. 1941.

कविराज. सुदीप्त. *पॉलिटिक्स इन इंडिया.* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003.

फ्रायड, सिगमण्ड. *ए जरनल इंट्रोडक्शन टू साइको-एनालिसिस (अनुवाद).* राजपाल एंड सन्ज, 2002.

फ्रायड, सिगमण्ड. *द इंटरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स.*(अनुवाद) राजपाल एंड सन्ज, 2005.

छ. पत्रिकाएँ

गुप्ता, विपिन. *"आधुनिक हिन्दी नाटक और लोकतत्त्व". अक्षर-पर्व.* अप्रैल 2018. अंक-223.

शर्मा, गोपीराम. *"समकालीन हिन्दी नाटक और आधुनिकता बोध". REVIEW OF RESEARCH* जनवरी-2018.

लवलीन, लव कुमार. *"संसार-समर में हारती स्त्री" समीक्षा.* जनवरी-मार्च 2012. अंक: 4

लीलावती, प्रो. के. *"साहित्य में सामाजिक चिंतन" गंगनांचल.* मार्च-अप्रैल 2015. अंक 35

रंभिरकर, संदीप. *भाषा.* जुलाई-अगस्त 2019. अंक: 285.

पाठक, सुप्रिया. *मधुमती.* फरवरी 2020. अंक: 2

सुमन, राजीव. "स्त्रीकाल स्त्री का समय और सच". *ऑनलाइन शोध पत्रिका.* 2019. अंक: 31

सी, राधामणि. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दी रिसर्च.* दिसम्बर 2019.

मिश्र, विनोद कुमार. *विश्व हिन्दी पत्रिका. "भारतीय प्रवास एवं उनसे जुड़े कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य".* 2019.

मेहरा, किरन. आई.एल.ओ. की पत्रिका "श्रम की दुनिया" अप्रैल 2009. अंक: 35

वाजपेयी, लक्ष्मी शंकर. "*साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक" साहित्य अमृत.* मई 2020 अंक: 25

सिंह, जीवन. *साहित्य समाचार (नाटक अंक).* जुलाई 1988.

ज. समाचार-पत्र

कुमार, सुनील. *"व्यथा की कथा, कथा की व्यथा बनाम 'मोहम्मद जलालुद्दीन'" उत्तम हिन्दू.* 14 अप्रैल 2019. पृ-04

दैनिक भास्कर (bhaskar news network) nov 28.2015. 02:05am IST (bhaskr.com)

भारद्वाज, नीरज. *"यथार्थ का बदलता स्वरूप" दैनिक सवेरा.* 26 अगस्त 2019. पृ-03

भटिया, अशोक. *"राजनीतिक मुद्दों में खो गया कृषक आत्महत्या का मुद्दा" दैनिक सवेरा.* 12 मार्च 2020. पृ-04

सिंह, गुरतेज. *"देश में आज भी सुरक्षित नहीं है नारी" अजीत.* 25 जनवरी 2020. पृ-04

पाण्डेय, अनिल. *"पंजाब के हिन्दी साहित्य पर ठहर कर कार्य करने की जरूरत है"* लोक-रंग. 16 से 31 दिसम्बर 2020. पृ-02

झ. इंटरनेट

www.bookmyforex.com

www.drishtiias.com

परिशिष्ट
शोध पत्र प्रकाशन एवं प्रस्तुतीकरण

IASE (deemed to be university)

उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), सरदारशहर (चूरू) राज.

हिन्दी विभाग

"21 वीं सदी और साहित्यिक विमर्श"

राष्ट्रीय संगोष्ठी

दिनांक : 08-09 नवम्बर 2019

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री/श्रीमान्/श्रीमती/डॉ./प्रो. गुरमीत सिंह (शोधार्थी)

विश्वविद्यालय/महाविद्यालय लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जलंधर ने दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में

विशेष वक्ता/प्रपत्र/सत्र अध्यक्ष/विषय विशेषज्ञ/प्रतिभागी के रूप में भाग लिया एवं हिन्दी और पंजाबी के नाटकों में बदलता स्त्री

प्रतिमा स्वरूप (इक्कीसवीं सदी के बदलते परिवेश के विशेष सन्दर्भ में) विषय पर व्याख्यान/आलेख प्रस्तुत किया।

डॉ. कल्पना मौर्य
विभागाध्यक्ष एवं संगोष्ठी संयोजक

प्रो. के. रानी लक्ष्मी
अधिष्ठाता

खालसा कॉलेज फॉर वूमैन

सिविल लाईन्ज़, लुधियाना

एवं

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित

एक-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

दिनांक 05 नवम्बर 2019

हिन्दी साहित्य में विभिन्न विमर्शों की भूमिका

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/श्रीमती/डॉ/सुश्री गुरमीत सिंह, शोधार्थी लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालन्धर ने दिनांक **05 नवम्बर 2019** को हिन्दी विभाग, खालसा कॉलेज फॉर वूमैन, सिविल लाईन्ज़, लुधियाना द्वारा आयोजित एक-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में अध्यक्ष/बीज-वक्ता/विषय-विशेषज्ञ/पत्र वाचक/प्रतिभागी के रूप में भाग लिया तथा अपना वैचारिक योगदान दिया। इन्होंने संगोष्ठी में किसान विमर्श बदलते परिप्रेक्ष्य में विषय पर शोध-पत्र प्रस्तुत किया।

मुक्ति गिल		कामिनी साहिर
डॉ. मुक्ति गिल	प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय	डॉ. कामिनी साहिर
प्राचार्या एवं	निदेशक	विभागाध्यक्षा एवं
संगोष्ठी संरक्षक	केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा	संगोष्ठी संयोजिका

ੴ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਜੀ ਕੀ ਫ਼ਤਹਿ॥

100 YEARS OF SERVICE 1917-2017

ਪੰਜਾਬ ਭਵਨ
PUNJAB BHAWAN

Gujranwala Guru Nanak Khalsa College, Ludhiana

INTERNATIONAL CONFERENCE ON IMMIGRANT LITERATURE

January 16-17, 2018

This is to certify that गुरमीत सिंह has participated / presented

a paper on हिन्दी और पंजाबी साहित्य में प्रवास at the

International Conference jointly organised

by

Parwasi Sahit Adhyan Kendra and Punjab Bhawan, Surrey, Canada

Dept. of Hindi Prof. Incharge	Dept. of Hindi H.O.D.	Parwasi Sahit Adhyan Kendra Co-ordinator	Punjab Bhawan Surrey, Canada Co-ordinator	Principal

गुरमीत 446

SUS PANJAB UNIVERSITY CONSTITUENT COLLEGE

GURUHARSAHAI (Ferozepur)

NATIONAL SEMINAR

"Swachh Bharat Abhiyan : Issues and Prospects"

(Sponsored by ICSSR-North-Western Regional Centre, Panjab University, Chandigarh)

Indian Council
Social Science Rese

11 March 2018

Certificate

This is to Certify that Prof./Dr./Mr./Ms. Gurmeet Singh

from Lovely Professional University, JALANDHAR

has attended One Day National Seminar organized by the Department of Political Science, SUS Panjab University Constituent Colleg

Guruharsahai (Ferozepur) on "Swachh Bharat Abhiyan : Issues and Prospects" as a Resource Person / Paper Presenter / Participan

He/She has chaired the Technical Session / Presented a paper on the topic 'आज की पुकार' नाटक में स्वच्छता की पहल

H.S. Bhardwaj
Organizing Secretary

Dr. N.R. Sharma
Principal/Seminar Direct

ALOCHANA CHAKRA JOURNAL

(UGC-CARE GROUP-1 JOURNAL)

An ISO : 7021 - 2008 Certified Journal

ISSN NO: 2231-3990 / Web : http://alochanachakra.in/// e-mail : submitacj@gmail.com

Certificate of Publication

This is to Certify that the Paper Entitled

आधुनिक राजनेताओं का जनता के प्रति बदलते दृष्टिकोण का साहित्यक अध्ययन
(हिन्दी और पंजाबी भाषा के नाटकों के संदर्भ में)

Authored by:

गुरमीत सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर

From

एस.यू.एस कॉलेज, गुरु हरसहाय (फिरोजपुर)

Has been published in

AC JOURNAL, VOLUME IX, ISSUE V, MAY-2020

L Zadeh (Univ. of California, USA)
Editor-In-Chief
ALOCHANA CHAKRA JOURNAL
http://alochanachakra.in/

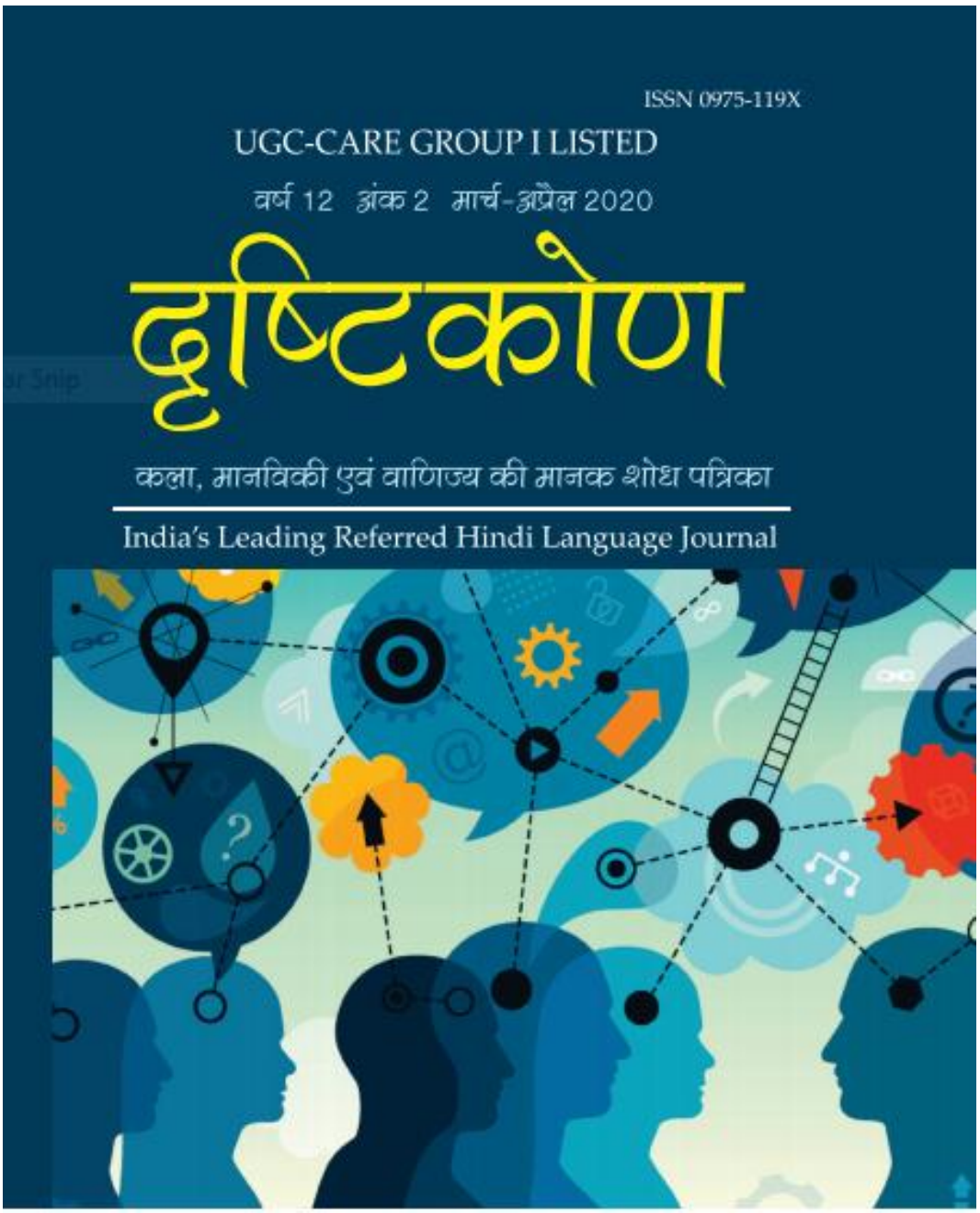
ISSN 0975-119X
UGC-CARE GROUP I LISTED
वर्ष 12 अंक 2 मार्च-अप्रैल 2020
दृष्टिकोण
कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका
India's Leading Referred Hindi Language Journal

समकालीन भ्रष्टाचार की यथार्था की व्यंग्यपरक अभिव्यक्ति नाट्य साहित्य के संदर्भ में

गुरमीत सिंह

शोध-छात्र, हिन्दी विभाग, एल.पी.यू, जलंधर, गाँव-हौजखास, डाक-चिमनेवाला, जिला-फाजिल्का (पंजाब)

नाटक को आम आदमी से जोड़ने और आम आदमी तक पहुँचाने के लिए 'आम आदमी की तकलीफ' को वस्तु-विधान में संयोजित करना ही समकालीन नाटककारों का प्रमुख उद्देश्य है। किसी भी भाषा का साहित्य वहाँ के समाज का दर्पण और मार्गदर्शक होता है। किसी भी राष्ट्र या सभ्यता की जानकारी उसके साहित्य से ही प्राप्त की जा सकती है। साहित्य लोक जीवन का अभिन्न अंग होता है। किसी भी काल के साहित्य से उस समय की परिस्थितियों, जनमानस के रहन-सहन, खान-पान, प्रशासनिक व्यवस्था व अन्य गतिविधियों का पता चलता है। समाज साहित्य को प्रभावित करता है और साहित्य समाज पर प्रभाव डालता है। दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं, नाट्य-विधान में भ्रष्टाचार के गंभीर अभिप्रायों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो सबसे पहले भ्रष्टाचार के विषय में जानते हैं। भ्रष्टाचार का अर्थ भ्रष्ट आचरण या व्यवहार से है जो स्वार्थ से लिप्त होकर कोई भी किया गया गलत कार्य भ्रष्टाचार होता है। भ्रष्टाचार का क्षेत्र बहुत विशाल है और इसके कई रूप है जैसे रिश्वत, कमीशन लेना, काला बाजारी, मुनाफाखोरी, मिलावट, कर्तव्य से भागना, चोर अपराधियों को सहयोग करना और इसके अतिरिक्त गलत कार्य में रुचि लेना आदि सभी अनुचित कार्यों को भ्रष्टाचार कहा जाता है। भारतीय समाज में भ्रष्टाचार की स्थिति एक आतंक जैसी है, जहाँ प्रशासनिक से लेकर शैक्षिक तक और सामाजिक से लेकर धार्मिक तक आदि सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार का राज चलता है। धन की तृष्णा में जलता हुआ आदमी बाहरी सज्जा-सजावट एवं भोग विलास के लिए पैसा कमाना चाहता है और इसके लिए सबसे लघुतम साधन है, भ्रष्टाचार। आदमी इतना स्वार्थी हो गया है कि वह भ्रष्टाचार फैलाकर दुनियां भर की सम्पत्ति अपने घर में भर लेना चाहता है।

21वीं शताब्दी के नाटकों में भ्रष्टाचार का रूप देखने से पहले हम इनके अतीत के नाटक देखतें हैं जिससे बदलाव को प्रस्तुत किया जाए। अतीत के हिन्दी नाटकों में शंकर शेष का नाटक 'नई सभ्य नये नमूने' की कथा भ्रष्टाचार से संबंधित है जिस में 'कृष्ण' नामक पात्र के माध्यम से नाटककार पौराणिक मिथक के द्वारा सामाजिक व्यवस्था एवं मनुष्य के चरित्र के पतन का प्रश्न उठाते हुए समकालीन परिप्रेक्ष्य में कृष्ण की वास्तविक स्थिति को उदघाटित किया है। नाटक का नायक पात्र कृष्ण काफी सुशिक्षित है। उसके पिता पर झूठे आरोप लगाकर नौकरी से हटा दिया जाता है। माँ ने कष्ट सहन करके कृष्ण को पढ़ाया। उसने प्रथम श्रेणी में स्नातक किया। वह नौकरी के लिए दर-दर भटकता रहा लेकिन उसे नौकरी नहीं मिली। उसका दोष यही था कि वह किसी सेठ-साहूकार, आला-अफसर का रिश्तेदार नहीं था। इसी बीच उसकी प्यारी बहन को क्षय की बीमारी हो जाती है। बहन के इलाज के लिए उसके पास रुपये नहीं थे। वह रुपयों के लिए अनेक लोगों के सामने गिड़गिड़ाया लेकिन उसे किसी ने मदद नहीं की। डॉ. सर्वराय जाधाव ने अपनी रचना "शंकर शेष का रचना संसार' नामक रचना में इस नाटक के विषय में लिखा है कि वह कृष्ण का रूप धारण कर लेता है। अपनी बहन को अस्पताल में भर्ती करके अपने दोस्त ऊधो के यहाँ रहकर वह मुर्ख तथा बेईमान लोगों को लूटता रहा। वह गगन बिहारी, भुलवू प्रसाद, स्मृति, धारनी को लूटकर पच्चीस हजार रूपये ऐंठता है। (शेष 65)

इसके आलावा नाटककार बृजमोहन शाह की रचना 'त्रिशंकु' कथ्य और शिल्प की कृष्टि से नयी उद्भावना को प्रस्तुत करती है। 'त्रिशंकु' नाटक में भ्रष्ट सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए युवा पीढ़ी का संघर्ष और निरर्थकता बोध प्रस्तुत

आभ्यंतर (AABHYANTAR. PEER REVIEWED JOURNAL) अंक 14जनवरी-मार्च 2020 ISSN:2348-7771

21वीं शताब्दी के नाट्य साहित्य में नारी के बदलते स्वरूप का अध्ययन
(हिंदी और पंजाबी के नाटकों की तुलनात्मक दृष्टि से)

शोधकर्ता- गुरमीत सिंह
सहायक प्रोफेसर, एस. यू. एस कॉलेज,
गुरु हरसहाय (फिरोजपुर)
शोध-निर्देशक- डॉ. विनोद कुमार
सहायक प्रोफेसर, एल. पी. यू. जालंधर

नारी का सम्मान करना एवं उसके हितों की रक्षा करना हमारे देश की सदियों पुरानी संस्कृति है। नारी समाज का आधार है, प्रत्येक समाज के निर्माण के लिए नारी की मुख्य भूमिका होती है। हमारे ग्रंथों में नारी को संसार की जननी कहा गया है और साथ ही नारी के देवी रूप को भी स्वीकार किया गया है। परंपरागत मानसिकता ने नारी को दोषी और दानवी, दो विभागों में विभाजित किया। कहीं उन्हें देवीय गुणों से पुष्ट मानकर देवी के रूप में पूजा गया और कहीं उन्हें राक्षसी गुण बतलाकर उसे दानवी कहकर भर्त्सना की दृष्टि से देखा गया। किंतु वास्तव में यह न तो देवी है और न दानवी। यह एक सामान्य मानव है। अगर नारी शब्द को देखा जाए इसका सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में प्राप्त हुआ जिसमें इसका अर्थ है 'याज्ञिक पत्नी' था। मृणाल पांडे ने अपनी रचना 'नारी, देह की राजनीति से देश की राजनीति' में लिखते हैं कि "समाज में नारी की मूल अवधारणा नकारात्मक है। लगभग सभी धार्मिक और दार्शनिक दायरे नारी को पुरुष के संदर्भ में एक अपूर्ण और सापेक्ष जीवन के रूप में देखा गया है।" (मृणाल पांडे 14) भगवान श्री कृष्ण, अर्जुन को उपदेश देते हुए बताते हैं कि:-

'कीर्ति श्रीर्वक्य नारिणां स्मृति मेघा धृतिः क्षमा'

अर्थात स्त्रियों में कीर्ति, वाणी, स्मृति, बुद्धि, धृति और क्षमा होती है। आदिकाल से लेकर आज तक का भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि नारी किस प्रकार जीवन के क्षेत्र में पुरुष की अभिन्न सहयोगिनी के रूप में अपने नारीत्व को प्रकाशित करती आई है। नारी के सहयोग के अभाव में पुरुष ने सदा अकेलेपन का अनुभव किया है और जहां भी सहयोगिनी के रूप में नारी प्राप्त हुई है, वहां उसने सदैव विजय ही पाई है। भारतीय साहित्य नारी के विविध चित्रों से ओतप्रोत है। वास्तव में सत्य यह है कि जिस युग के समाज में नारी का स्थान था, उस युग के साहित्य में नारी उसी रूप में चित्रित की गयी है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज की सारी मान्यतायें, उसके युग के साहित्य में उभर आती है। यही कारण है कि आदिकाल से लेकर आधुनिक युग के साहित्य में प्रस्तुत नारी के विविध रूप देखने को मिलते हैं, अपने युग की नारी विषयक मान्यताओं के ही प्रतिरूप हैं। भारतीय इतिहास का प्रारंभ वैदिक युग से हुआ। इस युग से ही नारी का पूर्ण सम्मान किया जाता था।

इस प्रकार यदि हम 21वीं शताब्दी के बदलते परिवेश को प्रस्तुत करें तो आधुनिकता को जानने से पहले हम अतीत को देखेंगे। इसलिए हिंदी नाटकों के साहित्य के विकास की दृष्टि सबसे पहले भारतेंदु युग के नाटकों में नारी की दशा का वर्णन करेंगे। इस युग में नारी को केंद्रित बना कर लिखे गए नाटकों की संख्या ज्यादा तो नहीं है। इस युग के प्रताप नारायण मिश्र ने 'कलिकौतुक' नाटक में एक पवित्र हिंदू नारी की कथा को प्रस्तुत किया था। विकास की दृष्टि में नारी के बदलते स्वरूप को देखें तो भारतेंदु का मौलिक नाटक 'नीलदेवी' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया नाटक है। इसमें नारी न तो अबला बनकर हमारे सामने प्रकट होती है और न ही पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगी हुई। वह अपने घर को संभालती है लेकिन परदे से बाहर निकलकर। वह अपने आप को बेबसी से मुक्ति दिलाकर स्वयं में परिवर्तन लाती है और अपने पति की हत्या का बदला लेती है। विद्यासुंदर में भारतेंदु ने प्रेम विवाह का समर्थन किया है। उसके साथ ही वह मां-बाप के आशीर्वाद को अनिवार्य मानते हैं। 'भारत दुर्दशा' में बहु-विवाह को नकारा गया है तथा बहु-विवाह को समाज की शक्ति का विनाशक बताया गया है। भारतेंदु एवं उनके युग के नाटकों में जिस रूप में नर-नारी के संबंधों का उल्लेख हुआ है, उसे पता चलता है कि उस समय समाज में परंपरागत रूढ़ मान्यताओं ने अपने लिए सुदृढ़ स्थान बना लिया था। अगर पत्नी सुशीला और सच्चरित्र थी तो पति क्रोधी, क्रूर और दुराचारी एवं शराबी व्यक्ति था। अगर पति पढ़ा-लिखा तो पत्नी अनपढ़ थी।

नारी को हम प्रसाद के नाटकों की प्रधान धुरी मान सकते हैं। उनके नाटकों के नायक नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण रखते थे। नारी पात्र स्वयं अपने व्यक्तित्व का सही परिचय देती थी। प्रसाद के नाटकों की आदर्श नारियां पाशविक वृत्ति वाले क्रूर कर्म, पुरुषों को स्नेह, शीलता, सहनशीलता और सदाचार का पाठ पढ़ाती है। खलनायक पात्रों को छोड़कर बाकी सब नारी को सहचरी और प्रेरणा के रूप में देखते हैं। प्रसाद ने अपने नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' की परियोजना में नारी की स्वतंत्रता, नारी-पुरुष के संबंध, विधवा-विवाह, तलाक आदि संघर्ष युगीन प्रश्न समाए हुए हैं। नवयुग में हरिकृष्ण प्रेमी के 'शिव-साधना', 'रक्षाबंधन' तथा 'प्रतिशोध' आदि नाटकों ने विशेष नारी के प्रति प्रभाव को जाग्रत किया। डॉ. नीलम राठी ने अपनी रचना 'साठोत्तरी हिंदी नाटक' में लिखा है कि-

महाभारत-कालीन स्थितियों को, उस युग से आज तक निरंतर विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि युग बदला, व्यक्ति बदले, मूल्य बदले किंतु नारी की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। पिता एवं पति की इच्छाएं तब भी धर्म का रूप लिए थी, आज भी है। तब भी पुरुष अहम की पुष्टि के लिए, मनचाहा कर्म करने के लिए धर्म,

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : bohalsm.blogspot.com

Certificate of Publication

is awarded to

गुरमीत सिंह

for the paper titled

वर्तमान के समाज में बदलती युवा मानसिकता का अध्ययन (हिन्दी और पंजाबी के नाटकों के विशेष सन्दर्भ में)

Published in **Bohal Shodh Manjusha** ISSN:2395-7115

जनवरी–मार्च 2020, Vol. 11, Issue-1, **पेज नं. 92–96**

INTERNATIONAL PEER REVIEWED/REFERED AND INDEXED

MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY

RESEARCH JOURNAL WITH IMPACT FACTOR 3.811

निस्केयर

NISCAIR

Dated : 31-03-2020

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

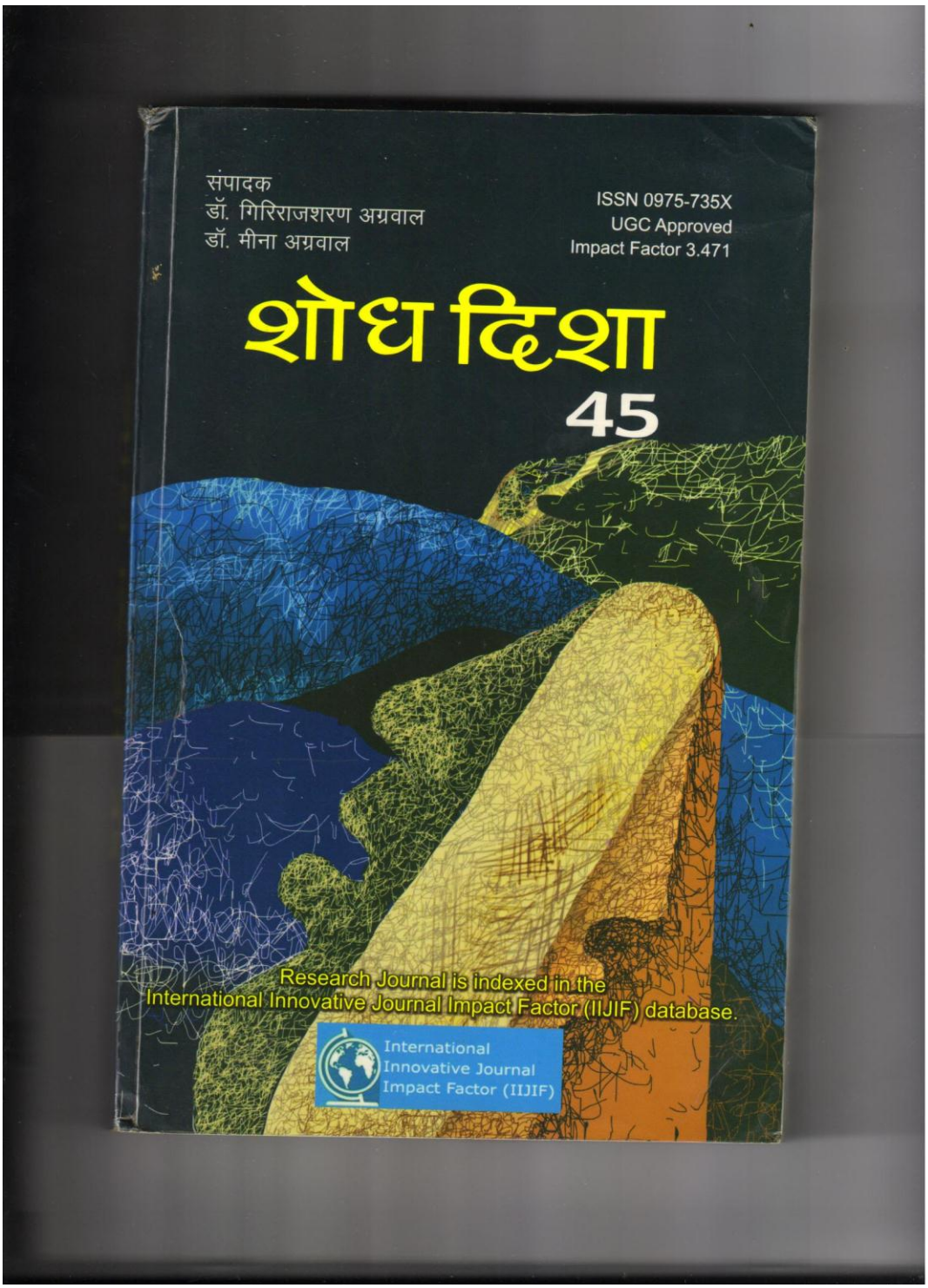
संपादक
डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
डॉ. मीना अग्रवाल
ISSN 0975-735X
UGC Approved
Impact Factor 3.471
शोध दिशा
45
Research Journal is indexed in the
International Innovative Journal Impact Factor (IIJIF) database.
International
Innovative Journal
Impact Factor (IIJIF)

हिंदी और पंजाबी नाटकों में परिवर्तित परिवेश

गुरमीत सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर
एस॰यू॰एस॰ कॉलेज
गुरु हरसहाय (फिरोजपुर)

साहित्य समाज और जीवन का दर्पण होता है। नाटक भी इस तथ्य से अलग नहीं है। पंचम वेद के रूप में जब नाट्यशास्त्र की रचना की गई तब उसका भी एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था, एक ऐसे शास्त्र की रचना करना जो अपने समय, समय से आगे और समय से पीछे के सामाजिक सत्य को निरूपित करते हुए हर देशकाल और परिस्थिति के अनुरूप मनोरंजन के साथ समाजिक उद्देश्यों को भी पूरा कर सके।

नाटक मानवीय भावनाओं को प्रस्तुत करने का एक प्रभावशाली माध्यम है। इसका श्रव्य एवं दृश्य दोनों पर प्रभाव रहता है। नाटकों की उपयोगता का कारण जनभावनाओं की प्रधानता है। डॉ॰ लक्ष्मीनारायण भारद्वाज ने अपनी रचना 'नाटक परंपरा-परिवेश' में कहा है कि 'भारतीय नाटककारों ने अपनी नाट्यरचनाओं की कथावस्तु धर्मग्रंथों, पुराणों या काव्यों से ग्रहण कर उसे जनता की रुचि में ढालकर देश, काल और परिस्थिति के अनुसार जनरंजन की दृष्टि से ऐसे नाटकों की योजना की जो विद्वत्समाज तथा जनमानस के लिए एक जैसी उपयोगता अर्जित कर सकते थे।'[1]

इस कारण भारतीय नाटककारों ने अपनी नाट्यरचनाओं की कथावस्तु वैदिक ऋचाओं, पुराणों, धर्मग्रंथों आदि से ग्रहण करते हुए उसे जनता की रुचि में ढालकर देश-काल और परिस्थिति के अनुसार समाज-हित के लिए साहित्य की रचना की है। इस दृष्टि से समाज के प्रति एक कवि की अपेक्षा नाटककार अधिक संवेदनशील और समर्पित होता है, क्योंकि कवि वर्तमान के प्रति उतनी निष्ठा से प्रतिबद्ध नहीं दिखाई देता, जितना अतीत को ध्यान में रखते हुए भविष्य के प्रति होता है। जबकि एक नाटककार अपने समय और समाज में घटित हो रही घटनाओं को पात्रों के माध्यम से साकार रूप देता है। नाट्य-अभिनय के दौरान ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई पात्र अपनी भूमिका नहीं, अपितु जीवित व्यक्तित्व को आधार बनाकर अपने जीवन को प्रस्तुत कर रहा है। अतः यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि नाटककार एक कवि की अपेक्षा वर्तमान के प्रति अधिक चिंतित होता है।

शब्दों में तो परिवेश शब्द का मुख्य अर्थ एक व्यक्ति के आसपास की परिस्थितियों से, चीजों से और घटनाएँ से है, जो उनके जीवन को प्रभावित करती हैं।

डॉ॰ हरदेव बाहरी के अनुसार-'परिवेश' संस्कृत पुल्लिग है, जिसका अर्थ 'परिधि और वेष्टन' है। इसके अलावा उन्होंने महान पुरुषों देवी-देवताओं के चित्रों में उनके मुखमंडल के चारों ओर दिखलाया जानेवाले प्रकाश का घेरा अथवा प्रभामंडल को भी परिवेश माना है।[2]

यदि हम 21वीं शताब्दी की बात करें तो इसमें भारत की स्थितियाँ और परिस्थितियाँ बदल रही

 ISSN 0975-735X

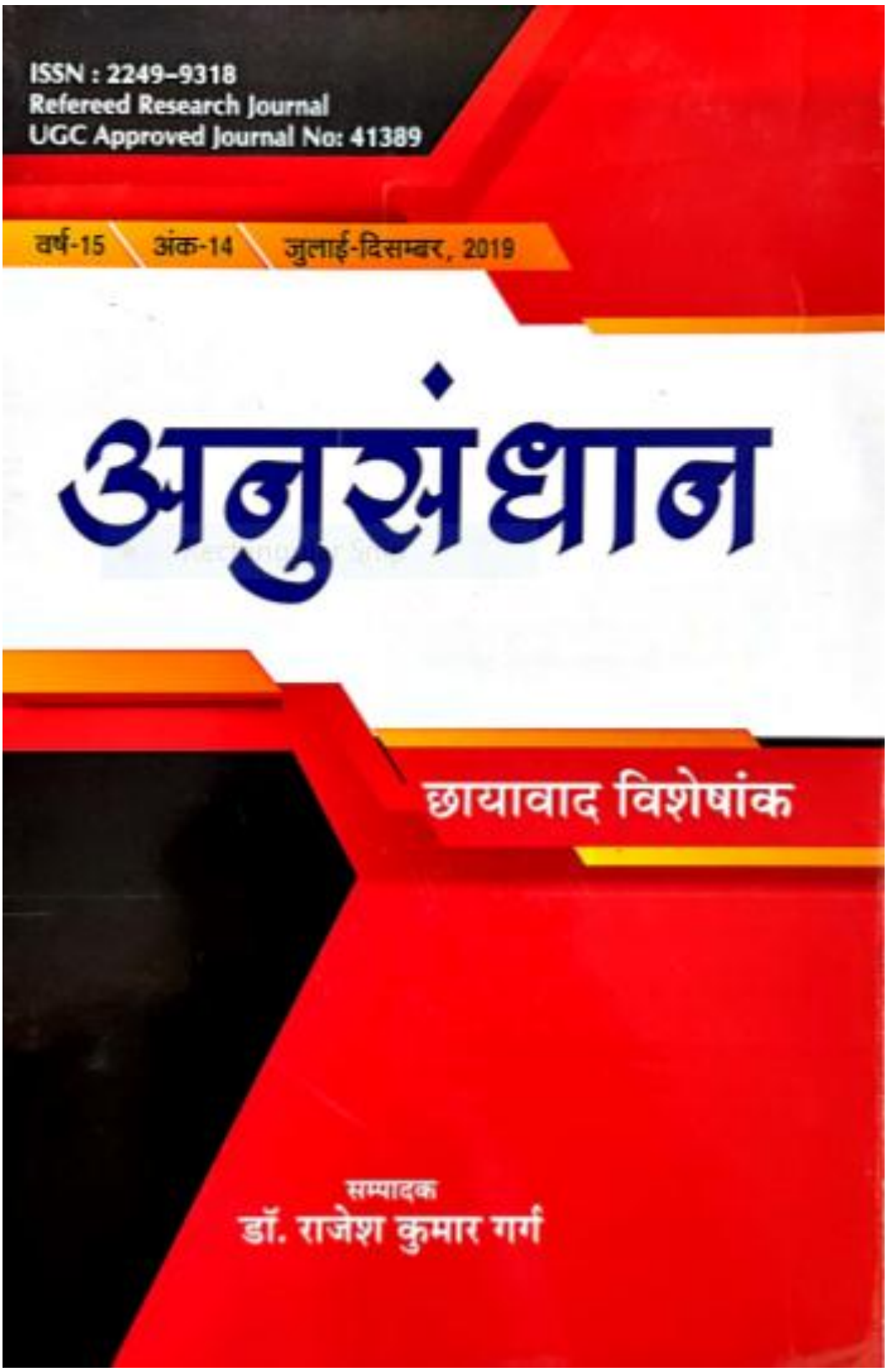
ISSN : 2249-9318
Refereed Research Journal
UGC Approved Journal No: 41389
वर्ष-15 अंक-14 जुलाई-दिसम्बर, 2019
अनुसंधान
छायावाद विशेषांक
सम्पादक
डॉ. राजेश कुमार गर्ग

Refereed Research Journal ISSN : 2249-9318 अनुसंधान

छायावाद युगीन गद्य साहित्य का संक्षिप्त मूल्यांकन
(नाट्य साहित्य के विशेष संदर्भ में)

गुरमीत सिंह*

हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावाद उस काल का नाम है जिसका प्रारम्भ सन 1918 ई. से होता है। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से अलग होकर छायावाद के रचनाकारों ने हिन्दी साहित्य का एक अभिनव प्रयोग छायावाद के रूप में प्रस्तुत किया। छायावाद के प्रमुख रचनाकार जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त एवं महादेवी वर्मा हैं। इस समय जन–जन के हृदय में स्वाधीनता के प्रति अमित लालसा जाग्रत हो चुकी थी। सम्पूर्ण देश देशप्रेम से ओत–प्रोत होकर राष्ट्रप्रेम और देश भक्ति के गीतों में अवगाहन करने लगा था। छायावाद के गद्य और पद्य साहित्य ने समाज में एक नयी जागृति पैदा कर दी थी। छायावाद के नामकरण का श्रेय 'मुकुटधर पाण्डेय' को दिया जाता है। इन्होंने सर्वप्रथम 1920 ई. में जबलपुर से प्रकाशित श्रीशारदा पत्रिका में 'हिन्दी में छायावाद' नामक चार निबंधों की एक लेखमाला प्रकाशित करवाई थी। छायावाद युग से पहले महावीर प्रसाद द्विवेदी का सबसे बड़ा योगदान खड़ीबोली को गद्य और पद्य के लिए प्रतिनिष्ठित करना था, क्योंकि द्विवेदी युग के पहले ऐसी स्थिति नहीं थी। गद्य और पद्य दोनो की भाषा अलग–अलग थी। गद्य की भाषा खड़ी बोली थी और पद्य की भाषा ब्रजभाषा थी।

किसी भी युग का नामकरण उस समय में रचे गये साहित्य की रचना के आधार पर रखा जाता है। लेकिन इस काल का नाम छायावाद काल क्यों पड़ा ? जबकि इस काल में केवल छायावाद रचनाएं ही नहीं हुई, अनेक प्रकार की गद्य और पद्य की रचनाएं प्रकाशित हुई। एक ओर इस काल में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकांत त्रिपाठी, 'निराला' तथा महादेवी वर्मा जैसे कवि हुए हैं जिनका प्रधान लक्ष्य साहित्य साधना ही था। दूसरी ओर राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के कवि–मखनलाल चतुर्वेदी, राम नरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि हुए हैं। नामवर सिंह अपनी रचना 'छायावाद' में लिखते हैं कि "छायावाद शब्द का अर्थ चाहे जो हो, परन्तु व्यवहारिक दृष्टि से यह प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी वर्मा की उन समस्त कविताओं का द्योतक है, जो 1918 से 1936 ई. के बीच लिखी गई।" (नामवर सिंह, पृष्ठ 10) इसके विपरीत हम कह सकते हैं कि छायावाद युग में अकेले पद्य साहित्य की रचना नहीं हुई इस काल में गद्य साहित्य की रचना भी होती रही है जिसके ऊपर छायावाद का प्रभाव था। जिसका उदाहरण हमें प्रसाद के नाटकों में मिलता है।

यदि हम नाटकों की बात करें तो हिन्दी–नाटक को साहित्यिक भूमिका प्रदान करने का प्रयास सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने किया था। उनके पूर्व साहित्यिक

* असिस्टेंट प्रोफेसर, एस.यू.एस.पी.यू.सी कॉलेज, गुरु हरसहाय पंजाब

पंजीकरण सं./ Registration No. BU-CSTT/16

भारत सरकार / GOVERNMENT OF INDIA

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

Commission for Scientific and Technical Terminology

मानव संसाधन विकास मंत्रालय / Ministry of Human Resource Development

उच्चतर शिक्षा विभाग / Department of Higher Education

सहभागिता प्रमाण-पत्र / CERTIFICATE OF PARTICIPATION

श्री / सुश्री / डॉ / प्रो / Mr/ Ms / Dr / Prof

Gurmeet Singh Assistant Professor SUS PU Constituent College Guru Har Sahai

राष्ट्रीय ई-कार्यशाला / वेब-गोष्ठी का शीर्षक / Title of the National e-Workshop / Webinar

"सामाजिक एवं वैज्ञानिक शोध अध्ययन में भारतीय भाषाओं की तकनीकी शब्दावली की भूमिका"

स्थान / Venue

बुन्देलखंड विश्वविद्यालय,झाँसी

अवधि / Duration

दिनांक 21-24 मई 2020 तक (दोपहर 2:00 - 5:00 तक)

इंजी शिव कुमार चौधरी / Er Shiv Kumar Chaudhary
प्रभारी अधिकारी /Officer-in-Charge

प्रोफेसर अवनीश कुमार /Professor Avanish Kumar
अध्यक्ष / Chairman

दिनांक / Date: *24 मई 2020*

पश्चिमी खंड-7, राम कृष्ण पुरम, नई दिल्ली-110066 / West Block 7, Rama Krishna Puram, New Delhi - 110066

Scanned with CamScanner